मुद्रक
बा० मथुराप्रसाद शिवहरे

ओ३म्

तृतीयखण्ड की भूमिका

(तृतीय संस्करण)

इस खण्ड में कतिपय अस्पष्ट और विवादास्पद विषयों का विवेचन करना अत्यावश्यक जान पड़ता है। यथा:—

(१) कृत्या

कृत्या के विषय में द्वितीयखण्ड की भूमिका में भी हम पर्याप्तरूप से लिख आये हैं। गुप्त और व्यापक घातक क्रियाएं 'कृत्या' कहाती हैं यह अभिप्राय हम प्रथम स्पष्ट कर आये हैं। १० वें काण्ड के प्रथम सूक्त से हमें बहुत सी उन कृत्याओं का प्रयोग ज्ञात होता है जिनका प्रयोग अति भयानक और प्राणसंहारी होता होगा। जैसे लिखा है कि —

(१) कृत्या सिर, नाक, कान वाली, हिंसाकारी, घातक साधनों से सजी और नाना प्रकार की होती है (१० । १ । २)। यहां कृत्या का अर्थ सेना प्रतीत होता है।

(२) यजुर्वेद (अ० ५ । मं० २३) में 'वलग' और कृत्याओं को भूमि में से खोदकर निकाल देने का वर्णन आया है।

इस यजुः की व्याख्या करते हुए शतपथ ने लिखा है कि—

"देव और असुर दोनों ही प्रजापति के सन्तान थे। वे परस्पर लड़ते थे। तब असुरों ने इन लोकों में 'कृत्या' और 'वलग' इनको गाड़ दिया कि इन से देवों को परास्त करेंगे। देवों को यह पता चल गया। देवों ने इन इन उपायों से कृत्या और वलग दोनों को उखाड़ डाला।

जब 'कृत्या' को लोग उखाड़ देते हैं तो वह 'अलसा' अर्थात् मन्द पड़ जाती है और 'मोघा' व्यर्थ हो जाती है। उसी प्रकार यह भी होता है कि कोई शत्रु द्वेष करके जिस किसी के लिये कृत्या और वलगों को गाड़ देता है वह उनको खोद डालता है, इसी से उपरवों को खोदता है।"

शतपथ के उद्धरण ने स्पष्ट कर दिया है कि ये 'वलग' गुप्त बारूद या विस्फोटक पदार्थों के गोले है जो बड़े वेग से फूटकर प्राणों का नाश करते है और उनको खोद देने पर फिर उनका कुछ बल नहीं रह जाता है। वे 'उपरव' कहाते हैं क्योंकि जब ये फूटते है आवाज़ करके फूटते हैं। इसके अतिरिक्त यजुर्वेद में 'बृहद्रवा' शब्द का भी प्रयोग किया है (यजु० ५। २२)।

कदाचित् तोप या महती शक्ति 'बृहद्रवा' कही जाती है। और गोले 'उपरव' कहाते हों। वेद ने 'बृहद्रव' शब्द का प्रयोग किया है, ब्राह्मण-कार ने 'उपरव' शब्द का परिचय दिया है।

(३) कुछ कृत्याएं ऐसी होती हैं जिनका प्रतिकार ओषधि द्वारा किया जाता है। जैसे विषैली गैसों का प्रयोग और विष से लिपे पदार्थों का प्रयोग। खेतों में, गौओं में और पुरुषों में भी हत्याकारी प्रयोग करके इस अन्न, दूध और पुरुषों के व्यवहार और सम्पर्क से नाना पीड़ाएं उत्पन्न की जा सकती है उनका प्रतीकार भी ओषधियें ही हैं।

(४) कृत्या विशेष यन्त्रकला के रूप में भी तैयार की जाती है जिसके सब कलपुर्ज़े विशेष शिल्प द्वारा तैयार किये जाते है (अथर्व० १० । १ । ८)।

वह कृत्या छूटते समय या प्रतिप्रयोग करते समय भी घोर शब्द करती है (१० । १४)।

(५) कृत्या तोप के समान पहियों पर चलती और चलते समय बड़े बड़े पदार्थों को फोड़ती, नाना रूप वाली और कठोर शब्द करती है (१० । १५)।

इसी से यह भी ज्ञात होता है कि सेना या 'वाहिनी' भी कृत्या कहाती है। उस सेना को नाश करने का उत्तम उपाय तलवारों अर्थात् हाथों हाथ लडाई को बतलाया गया है।

(६) इसके अतिरिक्त अथर्ववेद के शत्रुनाशक या भ्रातृव्य क्षयण सूक्तों के पाठ से विदित होता है कि वेद में नरसंहारक अस्त्रों का भी वर्णन है जैसे अर्बुदि और त्रिसंधा अस्त्रों का प्रयोग, उनसे अनेकानेक भयंकर रूपों का प्रदर्शन, अग्निजिह्वा और धूम-शिखाओं का ऐसा प्रयोग जिसमे हजारों का एक वार ही नाश हो जाय। इत्यादि (का० ११, सू० ९, १०)।

(७) वेद मे ऐसे प्रयोग भी लिखे हैं जिनके प्रयोग से शत्रुओं की भुजाएं कटफट जायं। वे शस्त्र संचालन के लिये निकम्मे हो जायं, देखो (का० ६। सू० ६६)।

(८) ऐसे सर्व संहारक अस्त्रों का प्रयोग है जिससे शत्रु की सेनाओं के दस्ते के दस्ते बेहोश हो जावें, उनमे अन्धकार छा जाय अर्थात् उनकी आखें देखने की शक्ति से हीन हो जायं, उनको अन्धेरा ही अन्धेरा दीखे (का० ११। सू० १०। म० २०)।

(९) वेदने ऐसे उपायों का भी वर्णन किया है कि जिससे शत्रु के फेंके संहारक प्रयोग कुछ कष्ट न दें, वे वैसे के वैसे ही विजली के बल से वापस चले जाय और शत्रु को दुगने तिगुने वेग से नाश करें। (देखो अथर्व० का० १०। सू० १। मन्त्र १७)।

(१०) अब भी आकाश से फेंके गए नाना प्रकार के बाम्बस् को फूटने के पहले ठंडा करने वा काबू करने के उपाय किये जाते हैं। वेद ने भी इसका निर्देश किया है (मन्त्र २१) कि कृत्या की गर्दन Neck और पैर काट देने से वह भीतर का मसाला विना फूटे बह निकलता है।

(११) शत्रु पर देव-हेति विद्युत् के प्रयोग का उपदेश किया है। (मन्त्र २३)।

(१२) वेदोक्त आग्नेय अस्त्रों का प्रयोग बहुत चमत्कारी है। बढ़ती शत्रु सेना को रोक थाम के लिये और युद्धोपयोगी सामग्री संचय का नाश करने के लिये 'अग्निमन्यु' प्रयोग का उपदेश किया है (का० ७ । सू० ७०)।

(१३) शत्रुसेना की युद्ध सामग्री को नाश करने के लिये वेग से उड़कर जाने वाले दो प्रकार के श्येन-यन्त्रों का उपदेश किया है। (का० ७ । सू० ७० । मं० २)।

(१४) इसी प्रकार (का० ८ । सू० ३) में शिशान अग्नि, अयोदष्ट अग्नि, अग्नि जिह्वाओं, पास और दूर की मार (अ० ३) आकाश में घूमने वाली अग्नि आदि का वर्णन किया है (कां० ८ । सू० ३ । मं० ५)।

(१५) अति तीव्र प्रकाश के प्रयोग से शत्रु की आंखों का नाश करना (मं० ९), अग्नि की हरस् शक्ति से शत्रु का शिर छेदन (मन्त्र १५), अर्चि वेधन (मं० १९), तथा पैरों वा अंगो मे पीड़ा उत्पन्न करना (मं० २०), विष प्रयोग से हनन (२३), तिग्मशोचि यन्त्रों से तपन आदि (मं० २३) आदि का भी उपदेश है।

(१६) कांटेदार तार शत्रु के गुप्त रूपों को देखने के लिये 'कश्यप चक्षु' और शुनी चक्षु का वर्णन वेद में उपदिष्ट है। इसी प्रकार इन्द्र का महावधास्त्र और अग्नि का वेधनास्त्र भी विचारणीय है। ऐसे यन्त्र जिनसे समस्त भुवन दीखें, इस ब्रह्माण्ड से परे के लोक भी दीखें ऐसे वैद्युतिक अस्त्र जिससे दौड़तों के हाथ कटफट जायं 'नैर्बाध्यं हवि' जिसके प्रयोग से शत्रु अपने घर सदा के लिये छोड़कर भाग जावें, ऐसे बादलों से वर्षा कराना जिनसे शत्रु के विषैले प्रयोग निर्विष हो जायं शत्रु सेना को ऐसा जकड़ना कि उनके प्राण तक निकल जायं तिग्म-पवि-नामक अग्नियन्त्र जिससे पर्वतों तक मे छिपे शत्रु की खबर लें, ऐसे आग्नेय प्रयोग जिनसे शत्रु नपुंसक हो जाय, इत्यादि अनेक चमत्कारी बातों का अथर्ववेद मे उपदेश है जिनका सफलता पूर्वक निर्माण अथर्व-

वेद के धनुर्वेद और आसुर-वेद आदि में विस्तृत वर्णन अवश्य होगा। परन्तु उनके वर्त्तमान मे उपलब्ध न होने से केवल वर्तमान वैज्ञानिक प्रयोगों ने उन सबका साधारणतः अनुमान हो सकता है।

(२) अभिचार कर्म

अभिचार कर्म के विषय मे हमने अपना पूर्ण मन्तव्य द्वितीय खण्ड की भूमिका मे पर्याप्त रूप से खोलकर दर्शा दिया है। इस प्रसङ्ग मे हम इस खण्ड मे आये उन सूक्तों की भी विवेचना करेंगे जिन्हे विनियोग-कारों ने अभिचार करने के लिये लिखा है। काण्ड १० के सू० ५ 'इन्द्र-स्यौज रथः०' इत्यादि को कर्मकाण्डियों ने अभिचार कर्म के लिये विनि-युक्त किया है। पर कर्मकाण्ड की विधियों का गूढ अभिप्राय निम्न-लिखित है। यथा:—

इन सूक्तों मे कलश राष्ट्र का प्रतिनिधि है। जल प्रजाओं का प्रति-निधि है। कास्य कलश मे जल लेने का तात्पर्य उनको राज्य की रक्षा मे लेना है। उनके दो भाग करने का तात्पर्य शत्रु पर आक्रमण करने के लिये उत्तम प्रजा के पुरुषों का चुनना है। शेष नीचे के जल सहित कलशों का दूसरे पुरुष को सौंपने का तात्पर्य उनको युद्धोपयोगी न समझ कर छोड देना है। पात्र के जल को तपाना, उनमे तप, विद्या, वीर्य, तेज का प्रदान कर उनको उग्र बनाना है। प्राणियो को अभय देने का तात्पर्य समस्त प्रजाओं को अपने तीव्र सेनाबल से निःशंक और भय रहित करना है। चारों दिशाओं में वज्र फेंकने का तात्पर्य दिग्विजय या शत्रु का सब दिशाओं मे विजय है। शत्रु की तरफ जाना उसका अभि-यान या प्रयाण है। इसी से राजा के अधीन सेनापुरुषों और अधिकारी-पुरुषों का नीति आदि के वश होकर किये असत्यभाषण का प्रायश्चित्त है। और शेष जलपात्र का पत्नी को देने का तात्पर्य शेष सेना को राष्ट्रपालक शक्ति के हाथ मे देना है। सूर्यावृत प्रदक्षिणा का तात्पर्य सूर्य के समान राजा का प्रजापालन व्रत दर्शाना है।

विनियोग द्वारा दर्शाये मन्त्रो में उनके कर्त्तव्यों का वर्णन है। जिनका स्पष्टार्थ भाष्य मे कर दिया गया है। जिस प्रकार बड़ा भारी, विजय कामना से युक्त बलवान् पुरुष चतुर्दिगन्तों को अपने सेना बल से विजय कर के सम्राट् पद को प्राप्त करता है, स्वयं 'इन्द्र' कहाता है उसी प्रकार योगी भी अपनी अध्यात्म साधनाओं और आत्मा की प्राणादि शक्तियों से व्युत्थानों पर वश कर के आत्मा का साक्षात् करता और परम पद को प्राप्त करता है, वही उसका 'स्वराज्य' 'साम्राज्य' प्राप्ति कहाता है। इन मन्त्रों की अध्यात्म योजना पर विचार करने से ब्रह्मपदप्राप्ति की साधना के रहस्य भी इस सूक्त से विदित होते हैं। उस पक्ष में 'आपः' प्राण है। 'कलश' देह है। उनके आधे नाभि से ऊपर के प्राणों की तपस्या से साधना करते हैं, पुनः चित्त वृत्ति के जितने भी द्वार हैं सभी में स्थित कामादि व्युत्थान वृत्तियों का शत्रु सेना के समान विजय किया जाता है। और फिर सूर्य के समान तेजस्वी होकर पूर्ण विजय लाभ किया जाता है।

(३) वरणमणि और खदिरफालमणि।

द्वितीय खण्ड की भूमिका (पृ० १—९) में अथर्ववेद के कल्पोक्त मणि और मन्त्रोक्त मणि शब्द की विवेचना हमने पर्याप्त रूप से की है। पाठक हमारे अभिप्राय को वहां ही अवगत करें।

दशम काण्ड के 'अरातीयो भ्रातृव्यस्य० इत्यादि सू० ६ को सर्वकामना सिद्धि के लिये 'खदिरफालमणि' बांधने में लगाया है।

परन्तु मन्त्रों में फालमणि के जिन गुणों का वर्णन किया गया है उनमे वह काष्ठखण्डमात्र प्रतीत नहीं होता। जैसे—

"वह मणि श्रद्धा, यज्ञ और तेज को धारण करे। वह घर में अतिथि होकर रहे। पिता के समान पुत्रों का कल्याण ही कल्याण करे।" (मं० ६, ५)।

ये गुण काष्ठमणि में असम्भव है। इन कार्यों के लिये उत्तम

शिरोमणि पुरुषों को राष्ट्र में वेतन और मान से बांध लेना ही वेद मन्त्र का सुसंगत अर्थ है।

उसको फालमणि क्यों कहा इसका उत्तर वेद स्वयं देता है—

"जिस प्रकार हल की फाली से खेत जोत लेने पर उसमें पड़ा बीज खूब फलता है, उसी प्रकार इस शिरोमणि द्वारा राष्ट्र के उत्तम रीति से तैयार हो जाने पर राष्ट्र में मुझ राजा की प्रजा, पशु और सब प्रकार के अन्न खूब बढ़ें" (मं० ३३)।

(४) वरणमणि

उक्त फालमणि के समान ही वरणमणि के बांधने में "अयं मे वरणोमणि." इत्यादि का० १० । सू० ३ ॥ का विनियोग लिखा गया है। इस सम्बन्ध में भी हमें कुछ विशेष कहना उचित नहीं जान पड़ता, इतने से ही पाठक जान लें कि इस सूक्त में वरणमणि के दिये विशेषण वरणा वृक्ष के काष्ठखण्ड में न घट कर स्वयं वृत वीर नेता पुरुष में ही घटते हैं। पाठक इस वरणमणि सूक्त का अध्ययन कर इस निश्चय पर पहुंच सकते हैं।

समस्त राष्ट्र के कष्टों का वारण करने वाला ही 'वरण' मणि कहाता है। और वह राष्ट्र के भिन्न भिन्न प्रकार के कष्टों को भिन्न भिन्न प्रकार से वारण करता है। वेद ने तो लक्षणमात्र दिखा दिया है। 'वरण' का शब्दार्थ स्वयं वेद खोलता है।

'वरणो वारयाता ॥ ५ ॥

अर्थात् वारण करने वाला होने से 'वरण' वह है।

वरण शब्द के समान ही 'वरण' शब्द को भी समझना चाहिये। भावार्थ दोनों में समान है।

(५) पुरुषमेध।

केन पार्ष्णी आभृते इत्यादि (का० १० । सूक्त २) को प० शङ्कर पाण्डुरंग के लेखानुसार यज्ञलम्पट साम्प्रदायिकों ने पुरुष मेध में विनियुक्त किया है। जैसे—पुरुषमेध में पुरुष को निहला धुलाकर बलि दिये

जाने योग्य पुरुषरूप पशु को इस सूक्त से अनुमन्त्रण किया जाता है।

वास्तव में इस सूक्त को अथर्ववेदान्तर्गत 'केन' उपनिषत् कहें तो बड़ा ही सुसंगत है।

इस सूक्त मे प्रथम २० मन्त्रों मे पुरुष के शरीरों की अद्भुत रचना देखकर उसके कर्त्ता के विषय में अद्भुत अद्भुत प्रश्न किये हैं। इसका रचयिता केवल 'ब्रह्म' को बतलाया है। संसार की विशाल शक्तियों के कर्त्ता के विषय मे भी प्रश्न किये हैं। (२४, २५) में उनका कर्त्ता भी ब्रह्म को ही बतलाया है। फिर मनुष्य के शिर की अद्भुत रचना पर (२६) प्रश्न किया है। (७) में सिर को समस्त दिव्य शक्तियों का खज़ाना बतलाकर उसी मे प्राण, मन और अन्न का स्थान बतलाया है।

फिर 'पुरुष' की व्युत्पत्ति बतलाई है। शिर को ही 'ब्रह्मपुरी' कहा है (२९)। उसी को 'अष्टचक्रा नवद्वारा अयोध्यापुरी' कहा गया है (३१)। उसमें तीन अरों वाले ज्योतिर्मय हिरण्यमय कोष और उसमें आत्मा की स्थिति का वर्णन है (३२)। उसी को हरिणी, यशस्विनी, हिरणमयी, अपराजिता पुरी कहा गया है (३३)।

ऐसी ब्रह्म विद्या के दिखलाने वाले सूक्त को पुरुष बलि पर लगाना बड़ी मूढ़ता है। इस सूक्त में पुरुषहिंसा की कहीं भी गन्ध नहीं। अब हम वशाशमन के प्रकरण पर विचार करते हैं।

(६) स्कम्भ

जो योरोपीयन् विद्वान् वेदों को असभ्य, अशिक्षित, लोगों के गीत समझते हैं उनको अपने बड़े बड़े दिमाग स्कम्भ सूक्त पर लगाने चहियें। उनको स्वयं अनुभव होगा कि वे भूल में थे। उच्चतम दर्शन यदि कहीं विद्यमान है तो वह वेद मे है जिसमें से व्यास का वेदान्तदर्शन और समस्त उपनिषद्, ब्राह्मणों की यज्ञ, उपासना निकली हैं।

यह कहना कि वेद में नाना देवताओं की कल्पना है वे एक परम सर्वव्यापक महान्‌शक्ति से अनभिज्ञ हैं, उनको अपना शङ्कासमाधान

स्कम्भ सूक्त से करना चाहिये। का० १०। सू० ७ वां और ८ वां ये दोनों सूक्त 'स्कम्भ-सूक्त' कहाते हैं। वेद ने स्पष्ट शब्दों में स्कम्भ का स्वरूप बतलाया है कि:—

"संसार के बीच मे सब से बड़ा पूजनीय, तप और तेज में, अन्तरिक्ष के भी ऊपर शासक है। उसमे समस्त 'देव' अर्थात् जो कोई भी दिव्य शक्तियां हैं सब आश्रय ले रही है (अथर्व० १०। ७, ८)। तथा:—

० वृक्षस्य स्कन्धः परित इव शाखा. (अथर्व० १० । ७ । ३८)।

अर्थात् जैसे वृक्ष के तने से शाखाएं उत्पन्न होती है ऐसे ही समस्त संसार की शक्तियें उसी देव से उत्पन्न होती हैं और जैसे काण्ड पर लगे लगे ही शाखाएं वृक्ष के पत्रों, टहनियों और उपशाखाओ को सम्भालती हैं उसी प्रकार बड़ी बड़ी शक्तियां अपने से उत्पन्न कार्यशक्तियों को सम्भालती हैं और संसार के पदार्थों को धारण कर रही हैं और वे भी महान् परमदेव पर आश्रित हैं। शाखाएं जैसे विना तने के गिर पड़ें और सूख जायं उसी प्रकार उस परमदेव के आश्रय के विना ये समस्त भौतिक शक्तियां भी नष्ट हो जायं।

यह है वेदोक्त परम ब्रह्म या परम देव का दर्शन जिसको देखकर मुग्ध हुए विना नही रहा जा सकता। एक उपमा में उस परमब्रह्म का स्वरूप वर्णन कर दिया है। उपनिषद् उसको 'पर ब्रह्म' कहती है, परन्तु वेद ने उसको ब्रह्माण्डरूप 'विशाल' भुवन का 'महान् स्तम्भ' [थम्भा] या 'स्कम्भ' [खम्भा] इस नाम से पुकारा है।

स्कम्भ और वैश्वानर

छान्दोग्य में केकय देश के राजा अश्वपति ने वैश्वानर के विराट् रूप का उपदेश किया है। इस स्वरूप का मूल स्कम्भ के वर्णन में वेद किया है—(अथर्व० १०।७।३२-३४)।

जो पण्डितमन्य योरोपीयन विद्वान्, अपनी सभ्यता के गर्व में अन्धे होकर मूर्खता से उपनिषदों और दर्शनों के सिद्धान्तों को वेदों से

अधिक विकसित और नवीन तम विकास (Latest development) मानते हैं उनको आंखें खोलकर अपना हृदय शीतल कर लेना चाहिये और वेद के आगे शिर झुकाना चाहिये ।

स्कम्भ स्वराज्य

परमब्रह्म को 'स्वराज्य' पद से स्मरण करना भी वेद ही बतलाता है । जिसका प्रयोग उत्तरोत्तर ब्रह्मज्ञानियों ने किया है । (१० । ३१) ।

स्कम्भ और इन्द्र

इन्द्र अर्थात् परमेश्वर 'स्कम्भ' से भिन्न नहीं, प्रत्युत ये दोनों एक ही हैं । इस सम्बन्ध में देखो (१० । २९, ३०) ।

देवमय स्कम्भ

३३ देवता उस स्कम्भ परमेश्वर के अङ्ग हैं—

यस्य त्रयस्त्रिंशद् देवा अंगे गात्रा विभेजिरे ।

प्रकृति के भीतर विद्यमान समस्त शक्ति जिससे समस्त प्राकृतिक विकार उत्पन्न होते हैं वह स्कम्भ एक अंग है जिसके लिये पुरुष सूक्त में कहा है—पादोस्येहाभवत् पुनः । इस परम पुरुष का एक पाद इस विश्व में है ।

स्कम्भ सत् और असत्

स्कम्भ प्रकरण में वेद कहता है ।

बृहन्तो नाम ते देवाः येऽसतः परिजज्ञिरे एक तद् अंग स्कम्भस्य ॥ २४ ॥

उस त्रिगुण प्रकृति से युक्त परमात्मा की शक्ति को विद्वान् 'असत्' कहते हैं ।

असच्छाखां प्रतिष्ठन्तीं परमामिव जना विदुः । उतो सन्मन्यन्तेऽवरे ये ते शाखामुपासते ॥ २१ ॥

यह 'असत्' शब्द ही शङ्कर के वेदान्त का परम मूल है । इसी को सांख्यवादी सत् मानते हैं । वेद कहता है—

उतो सन्मन्यन्तेऽवरे ॥ २१ ॥

वे उसको 'शाखा' नाम से पुकारते थे ।

असत् शाखा प्रतिष्ठन्तो परम् इव जना विदु ।
उतो सन् मन्यन्ते वरे ये ते शाखामुपासते ॥

गूढ प्रश्न और पहेलिकाये

स्कम्भ का स्वरूप निरूपण करते हुए वेद ने कुछ प्रश्न ऐसे उठाये हैं जिनका उत्तर वैज्ञानिक लोग अभी तक नही दे पाये है । जैसे—

१—कस्मिन् अंगे तपो अस्य अधितिष्ठति (७ । १)

सर्वव्यापक अनन्त परमेश्वर के किस अग मे 'तप' बैठा है ?. अर्थात् वह शक्ति जो समस्त सूर्यादि लोकों को तपा रही है वह 'तप' है वह शक्ति परमेश्वरी महान् शक्ति का कौनसा अंग या कौनसा अंश है ? इसी प्रकार

२—'कस्मिन् अगे ऋतम् अस्य अधि-आहितम्' ॥ ७ । १ ॥

इसके किस अंग मे 'ऋत' जगत् का प्रवर्त्तक बल या ज्ञान कौशल रहता है । अर्थात् वह अलौकिक रचनाकौशल जो कि कोटि कोटि ब्रह्माण्ड को चला रहा है, जिस रचनाज्ञानकौशल से इस जगत् को बनाया है, वह इस परमेश्वरी शक्ति का कौनसा अंश है ?

३—सूर्य चल रहा है, वायु बहती है (मं० ४) मास, पक्ष, वर्ष, ऋतु आदि बराबर आते हैं, भुगतते हैं, गुजर जाते हैं, (मं० ५) दिन रात आते जाते हैं, नदी बह रही है । परन्तु ये क्यों चल रहे हैं कहां जाना चाहते हैं । अर्थात् यदि ये जड हैं तो इन सबका जाना विना उद्देश्य के है, परन्तु नही । ये जरूर कहीं किसी की इच्छा से चल रहे हैं तो, वे कहां जाना चाहते हैं ? इन सब का अन्तिम लक्ष्य जहां ये पहुंचना चाहते है जिसकी इच्छा से ये चल रहे हैं वह 'स्कम्भ' है ।

४—इस अनन्त आकाश में विस्तृत अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड के बनाने में वह सर्वाधार महान् परमेश्वरी शक्तिपुञ्ज कितना उसके भीतर है और कितना विश्व के अतिरिक्त बचा है बतलाओ ?

५—जिस स्कम्भ के आश्रय अनेक लोक और भुवनकोश हैं उसमें कितना अंश जगत् रूप में प्रकट 'सत्' और कितना अप्रकट 'असत्' है, बतलाओ ? (७ । १०) ।

इतने प्रश्न वेद ने सुझाए परन्तु इनका एक का भी उत्तर वैज्ञानिकों के पास पूरी तौर से नहीं है । वैज्ञानिकों के समस्त माप आनुमानिक, लगभग और सैकड़ों बार अशुद्ध प्रमाणित होने वाले हैं ।

स्कम्भ के वर्णन में वेद ने स्थूल शब्दों में बहुतसी पहेलियां या कूट समस्याएं भी कही हैं जिनको अध्यात्मवेदी ज्ञानी विचार पूर्वक ही जान सकते हैं । जैसे—

१—सोने का बना बेंत पानी में खड़ा है । उसे जो जाने वह गुह्य प्रजापति है (७ । ४१) ।

२—दो स्त्रियां छः खूंटी लगा कर दौड़ दौड़ कर जाल बुनती हैं । एक ताना लगाती है, एक बाना, पर वे पूरा बुन नहीं पातीं, वे अन्त तक नहीं पहुंचती हैं । मं० ४ ।

३—वे दोनों तो नाचती सी हैं । उनमें कौन बड़ी, कौन छोटी, नहीं मालूम ? परन्तु एक पुरुष ही बुनता और वही उकेलता है । मं० ४३ ।

४—एक चक्र में १२ पुट्ठियां हैं, तीन नाभि हैं, ३६० कीलें चल अचल रूप से लगी हैं बतलाओ ? (८ । ४)

५—छः जोडे हैं और एक स्वयं उत्पन्न है उस एक में ही सब समा जाते हैं (८ । ५) वे कौन से छ जोडे और कौनसा एक है बताओ ?

६—हजारों अरों का एक चक्र है । उसके आधे में विश्व है । बाकी आधा कहां है (८ । ७) बताओ ?

७—एक तिरछे मुंह का लोटा है, उसके ऊपर पेंदा है । उसमें विश्व रक्खा है । उसके किनारे किनारे सात ऋषि हैं, वे उसके रखवारे हैं ? (८ । ९)

८—एक देव है, वही बाप और वही बेटा ? वही सबसे बड़ा, वही सबसे छोटा है, बताओ कौन ? (८ । २८)

९—एक (अवि) भेड़ है, जिसके कारण सब हरे हरे हैं । कौन ? (८ । २८)

१०—एक सूत जिसमें सब जीव पिरोये हुए हैं । कौन ? (८।१८)

११—नौ द्वार वाला और तीन सूतों से लिपटा कमल कौन ? (८ । ४३ ।) इत्यादि ।

अनेक इसी प्रकार की नाना पहेलियां हैं जिनको रूढ़ि शब्दों से कूट रूप में रक्खा गया है । विचार से ही विद्वान् इन सबको प्राप्त करता है । उपनिषद् में इनमें से बहुतसी समस्याओं को सरल करने का यत्न किया है जिनका स्पष्टीकरण प्रस्तुत भाष्य में स्पष्ट रूप से पाइयेगा ।

(७) शतौदना और वशा ।

वशाशमन के विषय में कुछ संक्षेप से हमने द्वितीय खण्ड की भूमिका (पृ० २३, २४) में लिखा है । इस खण्ड में काण्ड १० का सू० ९ वा, १० वां एवं का० १२ । सू० ४ । ये तीन सूक्त शतौदना और वशा के विषय के हैं । इनका आलोचन करना उचित है ।

'अघायतामपिनह्या' मुखानि० 'इत्यादि (अथर्व० का० १० । सू० ९) की उत्थानिका में श्री पं० शंकर पाण्डुरंग ने लिखा है कि—

"अघायताम्० इत्यादि सूक्त का आहुति के लिये किये गोवध में विनियोग किया जाता है । वह मांस गौ 'शतोदना' कहाती है ।"

यहां मन्त्रों के अनुसार कुछ आलोचना हम करते हैं । यथाः— मन्त्र कहता है कि—

'अघायताम् अपिनह्या मुखानि' । म० १ ॥

अर्थात् पापाचारियों के मुखों को बांध । परन्तु वहां गाय पशु का मुख बांध लिया जाता है । मन्त्र कहता है—

[illegible] ॥ १ ॥

शत्रुओं पर वज्र प्रहार कर। पर यहां निरपराध गाय पर वज्र चलाया जाता है। मन्त्र कहता है कि—

इन्द्रेण दत्ता प्रथमा शतौदना भ्रातृव्यघ्नी' ॥ १ ॥

इन्द्र ने यजमान को सर्वश्रेष्ठ शत्रु के नाश करने वाली 'शतौदना' दी। परन्तु यहां गौ पर ही सब आपत्ति आ टूटती है। कहने का तात्पर्य यह है कि मन्त्र के अभिप्राय को शतांश भी न समझ कर यह विनियोग मांसलोलुप, पापी पुरुषों ने स्वार्थसिद्धि के लिये बनाया है।

गोवध का निर्णय हमें वेद के मूल मन्त्र और उसके प्रकरणोचित अर्थों पर ही करना होगा। मन्त्रो के विनियोग की आलोचना हम कर चुके हैं। रहा 'शतौदना' शब्द। वन्ध्या गौ ही शतौदना क्यों कहाती है। इसमें वेदमन्त्रोक्त प्रमाण उपलब्ध नहीं होता है। इस समस्त सूक्त में 'गौ' का नाम ही नहीं है। इसी प्रकार एक भी मन्त्र में शतौदना के मारने का विधान नहीं है। 'शमितारः', 'पक्तारः' ये दो प्रयोग ७ वें मन्त्र में हैं। ५ वें मन्त्र में दान देने की प्रशंसा की है। १३ से २५ मन्त्रों तक शतौदना के भिन्न भिन्न अंगों की सम्पदा का वर्णन किया है कि वे दाता को आमिक्षा, क्षीर, सर्पि और मधु प्रदान करें।

शतौदना का रहस्य

यह सब रहस्यमय सूक्त है। इसका रहस्य ओदन शब्द में छिपा है। 'शतौदना'—का अर्थ है शतवीर्या या शत–प्रजापति-युक्त पृथिवी। क्योंकि—'प्रजापतिर्वा ओदनः। श० १३। ३। ६। ७॥ जिस पृथिवी में सैकड़ों प्रजापालक राजा हैं वह भूमि ही 'शतौदना' है। पृथिवी पर शान्ति का विस्तार करने वाले और उस पर श्रम करके फल प्राप्त करने वाले विद्वान् शक्तिशाली पुरुष उसके 'शमिता' और 'पक्ता' हैं। वे ही उस शतौदना की रक्षा करते हैं। (देखो मन्त्र०)

पुरोडाश का अर्थ

मन्त्र २५ में द्यौ और पृथिवी दोनों 'पुरोडाश' कहे हैं। द्यौ और पृथिवी दोनों मिलकर जो महान कर्म बनता है वही 'पुरोडाश' है।

उसके द्यौ और पृथिवी दोनो क्रोड़ अर्थात् बगलें ही दो पक्ष हैं। वे दोनो उस महती पृथिवी के परिपाक करने वाले और श्रम से फल प्राप्त करने वालों को वह द्यौलोक या सुखप्रद लोक को या विजय को प्राप्त कराते हैं।

राष्ट्र पक्ष में—'विड् उत्तरः पुरोडाशः' ॥ श० ४।२।५।२२। क्षत्रिय और वैश्य ये दोनों 'पुरुडाश' हैं। ये दोनो ही पृथिवी के क्रोड़ हैं। जो राजा पृथिवी का परिपाक करता है, उसे अपने तेज से पकाता है, उसको वह राष्ट्रभूमि विजय और सुख प्रदान करती है।

शतौदना के अङ्गों से आमिक्षा, क्षीर, सर्पि और मधु के प्राप्त होने की प्रार्थना की गई है। जिसकी आशा मृत गौ से नहीं की जा सकती।

गोमेध का स्वरूप

गोमेध यज्ञ को 'गोसव' भी कहा है। ताण्ड्य महाब्राह्मण ने स्पष्ट ही कर दिया है—

स्वैष गोसवः स्वाराज्यो यज्ञः। ता० १९।१३॥ गोसव तो स्वराज्य यज्ञ है। स्वराज्य साधना ही 'गोसव' या 'गोमेध' है। यहां यह कहना भी असंगत न होगा कि ब्रह्मवेदियों के लिये आत्मसाधना और परमपदलाभ को ही 'स्वराज्य' शब्द से कहा गया है। इसीलिये अध्यात्म में आत्मशक्ति और परम ब्रह्मशक्ति को ही 'शतौदना' कहना उचित है।

(८) वशाशमन

अथर्ववेद के कुछ सूक्त 'वशा' विषयक हैं। जिनका साम्प्रदायिक एवं पं० शबर पाण्डुरंग और अन्य योरोपीयन विद्वान् भी वशा नाम वन्ध्या गौ के बलि करने में प्रयुक्त मानते हैं।

'वशा' शब्द पर विचार

"जिससे आकाश, पृथिवी और समस्त जल, समुद्र मेघ आदि सुरक्षित हैं, वह सहस्रधारा (सहस्रों को धारण पोषण करने में समर्थ) शक्ति है, इसका हम वेद द्वारा साक्षात् वर्णन करते हैं।"

पं० शंकर पाण्डुरंग, दारिल और सायण तो वशा से वन्ध्या गौ लेते हैं। परन्तु वेद में आकाश और पृथिवी की वशकारिणी परमेश्वरी शक्ति 'वशा' कही है।

इस 'वशा' का दूसरा रूप परमेश्वर की महती शक्ति है। वही परमेश्वर का ज्ञान उत्पन्न कराती है। इस प्रकार हम पाठकों को केवल वशा की समस्या सरल करने की दिशा मात्र दर्शाते हैं। शेष इन सूक्तों के मन्त्रों में जितने भी विवादास्पद विषय हैं वे हमने अपने भाष्य में प्रमाण सहित स्पष्ट कर दिये हैं।

पांचवें काण्ड के १२ वें सूक्त में विद्वानों द्वारा आत्मा और ईश्वर के गुणों का वर्णन है। सूक्त २७ में ब्रह्मोपासना का उपदेश और परमेश्वरी शक्ति का वर्णन है। का० १०। सू० ९ में शतौदना नाम प्रजापति की शक्ति का वर्णन है। का० १०। सू० १० में 'वशा' नाम ब्रह्माण्ड को वश करने वाली भुवनेश्वरी परमेश्वरी शक्ति का वर्णन है। और उसी शक्ति का वर्णन और दान, ज्ञान कराने की आज्ञा और उसके सदुपयोग और दुरुपयोग के लाभ, हानियों का वर्णन का० १२। ४ सूक्त में किया गया है। विस्तार से पाठकगण प्रस्तुत भाष्य में देखें।

गोयज्ञ और शूलगव पर विचार

जिन भ्रान्तिमान् विद्वानों का यह विश्वास है कि प्राचीनकाल में गोमेध यज्ञ होता ही था और उसमें गौ आदि का मारा जाना अवश्य होता था, उनको अपनी भ्रान्ति का निवारण गोभिल गृह्यसूत्र में लिखे गोयज्ञ से अवश्य कर लेना चाहिये। उसमें सिवाय 'गोपालन' के दूसरा कोई श्रेष्ठ विधान नहीं है।

(६) ब्रह्मौदन

अथर्ववेद के ११ काण्ड के १–९ सूक्तों मे ब्रह्मौदन का प्रकरण है। ब्रह्मौदन क्या पदार्थ है और उसका भोक्ता कौन है? कैसे उसका भोग किया जाय? उस ओदन को किस प्रकार परिपाक किया जाय इत्यादि सभी रहस्य की बातें हैं। राष्ट्र मे ब्रह्मौदन किस प्रकार पकाया जावे? महान् ब्रह्माण्ड मे 'ओदन' अर्थात् प्रजापति के परम उत्कृष्ट तेज का परिपाक किस प्रकार होता है? इन सब पक्षो का स्पष्टीकरण अपेक्षित है। यहां इतना ही कहना पर्याप्त है कि 'ब्रह्मौदन' प्रजापति का स्वरूप है। राष्ट्र मे पृथिवी, गृह मे गृहिणी और ब्रह्माण्ड मे अखण्ड परमेश्वरी शक्ति, शरीर में चिति इन सबका एक नाम वेद मे 'अदिति' है। गृहस्थ में पति, देह मे आत्मा, राष्ट्र मे राजा, ब्रह्माण्ड मे परमेश्वर 'अग्नि' है। २ से ६ तक के मन्त्र प्रत्यक्ष रूप से राजा का वर्णन कर रहे हैं। यही वस्तुत. ब्रह्मभोग्य 'ओदन' का वर्णन है।

इस महान् ओदन के परिपाक का आलंकारिक वर्णन तो स्वयं वेद ने तृतीय सूक्त मे कर दिया है।

> इयमेव पृथिवी कुम्भी भवति राध्यमानस्यौदनस्य द्यौरपिधानम् ॥ ३ । ११ ॥

"इस महान् ब्रह्मौदन के रांधने की हांडी यह पृथिवी है और द्यौ हंडिया पर ढकने का वर्तन है।"

उस ओदन का विशाल रूप देखिये—

> यस्मिन् समुद्रो द्यौर्भूमिस्त्रयो वरपर श्रिताः।
> यस्य देवा अकल्पन्त उच्छिष्टे षडशीतयः।
> तं त्वा ओदन पृच्छामि यो अस्य महिमा महान् ॥ २२ ॥

"मैं तो उस ओदन को पूछता हूं जिसकी महिमा बडी है जिसमें समुद्र, द्यौ और भूमि तो उरे-परे स्थित है, जिसके उच्छिष्ट रूप में ४८० दिव्य शक्तियां विद्यमान हैं।"

११ । २ । ३ । मे उसी महान् ओदन से समस्त संसार की उत्पत्ति

का वर्णन किया है। ११। ४। सू० में समस्त वैकारिक सर्ग और जीवसर्ग के परमाश्रय, परमचैतन्य, समष्टि प्राण रूप परमेश्वरी शक्ति का वर्णन बड़ा ही विस्मयजनक है।

इस शरीर में ब्रह्मोदन का पाक करके भोग करने वाला वीर्य पालक अखण्ड ब्रह्मचारी ही है। इसका विराट् वर्णन, ब्रह्मचारी के रूप मे ११। ५। ७। सूक्त में दर्शाया है। इसमें परमेश्वर को भी ब्रह्मचारी दर्शाया है। इस प्रकार परब्रह्म का विशाल रूप जान कर उसके बनाये पवित्र जगत् मे मलिन चित्त वालों को अपने पाप का मैल कैसे धो डालना चाहिये इसका वर्णन (११। ६) मे किया है।

(१०) मन्यु

अद्भुतसृष्टि की रचना के मूल कारण की खोज मे वैज्ञानिक कोई मूल कारण नहीं बतला सके कि क्यो नाना जीव सृष्टि हुई। जीव के शरीर में नाना प्रकार की धातुएं, मानसविकार तथा नाना तृष्णाएं कहां से पैदा हुईं? ये सभी अध्यात्म, आधिदैविक, समस्याओं के उत्तर वेद ने मन्यु सूक्त मे सरलता से दिये है।

डार्विन ने विकासवाद को मुख्य रखने की चेष्टा की है परन्तु जब पूछा जाता है कि विकास क्यों हुआ? तो उत्तर कुछ नहीं, दबी जबान से जब दृष्टान्त देते है तो प्राणियों की नाना इच्छाओं को ही विकास के कारण रूप से कह देते है। दृष्टान्त के तौर पर जैसे ह्वेल मछली पहले कोई वनचर जन्तु रहा होगा। वह जलप्लव काल मे निराश होकर जल में ही अपना बसर करने की चेष्टा करने को बाधित हुआ। शनैः शनै उसके पशु के अंग लुप्त हो गये और जलोपयोगी अंग उत्पन्न हो गये। फलतः पीढी दरपीढी उसको लक्षों वर्ष के जलोचित सुख पूर्वक निवास की इच्छा ने उसके अंगों को विकृत किया। वेद इस इच्छा को 'संकल्प के गृह से प्राप्त जाया' के नाम से कहता है जो 'मन्यु' मननशील आत्मा से संगत होकर नाना वैचित्र्य उत्पन्न करती है। उस मन्यु और संकल्प

की पुत्री 'जाया' के संगति के कारण तप और कर्म थे। ब्रह्माण्ड की विशाल विचित्र रचनाओं का प्रधान कारण महान् 'मन्यु' था, जिसको 'ब्रह्म' कहते हैं। फिर इसी सकल्प से भूमि के पृष्ठ पर उत्पन्न स्थावर, जगम और मैथुनी सृष्टि का रहस्य खोला गया है। (१०-३४) पाठक प्रस्तुत भाष्य मे विस्तार से देखें।

राष्ट्र प्रजापति के प्रजा के पालन मे महान् मन्यु रूप राजा के विकट रूप का वर्णन अर्थात् युद्ध आदि का वर्णन शेष ९, १० दो सूक्तों मे किया है।

(११) पृथिवी सूक्त

मातृभूमि के प्रति प्रेम की आदर्श शिक्षा वेद ने काण्ड १२। सू० १ में पृथिवी सूक्त द्वारा प्रदान की है। पहले ही मन्त्र से राजाओं का गर्व तोड दिया है कि पृथ्वी के पालक वे नहीं है परन्तु सत्य, ऋतु, उग्र, तप, दीक्षा, ब्रह्म और यज्ञ ये पृथ्वी को धारण करते हैं। यदि ये न हों तो पृथ्वी नष्ट हो जाय (मं० १)।

वेद सिखाता है कि पृथिवी माता है और हम उसके पुत्र हैं। उसका अन्न आदि पुष्टिप्रद पदार्थ हमारे लिये दूध है (मं० १०)।

समस्त पृथिवी के सार्वभौम शासन को राजा पृथिवी का पुत्र होकर वरे न कि पशु होकर (म० १२)। मिलाकर—

एक भूमि माता के पुत्र सब मिलकर प्रेम से वार्तालाप करें (म० १६)।

पृथ्वी पर आने जाने और गाडियां और भारी गाडो के जाने के मार्ग बना कर, मार्गों पर हम अपना वश रक्खें और मार्गों को चोर डाकुओं से रहित कर दें (म० ४७)।

इत्यादि नाना सद्भावों को विचारने की दिशा वेद सिखाता है। फिर और देशभक्ति कैसी चाहिये। वेद स्वयं देशभक्त होने का उपदेश करता है, भूमि के अन्यान्य गौरवों को भी प्रस्तुत भाष्य मे देखिये।

(१२) क्रव्यात् अग्नि

'नडमारोह०' इत्यादि (का० १२ । सू० २) सूक्त क्रव्यात् अग्नि सम्बन्धी है। इस सूक्त के सम्बन्ध में हमारा सभी अनुवाद-कर्त्ताओं से प्रायः अर्थभेद है। इस पर सायण का भाष्य उपलब्ध नहीं है।

सूक्त का विनियोग

यहां क्रव्यात् क्या पदार्थ है यही विवादास्पद है।

क्रव्यात् की विवेचना

फलतः यह समस्त सूक्त साम्प्रदायिकों के अनुसार शव को जलाने वाले अग्नि पर ही लगा दिया गया है। अनुवादकों ने भी इस विनियोग को लक्ष्य में रखकर अर्थ करने का यत्न किया है। अब प्रथम मन्त्र पर विचार कीजिये कि उनका ऐसा करना कहांतक सुसंगत है।

मन्त्र को अग्नि पर काष्ठ रखने या पानी से अग्नि को बुझाने पर लगाया है। परन्तु उसको 'नड़' पर चडाना, सीसा को उसका भाग कहना, गौ और आदमियों में से यक्ष्मा को दूर करना आदि का क्रव्यात् से क्या सम्बन्ध है, कुछ ज्ञात नहीं होता। हमारी मति में कच्चा मांस खाने वाले अग्नि के अतिरिक्त व्याघ्र आदि हिंसक और दुष्ट जङ्गली पशु भी क्रव्याद हैं उनको नड़ (= शर पर) चढ़ाना, सूली देना या बाण से मारना, सीसे या गोली का शिकार करना, पुरुषों और पशुओं पर रोग के समान आक्रमण करने वालों के साथ उनको मार भगाना, कैसा सुसंगत अर्थ वेद मन्त्र का प्रकट होता है। वेद ने इस सूक्त में जीवों के कच्चे मांस का आहार करने वाले सभी को 'क्रव्यात्' शब्द से कहा है।

यदि अग्निः क्रव्यात् यदि वा व्याघ्र इमं गोष्ठं प्रविवेशान्योकाः।
तं माषाज्यं कृत्वा प्रहिणोमि दूरं० ॥

इस मन्त्र में उड़द की पीठी के गुलगुले शवाग्नि को दिये जाते हैं। वेद मन्त्र तो 'माषाज्य' करके क्रव्यात् अग्नि और व्याघ्र तक को दूर

भगा देने की आज्ञा देता है। तो क्या व्याघ्र भी उड़द के पकौड़े खायगा ? स्पष्टार्थ यह है कि व्याघ्र को 'माषाज्य' करने का तात्पर्य है उसके लिये मारने योग्य शस्त्र का प्रयोग करके उसे दूर भगा देना।

माज्यम्-माज्येन वै देवा सर्वान् कामान् अजयन् ॥ कौ० १४। १ ॥ वज्रो वा आज्यम् ॥ श० १। ३। २। ३७ ॥ मष हिंसार्थः। भ्वादिः। माष. हिंसा।

इस स्थल पर 'अग्नि का अर्थ भी अग्नि के समान तापकारी दुःखदायी पुरुष वा पशु ही लिया जाना उचित है। वह यदि 'अन्योकाः' दूसरी जगह से कहीं अपनी बस्ती मे आ घुसे तो उसे मारकर निकाल दे। यही वेद का सरल अर्थ हे, इत्यादि।

इसी प्रकार समस्त सूक्त के प्रति मन्त्र मे इसी प्रकार की समस्याएं आ उपस्थित होती है, जिनको केवल रूढि शब्दार्थ लेने पर मन्त्र का कोई तात्पर्य नहीं खुलता। और केवल शवाग्नि पर लगाने से सब कर्म काण्ड व्यर्थ, अबुद्धिपूर्वक और असंगत प्रतीत होता है। परन्तु 'क्रव्याद्' से मांस खोर जन्तु अर्थ लेने पर वह सब सरल हो जाता है।

(१२) स्वर्गौदन

साम्प्रदायिक लोग 'स्वर्गौदन को भी पूर्वोक्त ब्रह्मौदन के समान ही देवता प्रीत्यर्थ 'भात' ही जानते हैं। मन्त्र को तो आहुति आदि के निमित्त मात्र जानते है। का० १२। सू० ३ को स्वर्गौदन विषयक बतलाते हैं। पर विस्मय यह है कि समस्त सूक्त मे 'स्वर्गौदन' शब्द कहीं एकत्र नही आया। 'ओदन' और 'स्वर्ग' दोनो शब्द पृथक् पृथक् अवश्य आये है परन्तु स्वर्गौदन शब्द अवश्य साम्प्रदायिक कल्पकारों का घडा हुआ है। भले ही श्रद्धालु यजमान विशेष रीति से बनाये भात की आहुति देकर एक कल्पित लोक को स्वर्ग जानकर कर्मकाण्ड मे लिप्त रहे, परन्तु वेद के मन्त्रों मे स्वर्ग और ओदन दोनों ही पृथक् पृथक् हैं और उनका अद्भुत स्वरूप बतलाया गया है जिसका हम इस प्रसङ्ग में विवेचन करना आवश्यक समझते है।

ओदन शब्द पर विचार

'वेद' ओदन के विषय में कहता है—

य वा पिता पचति य च माता । रिप्रान्निर्मुक्त्यै शमलाच्च वाचः ।

स ओदनः शतधारः स्वर्ग० ॥ ५ ॥

यह ओदन है कि जिसको पिता पकाता है और माता भी पकाती है। क्योंकि जिससे वे दोनों पाप और परस्पर में की गई प्रतिज्ञा के भङ्गदोष से बचे रहें। वह 'शतधार ओदन' है। वही सुखप्रद है। माता और पिता जब कुमार कुमारी होते हैं तब ब्रह्मचर्य पूर्वक वीर्य को परिपक्व करते हैं। जब वे दोनों परिपक्व वीर्य हो जाते हैं तब पति-पत्नी होकर एक दूसरे के साथ वाग्-बद्ध हो जाते हैं। तब भी गृहस्थ में रहकर पुरुष पर स्त्री से और स्त्री पर पुरुष से व्यभिचार न करके दोनों अपने वीर्य रक्षा के व्रत का पालन करते हैं। मैथुन करके भी परस्पर के उत्पन्न पुत्र को अपना वीर्य जानकर ही उसका पालन करते हैं। वे पतिव्रत और पत्नीव्रत दोनों को वाणी के 'शमल' से बचने के लिये सचाई से निभाते हैं। सद् गृहस्थ का पालन एवं उसमें वीर्य की रक्षा ही 'शतधार ओदन' है। उसके आधार पर सैकड़ों जीवों की पालना होती है, गृहस्थ के पालक पति पत्नी का भी १०० वर्ष तक जीवन रहता है। वही गृहस्थ 'स्वर्ग' है।

स्वर्ग का स्वरूप और साधन।

इसी स्वर्ग के विषय में वेद पुनः कहता है—

ये यज्ञनामभिजिता स्वर्गाः । तेषाम् ज्योतिष्मान् मधुमान् यो अग्रे ।

तस्मिन् पुत्रैर्जरसि सश्रयाम ।

हे स्त्री पुरुषो ! यज्ञशील पुरुष जिन सुखमय लोकों का विजय करते हैं, उनमें से सब से अधिक उज्ज्वल और आनन्दमय जो स्वर्ग है, उसमें रहकर ही तुम पुत्रों सहित अपने बुढ़ापे में भी आनन्द से विश्राम पाओ। अर्थात् पूर्णायु होकर देह त्यागो।

इस प्रकार वीर्य रक्षापूर्वक गृहस्थ को स्वर्ग या सुखधाम बतला कर वेदने इस सूक्त मे स्त्री पुरुषो के परस्पर गृहस्थ को सुखमय साक्षात् स्वर्ग बनाने के साधनों का उपदेश किया है।

(१४) रोहित

समस्त त्रयोदश काण्ड 'रोहित' विषयक है। इसमे मुख्य रूप से परमेश्वर का वर्णन है। गौण रूप से राजा का और अध्यात्म मे योगी, विभूतिमान् आत्मा का वर्णन है। कुछ स्थलो पर राजा और परमेश्वर दोनो का पृथक् पृथक् भी वर्णन है। अध्यात्म मे वहां परमेश्वर और जीव दोनो का ग्रहण है। सूक्त का प्रतिपाद्य विषय स्वयं प्रस्तुत भाष्य मे उचित रूप से वर्णन कर दिया गया है।

अद्वितीयता बतलाते हुए वेद कहता है—

न द्वितीयो न तृतीयश्चतुर्थो नाप्युच्यते। न पञ्चमो न षष्ठ सप्तमो नाप्युच्यते। नाष्टमो न नवमो दशमो नाप्युच्यते। तमिदं निगतं सहः। स एष एकवृद्। एक एव।

(१५) व्रात्य

१५ वां काण्ड व्रात्य विपयक। (१) पं० शंकरपाण्डुरंग के कथनानुसार-

"उपनयन आदि संस्कार हीन पुरुष 'व्रात्य' नामक होता है। अर्थात् वह वेदविहित यज्ञ आदि क्रिया करने का अधिकारी नहीं होता और वह व्यवहार योग्य भी नहीं होता, इत्यादि जनों के मत को चित्त मे रख कर व्रात्य अधिकारी हैं, व्रात्य महानुभाव है, व्रात्य देवताओं का प्यारा है, व्रात्य ब्राह्मण और क्षत्रिय दोनो के तेज का मूल है। क्या बहुत कहें, व्रात्य देवों का भी देव है ऐसा प्रतिपादन किया जाता है। जहां व्रात्य जाता है समस्त जगत् और समस्त देव वहां उसके समीप आते हैं। उसके खड़े रहने पर खड़े होते हैं, उसके चलने पर चलते है। जब वह जाता है तो राजा के समान जाता है इत्यादि। यह सब व्रात्यों के विषय मे नहीं लिखा गया है। परन्तु किसी बहुत अधिक विद्वान्, बड़े भारी अधिकारी, पुण्यशील, सब के लिये सम्मान योग्य, ऐसे व्रात्य

को लक्ष्य में रखकर लिखा गया है, जिसके प्रति कर्मकाण्डी ब्राह्मणों ने द्वेष ठान रक्खा हो।"

पं० शंकर पाण्डुरंग का इस प्रकार लिखना हमें बड़ा भ्रमजनक प्रतीत होता है। उपनयन आदि संस्कारों से हीन, यज्ञादिहीन, अनधिकारी पतित पुरुष को वेद प्रशंसाओं से बढ़ावे, यह कब सम्भव है? फिर उक्त पण्डित का यह कथन है कि किसी बहुत बड़े विद्वान्, महाधिकारी, पुण्यशील जिसके प्रति कर्मकाण्डियों को द्वेष रहा हो, ऐसे व्रात्य को लक्ष्य में रखकर यह वेद का १५ वां काण्ड कहा गया है। इसमें सब व्रात्यों का वर्णन नहीं, यह और भी असंगत है। क्योंकि जब वह पुण्यशील है तो हीन, पतित, व्रात्य वह कहां रहा? फलतः उक्त पण्डित का ऐसा कथन वैदिक व्रात्य शब्द के न समझने के कारण ही हुआ है। कदाचित् उक्त पण्डित के चित्त में वह व्रात्य कोई जन्म से व्रात्य होकर बड़ा विद्वान् बन गया होगा और वेद ने उसी की स्तुति कर दी होगी। ऐसी कपोलकल्पना कभी मानी नहीं जा सकती।

(२) इसी व्रात्य के विषय में योरोपीयन विद्वानों ने भी अपने विचार दौड़ाए हैं। उनके विचारों की आलोचना करना भी विषय की स्पष्टता के लिये बड़ा चित्तरंजक है।

पण्डित ग्रीफिथ अपने अथर्ववेद के अंग्रेजी अनुवाद (१५ का०) के प्रारम्भ में ही चरणटिप्पणी में लिखते हैं कि—

"इस अपूर्व रहस्यमय काण्ड का प्रयोजन व्रात्य को आदर्श बनाना और बहुत बढ़ी-चढ़ी प्रशंसा करना मात्र है।

(३) उपाध्याय आफ्राष्ट का यह मत है कि जो व्रात्य विशेष प्रायश्चित्त करने के बाद उपनीत हो जाता था और ब्राह्मण आर्यों में प्रवेश पा जाता था उसके विषय में यह प्रशंसा लिखी गयी है।

(४) पं० ग्रीफिथ 'व्रात्य' शब्द पर टिप्पणी लिखते हैं कि 'व्रात्य' शब्द 'व्रात' से बना है। 'व्रात्य' का अर्थ है आर्यों से बहिष्कृत जत्थे का

सर्दार । वह बिल्कुल ब्राह्मणो के शासन से मुक्त और ब्राह्मणों के मार्ग पर न चलने वाला है", इत्यादि । ऐसा ही मन्तव्य पं० वेबर का भी है ।

(५) वैदिक व्रात्य के विषय मे ऐसी असंगत वेद विरुद्ध मति उठने का एकमात्र कारण हमे मनुस्मृति (अ० १० । २०) प्रतीत होता है । यथा:—

"द्विजाति लोग अपने ही वर्ण की स्त्रियो मे जिन पुत्रो को उत्पन्न करें, यदि उनके उपनयनादि व्रत न हो तो उन गुरुमन्त्र से भ्रष्ट पुरुषों को 'व्रात्य' नाम से पुकारे ।"

(६) इसी प्रकार ताण्ड्य महाब्राह्मण में 'व्रात्यस्तोम' का वर्णन है । जिसके पाठ से व्रात्य भी शुद्ध, संस्कृत करके पुनः अन्नादि के अधिकारी होते थे । यहां व्रात्यो के विषय मे लिखा है—

"जो लोग 'व्रात्या' को लेकर प्रवास करते हैं वे न ब्रह्मचर्य का पालन करते, न खेती बाडी और न व्यापार करते है । षोडश स्तोम उनको पवित्र कर सकता है ।"

हमे इन ही सब लेखों के आधारों पर श्री पं० शङ्कर पाण्डुरंग तथा ग्रीफिथ आदि का लेख प्रतीत होता है । परन्तु हमे यह कहते ज़रा भी संकोच नहीं कि वैदिक 'व्रात्य' का यह अभिप्राय नहीं है ।

जिस प्रकार 'देवानां-प्रियः', 'प्रियदर्शी' आदि शब्द बौद्ध काल मे बड़े आदर के थे, परन्तु पौराणिक काल मे इन शब्दों को द्वेष से प्रेरित होकर 'मूर्ख' वाचक बना दिया गया है । 'बुद्ध' शब्द पहले ज्ञानवान् पुरुष के लिये प्रयोग होता था, परन्तु उसी का अपभ्रंश 'बुत्' अब केवल 'पत्थर की मूर्ति' का वाचक हो गया है । इसी प्रकार हम अन्य बहुत से प्राचीन शब्दो को अर्वाचीन काल मे विपरीत अर्थों में प्रयुक्त होता पाते है । ठीक इसी प्रकार वेद के बहुत से पवित्र शब्दों को अगले ब्राह्मणकाल और पौराणिक स्मृतिकाल मे विकृतार्थ हुआ पाते हैं ।

परन्तु वेद में एक स्थान पर भी व्रात्य शब्द को घृणित अर्थों में प्रयुक्त हुआ हम नहीं पाते ।

हीना वा एते हीयन्ते ये व्रात्या प्रवसन्ति । नहि ब्रह्मचर्यं चरन्ति, न कृषिं, न वाणिज्याम् ॥ ५ ॥

अथर्ववेदीय चूलिकोपनिषद् में व्रात्यसूक्त को औपनिषदिक ब्रह्मविद्या के निरूपण का सूक्त माना गया है ।

ब्रह्मचारी च व्रात्यश्च स्कम्भोऽथ पलितस्तथा ।
अनड्वान् रोहितोच्छिष्टः पठ्यते भृगुविस्तरे ॥
शिवो भवश्च रुद्रश्च ईश्वरः पुरुषस्तथा ।
कालः प्राणश्च भगवान् आत्मा पुरुष एव च ॥
प्रजापतिर्विराट् चैव पार्ष्णिः सलिलमेव च ।
स्तूयते मन्त्रमुक्तैरथर्वविहितैर्विभुः ॥

अर्थ—ब्रह्मचारी सूक्त (का० ११ । ५), व्रात्य सूक्त (का० १५), स्कम्भ सूक्त (का० १० । ७ । ८), पलित सूक्त (का० ९ । ९, १०), अनड्वान् सूक्त (का० ४ । ११), ऋषभ सूक्त (का० ९ । ४ । ५), रोहितसूक्त (का०१३), उच्छिष्ट सूक्त (का० ११ । ७), शिव, भव रुद्र सूक्त (११ । २), ईश्वर पुरुष (का० ११ । ६), काल (का० १९ । ५३, ५४), प्राण (१० । ८), आत्मा (११ । ४), भगवान् (३ । १६), प्रजापति विराट् (८ । ९, १०), पार्ष्णि सूक्त (१० । २), सलिल सूक्त (८ । ९) अथर्ववेद के ये समस्त सूक्त, परमेश्वर का ही वर्णन करते हैं ।

इसी प्रकार यजुर्वेदीय मन्त्रिकोपनिषद् जो चूलिकोपनिषद् का प्रति रूप है उक्त श्लोकों को ही पाठभेद से स्मरण करता है ।

फलतः व्रात्य सूक्त वेदान्तविषयक ब्रह्म प्रजापति का ही वर्णन करता है । इसी को लक्ष्य में रखकर योरोपीयन पण्डित ब्लूमफील्ड ने ठीक लिखा है कि— There can be no doubt that the

theme is in reality brahm अर्थात् वास्तव मे इसमे कोई सन्देह नही कि व्रात्य सूक्तो का प्रतिपाद्य विषय ब्रह्म है। इसके अतिरिक्त आपस्तम्ब धर्मसूत्र ने अतिथि की शुश्रूषा करने के किये व्रात्यसूक्त का ही उल्लेख किया है। पूज्य गुरु, आचार्य, स्नातक, तपस्वी, राजा आदि सभी को सामान्य व्रात्य शब्द से ही संबोधन करने का आदेश है। यदि व्रात्य शब्द पूर्व काल मे ही 'पतित' का पर्याय होता तो आपस्तम्ब धर्मसूत्रो ने ऐसा विधान सर्वथा न आता।

इस सूक्त मे नीललोहित, महादेव, ईशान आदि शब्द देखकर पं० ब्लूमफील्ड ने अनुमान किया कि इस सूक्त पर शैव सम्प्रदाय का अधिक प्रभाव है। परन्तु हमे खेद है कि प्रजापति ब्रह्म, तप, सत्य आदि विशेषण देखकर किसी अन्य सम्प्रदाय की छाप क्यो न अनुभव की ?

व्रात्य का स्वरूप

व्रात्य सूक्त मे प्रथम उपास्यदेव व्रात्य के पवित्र नाम कीर्तन किये गये हैं (१५ । १ (१)), (१ (२)) में व्रात्य का अलंकार से विराट्, ज्ञानमय, देवमय, कालमय, दिङ्मय रूप प्रकट किया है। जिसका अनुकरण प्रायः शैव सम्प्रदाय ने सेनानायक का सा रूप कल्पित करके जगन्नाथ के रथ की कल्पना की और त्रिपुर-विजय का वर्णन किया है।

१५ । १ (३) मे व्रात्य के वेदमय सिंहासन का वर्णन है। १५ । १ (४) मे व्रात्य के सर्वदिशाव्यापी संवत्सरमय राज्य का वर्णन है। और (१५ । १ (५)) मे भी उपदिशाओं में आधिदैविक शासन का वर्णन किया है। (६) मे दिग्विजय का स्वरूप दिखाया गया है। (७) मे महती विभूति दर्शाई है। (८) में राजन्यरूप, और (९) मे उसका सभापति, सेनापति और गृहपति का स्वरूप दर्शाया है। (१०) में उसके ब्रह्मबल और क्षात्रधर्म का विस्तार

दर्शाया है। (११-१३) में उसका आतिथ्य और (१४) में उसका अन्नाद से विशाल भोक्तृ रूप दर्शाया है। (१५, १६, १७) में उसके प्राण, अपान और व्यान का विराट् वर्णन है। (१८) में व्रात्य के आंख, कान, नाक, शिर का वर्णन है। यह व्रात्य का कल्पित स्वरूप प्रजापति के सभी अन्य विराट् रूपों के समान ही है। संक्षेप से हमने दिग्दर्शन करा दिया है। वाचक वर्ग प्रस्तुत भाष्य में ध्यानपूर्वक स्वाध्याय करके हृदय को तुष्ट करें।

(१६) विवाह सूक्त

चौदहवां समस्त काण्ड विवाहपरक है। श्री पं० शंकर पाण्डुरंग के कथनानुसार—

'सूक्तारम्भे सूर्या नाम या सूर्यरूपा सवितृपुत्री देवी तस्या विवाहस्य कथा वर्णिता।'

सूक्त के प्रारम्भ में सूर्या नाम की कोई, सूर्य के रूप वाली, सविता की कन्या है। वेद में उसकी कथा कही गई है। अर्थात् उक्त पण्डित के कथनानुसार यह एक कहानी ही रही। उसके बाद उक्त पंडित ने विवाह के कृत्यों में मन्त्रों का विनियोग दर्शाया है। प्रस्तुत भाष्य को पढ़कर स्वयं पता लग जायगा कि सूर्य, सविता और उसकी कन्या किसी कथानक के अंग हैं या नहीं।

विवाह सूक्त की कुछ एक विशेष बातों का हम रहस्य यहां उद्घाटन करते हैं।

वैदिक विवाह की कुछ विशेषताएं

१—गृहस्थ प्रकरण को प्रारम्भ करके वेद साक्षात् प्रजापति का रहस्य खोलते हैं। 'सत्येन उत्तभिता भूमिः।' सत्य ने भूमि को उठा रक्खा है, अथवा सत्यवान्, वीर्यवान्, तेजस्वी पुरुष ही भूमि स्वरूप स्त्री का भार उठाता है, नपुंसक नहीं, परस्पर का सत्य व्यवहार ही गृहस्थ रूप भार को उठाता है। (सू० १, मं० १)।

शरीर में वीर्य की सत्ता को कितने अच्छे दृष्टान्त से दर्शाया है।

यत् त्वा सोम प्र पिबन्ति तत आप्यायसे पुनः। (१ । ४)।

हे वीर्य ! जब तेरा भोग कर लेते हैं तो तू फिर बढ़ जाता है। अर्थात् गृहस्थ कार्यों में वीर्य के व्यय हो जाने पर शरीर में अन्नादि ओषधियों के सेवन से पुरुष फिर वीर्यवान् हो जाता है और वह फिर ऐसे पूर्ण हो जाता है जैसे चन्द्र एक बार घट कर भी फिर पूर्ण हो जाता है।

२—मन्त्र (१ । ६) में स्वयंवरा कन्या का स्वरूप दिखाया है।

यथाः—"जब 'सूर्या' पति को प्राप्त होती है तब चित्त का संकल्प सिरहाना होता है। चक्षुः अर्थात् उसमें उत्पन्न प्रेमराग ही गात्रलेप है। ज़मीन और आसमान दो खज़ाने हैं।"

"रैभी नाम ऋचा या उपदेशमयी वैदिकवाणी उसका दहेज हो। नाराशंसी न्योचनी' उत्तम पुरुषों की चरित्रकथा उसकी ओढ़नी हो। 'सूर्याया भद्रम् इद् वासः' कल्याण-चरित्र ही उसका आच्छादक वस्त्र है। सच्चरित्र ही उसका पर्दा है। और लोग जब उसकी सच्चरित्रता का वर्णन करें, बस वह उसी 'गाथया पति परिष्कृता' पुण्यचरित्र की गाथा से सुभूषित होकर पति के घर आती है। (१ । ७)।

३—इस सम्बन्ध में वेद कुछ और भी परिभाषाएं प्रकट करता है। जैसे (१ । ९)।

'सोमो वधूयुः अभवत्।' वधू की कामना करने वाला पुरुष 'सोम' है। और 'अश्विना स्ताम् उभा वरा' स्त्री पुरुषों के जोड़े सब मिलकर आये हुए बराती 'अश्विनौ' होते हैं। और—

यत् पत्ये मनसा शंसन्तीं सूर्यां अददात् सविता।

जो पति को मन ही मन गुनती हुई कन्या को दान देता है वह कन्या का पिता 'सविता' कहाता है। परन्तु हमारे रूढ़ि-'देववादियों ने इस सब रहस्य को ओट करके कुछ अजब ही 'सूर्या-सोम' के विवाह की कहानी सी बनाली है।

देवता वाचक रूढिनामों से इस प्रकरण के वेदमन्त्रों का अर्थ लगाना बड़ी भारी भूल है। हमें उनका आख्यातज अर्थ ही लेकर इस विवाह प्रकरण को सर्वथा क्रियात्मक रूप से सुसंगत करना होगा।

नव पति पत्नी को वेद के उपदेश

इस प्रकरण में वेद नये गृहस्थ को बनाने वाले पति-पत्नी या वर-वधू को बहुत से बहुमूल्य उपदेश देता है, जिनको देखकर वेद के आदर्शों का पता लगता है।

१—वेद कहता है 'मनो अस्या. अन आसीत्।' वधू का चित्त ही पति तक पहुंचने का रथ है। 'द्यौः आसीद् उत च्छदिः। मनके भाव प्रकाश करने वाली वाणी ही मनोरथ का 'छदि' छत अर्थात् आवरण है। अर्थात् स्त्री अपने मानसिक भावों को अपने प्रियतम के प्रति वाणी द्वारा प्रकट करे। तब क्या हो ? शुक्रो अनड्वाहौ आस्ताम्। दोनों के परिपुष्ट वीर्य ही उस 'मनो-रथ' में जुड़े बैलों के समान उद्देश्य तक पहुंचाने वाले हों। अर्थात् दोनों परिपुष्ट वीर्य होकर गृहस्थ कार्य में 'सन्तान-उत्पत्ति' में सफल हों।

२—यदयात् शुभस्पती वरेयं मयांम उप। दोनों शुभ संकल्पों को चित्त में रखकर कन्या के वरण के अवसर पर वे समीप आते हैं। प्रत्येक चाहता है कि मैं स्वयं वरण करूं तब—हे वर-वधू !

'विश्वे देवा अनु तद् वाम् अजानन।'

समस्त विद्वान्गण तुमको अनुमति दें कि तुम दोनों विवाह करो। तब क्या होगा ?

पूषा पुत्र. पितरम् प्र अगात।

तब हृष्ट पुष्ट पुत्र पिता को प्राप्त होगा।

३—जब कन्या को दान किया जाता है तो बहुता का विचार कि यह गाय, भैंस, बकरी आदि पशु या काया, पैसा, भूमि, म

आदि के समान ही कन्याओं का दान किया जाता है। यहां दान का अभिप्राय है देना न कि पैसा भूमि आदि की तरह का दान। यह देना माता पिता की स्वीकृति मात्र को सूचित करता है।

एषा ते कुलपा राजन् तामु ते परिदद्मसि ॥ अथर्व० १।१४।४॥

इस मन्त्र में वधू को "कुलपा" अर्थात् पतिकुल की रक्षा करने वाली कहा है। कितना ऊंचा और मान का उत्तरदायित्व वधू का दर्शाया है।

इस मन्त्र में परिदान शब्द है यथा—"परिदद्मसि" यहां तो केवल सन्तानलाभ के लिये कन्या के साथ अपना सम्बन्ध मात्र परित्याग करने ही को 'दान' शब्द से कहा है। ऐसा दान या सम्बन्ध त्याग तो स्वयंवरा कन्या के ही अभिप्राय को पूर्ण करता है और उसको आज्ञा देता है कि वह अन्य समस्त प्रेम सम्बन्धों को शिथिल कर अपना समस्त प्रेम अपने पति के निमित्त समर्पण करदे।

गृहान् गच्छ गृहपत्नी यथासः वशिनी त्वा विदथम् आवदासि॥ २०॥

सदा विदुषी होकर ज्ञानोपदेश भी किया कर। वेद कहता है—

पति के गृह को प्राप्त होकर गृह की स्वामिनी हो। तू स्वयं जितेन्द्रिय होकर ज्ञान का उपदेश कर।

५—विवाह सम्बन्ध आजीवन है, और उसको इच्छानुसार जब कभी भी तोड़ा नहीं जा सकता। वेद कहता है—

इहैव स्तं मा वियौष्ट विश्वम् आयुर्व्यश्नुतम्। (१। २२)।

तुम दोनों स्त्री पुरुष यहां ही रहो, कभी वियुक्त न होवो, समस्त आयु का भोग करो। और—

६—सूर्य चन्द्र के समान स्त्री पुरुषों के कर्त्तव्यों पर वेद ने क्या ही अच्छा लिखा है—

विश्वा अन्यो भुवना विचष्टे ऋतूँरन्यो विदधत् जायसे नवः ॥

एक पुरुष तो सूर्य के समान समस्त घर के कार्यों को देखता है, दूसरा चन्द्र के समान ऋतु कालों अर्थात् ऋतुधर्म को भुगतता हुआ प्रति वार नवीन हो जाता है।

७—स्त्री का रजोधर्म के अवसर पर भोग नहीं करना चाहिये। यह अवसर भोग के लिये बहुत ही हानिकर है। (मं० १ । १७,२९)।

हे नववधु ! तू पति के घर मे जाकर उत्तम गुणों से प्रकाशमान 'सम्राज्ञी' अर्थात् महारानी होकर रह। (१ । ४३, ४४)।

९—शिलारोहण का उद्देश्य विवाह मे बड़ा पवित्र है। वेद भी आज्ञा देता है—

"प्रजा के हित के लिये सुखकारी शिला को पृथिवी के ऊपर रखता हूं। तू उस पर खडी हो और तेजस्विनी बलवती होकर [पर्वत पर सूर्यप्रभा के समान] प्रदीप्त हो। (१ । ४७)।

१०—वेद की दृष्टि मे पति पत्नी दोनों मालिक मालकिन हैं। "तू धर्म [कर्त्तव्य] मे घर की 'पत्नी' स्वामिनी है और मैं तेरा गृहपति हूं।" (१, ५१)।

११—स्त्री का पति सदा पालन पोषण करे।

१२—हम दोनों पति पत्नी एक दूसरे से चोरी चोरी न खावें।

'न स्तेयम् अद्मि मनस्नोदमुच्ये।'

१३—जब स्त्री अग्निहोत्र करे तो बाद मे वेद का पाठ करे और बड़ों को नमस्कार करे। (२ । २०)।

१४—उत्तम विदुषी स्त्री सूर्य के पहले प्रभा के समान, अपने पति के पहले जागे। (२ । ३१)।

१५—ऋतुकाल मे ही स्त्री पुरुष संग करें। (२ । ३७)।

१६—वेद ने (२ । ३९) द्वारा भोग के आसन का वर्णन किया है। यहा प्रश्न हो सकता है कि वेद स्त्री पुरुषों के इस रहस्य-व्यवहार की स्पष्ट आज्ञा क्यों देता है? उत्तर स्पष्ट है। एक छोटे से पौधे के उपयोग तक के लिये आयुर्वेद की आवश्यकता है, जब अन्न को पैदा करने के लिये कृषि–विद्या है तो कोई कारण नहीं कि दम्पति के लिये उस मानव-कृषि विद्या का उपदेश न हो जिससे मानव देह रूप वृक्ष पैदा होते हैं। जैसे वेद में कृषि-विद्या है वैसे ही यह मानव-सृष्टि-विद्या का उपदेश है। इसका विस्तार कामशास्त्र और गर्भशास्त्र एवं अन्यान्य अंगविद्या और स्मृतियों से प्राप्त करना चाहिये।

उपसंहार

इस प्रकार हमने इस खण्ड में आये १० से १७ तक आठ काण्डों के मुख्य मुख्य विशेष विवादास्पद विषयों की आलोचना करके वेदोपदिष्ट पदार्थों का स्थालीपुलाक न्याय से दिग्दर्शन करा दिया है।

समाप्ति पर मैं विद्वान् महानुभावों से सप्रेम अनुनय करता हूं कि मेरे श्रम में लक्षों त्रुटियां सम्भव हैं, सैकड़ों अवसरों पर विचार अपरिपक्व होने सम्भव हैं। ईश्वर का अनन्त ज्ञान 'वेद' कहां और अल्पबुद्धि हम कहां? तब भी मैं विद्वानों से प्रार्थना करता हूं कि वे जिन त्रुटियों

को भी दर्शावेंगे, मैं उनके इस उपकार के लिये कृतज्ञ रहूंगा। मेरे
जीवन काल में इस ग्रन्थ का यह तृतीय संस्करण हुआ है उसको यथा-
प्रमाण सुधार कर आपके प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करता हूं
और वेदाध्ययनरूप तप और वेद-चिन्तनरूप ज्ञानयज्ञ में सफल हो सका
हूं। अन्त में भट्ट कुमारिल के शब्दों में सविनय निवेदन है।

आगमप्रवणश्चाहं नापवादः स्खलन्नपि।
नहि सद्वर्त्मना गच्छन् स्खलितेष्वप्यपोह्यते॥

विद्वानों का अनुचर
जयदेव शर्मा विद्यालंकार, मीमांसातीर्थ।
आदर्श नगर, अजमेर

विषय-सूची

सूक्त संख्या — पृष्ठ

दशमं काण्डम्

एकादशं काण्डम्

चतुर्दशं काण्डम्

पञ्चदशं काण्डम्

॥ ओ३म् ॥

अथर्ववेदसंहिता

अथ दशमं काण्डम् ।

[१] घातक प्रयोगों का दमन ।

प्रत्यगिरस ऋषिः । कृत्यादूषण देवता । १ महाबृहती । २ विराड्नाम गायत्री । ९ पथ्यापंक्ति । १२ पंक्ति । १३ उरोबृहती । १५ चतुष्पदा विराड् जगती । १७, २०, २४ प्रस्तारपंक्तिः । २० विराट् । १६, १८ त्रिष्टुभौ । १९ चतुष्पदा जगती । २२ एकावसाना द्विपदार्ची उष्णिक् । २३ त्रिपदा भुरिग् विषमा गायत्री । २८ त्रिपदागायत्री । २९ मध्ये ज्योतिष्मती जगती । ३२ द्व्यनुष्टुब्गर्भा पञ्चपदाति जगती । ३–११, १४, २२, २१, २५–२७, ३०, ३१ अनुष्टुभः ।
द्वात्रिंशदृच सूक्तम् ॥

यां कृल्पयन्ति वहृतौ वृधूमिव विश्वरूपां हस्तकृतां चिकित्सवः ।
साराद्ेत्वपं नुदाम एनाम् ॥ १ ॥

भा०—युद्ध विद्या के ज्ञानी लोग दूसरों की हिंसा करने और पीडा देने के लिये एनन साधनो से बनी जिस 'कृत्या', हिंसाकारिणी सेना को सब प्रकार से सुन्दर विवाह काल मे रथ पर सजी सजाई, नववधू के समान अति मनोहर बना देते है, वह यदि समीप आवे तो हम उसको दूर करते है ।

शीर्षण्वती नस्वती कर्णिनी कृत्याकृता संभृता विश्वरूपा ।
साराद्ेत्वपं नुदाम एनाम् ॥ २ ॥

भा०—विनाशकारिणी सेना का जो निर्माण करते हैं उन पुरुषों द्वारा रची गई, नाना प्रकार की सिरोंवाली, नाकों वाली, जो कानों वाली वह सेना दूर रहे। उसको हम दूर करें।

शूद्रकृता राजकृता स्त्रीकृता ब्रह्मभिः कृता।
जाया पत्या नुत्तेव कर्तारं बन्ध्वृच्छतु ॥ ३ ॥

भा०—पति से दुत्कारी हुई स्त्री जिस प्रकार अपने उत्पन्न करने वाले मां-बाप या सम्बन्धी के पास आ जाती है, उसी प्रकार शूद्रों की बनी, स्त्रियों की बनी, राजाओं की बनी या ब्राह्मणों की बनी हिंसाजनक सेना अपने बन्धु रूप कर्त्ता को प्राप्त हो।

अनयाहमोषध्या सर्वाः कृत्या अदूदुषम्।
यां क्षेत्रे चक्रुर्यां गोषु यां वा ते पुरुषेषु ॥ ४ ॥

भा०—जिस कृत्या का लोग रणक्षेत्रों में प्रयोग करते हैं, जिसका तेरे गौ आदि प्राणियों पर, और जिसका वे तेरे पुरुषों पर प्रयोग करते हैं ऐसी पीड़ादायक घातक सेनाओं को मैं इस संतापकारी दण्डरूप ओषधि व उपाय से नष्ट करता हूं॥

अघमस्त्वघकृते शपथः शपथीयते।
प्रत्यक् प्रतिप्रहिण्मो यथा कृत्याकृतं हनत् ॥ ५ ॥

भा०—जैसे पापाचरण करने वाले को पाप का फल मिलता है, गाली, दुर्वचन कहने वाले को इन कटु वचनों का फल प्राप्त होता है इसी प्रकार हम भेजी सेना को लौटा कर भेजने वाले की ओर वापिस कर देते हैं जिससे उसका किया हिंसा का काम उस करने वाले को ही पीड़ित करे॥

प्रतीचीन आङ्गिरसोऽध्यक्षो नः पुरोहितः।
प्रतीचीः कृत्या आकृत्यामून् कृत्याकृतो जहि ॥ ६ ॥

भा०—आङ्गिरस अर्थात् अथर्ववेद का जानने वाला विद्वान् हिंसाकारी के विपरीत कार्य करने और उसके लिये दुष्ट घातक प्रयोगों के

प्रतीकार करने में समर्थ होता है । वही हमारा अध्यक्ष और सब कार्यों का साक्षी, यज्ञ के पुरोहित के समान सावधान होकर कार्य कराने हारा हो । वह सब दुष्ट प्रयोगों को विपरीत रूप से पीछे फेर कर उन उन घातक प्रयोगों के करने वालों को विनाश करे ॥

यस्त्वोवाच परेहीति प्रतिकूलमुदाय्यम् ।
तं कृत्येभिनिवर्तस्व मास्मानिच्छो अनागसः ॥ ७ ॥

भा०—हे सेनारूप घातक प्रयोग ! जिस पुरुष ने तुझको कहा है कि 'परे जा, अमुक को मार' तू उस हमारे प्रतिकूल, हमारे विरोध में उठने वाले उस शत्रु के पास ही लौट जा । हम निरपराधों को मत चाह ।

यस्ते परूंषि संदधौ रथस्येवर्भुर्धिया ।
तं गच्छ तत्र तेऽयनमज्ञातस्तेऽयं जनः ॥ ८ ॥

भा०—विद्वान् शिल्पी जिस प्रकार रथ के जोड़ जोड़ मिलाकर अपनी बुद्धि और शिल्प-कारीगरी से जोड़ देता है, उसी प्रकार जो तुझ कृत्या अर्थात् सेना के पोरू पोरू को जोड़ता है, तू उसी को प्राप्त हो, वहां ही तेरा निवासस्थान हो । यह जन अर्थात् हम लोग तेरे जाने हुए भी न हों ॥

ये त्वा कृत्वालेभिरे विद्वला अभिचारिणः ।
शंभ्वी३दं कृत्यादूषणं प्रतिवर्त्म पुनः सरं तेन त्वा स्नपयामसि॥९॥

भा०—जो सेना निर्माण जानने वाले, दूसरों पर घातक प्रयोग करने वाले लोग हे सेना ! तेरा निर्माण करके तुझ से स्वार्थ लाभ करना चाहते हैं तब घातक प्रयोगों के विनाश करने का उपाय है शान्ति अर्थात् साम का प्रयोग करना, और बार बार जाना आना अर्थात् परस्पर समझौते के लिये आना-जाना उस समय प्रतिकार का मार्ग है । उसी से तुझ कृत्या को हम शुद्ध करते हैं, उसका का परिशोधन करते हैं ।

यद् दुर्भगां प्रस्नपितां मृतवत्सामुपेयिम ।
अपैतु सर्वं मत् पापं द्रविणं मोप तिष्ठतु ॥ १० ॥ (१)

भा०—जब हम दौर्भाग्य वाली, तथा स्नान से शुद्ध हुई मरे बच्चे की माता के समान जो शत्रु प्रजा अपने राजा की मृत्यु के बाद शुद्ध हो गई है उसके राजारूपी पुत्र जिसका मर गया है, ऐसी शत्रु प्रजा के समीप विजेता होकर प्राप्त हों, तब मेरा समस्त कष्ट मुझसे दूर हो और धन, बल मुझे प्राप्त हो, कृत्या को दूर करने का यह दण्डरूपी उपाय है।

यत् ते॑ पि॒तृभ्यो॒ दद॑तो य॒ज्ञे वा॒ नाम॑ जगृ॒हुः।
सं॒दे॒श्या॒त् सर्व॑स्मात् पा॒पादि॒मा मु॑ञ्चन्तु॒ त्वौष॑धीः ॥ ११ ॥

भा०—हे पुरुष ! यदि अपने पूज्य आचार्य गुरुओं के प्रति दान करते हुए या यज्ञ के अवसर में जो तेरा नाम लोग बुरे भाव से लें, तो ऐसे दोषों को दूर करने वाले उपाय संदेश या बुरे तानों वा वचनों से प्राप्त सब प्रकार के पापजनक प्रभाव से तुझको मुक्त करें।

दे॒वैन॒सात् पित्र्या॑न्नामग्रा॒हात् सं॑दे॒श्याद॒भिनिष्कृ॑तात्।
मु॒ञ्चन्तु॑ त्वा वी॒रुधो॑ वी॒र्ये॑ण॒ ब्रह्म॑ण ऋ॒ग्भिः पय॑स॒ ऋषी॑णाम् ॥१२॥

भा०—नाना प्रकार से कष्ट से रोकने वाली क्रियाएं, ओषधियों के समान कष्टनिवारण करने हारी होकर, तुझको शत्रुप्रजा के विद्वानों के प्रति किये पापाचरण से, उनके माता-पिता, गुरुओं के प्रति किये अपराध से, और उनके प्रति बुरे नाम करने या बुरी तरह से पुकारने के अपराध से और उनके प्रति किये गये तानों से उत्पन्न अपराध से, और उनके प्रति अत्याचार या अपमान या दुत्कार देने से उत्पन्न पाप से, हम ब्रह्मज्ञान रूप बलद्वारा वेदमन्त्रों के उपदेशों द्वारा, और ऋषियों के सारमय उपदेशों द्वारा छुडावें।

यथा॒ वात॑श्च्या॒वय॑ति॒ भूम्या॑ रे॒णुम॒न्तरि॑क्षाच्चा॒भ्रम्।
ए॒वा मत् सर्वं॑ दुर्भू॒तं ब्रह्म॑नुत्त॒मपा॑यति ॥ १३ ॥

भा०—जिस प्रकार वायु का वेग भूमि से धूलि को, और अन्तरिक्ष से मेघ को उड़ा ले जाता है, इसी प्रकार सब प्रकार के कष्ट ब्रह्मज्ञान या वेदज्ञान से ताडित होकर दूर भाग जाते हैं।

अपं क्राम नानदती विनद्धा गर्दभीव ।
कर्तॄन् नक्षस्वेतो नुत्ता ब्रह्मणा वीर्यावता ॥ १४ ॥

भा०—हे कृत्ये ! दूसरो से उत्पन्न की गई दुर्भावने ! दुष्ट पीड़ाजनक क्रिये ! तू वीर्यवान् ब्रह्मज्ञान रूप कोड़े से खेदी जाकर, विना बन्धन के, खुली गधी वा घोडी के समान, बराबर ऊंचा शब्द करती हुई, गर्जती हुई, यहां से अपने उत्पन्न करने वालो के पास ही भाग जा ।

अयं पन्थाः कृत्येति त्वा नयामोभिप्रहितां प्रति त्वा प्र हिण्मः ।
तेनाभि याहि भञ्जत्यनस्वतीव वाहिनी विश्वरूपा कुरूटिनी ॥१५॥

भा०—कृत्या रूप से सेना का वर्णन करते हैं। हे हिंसाकारिणी ! हमारी सेना ! यह मार्ग है। इस मार्ग से हम तुझे ले चलते हैं। दूसरों द्वारा हमारे प्रति भेजी गई सेना के विरुद्ध हम तुझे भेजते हैं। उसी मार्ग से तू रथों, शकटो से युक्त होकर, अश्वो, हाथियो से युक्त होकर शत्रु-सेना के समान नाना रूपों को धारण करने वाली, नाना व्यूहवती, कुत्सित, कठोर शब्द या प्रतिघात करने वाली होकर, शत्रु के बलो को या दुर्गो को तोडती हुई शत्रुओं के प्रति चढ़ाई कर ।

पराक् ते ज्योतिरपथं ते अर्वागन्यत्रास्मदयना कृणुष्व ।
परेणेहि नवतिं नाव्या अति दुर्गाः स्रोत्या मा क्षणिष्ठाः परेहि १६

भा०—हे हमारी सेना ! तेरे लिये परे प्रकाश है अर्थात् शत्रु पर-आक्रमण करने से तेरा नाम रोशन होगा। और इधर अर्थात् हार कर अपने राष्ट्र में लौटने पर तेरे लिये कोई मार्ग नहीं है। हमसे अतिरिक्त अपने जाने के मार्ग कर। नाव से पार करने योग्य दुर्गम नई २ नदियों को पार करके शत्रु के पीछे २ दूर २ तक चली जा। देर मत कर, तू दूर २ भाग जा ।

वातं इव वृक्षान् नि मृणीहि पादय मा गामश्वं पुरुषमुच्छिष एषाम् ।
कर्तॄन् निवृत्येतः कृत्ये प्रजास्त्वाय बोधय ॥ १७ ॥

भा०—हे कृत्ये ! हिंसाशील सेने ! वायु का झकोरा जिस प्रकार वृक्षों को तोड़ता-फोड़ता जड़ से उखाड़ गिरा देता है उसी प्रकार तू भी हिंसक पुरुषों को निर्मूल कर डाल और उखाड़ डाल। उनके गौओं, घोड़ों और पुरुषों को भी जीता मत छोड़। यहा से लौटकर उनकी प्रजा-हीन हो जाने की खबर हमें दे।

यां ते ब॒र्हिषि॒ यां श्म॑शा॒ने क्षेत्रे॑ कृ॒त्यां व॑ल॒गं वा॑ निच॒ख्नुः।
अ॒ग्नौ वा॑ त्वा॒ गार्ह॑पत्येऽभिचे॒रुः पाकं॒ सन्तं॒ धीर॑तरा अना॒गस॑म् १८

भा०—हे पुरुष ! जिस घातक प्रयोग को तेरे लिये धान्य, पशु या प्रजा में, और जिसको मसान में, और खेत में गाड़ देते है या जिस किसी गुप्त प्रयोग को प्रजा, मसान या खेत में गाड दिया है, गुप्तरूप से स्थापित कर दिया है, और या अधिक बुद्धिमान् लोग निरपराध पवित्र शुद्ध सज्जन को गार्हपत्य अग्नि मे तेरे विरुद्ध अभिचार या घातक प्रयोग करते हैं उसकी भी हमे खबर दे।

उ॒पाहृ॑त॒मनु॑बुद्धं॒ निखा॑तं॒ वैरं॑ त्सा॒र्यन्व॑विदा॒म क॒र्त्रम्।
तदे॑तु॒ यत॒ आभृ॑तं॒ तत्राश्व॑ इ॒व वि व॑र्तता॒ं हन्तु॑ कृत्या॒कृतः॑ प्र॒जाम् १९

भा०—उपहाररूप में दिये गये, बाद में जाने गये, गाडे गये या पुराने जिस वैरभाव को तथा कुटिल और घातक प्रयोग को हम बाद में जानते हैं वह वैरभाव या प्रयोग जहां से उठा हो वहा ही चला जाय और वहां घोड़ा जैसे अपने अगों को कम्पाता है वैसे शत्रु को कम्पाता रहे, और वह घातक प्रयोग करने वाले की प्रजा को विनाश करे।

स्वा॒य॒सा अ॒सयः॑ सन्ति नो गृ॒हे वि॒द्मा ते॑ कृत्ये यति॒धा परूं॑षि।
उत्ति॑ष्ठै॒व परे॒हीतो॑ऽज्ञा॑ते॒ किमि॒हेच्छ॑सि ॥ २० ॥ (२)

भा०—उत्तम लोहे की बनी तलवारें हमारे घर मे हैं। हे घातक सेने ! तेरे पोरु २ अर्थात् अग-प्रत्यंग को हम जानते हैं कि वे कितने हैं। अब शत्रु के प्रति उत्थान होकर यहा से परे जा। हे शत्रु द्वारा न जानी [illegible] ! यहां तू और क्या २ साधना चाहती है ?

ग्रीवास्ते कृत्ये पादौ चापि कर्त्स्यामि निर्द्रव ।
इन्द्राग्नी अस्मान् रक्षतां यौ प्रजानां प्रजावती ॥ २१ ॥

भा०—हे सेना ! तेरी गर्दनें और पावों को भी मैं काट डालूंगा यदि तूने विरोध किया । नहीं तो आक्रमण के लिये यहां से शीघ्र निकलो। वे इन्द्र और अग्नि, राजा और सेनापति हमारी रक्षा करें, जो दोनों प्रजाजनो के लिये प्रजावाली माता के समान रक्षक है ।

सोमो राजाधिपा मृडिता च भूतस्य नः पतयो मृडयन्तु ॥२२॥

भा०—सोम सबको शुभ कामो मे प्रेरणा करने वाला और शान्त, सौम्य गुणों से युक्त राजा, प्रजा के हृदय को प्रसन्न रखने वाला, प्रजा का पालक और सुखी करने हारा हो । हमें समस्त संसार के या प्राणियों के पालक लोग सुखी करें ।

भवाशर्वावस्यतां पापकृते कृत्याकृते । दुष्कृते विद्युतं देवहेतिम् ॥२३॥

भा०—भव अर्थात् सामर्थ्यवान्, और शर्व अर्थात् शत्रुहिंसक दोनों प्रकार के पुरुष, पापाचरण करने वाले, दूसरे पर घातक प्रयोग करने वाले, दुष्ट या दुःखदायी काम करने वाले पर दिव्य आयुधरूप बिजुली के अस्त्र को फेंकें ।

यद्येयथ द्विपदी चतुष्पदी कृत्याकृता संभृता विश्वरूपा ।
सेतोऽष्टापदी भूत्वा पुनः परेहि दुच्छुने ॥ २४ ॥

भा०—यदि घातक प्रयोग करने वाले शत्रु राजा द्वारा परिपुष्ट हुई, नाना प्रकार की हिंसक सेना दो चरणों वाली अर्थात् पैदल और अश्वारोही सैनिकों से युक्त होकर या चार चरणों अर्थात् पैदल, अश्वारोहियों, गजारोहियों तथा रथियों से युक्त होकर हम पर धावे के लिये आवे तो वह हमारी सेना यहां से आठ चरण वाली होकर अर्थात् शत्रु से दुगने साधनों वाली होकर और दुःखदायिनी होकर फिर शत्रु के राष्ट्र की ओर जावे ।

अभ्य॑क्ताक्ता स्वरं॑कृता सर्वं॒ भर॑न्ती दुरि॒तं परे॑हि ।
जा॒नी॒हि कृ॑त्ये क॒र्तारं॑ दुहि॒तेव॑ पि॒तरं॒ स्वम् ॥ २५ ॥

भा०—हे हमारी सेना ! तू सब प्रकार से चन्दनादि लेप से सुन्दर, तैल आदि से मर्दित, उत्तम रीति से शस्त्रास्त्र आदि आभूषणों से सुसज्जित होकर सब प्रकार के दुष्फलों अर्थात् शत्रु विनाशरूपी दुष्परिणामों को अपने भीतर धारण करती है । तू दूर तक आक्रमण कर । जिस प्रकार कन्या अपने पिता को ही खूब जानती-बूझती है और उसका भला चाहती है, उसी प्रकार तू अपने स्वामी राजा को जान, उसी के भले को चाह ।

परे॑हि कृत्ये॒ मा ति॑ष्ठो वि॒द्धस्ये॑व प॒दं न॑य ।
मृ॒गः स मृ॑ग॒युस्त्वं न त्वा॒ निक॑र्तु॒मर्ह॑ति ॥ २६ ॥

भा०—हे हमारी सेने ! तू शत्रु की ओर जा, यहां अब मत ठहर । बाण से घायल शिकार के पैरों के निशान देखकर जिस प्रकार शिकार खोज लिया जाता है उसी प्रकार तू शत्रु के पैर खोज २ कर उस तक पहुंच जा । वह शत्रु मृग अर्थात् शिकार के तुल्य है, और तू उसका शिकारी है । वह शत्रु तुझे दबा नहीं सकता ।

उ॒त ह॑न्ति पूर्वा॒सिनं॑ प्रत्या॒दाया॑पर॒ इष्वा॑ ।
उ॒त पूर्व॑स्य नि॒घ्नतो॒ नि ह॒न्त्यप॑रः॒ प्रति॑ ॥ २७ ॥

भा०—युद्ध दो ही प्रकार से हो सकता है या तो पहले ही 'आसन' वृत्ति से बैठे हुए पुरुष पर दूसरा उसके प्रतिकूल उस पर चढ़ाई करके बाण द्वारा उसे मारता है । और या पहला पुरुष जब मारता हो तब दूसरा उसके बदले उसको मारता है । सन्धि, विग्रह, यान, आसन, संश्रय, द्वैधीभाव, इन छः अंगों में 'आसन' चतुर्थ है । अपने राज्य में जमे रहना 'आसन' कहाता है ।

ए॒तद्धि शृ॒णु मे॒ वचोऽथे॑हि॒ यत॑ ए॒यथ॑ ।
यस्त्वा॑ च॒कार॒ तं प्रति॑ ॥ २८ ॥

भा०—हे शत्रुद्वारा भेजी गई शत्रु सेना ! यह मेरा वचन सुन, और वहीं चली जा जहां से तू आई है। जो तुझको पैदा करता है तू उसी के प्रति जा।

अनागोहत्या वै भीमा कृत्ये मा नो गामश्वं पुरुषं वधीः ।
यत्रयत्रासि निहिता ततस्त्वोत्थापयामसि पर्णाल्लघीयसी भव॥२९॥

भा०—हे शत्रु द्वारा भेजी गई सेना ! निरपराध पुरुषो का घात करना बड़ा भयानक कृत्य है। अतः हमारे गौ, घोड़े और पुरुषों को मत मार। जहां २ तू रक्खी गई है अर्थात् तू ने जहां २ अपने डेरे डाले हैं वहां २ से तुझे हम उठा दें। तू अपमानित होकर पत्ते से भी अधिक हलकी हो जा।

यदि स्थ तमसावृता जालेनाभिहिता इव ।
सर्वाः संलुप्येतः कृत्याः पुनः कर्त्रे प्र हिण्मसि ॥ ३० ॥

भा०—हे सैनिक पुरुषो ! यदि तुम लोग जाल से बंधे हुओं के समान अन्धकार से घिर जाओ तो सब घातप्रतिघात करने वाली सेनाओं को मिटाकर हम फिर उनके कर्त्ता अर्थात् संचालक के संहारक के लिये ही उनको यहां से उसके प्रति प्रयोग करें ॥

कृत्याकृतो वलगिनोऽभिनिष्कारिणः प्रजाम् ।
मृणीहि कृत्ये मोच्छिषोऽमून् कृत्याकृतो जहि ॥ ३१ ॥

भा०—हे घातकारिणी सेने ! तू घातक प्रयोग करने वाले, गुप्त मन्त्रणा करने वाले, प्रजा के ऊपर आक्रमण करने वाले लोगों का विनाश कर, और उन घातिनी सेना के प्रयोजक लोगों को जीता न छोड़, प्रत्युत मार डाल।

यथा सूर्यो मुच्यते तमसस्परि रात्रिं जहात्युषसंश्च केतून् ।
एवाहं सर्वं दुर्भूतं कर्त्रं कृत्याकृता कृतं हस्तीव रजो दुरितं जहामि ३२

भा०—जिस प्रकार सूर्य अन्धकार से आपसे आप मुक्त हो जाता है, पर रात्रि को और उषा के पूर्व ज्ञापक चिह्नों को भी क्रमशः त्याग देता है, और उदय को प्राप्त हो जाता है, इसी प्रकार मैं मेरे प्रति घातक-

सेना के प्रयोक्ता शत्रु से प्रयोग किये दुष्ट घातक प्रयोगों वा सशस्त्र दल को त्याग दूं, विनाश कर दूं और उनसे पार हो जाऊं, और हाथी जिस प्रकार धूल को उड़ा देता है उसी प्रकार मैं शत्रु के दुष्ट प्रयोग या दुरा-चार को भी छोड़ दूं, त्याग दूं, उड़ा दूं ।

[२] पुरुषमेध

नारायण ऋषिः । पुरुषो देवता । पार्ष्णी सूक्तम् । ब्रह्मप्रकाशि सूक्तम् । १–४, ७, ८, त्रिष्टुभः । ६, ११ जगत्यौ । २८ भुरिग् बृहती, ४, ५, १०, १२–२७, २९–३३ अनुष्टुभ , ३१, ३२ साक्षात्परब्रह्मप्रकाशिन्यावृचौ । त्रयस्त्रिंशदृचं सूक्तम् ॥

केन॒ पार्ष्णी॒ आभृ॑ते॒ पूरु॑षस्य॒ केन॑ मां॒सं संभृ॑तं॒ केन॑ गु॒ल्फौ ।
केना॒ङ्गुलीः॒ पेश॑नीः॒ केन॒ खानि॒ केनो॑च्छ्ल॒ङ्खौ म॑ध्य॒तः कः प्र॑ति॒ष्ठाम् ॥१॥

भा०—पुरुष के देह की दोनों एड़ियाँ किसने बनाई हैं ?, और मांस किसने देह में लाकर लगाया ?, गुल्फ = टखने किसने लगाये ?, पोरुओं वाली नाना अवयवों से युक्त ये अंगुलियां किसने जोड़ दीं ?, शरीर के ये नाक, कान, मुंह आदि इन्द्रियों के छिद्र किसने बनाये ?, सिर के ऊपर के दोनों कपाल किसने बनाये ? और बीच में बैठने के लिये चूतड़-भाग किसने बनाया ?

कस्मा॒न्नु गु॒ल्फावध॑रावकृ॒ण्वन्न॑ष्ठी॒वन्ता॒वुत्त॑रौ॒ पूरु॑षस्य ।
जङ्घे॑ नि॒र्ऋत्य॒ न्यद॑धुः॒ क्व॑स्वि॒ज्जानु॑नोः॒ स॒न्धी क उ॒ तच्चि॑केत ॥२॥

भा०—किस कारण से पुरुष के नीचे के दोनों टखने और ऊपर के घुटने बनाये गये हैं ?, और क्यों दोनों जांघें अलग २ करके रक्खी गई हैं ? और दोनों गोडों के जोड़ों को कहां जोड़ा गया है, इस सब रहस्य को कौन जानता है ?

च॒तु॒ष्ट॒यं यु॑ज्यते॒ संहि॑ता॒न्तं जानु॑भ्यामू॒र्ध्वं शि॑थि॒रं कब॑न्धम् ।
श्रोणी॒ यदू॒रू क उ॒ तज्ज॑जान॒ याभ्यां॒ कुसि॑न्धं॒ सुदृ॑ढं ब॒भूव॑ ॥३॥

भा०—पूर्वोक्त दोनो जांघें और दोनो गोड़े इन चारो को इनके सिरे खूब अच्छी प्रकार मिला २ कर जोडे गये हैं, और टांगो के साथ ऊपर धड भाग शिथिल रूप से रख दिया गया है। दो कूल्हे और ये दोनों जघाएं इनको किसने बनाया ?, जिनके कारण यह कुत्सित, दुर्गन्ध मल मूत्र बहाने वाला या विचित्र रूप से बन्धा हुआ अथवा परस्पर संसक्त, अथवा छोटी २ नाडियों से पूर्ण शरीर खूब मजबूत हो गया है।

कति देवाः कतमे त आसन् य उरो ग्रीवाश्चिक्युः पूरुषस्य ।
कति स्तनौ व्यदधुः कः कफोडौ कति स्कन्धान् कति पृष्टीरचिन्वन्॥४

भा०—इस शरीर मे देव, जीवन-ज्योति के प्रकाशक तत्व कितने हैं, उनमे से वे कौन से २ हैं जो पुरुष-देह की छाती और गर्दन के मोहरों को बना रहे हैं ?, और स्तनों को कितने तत्व विशेष रूप से धारण कर रहे ?, और कौनसा तत्व दोनों हंसुलियों या गालों को धारण करता है। और कन्धों को कितने तत्व धारण कर रहे हैं। और पसुलियों या पीठ के मोहरों को कितने तत्व बनाये हुए हैं।

को अस्य बाहू समभरद् वीर्यं करवादिति ।
अंसौ को अस्य तद् देवः कुसिन्धे अध्या दधौ ॥ ५ ॥

भा०—इस पुरुष के बाहुओं को कौनसा देव पुष्ट करता है कि वह 'ऐसा २ वीर्य, बल का काम करे। इसके भुजाओं के ऊपर के भागों को कौन बनाता है, और उनको कौन देव शरीर मे स्थापित करता है।

कः सप्त खानि वि ततर्द शीर्षणि कर्णाविमौ नासिके चक्षणी मुखम्
येषां पुरुत्रा विजयस्य मह्मनि चतुष्पादो द्विपदो यन्ति यामम् ॥६॥

भा०—कौन देव शिर भाग मे सात इन्द्रियों को विशेष रूप से खोद कर बनाता है ?, और इन दो कानों, इन दो नाक के छिद्रों और इन दो आखों, और इस मुख को किसने बनाया। जिनके विजय के महान् सामर्थ्य मे बहुत से चौपाये और पक्षिगण और दोपाये मनुष्य भी अपना

हन्वोर्हि जिह्वामदधात् पुरुचीमधा महीमधि शिश्राय वाचम् ।
स आ वरीवर्ति भुवनेष्वन्तरपो वसानः क उ तच्चिकेत ॥ ७ ॥

भा०—जो देव दोनों जवाड़ों के बीच में जीभ को रखता है, और वहां ही वह सर्व-व्यापक, बड़ी भारी वाक्-शक्ति को स्थापित करता है, वह लोकों के भीतर व्यापक समस्त जीवों, प्राणियों, कर्मों, ज्ञानों और मूलकारण रूप प्रकृति के परिमाणुओं में भी व्यापक है। कौन उसको जानता है ?

मस्तिष्कमस्य यतमो ललाटं ककाटिकां प्रथमो यः कपालम् ।
चित्वा चित्यं हन्वोः पूरुषस्य दिवं रुरोह कतमः स देवः ॥ ८ ॥

भा०—जो देव इस पुरुष-देह के मस्तिष्क को, माथे को, और जो सबसे प्रथम विद्यमान इस पुरुष के गले की घंटी और खोपडी को, और पुरुष देह के दोनों जबाड़ों के बीच की रचना को बनाकर प्रकाशस्वरूप द्यौः या मोक्षपद में स्वयं व्याप्त हुआ है, वह देव कौनसा है ?

प्रियाप्रियाणि बहुला स्वप्नं संबाधतन्द्र्यः
आनन्दानुग्रो नन्दांश्च कस्माद् वहति पूरुषः ॥ ९ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! विचार करो कि बलवान होकर यह पुरुष बहुत प्रकार के प्रिय, चित्त को भले लगने वाले और अप्रिय, चित्त को बुरे लगने वाले भावों को, निद्रा या स्वप्न को, पीडा और थकान को, आनन्दों और हर्षों को किस हेतु से या कहां से प्राप्त करता है ?

आर्तिरवर्तिर्निर्ऋतिः कुतो नु पुरुषेऽमतिः ।
राद्धिः समृद्धिरव्यृद्धिर्मतिरुदितयः कुतः ॥ १० ॥ (४)

भा०—पुरुष में पीडा, दुःख, मानसिक व्यथा, बेचैनी या बेरोज़गारी, पाप की प्रवृत्ति और अज्ञान ये कहां से आये ?, और किस कारण से उत्पन्न होते हैं ? और कार्य-सिद्धि, सम्पत्ति, विशेष संपत्ति का अभाव अथवा दरिद्रता, सदाचार का अभाव, विशेष ज्ञान और ऊपर उठने की प्रवृत्तियां कहां से और किस कारण से उत्पन्न होती हैं ? ॥

को अस्मिन्नापो व्यदधाद् विषूवृतः पुरूवृतः सिन्धुसृत्याय जाताः।
तीव्रा अरुणा लोहिनीस्ताम्रधूम्रा ऊर्ध्वा अवाचीः पुरुषे तिरश्चीः ११

भा०—इस पुरुष देह मे नाना द्रवों अर्थात् रक्त धाराओ आदि को किसने रचा है, जो नाना प्रकार से देह मे घूमते हैं, समस्त अगो मे घूमने और नाडियों मे गति करने के योग्य हो गये हैं। और यह नाड़ियें इस शरीर मे तीव्र गति करने वाली लाल, सुर्ख और लाल नीले रग की होकर ऊपर, नीचे और तिरछी भी जाती हैं।

को अस्मिन् रूपमदधात् को मह्मानं च नाम च।
गातुं को अस्मिन् क· केतुं कश्चरित्राणि पूरुषे ॥ १२ ॥

भा०—इस पुरुष-देह मे कौन रूप को धारण करता है ?, महत्व या महिमा और नाम को कौन उत्पन्न करता है ?, इस पुरुष में गति, चेष्टा या वाणी को कौन स्थापित करता है ?, आत्मा के ज्ञापक चिह्न ज्ञान या सामर्थ्य को कौन देता है ?, और नाना प्रकार के सत् और असत् चरित्रों, इन्द्रियो के व्यापारो और प्रवृत्तियो को कौन स्थापित करता है ?

को अस्मिन् प्राणमवयत् को अपानं व्यानमु ।
समानमस्मिन् को देवोधि शिश्राय पुरुषे ॥ १३ ॥

भा०—इस पुरुष देह मे जीवन शक्ति को कौन सचारित करता है, जिस प्रकार जुलाहा कपडे के तन्तुओं को बुन देता है उस प्रकार इस देह के ताने मे प्राण रूप बरनी कौन बुन देता है ?, अपान और व्यान को कौन सचारित कर देता है ?, कौन देव इस पुरुष-देह मे समान नामक प्राण भेद को स्थापित करता है ?

को अस्मिन् यज्ञमदधादेको देवोऽधि पूरुषे ।
को अस्मिन्त्सत्यं कोऽनृतं कुतो मृत्यु· कुतोऽमृतम् ॥ १४ ॥

भा०—वह एक कौनसा प्रकाशक देव है जो इस पुरुष देह मे यज्ञरूप शक्तिप्रद आत्मा को अधिष्ठाता रूप से स्थापित करता है ?, इस

में सत्य को कौन रखता है ? अनृत, झूठ को कौन रखता है ?, मौत अर्थात् देह का आत्मा से छूट जाना किस कारण से होता है ?, और आत्मा अमृत किस कारण से और किस प्रकार से हो जाता है ।

को अस्मै वासः पर्यदधात् को अस्यायुरकल्पयत् ।
बलं को अस्मै प्रायच्छत् को अस्याकल्पयज्जवम् ॥ १५ ॥

भा०—इस पुरुष को पहनने के वस्त्र, देह रूप चोला कौन पहराता है ?, इसके आयुष्यकाल को कौन नियत करता है ?, इसको शारीरिक शक्ति कौन प्रदान करता है ?, इस शरीर के वेग या क्रिया सामर्थ्य को कौन रचता है ?

केनापो अन्वतनुत केनाहरकरोद् रुचे ।
उषसं केनान्वैन्द्ध केन सायंभवं ददे ॥ १६ ॥

भा०—ये जल, देह मे रुधिर रस आदि पदार्थ किस के सामर्थ्य से सर्वत्र फैले हैं ?, किसने प्रकाश के लिए सूर्य को बनाया ?, किसने उषा काल को पुरुष के अनुकूल प्रकाशित किया ?, और किसने सायं-काल को बनाया ?

को अस्मिन् रेतो न्यदधात् तन्तुरा तायतामिति ।
मेधां को अस्मिन्नध्यौहत् को वाणं को नृतो दधौ ॥ १७ ॥

भा०—इस पुरुष-देह में वीर्य को कौन स्थापित करता है कि जिससे इस पुरुष का प्रजातन्तु और अधिक फैले ? इस पुरुष में बुद्धि को कौन धारण कराता है ?, कौन इसमें वाणी या वाक् शक्ति को धारण कराता, और नृत्य या हाथ पैर आदि की अपने इच्छानुरूप चेष्टाओं को कौन धारण कराता है ?

केनेमां भूमिमौर्णोत् केन पर्यभवद् दिवम् ।
केनाभि मह्ना पर्वतान् केन कर्माणि पूरुषः ॥ १८ ॥

भा०—पुरुष ने भूमि अर्थात् भौतिक देह को किस बड़े सामर्थ्य से आच्छादित किया है ?, किस सामर्थ्य से मस्तिष्क को ऊपर रखा है ।

पर्वतों अर्थात् अस्थियों को किस महान् सामर्थ्य से धारण किया है, और किस सामर्थ्य से पुरुष नाना कर्मों को करता है ?

केन॑ प॒र्जन्य॒मन्वे॑ति॒ केन॒ सोमं॑ विचक्ष॒णम् ।
केन॑ य॒ज्ञं च॑ श्र॒द्धां च॒ केना॑स्मि॒न् निहि॑तं मन॑: ॥ १९ ॥

भा०—पुरुष किस प्रकार से मेघ को अपने जीवन के कार्यों में सुसगत करता या प्राप्त करता है, और नाना प्रकार से देखने योग्य जल या अन्न को किस प्रकार से प्राप्त करता है, यज्ञ और श्रद्धा को किस प्रकार प्राप्त करता है ?, और इस पुरुष देह मे किसने मननशील चित्त को स्थापित किया है ।

केन॒ श्रोत्रि॑यमाप्नोति॒ केने॒मं प॑रमे॒ष्ठिन॑म् ।
केने॒मम॒ग्निं पूरु॑षः॒ केन॑ संवत्स॒रं म॑मे ॥ २० ॥ (५)

भा०—वेद के विद्वान् श्रोत्रिय पुरुष को किस रीति से, किस प्रयोजन से पुरप प्राप्त करता है, और इस परम मोक्ष स्थान पर विराजमान परमेश्वर को किस प्रकार, किस मार्ग से प्राप्त करता है ? पुरुष इस जीवरूप अग्नि का किस रीति से ज्ञान करता है, और संवत्सर रूप, कालमय प्रजापति का किस प्रकार से ज्ञान करता है या उसको मापता है ?

ब्रह्म॒ श्रोत्रि॑यमाप्नोति॒ ब्रह्मे॒मं प॑रमे॒ष्ठिन॑म् ।
ब्रह्मे॒मम॒ग्निं पूरु॑षो॒ ब्रह्म॑ संवत्स॒रं म॑मे ॥ २१ ॥

भा०—पुरुष ब्रह्म, वेदज्ञान के लिये श्रुति अर्थात् = वेद के ज्ञानी, ब्रह्म के विद्वान् ब्राह्मण के पास जाता है । और ब्रह्म ज्ञान से वह परमपद मे स्थित ब्रह्म को प्राप्त होता है । ब्रह्म, ब्रह्मज्ञान और वेदाभ्यास से इस अग्नि को, इस जीवात्मा को भी प्राप्त करता, साक्षात् करता है, और ब्रह्म से ही उस कालमय संवत्सर का ज्ञान करता है ॥

केन॑ दे॒वाँ अनु॑ क्षियति॒ केन॒ दैव॑जनी॒र्विश॑: ।
केने॒दम॒न्यन्नक्ष॑त्रं॒ केन॒ सत् क्ष॒त्रमु॑च्यते ॥ २२ ॥

भा०—देवों, विद्वानो और परमात्मा के रचे दिव्य पदार्थों को किस सामर्थ्य से अपने वश करता है, उनको अपने अनुकूल करता है? देव अर्थात् परमात्मा से उत्पादित पशु पक्षी, कीटपतङ्ग आदि प्रजाओं को किस सामर्थ्य से अपने अनुकूल बना कर उनके साथ रहता है? अथवा प्राणो को और प्राण से उत्पन्न उप-प्राणो के साथ यह पुरुष अर्थात् आत्मा किस सामर्थ्य से एक ही देह मे रहता है? किसमे विरहित होकर यह बलहीन या चेतना रहित कहा जाता है, और किसके साथ विद्यमान रह कर यह प्रकटरूप मे बलस्वरूप या चेतनावान् कहा जाता है?

ब्रह्म देवाँ अनु क्षियति ब्रह्म दैवजनीर्विशः ।
ब्रह्मेदमन्यन्नक्षत्रं ब्रह्म सत् क्षत्रमुच्यते ॥ २३ ॥

भा०—ब्रह्मशक्ति से यह आत्मा इन्द्रियों और वाणी के बीच में निवास करता है। ब्रह्मशक्ति से ही ईश्वर से उत्पादित चर, अचर प्रजाओं मे या उप-प्राणो मे भी यह आत्मा निवास करता है। ब्रह्मशक्ति से अतिरिक्त यह सब निर्वीर्य रहता है, और ब्रह्मशक्ति से युक्त ही यह सब बलयुक्त रूप में 'चेतन' कहा जाता है।

केनेयं भूमिर्विहिता केन द्यौरुत्तरा हिता ।
केनेदमूर्ध्वं तिर्यक् चान्तरिक्षं व्यचो हितम् ॥ २४ ॥

भा०—यह भूमि किसने विशेष रूप से स्थिर की, धारण की या बनाई है? और किसने ऊपर का यह आकाश धारण किया, थामा या बनाया? और किसने यह ऊपर का और तिरछा व्यापक अन्तरिक्ष, वातावरण धारण किया, थामा या बनाया है?

ब्रह्मणा भूमिर्विहिता ब्रह्म द्यौरुत्तरा हिता ।
ब्रह्मेदमूर्ध्वं तिर्यक् चान्तरिक्षं व्यचो हितम् ॥ २५ ॥

भा०—उस महान ब्रह्मशक्ति ने यह भूमि या देह बनाई और विशेष रूप मे धारण और स्थिर की। उस महान शक्ति ब्रह्म ने ऊपर का आकाश या शिर भी बनाया और स्थिर किया है। यह ऊपर का

और तिरछा, फैला हुआ अन्तरिक्ष, वातावरण, देह का मध्य भाग भी उसी महान् शक्ति ब्रह्म ने धारण किया, बनाया और स्थिर किया है।

मूर्धानमस्य संसीव्याथर्वा हृदयं च यत्।
मस्तिष्कादूर्ध्वः प्रैरयत् पवमानोधि शीर्षतः ॥ २६ ॥

भा०—अथर्वा अर्थात् प्रजापति परमात्मा इस पुरुष के सिर को और हृदय को सीकर मस्तिष्क से ऊपर और शिर के भी ऊपर होकर प्राण-स्वरूप होकर स्वय समस्त देहो को गति दे रहा है। अर्थात् वह पर-मात्मा ही सब देहों मे चेतना को चला रहा है। वह सबके मस्तिष्क और सिरों के ऊपर अध्यक्षरूप से विद्यमान है।

तद् वा अथर्वणः शिरो देवकोशः समुब्जितः।
तत् प्राणो अभि रक्षति शिरो अन्नमथो मनः ॥ २७ ॥

भा०—अथवा अथर्वा अर्थात् प्रजापति का बनाया हुआ वह शिर ही देव-कोश अर्थात् इन्द्रियो का मूल आवरण या निवासस्थान बना हुआ है। उस शिर की प्राण चारो ओर से रक्षा करता है। और अन्नमय शरीर की और मन की भी वही रक्षा करता है।

ऊर्ध्वो नु सृष्टा३स्तिर्यङ् नु सृष्टा३ः सर्वा दिशः पुरुष आ बभूवाँ३।
पुरं यो ब्रह्मणो वेद यस्याः पुरुष उच्यते ॥ २८ ॥

भा०—पुरुष अर्थात् जीवात्मा क्या ऊपर ऊंचे खडे हुए रूप मे या मनुष्य से उच्च योनि मे उत्पन्न किया गया था, या वह तिरछे या तिर्यग् योनि मे उत्पन्न किया गया था, या सब दिशाओं मे पुरुष प्रकट हुआ था? अर्थात् ऊर्ध्व = इस मनुष्यलोक से ऊपर कोई और इससे उच्च योनि मे प्रथम पुरुष उत्पन्न हुआ था कि जिससे ये सब मनुष्य पीछे उत्पन्न हुए या वह पुरुष प्रथम तिर्यक् योनि मे उत्पन्न हुआ था और या सभी दिशाओं मे अर्थात् सभी योनियो मे वह पुरुष आत्मा प्रकट हुआ, यह वितर्क उठा करता है? अथवा वह पुरुष ऊपर ही द्यौलोक में प्रकट हुआ था, तिर्यङ् = अन्तरिक्ष लोक मे प्रकट हुआ या सभी दिशाओं में

उसकी सत्ता रही, यह सदा वितर्क उठता है। इसकी विवेचना उचित रीति से करनी चाहिये। जो विद्वान् ब्रह्म की उस पुरी को, जिसके भीतर रहने से वह आत्मा पुरुष कहा जाता है, जानता है, वही इस तर्क का समाधान करता है॥

यो वै तां ब्रह्मणो वेदामृतेनावृतां पुरम्।
तस्मै ब्रह्म च ब्राह्माश्च चक्षुः प्राणं प्रजां ददुः॥ २९॥

भा०—जो निश्चय से ब्रह्म की परमानन्द रस से या अनन्त जीवन से घिरी हुई उस पुरी को जान लेता है उसे वह ब्रह्म और उस ब्रह्मरूप महान् शक्ति के उपासक जन या उससे उत्पन्न लोक देखने के लिये इन्द्रिय, जीवन और सन्तान प्रदान करते हैं।

न वै तं चक्षुर्जहाति न प्राणो जरसः पुरा।
पुरं यो ब्रह्मणो वेद यस्याः पुरुष उच्यते॥ ३०॥

भा०—जो ब्रह्म की उस पुरी को जानता है, जिसका अध्यक्ष साक्षात् 'पुरुष' कहा जाता है, उसको चक्षु आदि ज्ञानेन्द्रियगण नहीं छोडते, और न प्राण ही बुढापे के पूर्व उसे त्यागता है।

अष्टाचक्रा नवद्वारा देवानां पूरयोध्या।
तस्यां हिरण्ययः कोशः स्वर्गो ज्योतिषावृतः॥ ३१॥

भा०—आठ चक्रों और नवद्वारों से युक्त, इन्द्रिय-गणों की किसी से युद्ध द्वारा विजय न की जाने वाली पुरी है। उसमें तेजःस्वरूप, प्राणों का एकमात्र आश्रय, सुखस्वरूप जीवात्मा परमात्मा के तेज से ढका हुआ रहता है।

तस्मिन् हिरण्यये कोशे त्र्यरे त्रिप्रतिष्ठिते।
तस्मिन् यद् यक्षमात्मन्वत् तद् वै ब्रह्मविदो विदुः॥ ३२॥

भा०—उस तेजोमय, तीन अरों वाले, और तीन चरणों या आश्रयों पर स्थित होने वाले कोश में अर्थात् जीवात्मा में जो परम पूजनीय तत्त्व

परमात्मस्वरूप है, उसका ही निश्चय से ब्रह्मज्ञानी लोग ज्ञान किया करते हैं।

प्रभ्राजमानां हरिणीं यशसा संपरीवृताम्।
पुरं हिरण्ययीं ब्रह्मा विवेशापराजिताम्॥ ३३॥ (६)

भा०—अतिशय तेज से प्रकाशमान, अति मनोहारिणी, यशो रूप तेज से चारो तरफ से घिरी हुई, अति तेजस्विनी, किसी से भी न जीती गई उस ब्रह्मपुरी अर्थात् जीवात्मा में ब्रह्म प्रवेश किये हुए है।

॥ इति प्रथमोऽनुवाकः॥

[तत्र द्वे सूक्ते, पञ्चषष्टिश्चर्चः]

[३] वरणमणि।

अथर्वा ऋषिः। वरणो, वनस्पतिश्चन्द्रमाश्च देवताः। २, ३, ६ भुरिक् त्रिष्टुभः। ८, १३, १४ पथ्यापङ्क्तयः। ११, १६ भुरिजौ। १५, १७–२५ षट्पदा जगत्यः। १, ४, ५, ७, १०, १२ अनुष्टुभः। पञ्चविंशर्चं सूक्तम्॥

अयं मे वरणो मणिः सपत्नक्षयणो वृषा।
तेना रभस्व त्वं शत्रून् प्र मृणीहि दुरस्यतः॥ १॥

भा०—यह सबसे उत्तम वरण करने या मुख्य रूप से चुनने योग्य, श्रेष्ठतम, इन में से राज्यतिलक द्वारा अभिषेक करने योग्य, अथवा शत्रु का वारण करने हारा पुरुष ही शिरोमणि, सबका प्रमुख नेता होने योग्य है। यह स्वयं सब सुखों का वर्षक, शकट के भार को उठाने योग्य वृषभ के समान राज्य भार को उठाने में समर्थ या मेघ के तुल्य सुखों का वर्षक और शत्रुओं का नाशक है। हे राष्ट्रपते! ऐसे पुरुष के बल पर तू शत्रुओं को विनष्ट कर या पकड़, और दुष्ट कामना करने वाले का विनाश कर।

प्रैणाञ्छृणीहि प्र मृणा रभस्व मणिस्ते अस्तु पुरएता पुरस्तात्।
य एनानवारयन्त वरणेन देवा अभ्याचारमसुराणां श्वःश्वः॥ २॥

भा०—हे राजन्! इन शत्रुओं को मार, विनाश कर, पकड़ ले। ही शत्रुओं का निवारण करने में समर्थ सेनापति आगे ही आगे अपनी सेना के आगे प्रमुख रूप से चलने वाला हो। विद्वान् वा वीर लोग शत्रु के वारण करने में समर्थ पुरुष द्वारा ही असुरों के निरन्तर होने वाले नये से नये आक्रमण को वारण करते हैं।

अयं मणिर्वरणो विश्वभेषजः सहस्राक्षो हरितो हिरण्ययः।
स ते शत्रूनधरान् पादयाति पूर्वस्तान् दभ्नुहि ये त्वा द्विषन्ति॥३॥

भा०—यह शत्रुओं का निवारण करने वाला नर-शिरोमणि पुरुष ही समस्त दुःखों को शान्त करने हारे औषध के समान है, वह चर या गुप्त दूतों और राजसभा के सभासदों की आंखों और शास्त्र-चक्षुओं वा विद्वानों द्वारा मानो हजारों आंखों से युक्त होकर साक्षात् सहस्राक्ष इन्द्र है। वह मनोहर आश्रय वृक्ष के समान श्यामल या सूर्य के समान कान्तिमान् एवं शान्तिप्रद है, और वही बड़ा धन-ऐश्वर्यसम्पन्न है। वह तेरे शत्रुओं को नीचे कर देता है। हे शत्रु निवारक! तू सब से पूर्वगामी होकर उनका विनाश कर डाल जो तुझे द्वेष करते हैं।

अयं ते कृत्यां विततां पौरुषेयादयं भयात्।
अयं त्वा सर्वस्मात् पापाद् वरणो वारयिष्यते ॥ ४ ॥

भा०—यह शत्रुओं को निवारण करने में समर्थ, सेनापति निष्फल घातक सेना को भी परे हटा देने में समर्थ है। और यह सेनापति पुरुष से होने वाले भय से बचाने में समर्थ है। और यह तुझ पर होने वाले सब प्रकार के अत्याचार से तुझको बचाने में समर्थ है।

वरणो वारयाता अयं देवो वनस्पतिः।
यक्ष्मो यो अस्मिन्नाविष्टस्तमु देवा अवीवरन् ॥ ५ ॥

भा०—यह शत्रु को वारण करने में समर्थ दिव्यगुणवान, शान्ति-मान, तेजस्वी, राजा, साक्षात् वृक्ष के समान आश्रयप्रद है। उ

भीतर पूजा सत्कार के योग्य महान् आत्मा प्रविष्ट है। विद्वान् लोग उसका वरण करते और राज्यसिंहासन पर अभिषेक करते हैं।

स्वप्नं सुप्त्वा यदि पश्यासि पापं मृगः सृतिं यति धावादजुष्टाम्।
परिक्षवाच्छकुनेः पापवादादयं मणिर्वरणो वारयिष्यते ॥ ६ ॥

भा०—हे राजन्! यदि सोया हुआ तू पाप युक्त, अत्याचार और अन्यायपूर्ण अपने पर होने वाले भयङ्कर बध आदि के स्वप्नमय दृश्य को देखे, और यदि कोई बनैला जन्तु अनभिलषित मार्ग में आ धमके, निन्दाजनक लोकवाद और प्रबल आक्रामक और पापमय निन्दावाद इन सब से, शत्रु से वारण करने में समर्थ यह शिरोमणि प्रजा की और तेरी रक्षा करेगा। राजा के रक्षकवर्ग राजा को सुख से सोने देते हैं, उसकी रक्षा में राजा रात को शत्रु के भय के अत्याचारमय स्वप्न नहीं देखता और प्रजा भी निश्चिन्त सोती है। उसकी रक्षा में वन के पशु नहीं सताते, व्यर्थ लोकापवाद नहीं उठते, प्रत्युत रक्षा के प्रबन्ध से उसका यश होता है और प्रबल पापमय निन्दा भी नहीं उठती।

अरात्यास्त्वा निर्ऋत्या अभिचारादथो भयात्।
मृत्योरोजीयसो वधाद् वरणो वारयिष्यते ॥ ७ ॥

भा०—सुख न देने वाली शत्रु की पापमयी सेना के आक्रमण से, और उसके कारण उत्पन्न बड़े प्रबल मृत्यु के भय और प्राणनाश, शस्त्रवध से भी वह 'वरण' नाम रक्षकवर्ग राजा और प्रजा को आपत्तियों से बचा लेने में समर्थ होता है।

यन्मे माता यन्मे पिता भ्रातरो यच्च मे स्वा यदेनश्चकृमा वयम्।
ततो नो वारयिष्यतेऽयं देवो वनस्पतिः ॥ ८ ॥

भा०—जो पाप मेरी माता, और जो पाप मेरा पिता, और जो पाप मेरे भाई लोग, और जो पाप मेरे अपने बन्धु जन, और जो पाप हम करते हैं, उन सब पापों से यह बड़े वृक्ष के समान शरण योग्य

प्रजापालक राजा रक्षा करेगा । राजा और प्रजा के भीतरी सम्बन्धों में होने वाले अत्याचारों से भी प्रजा की रक्षा राजा ही करे ।

वरणेन प्रव्यथिता भ्रातृव्या मे सबन्धवः ।
असूर्तं रजो अप्यगुस्ते यन्त्वधमं तमः ॥ ९ ॥

भा०—मेरे बन्धुधनों के साथ मिलकर षड्यन्त्र रचने वाले मेरे शत्रु लोग, इस रक्षकवर्ग से पीड़ित होकर, जो प्रकाशहीन राजसभाव अर्थात् क्रोध को प्राप्त होते हैं, वे अधम तामसभाव को प्राप्त हों, अर्थात् वे भारी दण्ड को प्राप्त हों ।

अरिष्टोऽहमरिष्टगुरायुष्मान्त्सर्वपूरुषः ।
तं मायं वरणो मणिः परि पातु दिशोदिशः ॥ १० ॥ (७)

भा०—मैं अपीडित और अपीडित पशुओं या इन्द्रियों सहित रहूँ, और मैं अपने समस्त पुरुषों नौकर-चाकरों सहित दीर्घायु रहूँ । उस मुझको यह क्षत्रवर्ग-शिरोमणि समस्त दिशाओं में सुरक्षित करे ।

अयं मे वरण उरसि राजा देवो वनस्पतिः ।
स मे शत्रून् वि बाधतामिन्द्रो दस्यूनिवासुरान् ॥ ११ ॥

भा०—आत्मा आत्मज्ञान का नाश करने वाले प्राणों में रमणकारी विषय भोगों को आत्मा जिस प्रकार दमन करता है, उसी प्रकार यह विद्वानों से वरने और शत्रुओं को वारण करने में समर्थ प्रकाशमान, आश्रय-वृक्ष के समान सबका पालक राजा मेरी छाती या हृदय में विराजे । वह मेरे शत्रुओं का विशेष रूप से या विविध उपायों से दमन करे ।

इमं बिभर्मि वरणमायुष्मान् छतशारदः ।
स मे राष्ट्रं च क्षत्रं च पशूनोजश्च मे दधत् ॥ १२ ॥

भा०—इस शत्रु-वारण में समर्थ पुरुष को मैं स्तुति द्वारा पोषण करूं, और सौ बरसों तक की आयु वाला होऊं । वह मेरे राष्ट्र को और क्षत्र-बल को, पशुओं को और ओज को मेरे में धारण करावे ।

यथा वातो वनस्पतीन् वृक्षान् भनक्त्योजसा ।
एवा सपत्नान् मे भङ्ग्धि पूर्वान् जातान् उतापरान् ।
वरणस्त्वाभि रक्षतु ॥ १३ ॥

भा०—जिस प्रकार प्रबल वायु वनो के पालक रूप बड़े बड़े वृक्षों को अपने बल से तोड़ डालता है, उसी प्रकार मेरे पूर्व के उत्पन्न और बाद के उत्पन्न शत्रुओ को तोड़ डाल, नाश कर । हे राजन् ! ऐसा शत्रु का वारण करने में समर्थ पुरुष तेरी रक्षा करे ।

यथा वातश्चाग्निश्च वृक्षान् प्सातो वनस्पतीन् ।
एवा सपत्नान् मे प्साहि पूर्वान्० ॥ १४ ॥

भा०—जिस प्रकार प्रबल वायु और अग्नि मिलकर वन के बड़े बड़े और साधारण वृक्षों को भी खा जाते हैं, इसी प्रकार मेरे पहले और पिछले उत्पन्न शत्रुओ को खा डाल । हे राजन् ! शत्रुनिवारक पुरुष तेरी रक्षा करे ।

यथा वातेन प्रक्षीणा वृक्षाः शेरे न्यर्पिताः ।
एवा सपत्नांस्त्वं मम प्र क्षिणीहि न्यर्पय ।
पूर्वान् जातां उतापरान् वरणस्त्वाभि रक्षतु ॥ १५ ॥

भा०—जिस प्रकार प्रबल वायु से उखडे और नीचे गिराये वृक्ष भूमि पर लोट जाते हैं, उसी प्रकार तू 'वरण' मेरे शत्रुओं का विनाश कर और उनको नीचे गिरादे ।

तांस्त्वं प्र च्छिन्द्धि वरण पुरा दिष्टात् पुरायुषः ।
य एनं पशुषु दिप्सन्ति ये चास्य राष्ट्रदिप्सवः ॥ १६ ॥

भा०—जो लोग इस राजा के पशुओं पर घात लगाते हैं, और जो इस राजा के राष्ट्र अर्थात् जनपद पर घात लगाते हैं, हे शत्रुनिवारक ! उनको तू दिष्ट अर्थात् कर्म में लिखे समय या संभावित आयु से पूर्व या उनकी पूर्ण आयु होने के पूर्व ही विनाश कर ।

यथा सूर्यो अतिभाति यथास्मिन् तेज आहितम् ।
एवा मे वरणो मणिः कीर्तिं भूतिं नि यच्छतु,
तेजसा मा समुक्षतु यशसा समनक्तु मा ॥ १७ ॥

भा०—जिस प्रकार सूर्य सबसे अधिक चमकता है, और जिस प्रकार इस सूर्य में प्रखर तेज ईश्वर ने रख दिया है, उसी प्रकार शत्रु-वारक नर-शिरोमणि पुरुष मुझे यश और सम्पत्ति प्रदान करे, तेज से मुझे सींचे ।

यथा यशश्चन्द्रमस्यादित्ये च नृचक्षसि । एवा मे० ॥ १८ ॥

भा०—जिस प्रकार चन्द्रमा में, और समस्त मनुष्यों के देखने वाले या सबके दर्शनीय आदित्य में कीर्त्ति है, इसी प्रकार शत्रुवारक शिरोमणि पुरुष भी मुझे कीर्त्ति और भूति प्रदान करे, मुझे तेज और यश से युक्त करे ।

यथा यशः पृथिव्यां यथास्मिन् जातवेदसि । एवा० ॥ १९ ॥

भा०—जिस प्रकार पृथिवी में, और इस जातवेदा अग्नि में कीर्त्ति है, इसी प्रकार, शेष पूर्ववत् ।

यथा यशः कन्यायां यथास्मिन्त्संभृते रथे । एवा० ॥ २० ॥

भा०—जिस प्रकार का यश, शोभा, मान, प्रतिष्ठा, शुद्धचरित्र कन्या में, और जिस प्रकार का इस युद्ध के लिये युद्ध-सामग्री से सुसज्जित रथ में यश है, उसी प्रकार, शेष पूर्ववत् ।

यथा यशः सोमपीथे मधुपर्के यथा यशः । एवा० ॥ २१ ॥

भा०—जिस प्रकार का सोमपान करने में यश, मान, प्रतिष्ठा है, और जिस प्रकार का मधुपर्क प्राप्त करने में यश है उसी प्रकार शेष पूर्ववत् ।

यथा यशोऽग्निहोत्रे वषट्कारे यथा यशः । एवा० ॥ २२ ॥

भा०—जिस प्रकार का अग्निहोत्र करने में यश है और जिस प्रकार का यज्ञ करने में यश है, उसी प्रकार, शेष पूर्ववत् ।

यथा यशो यजमाने यथास्मिन् यज्ञ आहितम् । एवा० ॥ २३ ॥

भा०—जिस प्रकार का यश यज्ञ करने वाले पुरुष मे, और जिस प्रकार का यश इस यज्ञ मे रक्खा है, इसी प्रकार का, शेष पूर्ववत् ।

यथा यशः प्रजापतौ यथास्मिन् परमेष्ठिनि । एवा० ॥ २४ ॥

भा०—जैसा प्रजापति मे यश है, और जैसा इस परमेष्ठी, ब्रह्मा या सर्वोच्च पद पर स्थित परमेश्वर और राजा होने मे यश है, इसी प्रकार का, शेष पूर्ववत् ।

यथा देवेष्वमृतं यथैषु सत्यमाहितम् ।
एवा मे वरणो मणिः कीर्तिं भूतिं नि यच्छतु,
तेजसा मा समुक्षतु यशसा समनक्तु मा ॥ २५ ॥

भा०—जिस प्रकार दिव्य पदार्थों मे जीवनप्रद सामर्थ्य है, और विद्वानो मे परम ब्रह्मज्ञान रहता है, और जिस प्रकार इन ब्रह्मज्ञ पुरुषों मे सत्य स्थिर है, इसी प्रकार का यश, कीर्त्ति, मान, प्रतिष्ठा, आदर, और सम्पत्ति यह शत्रुवारक पुरुष मुझे प्राप्त करावे, और वह मुझे तेजस्वी और यशस्वी करे ।

[४] सर्प विज्ञान और चिकित्सा ।

अथर्वा ऋषि । गरुत्मान् तक्षको देवता । १ पथ्यापंक्ति । २ त्रिपदा यवमध्या गायत्री । ३, ४ पथ्या बृहत्यौ । ८ उष्णिग्गर्भा परा त्रिष्टुप् । १२ भुरिक् गायत्री । १६ त्रिपदा प्रतिष्ठा गायत्री । २१ ककुम्मती । २३ त्रिष्टुप् । २६ बृहतीगर्भा ककुम्मती व्यवसाना षट्पदा भुरिक् त्रिष्टुप् । ५—७, ९, ११, १३—१५, १७—२०, २२, २४, २५ अनुष्टुभ । षड्विंशर्चं सूक्तम् ॥

इन्द्रस्य प्रथमो रथो देवानामपरो रथो वरुणस्य तृतीय इत् ।
अहीनामपमा रथं स्थाणुमारदथार्षत् ॥ १ ॥

भा०—आत्मा का सबसे उत्कृष्ट रस या वीर्य है, और शरीरगत इन्द्रियो का रस या वीर्य उससे उतर कर, दूसरे नम्बर पर है । प्राण, अपान, अग्नि का रस या वीर्य तीसरे दर्जे का ही है । सर्पों का रस या

वीर्य सबसे नीचे है, जो वनस्पतियों में या शरीर में प्राप्त होता है, और जो तीव्र वेदना उत्पन्न करता या फैल जाता है और प्राणघात करता है

'तं वा एतं रसं सन्तं रथ इत्याचक्षते। गो० पू० २।२१। इन आत्मा का सबसे अधिक बल है, उससे उतर कर ज्ञानेन्द्रियों का, उससे उतर कर प्राण, अपान, व्यान या अग्नि का और सबसे कम अहि = सर्प का। अधिक बलवान् अपने से कम बल वाले को दबा लेता है इस सिद्धान्त से सर्पों के रस अर्थात् विष को दूर करने या उस पर विजय पाने के लिये उससे अधिक रस-बल वाले पदार्थ का प्रयोग करना चाहिये। इसके अतिरिक्त रस वनस्पतियों में विद्यमान है। सर्प का सबसे निकृष्ट श्रेणी का विष भी शरीर में प्रवेश करता और फैल जाता है।

दर्भः शोचिस्तरूणकमश्वस्य वारः परुषस्य वारः।
रथस्य बन्धुरम् ॥ २ ॥

भा०—विष के बांधने वाले पदार्थों का वर्णन करते हैं। दाभ, कुशा घास, जलता चमकता हुआ आग का अंगारा, तरूणक या कर्तृण 'अश्व' अर्थात् सरपत या कनेर के बाल या जल, और परुष नाम के सरपत के बाल या जल ये पदार्थ सर्पों के विष के बांधने वाले पदार्थ हैं।

'अश्वस्य वारः' = अश्व के बाल, ये घोड़े के बाल नहीं प्रत्युत यह एक 'काश' या सरपत की जाति है जिसको राजनिघण्टु में 'अश्वाल' शब्द से कहा गया है। यह पानी में बहुत फैलता है। उसके पत्ते विशेष रूप से दाह, तृष्णा को शान्त करते हैं। अथवा—'अश्वस्य वारः' करवीर का भी वाचक होना सम्भव है। आयुर्वेद में उसे 'अश्वमार' 'हयमार' आदि कहा जाता है, वेद में उसे 'अश्व-वार' कहा गया है। यह भी विषघ्न पदार्थ है। 'परुषस्य वारः'—परुष नामक छोटी दाभ की जाति है, इसको राजनिघण्टु 'शर' नाम से पुकारता है। यह पित्तदाह, दाह, विष आदि का नाशक है। अथवा परुष = पोरओं वाला नड, नल है जो 'नलः स्याद्धिको वीर्यः शम्यते रसकर्मणि' और से अधिक वीर्यवाला

और रस-कर्म या विषचिकित्सा में अधिक उपयोगी है। या फालसा = 'परूषक', तरूणक = तरणक या तरुण = कत्तृण नामक ओषधि। यह 'भूतग्रहविषाणां च व्रणक्षतविरोपणम्' भूतग्रह और विष का नाशक व्रण क्षतादि की रोपक ओषधि है।

> अवं श्वेत पदा जहि पूर्वेण चापरेण च।
> उदप्लुतमिव दार्वहीनामरसं विषं वारुग्रम् ॥ ३ ॥

भा०—हे श्वेत करवीर, अश्वक्षुरक नाम ओषधे! जल जिस प्रकार जल में उतराती हुई लकड़ी को निर्बल और नीरस करके विनष्ट कर देता है, उसी प्रकार पूर्व के और अपर के परद, फूल और मूल से सांपो के तीव्र विष को निर्बल करके विनाश करें।

> अरघुषो निमज्योन्मज्य पुनरब्रवीत्।
> उदप्लुतमिव दार्वहीनामरसं विषं वारुग्रम् ॥ ४ ॥

भा०—तूम्बा जल में डुबोया जाकर फिर ऊपर उठकर मानो बतलाता है कि मेरे प्रभाव से सांपों का उग्र, भयानक, तीव्र विष भी रसहीन, निर्बल हो जाता है। जिस प्रकार पानी में डूबे हुये लकड़ी के टुकड़े को जल निर्बल कर देता है। 'अरं-घुषा' अति शब्द करने वाली 'वीणा की तुम्बी' है, वह कटु और विषघ्न होती है।

> पैद्वो हन्ति कसर्णीलं पैद्वः श्वित्रमुतासितम्।
> पैद्वो रथर्व्याः शिरः सं बिभेद पृदाकाः ॥ ५ ॥

भा०—'पेद्व' नामक द्रव्य कसर्णीक नामक सर्प को विनाश करता है। यही 'पेद्व' नामक द्रव्य श्वेत सर्प और काले सर्प को भी विनाश करता है। पेद्व नामक द्रव्य रथर्वी नामक साप-जाति और पृदाकु नामक साप की जात के सिर को भी तोड डालता है। 'पेद्व' द्वारा करवीर या गिरकर्णिका या अश्वक्षुरक या अश्वगन्धा नामक ओषधि लेना उचित है? वेदाद के मत से पेद्व नामक एक जन्तु है जो 'तलिणी' कहाता है। जो पीले रंग का या चितकबरेदार होता है। उसके भय से सर्प नहीं आता।

'कसर्णील' अति विषैली सर्प जाति होती है। 'श्वित्र' (कौडिया), 'असित' (कालानाग), 'रथर्वी' (फनियर) और 'पृदाकू' (कौत) ये सभी सर्पों की भिन्न २ जातियों के नाम हैं।

पैद्व प्रेहि प्रथमोऽनु त्वा वयमेमसि ।
अहीन् व्यस्यतात् पथो येन स्मा वयमेमसि ॥ ६ ॥

भा०—हे पैद्व अर्थात् अश्व नामक ओषधे ! प्रथम तू आगे २ चल और तेरे पीछे हम चलें। जिस मार्ग से हम चलें उस मार्ग से सांपों को तू दूर भगा दे।

इदं पैद्वो अजायतेदमस्य परायणम् ।
इमान्यर्वतः पदाहिघ्न्या वाजिनीवतः ॥ ७ ॥

भा०—यह अश्व नामक ओषधि ही ऐसा उत्तम पदार्थ सिद्ध हुआ है कि यह ही इसका परम औषध है। बलवती शक्ति से युक्त और सर्प-नाशक 'अर्वन् अर्थात् अश्व' नामक ओषध के ये विशेष जानने योग्य लक्षण हैं।

संयतं न वि ष्परद् व्यात्तं न सं यमत् ।
अस्मिन् क्षेत्रे द्वावही स्त्री च पुमांश्च तावुभावरसा ॥८॥

भा०—सांप का मुख पकड़ कर बन्द कर दिया जाय कि खुल न सके, और यदि उसका मुख खुला हो तो ऐसा उपाय किया जाय कि वह बन्द न हो सके। तो इस उपाय से दोनों सांप जातियां मादा और नर वे दोनों ही विष नहीं उगल सकतीं।

अरसास इहाहयो ये अन्ति ये च दूरके ।
घनेन हन्मि वृश्चिकमहिं दण्डेनागतम् ॥ ९ ॥

भा०—जो सांप समीप हों और जो दूर हों वे भी इस उपाय से निर्बल, बलरहित, लाचार हो जाते हैं कि बिच्छू को हथौड़े से पीट कर मारूं, और समीप आये सांप को दण्ड से मारूं।

अघाश्वस्येदं भेषजमुभयोः स्वजस्य च ।
इन्द्रो मेऽहिमघायन्तमहिं पैद्वो अरन्धयत् ॥१०॥ (१०)

भा०—'अघाश्व' नामक सर्प और 'स्वज' नामक सर्प दोनो का यह भेषज है, 'इन्द्र' नामक ओषधि मेरे ऊपर आक्रमण करने वाले सर्प को उसी प्रकार विनाश करती है जिस प्रकार पूर्वोक्त अश्व या श्वेत नामक औषध सर्प को नाश करती है। 'इन्द्र' नामक औषध 'अश्मन्तक' या अश्वान्तक है जो गुण मे विष की पीडा को दूर करती है। इसे 'इन्द्रक।' 'अघाश्व' घोडे के समान ऊपर उछल कर आक्रमण करता है 'स्वज' शरीर के साथ लिपट-चिपट कर काटता है।

पैद्वस्य मन्महे वयं स्थिरस्य स्थिरधाम्नः ।
इमे पश्चा पृदाकवः प्रदीध्यत आसते ॥ ११ ॥

भा०—हम स्थिर, स्थिरवीर्य वाले अश्व नामक ओषधि के बल से विष को स्तम्भित करते हैं उसके बल पर ये पृदाकू नामक महासर्प पीछे हटकर विशेष रूप से चिन्तामग्न से होकर बैठे रह जाते है।

नष्टासवो नष्टविषा हता इन्द्रेण वज्रिणा ।
जघानेन्द्रो जघ्निमा वयम् ॥ १२ ॥

भा०—बल वाले इन्द्र नामक पूर्वोक्त औषध से मरे हुए सर्प प्राण-रहित और विषरहित हो जाते हैं। जब 'इन्द्र' औषध उनको मारता है तब उनको हम भी मारते हैं।

हतास्तिरश्चिराजयो निपिष्टासः पृदाकवः ।
दर्विं करिक्रतं श्वित्रं दर्भेष्वसितं जहि ॥ १३ ॥

भा०—तिरछी धारियो वाले सर्प मार दिये जा सकते हैं, और पृदाकू नामक रूपक-भक्षक सर्प भी सर्वथा पीस डाले जा सकते हैं। 'दर्वि' करछे के आकार के फण वाले नाग को, और करिक्रत नामक काले साप को, और 'श्वित्र' नामक चितकबरे साप को, और काल नामक सर्प

को भी हे पुरुष ! उपरोक्त दाभ या कुशाओं के बल पर मार । अथवा दूबा आदि घास में छिपे हुए इनको मार ।

कैरातिका कुमारिका सका खनति भेषजम् ।
हिरण्ययीभिरभ्रिभिर्गिरीणामुप सानुषु ॥ १४ ॥

भा०—'किरात' वर्ग की वह कुमारी = वन्ध्यकर्कोटकी नामक जड़ी पर्वतों के शिखरों पर लोहे की बनी कुदालियों से खोदी जाती है। कुमारिका औषध नागों का दमन करती है।

आयमगन् युवा भिषक् पृश्निहापराजितः ।
स वै स्वजस्य जम्भन उभयोर्वृश्चिकस्य च ॥ १५ ॥

भा०—यह बलवान् अपराजित नामक औषध, चितकबरे कोड़िया सांप का नाशक, और विष रोग को दूर करने हारा है । वह स्वज नामक सर्प और विच्छू दोनों का नाशक है ।

'अपराजिता' शब्द से निघण्टु में अश्वखुरक, वल्लामोटा, विष्णु क्रान्ता, और शुक्लांगी या शेफालिका या शतपुष्पी नामक औषधि ली जाती है । इनमें—अश्वखुरक = गिरिकर्णिका, कटभी, श्वेत आदि नाम से कहाती है । वह विषदोषघ्न है । शेफालिका भी विषघ्न है ।

इन्द्रो मेऽहिमरन्धयन्मित्रश्च वरुणश्च ।
वातापर्जन्योभा ॥ १६ ॥

भा०—इन्द्रनामक औषधि या विद्युत् , मित्र नामक सूर्य और वरुणनामक जल, वात, मेघ या पर्जन्य नाम औषधि ये भी सर्प को मार लिये वश में करते हैं ।

इन्द्रो मेऽहिमरन्धयत् पृदाकुं च पृदाक्वम् ।
स्वजं तिरश्चिराजिं कसर्णीलं दशोनसिम् ॥ १७ ॥

भा०—पृदाकु नामक नर सर्प को, पृदाकू नाम मादा सर्पिन को, स्वज, तिरछी धारियों वाले सर्प और कसर्णील और दशोनसि नामक साप को भी इन्द्र नामक औषधि मेरे वश कर देती है ।

इन्द्रो॑ जघान प्रथमं जनि॒तार॑महे त॒व ।
तेषा॑मु तृह्यमा॑णानां कः स्वि॒त् तेषा॑मस॒द् रसः॑ ॥ १८ ॥

भा०—हे सर्प ! पहिले तो तेरे उत्पादक को 'इन्द्र' नामक ओषधि विनाश करता है। वश से ही विनाश किये जाते हुओं का कौनसा विष शेष रहना सम्भव है।

स हि शी॒र्षाण्य॑ग्र॒भं पौ॑ञ्जिष्ठ इ॒व कर्व॑रम् ।
सिन्धो॒र्मध्यं॑ प॒रेत्य॒ व्य॑निज॒महे॑र्वि॒षम् ॥ १९ ॥

भा०—मैं सर्पों को वश करने में चतुर पुरुष सांपों के सिरों को पकड़ लूं, और जिस प्रकार खेवट नदी के अतिविक्षुब्ध मध्य भाग को पहुंच जाता है उसी प्रकार मैं भी बहती-नदी के बीच में जा कर सांप के विष को विशेषरीति से धो डालूं।

अही॑नां स॒र्वे॑षां वि॒षं परा॑ वहन्तु॒ सिन्ध॑वः ।
ह॒तास्तिर॑श्चिराजयो निपि॑ष्टास॒ः पृदा॑कवः ॥ २० ॥ (११)

भा०—सब प्रकार के सांपों के विष को नदियां दूर वहा ले जाती हैं। और इस प्रकार तिरछी रेखाओं वाले सांप विनष्ट हों, मूषकखोर सांप भी सर्वथा पीस डाले जायं।

ओष॑धीनाम॒हं वृ॑ण उ॒र्वरी॑रिव साधु॒या ।
नया॒म्यर्व॑तीरि॒वाहे॑ नि॒रैतु ते वि॒षम् ॥ २१ ॥

भा०—मैं ओषधियों को धान्यों के समान भली प्रकार चुनता हूं। और 'अर्वती' ओषधियों के समान उत्तम गुण वाली ओषधियों को प्राप्त करता हूं, जिनसे हे सांप, तेरा विष शरीर से दूर हो।

यद॒ग्नौ सूर्ये॑ वि॒षं पृ॑थि॒व्यामोष॑धीषु॒ यत् ।
का॒न्दा॒वि॒षं क॒नक्न॒कं नि॒रैत्वैतु॒ ते वि॒षम् ॥ २२ ॥

भा०—जो विष अग्नि में है, पृथिवी और ओषधियों में हैं, और जो कन्दों में और धतूरे आदि मादक पदार्थों में है, हे सर्प। उन विषों के द्वारा तेरा विष सर्वथा दूर हो।

ये अ॒ग्नि॒जा ओ॑षधि॒जा अही॑नां॒ ये अ॑प्सु॒जा वि॒द्युत॑ आब॒भूवुः॑ ।
येषां॑ जा॒तानि॑ बहु॒धा म॒हान्ति॒ तेभ्यः॑ स॒र्पेभ्यो॒ नम॑सा विधेम ॥२३॥

भा०—जो सांप अग्नि से उत्पन्न होने वाले अर्थात् आग्नेय गुण वाले, विषैली ओषधियों के सेवन से उत्पन्न होने वाले, और सांपों में से जो जलों मे उत्पन्न अर्थात् सौम्यगुण वाले, और जो विजुली से उत्पन्न अर्थात् कड़कते स्वभाव वाले होते है, और जिनकी नाना प्रकार की जातियें बहुत प्रकार की और बडी बड़ी होती हैं, उन सांपो को हम वज्ररूप ओषधियो के प्रयोग द्वारा अपने वश मे लावें।

तौदी नामा॑सि क॒न्या घृ॒ताची॒ नाम॒ वा अ॑सि ।
अ॒ध॒स्प॒देन॑ ते प॒दमा द॑दे विष॒दूष॑णम् ॥ २४ ॥

भा०—तौदी अर्थात् सांप को व्यथा देने वाली नाम की 'कन्या', और घृताची नाम की तू औषध है। तेरे नीचे के मूल से तेरा मूल लेता हूं, वह विष का नाशक है।

"तौदी-कन्या" या तो कीडी का वाचक है या घृतकुमारी या वन्ध्यकर्कोटकी वा नागदमन कहाती है।

अङ्गा॑दङ्गा॒त् प्र च्या॑वय॒ हृद॑यं॒ परि॑ वर्जय ।
अधा॑ वि॒षस्य॒ यत् तेजो॑ऽवा॒चीनं॒ तदे॑तु ते ॥ २५ ॥

भा०—अंग अग मे विष को चुआ डाल। हृदय को विष से बचा दे। और तब विष का जो तीखापन है वह तेरे शरीर से नीचे उतर आवे। यदि शरीर में जहर फैल जाय तो उसके वेग को कम करने के लिये स्थान स्थान मे क्षत करके रुधिर बहा दे। इस प्रकार विष का वेग कम हो जाता है और उतर जाता है।

आ॒रे अ॑भूद् वि॒षम॑रौद् वि॒षे वि॒षम॑प्रा॒गपि॑ ।
अ॒ग्निर्वि॒षमहे॒र्निर॑धात् सोमो॒ निर॑णयीत् ।
द॒ष्टार॒मन्व॑गाद् वि॒षमहि॑रमृत ॥ २६ ॥ (१०)

भा०—संक्षेप से इतने उपाय विष को दूर करने के हैं (१) विष दूर हो इसके लिये प्रथम विष को दृढ़ बन्धन द्वारा रोक दिया जाय। (२) विष मे विरोधी या होम्योपैथिक ढग के सजातीय विष का योग कर दिया जाय। (३) आग द्वारा जला कर सांप के विष को सर्वथा बाहर करदे। (४) सोम या शान्तिकारक औषध विष को दूर करदे। (५) विष के स्थान को दाड से काट कर विष चूस लिया जाय। (६) ऐसे ज़हरीले सांपों को मार दिया जाय, ताकि विष का भय ही मिट जाय।

॥ इति द्वितीयोऽनुवाकः ॥

[तत्र सूक्ते द्वे, ऋचश्चैकपञ्चाशत्]

[५] विजिगीषु राजा के प्रति प्रजा के कर्त्तव्य।

१–२४ सिन्धुद्वीप ऋषिः । २६–३६ कौशिक ऋषि । ३७–४० ब्रह्मा ऋषिः । ४२–५० विहव्यः प्रजापतिर्देवता । १–१४, २२–२४ आपश्चन्द्रमाश्च देवताः । १५–२१ मन्त्रोक्ता देवता । २६–३६ विष्णुक्रमे प्रतिमन्त्रोक्ता वा देवताः । ३७–५० मन्त्रोक्ता देवता । १–५ त्रिपदाः पुरोऽभिकृतयः ककुम्मतीगर्भाः पंक्तय । ६ चतुष्पदा जगतीगर्भा जगती, ७–१०, १२, १३ त्र्यवसानाः पञ्चपदा विपरीतपादलक्ष्मा बृहत्यः । ११, १४ पथ्याबृहत्यौ । १५–१८, २१ चतुरवसाना दशपदा त्रैष्टुभगर्भा अतिधृतयः । १९, २० कृती । २४ त्रिपदा विराड् गायत्री । २२, २३ अनुष्टुभौ । २६–३५ त्र्यवसाना षट्पदा यथाक्षरं शक्वर्योऽतिशक्वर्यश्च । ३६ पञ्चपदा अतिशाक्वरातिजगतगर्भा अष्टिः । ३७ विराट् पुरस्ताद् बृहती, पुर उष्णिक् । ३९,४१ आर्षी गायत्र्यौ । ४० विराट् विषमा गायत्री । ४२, ४३, ४५–४८ अनुष्टुभः । ४४ विराड् गायत्रीगर्भा अनुष्टुप् । ५० अनुष्टुप् । पञ्चदशर्चं सूक्तम् ॥

इन्द्रस्यौज स्थेन्द्रस्य सह स्थेन्द्रस्य
बलं स्थेन्द्रस्य वीर्यं स्थेन्द्रस्य नृम्णं स्थ ।
जिष्णवे योगाय ब्रह्मयोगैर्वो युनज्मि ॥ १ ॥

भा०—हे प्रजाजनो ! आप लोग ऐश्वर्यवान् राजा के प्रभावरूप हो राजा के शत्रु को दबाने में समर्थ शक्तिरूप हो, राजा के बलरूप हो, राजा के वीर्यरूप हो, राजा के धनरूप हो। मैं पुरोहित आप प्रजाजनों को विजयशील उद्योगी विजिगीषु राजा के निमित्त वेद के विज्ञानमय उपायों के साथ जोड़ता हूं। अर्थात् वेद के विज्ञानों की शिक्षा देता हूं।

इन्द्रस्यौज॰। जिष्णवे योगाय क्षत्रयोगैर्वो युनज्मि ॥ २ ॥

भा०—हे प्रजाजनो ! आप लोग ऐश्वर्यवान् राजा के ओज हो, शत्रु के दबाने वाली शक्ति हो, बल हो, वीर्य हो, धन हो। मैं आप लोगों को विजिगीषु राजा के लिये या विजयकारी प्रयोग साधना के लिये क्षत्रियोचित साधनों से युक्त करता हूं।

इन्द्रस्यौज॰। जिष्णवे योगायेन्द्रयोगैर्वो युनज्मि ॥ ३ ॥

भा०—हे प्रजाजनो ! आप लोग ऐश्वर्यवान् राजा के ओज हो, शत्रु को दबाने वाली शक्ति हो, बल हो, वीर्य हो, धन हो। मैं आप लोगों को विजयशील उद्योगी राजा वा विजय साधना के लिये राजा के उचित, अथवा परम ऐश्वर्यवान् पुरुषों के उचित साधनों से युक्त करता हूं।

इन्द्रस्यौज॰ जिष्णवे योगाय सोमयोगैर्वो युनज्मि ॥ ४ ॥

भा०—हे प्रजाजनो ! आप लोग ऐश्वर्यवान् राजा के ओज हो, शक्ति हो, बल हो, वीर्य हो, धन हो। मैं पुरोहित आप लोगों को विजयशील उद्योगी राजा वा विजय साधना के निमित्त सोम आदि ओषधियों के साधनों अथवा शान्तिदायक सुखदायक साधनों से युक्त करता हूं।

इन्द्रस्यौज॰। जिष्णवे योगायाप्सुयोगैर्वो युनज्मि ॥ ५ ॥

भा०—हे प्रजाजनो ! आप लोग ऐश्वर्यवान् राजा के ओज हो, शक्ति हो, बल हो, वीर्य हो, धन हो। मैं राजपुरोहित, आप लोगों को विजयशील, उद्योगी राजा के निमित्त प्रजाओं के उचित व जलोपयोगी सम्पन्न साधनों से युक्त करता हूं।

इन्द्रस्यौजस्स्थेन्द्रस्य सह स्थेन्द्रस्य बलं स्थेन्द्रस्य वीर्यं स्थेन्द्रस्य नृम्णं स्थ । जिष्णवे योगाय विश्वानि मा भूतान्युप तिष्ठन्तु युक्ता मे आप स्थ ॥ ६ ॥

भा०—हे प्रजाजनो ! आप लोग ऐश्वर्यवान् राजा के ओज हो, शक्ति हो, बल हो, वीर्य हो, धन हो । विजयशील उद्योगी राजा या विजय-लाभ के लिये समस्त प्रकार के प्राणिगण मेरे पास आवें । हे आप्त प्रजाजनो ! आप लोग मेरे द्वारा उचित उचित कार्यों में नियुक्त रहो ।

अग्नेर्भाग स्थ । अपां शुक्रमापो देवीर्वर्चो अस्मासु धत्त ।
प्रजापतेर्वो धाम्नास्मै लोकाय सादये ॥ ७ ॥

भा०—हे आप्त प्रजाजनो ! आप लोग अग्नि के समान शत्रु को संतापकारी राजा के भाग, अंश या सेवन करने योग्य प्रजा हो । हे दिव्य गुण वाले आप्तजनो ! कर्मों और बुद्धियो के सामर्थ्य को और तेज को हम लोगो मे धारण कराओ । मैं राजा का प्रतिनिधि प्रजा के स्वामी परमेश्वर या उसके प्रतिनिधि व्यवस्थापक राजा के तेज या धारण सामर्थ्य या बल से आप लोगों को इस देशवासी प्रजा लोक के लिये प्रतिष्ठित करता हू, उच्च पद प्रदान करता हूं ।

इन्द्रस्य भाग स्थ । ० । ० ॥ ८ ॥
सोमस्य भाग स्थ । ० । ० ॥ ९ ॥
वरुणस्य भाग स्थ । ० । ० ॥ १० ॥ (१२)
मित्रावरुणयोर्भाग स्थ । ० । ० ॥ ११ ॥
यमस्य भाग स्थ । ० । ० ॥ १२ ॥
पितृणां भाग स्थ । ० । ० ॥ १३ ॥

देवस्य सवितुर्भाग स्थ । अपां शुक्रमापो देवीर्वर्चो अस्मासु धत्त ।
प्रजापतेर्वो धाम्नास्मै लोकाय सादये ॥ १४ ॥

भा०—हे आप्त प्रजाजनो ! आप लोग इन्द्र ऐश्वर्यशील राजा के भाग हो । आप लोग सर्व प्रेरक राजा के भाग हो । आप लोग सर्व दुःख-

निवारक, प्रजा रक्षक राजा के भाग हो । सबको मृत्यु से बचाने वा और सब आपत्तियों से बचाने वाले राजपद के भाग हो । आप स नियन्ता राजा के भाग हो । आप राष्ट्र के परिपालक शासक जनों भाग हो । आप सब के प्रेरक और उत्पादक देव राजा के भाग हो हे दिव्य-गुण वाले आप्त पुरुषो ! आप उत्तम कर्मों और विज्ञानों के उज्ज तेज को हम प्रजा लोगों मे धारण कराओ । मैं राजप्रतिनिधि आ लोगों को प्रजा के पालक राजा के अधिकार से इस राष्ट्र वासी प्रजाजन के उपकार के लिये प्रतिष्ठित करता हूं ।

अर्थात् प्रजाओं को राजशासन के प्रत्येक विभाग का अंश समझा जाय । आप्त विद्वान् लोग प्रजाओं में नाना विज्ञान और हितकारी कार्य प्रवृत्त करावें । इसी निमित्त उनको प्रजाओं मे राजा के द्वारा उच्च प्रदान किये जावें, और सब प्रकार के साधन उपस्थित किये जावें, जिससे राजा बलवान्, सामर्थ्यवान् हो और राष्ट्र विजयी और यशस्वी हो ।

यो व आपोऽपां भागो॒ऽप्स्व॒न्तर्य॑जु॒ष्यो॑देव॒यज॑नः ।
इ॒दं तमति॑ सृजामि॒ तं माभ्यव॑निक्षि ।
तेन॒ तम॒भ्यति॑सृजामो॒ यो॒३॑ऽस्मान् द्वेष्टि॒ यं व॒यं द्वि॒ष्मः ।
तं व॑धेयं॒ तं स्तृ॑षीया॒नेन॒ ब्रह्म॑णा॒नेन॒ कर्म॑णा॒नया॑ मे॒न्या ॥ ५॥

भा०—हे आप्त प्रजाजनो ! जो तुम प्रजाजनों का अंश रूप राजा, प्रजाओं के भीतर विद्यमान, अन्न आदि से सत्कार करने योग्य, विद्वानों का उपासक या नियोजक है, उसको यह राष्ट्र मैं सौंपता हूं । मैं उसका अपमान न करूं । उसके बल पर हम उस पर चढ़ाई करते हैं जो हमसे द्वेष करता है और जिसको हम द्वेष करते हैं । हम वेदज्ञान से, इस कर्म से, और इस प्रबल आयुधवाले मन्युरूप बल या सेनारूप बल से उसको मारें, और उसका विनाश करें ।

यो वं आपोऽपामूर्मिरप्स्वं ० । ० । ० । ० ॥ १६ ॥
यो वं आपोऽपां वत्सोऽप्स्वं ० । ० । ० । ० ॥ १७ ॥
यो वं आपोऽपां वृषभोऽप्स्व ० । ० । ० । ० ॥ १८ ॥
यो वं आपोऽपां हिरण्यगर्भोऽप्सव ० । ० । ० । ० ॥ १९ ॥
यो वं आपोऽपामश्मा पृश्निर्दिव्योऽप्स्व ० । ० । ० । ० ॥२०॥ (१४)

भा०—हे प्रजाजनो ! जो आप लोगो के कर्मों और विज्ञानो की जलो के तरग के समान बलवती उन्नतिकारिणी शक्ति प्रजाओ के भीतर विद्यमान है, और हे प्रजाजनो ! तुम प्रजाओ का जो मेघ के समान समस्त सुखो का वर्षक, बलवान् पुरुष जो प्रजाओ के भीतर विद्यमान है और हे प्रजा के आप्त पुरुषो ! आप प्रजाजन के बीच सुवर्ण आदि को धारण करने वाले धनाढ्य लोग प्रजाओ के भीतर विद्यमान है, और हे आप्त जनो ! आप प्रजाओ का भोक्ता, दिव्य गुणवान्, सूर्य के समान समस्त रसों का आदान करने वाला, और प्रजाओ के भीतर अन्न आदि से पूजनीय, विद्वानो का उपासक राजा विद्यमान है, यह राष्ट्र उसको मै सौंपता हूं, या उसको सबसे ऊपर राजा बनाकर स्थापित करता हूं। उसका कभी मत निरादर करू। उस राजा के बल से हम उस पर चढाई करते हैं जो हमसे द्वेष करता है और जिससे हम द्वेष करते हैं। इस वेद-ज्ञान से, और इस क्षत्र कर्म से, और इस शस्त्रमयी सेना बल से उसको मारू और उसका नाश करू।

ये वं आपोऽपामग्नयोऽप्स्वन्तर्यजुष्या देवयजनाः ।
इदं तानति सृजामि तान् माभ्यवनिक्षि ।
तैस्तमभ्यतिसृजामो योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ।
तं वधेयं तं स्तृषीयानेन ब्रह्मणानेन कर्मणानया मेन्या ॥ २१ ॥

भा०—हे आप्त प्रजाजनो ! तुम प्रजाजनो में से जो ज्ञानवान्, शत्रुसंतापक पुरुष, प्रजाजनों के ही बीच में विद्यमान, अन्नादि से सत्कार करने योग्य, और स्वयं विद्वानो के उपासक हैं, यह राष्ट्र उनके हाथों

सौंपता हूं, उनका अनादर न करूं। उन्हीं के बल पर हम उस पर चढ़ाई करें जो हम से द्वेष करता है और जिससे हम द्वेष करते हैं। इस ब्रह्मज्ञान से, इस कर्म से, और इस आयुधयुक्त दण्ड अर्थात् सेनाबल से उसको मारूं, और उसका विनाश करूं।

यद॒र्वाचीनं॑ त्रैहाय॒णादनृ॑तं॒ किं चो॑दि॒म।
आपो॑ मा॒ तस्मा॒त् सर्व॑स्माद् दुरि॒तात् पा॒न्त्वंह॑सः ॥ २२ ॥
उत्तरार्धम् अथर्व० ७ । ६ । १ ॥

भा०—तीन वर्ष से उरे उरे अब तक जो कुछ हमने असत्य भाषण किया, आप्त पुरुष उस सब प्रकार के दुष्ट पाप से मुझे बचावें।

स॒मु॒द्रं व॑ः प्र हि॑णोमि॒ स्वां योनि॒मपी॑तन।
अरि॑ष्टाः स॒र्वहा॑यसो मा च॒ नः॒ किं च॒नाम॑मत ॥ २३ ॥

भा०—हे आप्त पुरुषो! जिस प्रकार जलों का परम आश्रय स्थान समुद्र है, उसी प्रकार मैं आप लोगों को समुद्र के समान सब रसों, रत्नों के आश्रय परम ब्रह्म के प्रति प्रेरित करता हूं। आप लोग उस ही अपने परम आश्रय को प्राप्त होओ, उसमें मग्न रहो। आप लोग समस्त आयु के पूर्ण सौ वर्षों तक बिना दुःख के सकुशल रहो। हमें कोई भी वस्तु रोग उत्पन्न न करे, पीड़ित न करे।

अ॒रि॒प्रा आपो॒ अप॑ रि॒प्रम॒स्मत्।
प्रास्मदेनो॑ दुरि॒तं सु॒प्रती॑काः॒ प्र दु॒ष्वप्न्यं॒ प्र मलं॑ वहन्तु ॥ २४ ॥
अथर्व० १६ । १ । १ । ११ ॥

भा०—जिस प्रकार स्वच्छ जल मल को दूर कर देता है उसी प्रकार आप्त पुरुष स्वयं निष्पाप होकर हमारे पाप को दूर करें। और वे उन्नत रूप वाले, स्वच्छ हृदय, सौम्य-स्वभाव हमारे दुराचरण रूप पाप को हृदय के मल के समान अन्य स्थान पर सन्मार्ग में बहा दें। और वे दुःखदायी बुरे स्वप्नों के कारणस्वरूप दुराचार को भी दूर करें।

राजा का स्वरूप और राजा और प्रजा के कर्त्तव्य ।

विष्णोः क्रमोंसि सपत्नहा पृथिवी संशितोऽग्नितेजाः ।
पृथिवीमनु वि क्रमेऽहं पृथिव्यास्तं निर्भजामो
योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः
स मा जीवीत् तं प्राणो जहातु ॥ २५ ॥

भा०—हे राजन् ! सर्व-व्यापक परमेश्वर के तू चरण-चिह्न पर चलने हारा है । तू शत्रुओं का नाशक, और पृथिवी की शक्तियो मे सुशिक्षित और अग्नि के समान तेजस्वी है । राजा इस प्रकार अभिपूजित होकर अपना कर्त्तव्य समझे कि मैं पृथिवी पर वश करने के लिये विशेष रूप से पराक्रम करूं । जिससे हम सब लोग उस पुरुष को इस पृथिवी के सुखो से निकाल दें जो हम से द्वेष करता है, और इसी कारण जिसको हम द्वेष करते हैं । वह पुरुष न जीवे और उसको प्राण त्याग दे । वह निष्प्राण, मृतवत् होकर रहे ।

विष्णो. क्रमोंसि सपत्नहान्तरिक्षसंशितो वायुतेजाः ।
अन्तरिक्षमनु वि क्रमेऽहमन्तरिक्षात् तं निर्भजामो० ।०॥२६॥

भा०—हे राजन् ! तू विष्णु का चरण है अर्थात् परमेश्वर के समान ही प्रजापालक के अधिकार पर विराजमान है । तू शत्रुओं का शासक, अन्तरिक्ष की शक्तियों मे सुशिक्षित और वायु जैसा पराक्रमी है । इस प्रकार की प्रतिष्ठा के अनन्तर राजा संकल्प करे कि मैं अन्तरिक्ष पर विशेष पराक्रम करू । उसकी प्रजा विचार करे कि जो हमसे द्वेष करे हम उसको अन्तरिक्ष के सुखों से निकाल दें, वह न जीवे, प्राण उसको छोड़ दे ।

विष्णोः क्रमोंसि सपत्नहा द्यौसंशित. सूर्यतेजाः ।
दिवमनु वि क्रमेऽहं दिवस्तं ० । ० । ० ॥ २७ ॥

भा०—हे राजन् ! तू विष्णु का पद है, उसके समान प्रजापालक है । तू शत्रुओं का नाशक, द्युलोक की शक्तियों मे सुशिक्षित और सूर्य के

समान तेजस्वी है । इस प्रकार प्रतिष्ठा प्राप्त कर राजा विचार करे कि मैं द्यौः पर भी पराक्रम करूं । उसके प्रजागण सदा यही संकल्प करें कि जो हमसे द्वेष करे और जिससे हम द्वेष करें, द्यौलोक के सुखों से उसे वञ्चित करें । वह न जीवे और प्राण उसको त्याग दे ।

विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहा दिक्संशितो मनस्तेजाः ।
दिशोऽनु वि क्रमेऽहं दिग्भ्यस्तं० । ० ॥ २८ ॥

भा०—हे राजन् ! तू व्यापक परमेश्वर के समान प्रजापालक के कार्य पर नियुक्त है । तू शत्रुओं का नाशक, और दिशाओं की शक्तियों में सुशिक्षित तथा मन के समान तेजस्वी है । राजा इस पद को प्राप्त करके संकल्प करे कि मैं दिशाओं में भी विक्रम करूं । प्रजाएं संकल्प करें कि दिशाओं से उसको हम निकाल दें जो हमसे द्वेष करे और जिससे हम द्वेष करें । शेष पूर्ववत् ।

विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहाशासंशितो वातंतेजाः ।
आशा अनु वि क्रमेऽहमाशाभ्यस्तं० । ० । ० ॥ २९ ॥

भा०—हे राजन् ! तू व्यापक परमेश्वर के पद पर प्रजापालक के कार्य पर नियुक्त है । तू शत्रुओं का नाशक, अवान्तर दिशाओं की शक्तियों में सुशिक्षित और प्रचण्ड वायु के समान तेजस्वी है । इस पद पर नियुक्त राजा संकल्प करे कि मैं आशाओं में स्वयं पराक्रम करूं । शेष पूर्ववत् ।

विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहा ऋक्संशितः सामतेजाः ।
ऋचोऽनु वि क्रमेऽहमृग्भ्यस्तं० । ० । ० ॥ ३० ॥ (१४)

भा०—हे राजन् ! तू व्यापक परमेश्वर के पद पर विराजमान है । तू शत्रुओं का नाशक, ऋग्वेद के ज्ञान में सुशिक्षित, सामवेद के समान तेजस्वी है । इस प्रकार राजा प्रतिष्ठित होकर संकल्प करे कि मैं ऋग् मन्त्रों के ज्ञानानुरूप विक्रम करूं और । शेष पूर्ववत् ।

विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहा यज्ञसंशितो ब्रह्मतेजाः ।
यज्ञमनु वि क्रमेऽहं यज्ञात् तं० । ० । ० ॥ ३० ॥

भा०—हे राजन् ! तू व्यापक परमेश्वर के पद पर है। तू शत्रु का नाशक है, तू यज्ञ के विज्ञान में सुशिक्षित वेद वा अथर्ववेद के मन्त्रों के समान तेजस्वी है। इस पद पर प्रतिष्ठित होकर राजा संकल्प करे कि मैं यज्ञ में विक्रम करूं। शेष पूर्ववत्।

विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहौषधीसंशितः सोमतेजाः।
ओषधीरनु वि क्रमेऽहमोषधीभ्यस्तं ०। ०॥ ३२॥

भा०—हे राजन् ! तू व्यापक परमेश्वर के पद पर नियुक्त है। तू शत्रुओं का नाशक, ओषधियों की शक्तियों में सुशिक्षित तथा सोम के तुल्य तेजस्वी है। इस पद पर प्रतिष्ठित होकर राजा संकल्प करे कि मैं ओषधियों के बल पर पराक्रम करूं। शेष पूर्ववत्।

विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहाप्सुसंशितो वरुणतेजाः।
अपोऽनु वि क्रमेऽहमद्भ्यस्तं ०। ०॥ ३३॥

भा०—हे राजन् ! तू व्यापक प्रभु के पद पर नियुक्त है। तू शत्रुओं का नाशक, जलों की शक्तियों में सुशिक्षित है, वरुण अर्थात् स्वयं वृत राजा के समान तेजस्वी है। इस प्रकार प्रतिष्ठित होकर राजा संकल्प करे कि मैं प्रजाओं के बल पर अपना पराक्रम करूं प्रजाओं से शेष पूर्ववत्।

विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहा कृषिसंशितोऽन्नतेजाः।
कृषिमनु वि क्रमेऽहं कृष्यास्तं ०। ०॥ ३४॥

भा०—हे राजन् ! तू प्रजापालक के पद पर है। तू शत्रुनाशक है, तू कृषि की विद्या में सुशिक्षित सुतीक्ष्ण है, अन्न के समान तेज वाला है इस प्रकार प्रतिष्ठित होकर राजा संकल्प करे कि मैं कृषि कर्म के लिये उद्योग पराक्रम करूं। प्रजाएं संकल्प करें कि हम कृषि से शेष पूर्ववत्।

विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहा प्राणसंशितः पुरुषतेजाः।
प्राणमनु वि क्रमेऽहं प्राणात् तं निर्भजामो योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः। स मा जीवीत् तं प्राणो जहातु॥ ३५॥

भा०—हे राजन् ! तू प्रजापालक के पद पर नियुक्त है। तू शत्रुओं का नाशक, प्राणों की शक्तियों में सुशिक्षित, आत्मा के समान तेजस्वी है। इस प्रकार प्रतिष्ठित होकर राजा संकल्प करे कि मैं प्राण को वश करने का पराक्रम करूं। प्रजा संकल्प करे कि प्राण से उसको । शेष पूर्ववत्।

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमभ्यष्ठां विश्वाः पृतना अरातीः ।
इदमहममुष्यायणस्यामुष्याः पुत्रस्य वर्चस्तेजः
प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥ ३६ ॥

भा०—समस्त प्रजाएं अपने राजा के साथ सहोद्योगी होकर जब विजय प्राप्त करें तो निश्चय करें कि जो विजय किया गया है वह हम सबका है। जो उत्तम फल प्राप्त हुआ है वह भी हम समस्त प्रजाओं का है। राजा सङ्कल्प करे कि मैं समस्त शत्रुभूत सेनाओं को पराजित करूं। मैं अमुक के पोते के, अमुक माता के पुत्र के वर्चस्, तेज, प्राण और आयु को लपेटता हूँ, और इस प्रकार उस शत्रु को नीचे गिराता हूँ।

सूर्यस्यावृतमन्वावर्ते दक्षिणामन्वावृतम् ।
सा मे द्रविणं यच्छतु सा मे ब्राह्मणवर्चसम् ॥ ३७ ॥

भा०—राजा सङ्कल्प करे कि मैं सूर्य के मार्ग या व्रत पर ही आचरण करूं। और सूर्य जिस प्रकार दक्षिण दिशा के पश्चात् अर्थात् उत्तर की ओर आता हुआ तीक्ष्ण हो जाता है उसी प्रकार मैं राजा भी दक्ष अर्थात् बलशाली होकर अमल तेज से युक्त हो जाऊं। वह सूर्य के समान आचरण शैली मुझे द्रव्य, सम्पत्ति प्रदान करे, और वह वृत्ति मुझे ब्राह्म तेज, ब्राह्मणों का तेज, विद्वानों का बल भी प्रदान करे।

सूर्य का व्रत मनुस्मृति में—

अष्टौ मासान् यथादित्यस्तोयं हरति रश्मिभिः ।
तथा हरेत् करं राष्ट्रान्नित्यमर्कव्रतं हि तत् ॥

आठ मासों तक जिस प्रकार सूर्य अपनी किरणों से जल लेता है उसी प्रकार राजा नित्य अपने राष्ट्र से कर संग्रह करे। यह 'अर्कव्रत' है।

दिशो ज्योतिष्मतीरभ्यावर्ते ।
ता मे द्रविणं यच्छन्तु ता मे ब्राह्मणवर्चसम् ॥ ३८ ॥

भा०—राजा संकल्प करे कि मैं ज्योति से सम्पन्न दिशाओं की तरफ जाता हूं। वे मुझे द्रव्य प्रदान करें, वे मुझे ब्राह्मणो, विद्वानो का तेज प्रदान करें।

सप्तऋषीनभ्यावर्ते ।
ते मे द्रविणं यच्छन्तु ते मे ब्राह्मणवर्चसम् ॥ ३९ ॥

भा०—राजा सकल्प करे कि मैं सात ऋषियो के समीप जाता हूं। वे मुझे द्रव्य, विभूति और वेदज्ञ, ब्राह्मणो का तेज प्रदान करे।

ब्रह्माभ्यावर्ते तन्मे द्रविणं यच्छतु तन्मे ब्राह्मणवर्चसम् ॥४०॥ (१६)

भा०—राजा संकल्प करे कि मैं वेदज्ञान के प्रति आता हूं, तदनुकूल आचरण करता हू। वह मुझे द्रविण और विद्वान् ब्राह्मणों का तेज प्रदान करे।

ब्राह्मणाँ अभ्यावर्ते। ते मे द्रविणं यच्छन्तु ते मे ब्राह्मणवर्चसम् ॥४१॥

भा०—राजा सकल्प करे कि मैं ब्राह्मणो की शरण जाता हूं। वे मुझे धन प्रदान करें, वे मुझे ब्राह्मणों का तेज प्रदान करें।

यं वयं मृगयामहे तं वधै स्तृणवामहे ।
व्यात्ते परमेष्ठिनो ब्रह्मणापीपदाम तम् ॥ ४२ ॥

भा०—जिस शत्रु का हम लोग पीछा करें उसका हथियारों से विनाश करें। परम स्थान मे विराजमान राजा के विशेष रूप से खुले न्याय से मुख मे वेद के निर्णय के अनुसार, उसको हम दें।

वैश्वानरस्य दंष्ट्राभ्यां हेतिस्तं समधादभि ।
इयं तं प्सात्वाहुतिः समिद् देवी सहीयसी ॥ ४३ ॥

भा०—आयुध-वज्र आदि शस्त्र, उस दण्ड के योग्य पुरुष को, समस्त प्रजा के हितकारी तथा अग्नि के समान तेजस्वी राजा की दाढ़ों

[कानूनी और पुलिस सम्बधी पकडो] मे भली प्रकार पकड ले। जिस प्रकार अग्नि मे आहुति डाली जाती है उसी प्रकार अपराधी को राजा के हाथ पकड़ा देना भी राजा रूप अग्नि मे आहुति देना है, वह राजा उसको खा ले, अपने वश में ले ले। इस प्रकार राजा जलते काष्ठ के समान प्रकाशमान और अधिक बलवान् हो जाता है।

कैदी के साथ व्यवहार।

राज्ञो वरुणस्य बन्धोऽसि ।
सोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमन्ने प्राणे बधान ॥ ४४ ॥

भा०—हे कारागार ! तू पापो के निवारक राजा का बन्धन स्थान है। वह तू अमुक पुरुष के पोते और अमुक माता के पुत्र अमुक कैदी को खाने भर के अन्न पर बांध ले। कारागार विभाग राजा के अधीन रहे और वह राजा के कैदी को जीवन और अन्न मात्र पर बन्धन मे रखे।

यत् ते अन्नं भुवस्पत आक्षियति पृथिवीमनु ।
तस्य नस्त्वं भुवस्पते संप्रयच्छ प्रजापते ॥ ४५ ॥

भा०—हे पृथिवी के स्वामी ! जो तेरा अन्न पृथिवी पर है, हे प्रजा के पालक ! पृथिवी के रक्षक ! राजन् ! तू उस अन्न को हमे प्रदान कर।

अपो दिव्या अचायिषं रसेन समपृक्ष्महि ।
पयस्वानग्न आगमं तं मा सं सृज वर्चसा ॥ ४६ ॥
सं माग्ने वर्चसा सृज सं प्रजया समायुषा ।
विद्युर्मे अस्य देवा इन्द्रो विद्यात् सह ऋषिभिः ॥ ४७ ॥

भा०—इन दोनों मन्त्रों की व्याख्या देखो अथर्व० [का० ७ । ८९ । १, २]।

पर-पीड़ाकारी पुरुष को दण्ड-विधान।

यदग्ने अद्य मिथुना शपातो यद्वाचस्तृष्टं जनयन्त रेभाः ।
मन्योर्मनसः शरव्या जायते या तया विध्य हृदये यातुधानान् ॥ ४८ ॥

परा॑ शृणीहि॒ तप॑सा यातु॒धाना॒न् परा॑ग्ने॒ रक्षो॒ हर॑सा शृणीहि ।
परा॒र्चिषा॒ मूर॑देवाँ छृणीहि॒ परा॑सु॒तृपः॒ शोशु॑चतः शृणीहि ॥४९॥

भा०—इन दोनो मन्त्रो की व्याख्या देखो अथर्व० [कां० ८ । ३ । १२, १३] ।

अ॒पाम॑स्मै वज्रं॒ प्र ह॑राभि॒ चतु॑र्भृष्टिं शीर्ष॒भिद्या॑य वि॒द्वान् ।
सो अ॒स्याङ्गा॑नि॒ प्रशृ॑णातु॒ सर्वा॒ तन्मे॑ दे॒वा अनु॑ जानन्तु॒ विश्वे॑ ॥ ५० ॥ (१७)

भा०—मैं इसके अपराध को जानता हुआ इसके लिये आप्तजनों के बनाये चारो ओर से संतापकारक और पाप से निवारक दण्ड इसके शिर तोड़ने के लिये प्रेरित करता हूं । वह दण्ड इस अपराधी के अंगों का अच्छी प्रकार नाश करे । मेरे इस कार्य की सब विद्वान् पुरुष अनुज्ञा दें । राजा इस प्रकार अपराधियों को विद्वान् पुरुषो से अनुमति लेकर दण्ड प्रदान किया करे ।

[६] शिरोमणि पुरुषों का वर्णन ।

बृहस्पतिर्ऋषिः । फालमणिरुत वनस्पतिर्देवता । ३ आपः १, ४, २१ गायत्र्यः । ५ षट्पदा जगती । ६ सप्तपदा विराट् शक्वरी । ७—९ त्र्यवसाना अष्टपदा अष्टयः । १० नवपदा धृतिः । ११, २०, २३—२७ पथ्यापङ्क्तय । १२—१७ त्र्यवसानाः सप्तपदाः शाक्वराः । २० पथ्यापङ्क्ति । ३१ त्र्यवसाना षट्पदा जगती । ३५ पञ्चपदा अनुष्टुब्गर्भा जगती । २, १८, १९, २१, २२, २८—३०, ३२—३४ अनुष्टुभः ।

पञ्चत्रिंशर्चं सूक्तम् ।

अ॒रा॒ती॒योर्भ्रातृ॑व्यस्य दु॒र्हार्दो॑ द्वि॒ष॒तः शिरः॑ ।
अपि॑ वृश्चा॒म्योज॑सा ॥ १ ॥

भा०—वर न देने वाले, दुष्ट चित्त वाले, द्वेष करने हारे शत्रुभूत प्रजाजन के शिर को नियम के प्रभाव और बल से मैं काट डालूं ।

वर्म मह्यमयं मणिः फालाज्जातः करिष्यति ।
पूर्णो मन्थेन मागमद् रसेन सह वर्चसा ॥ २ ॥

भा०—शत्रुनाशक सामर्थ्य से सामर्थ्यवान् होकर यह शिरोमणि सेनापति, मुझ राजा के लिये, कवच या रक्षा का साधन करेगा। और वह शत्रु का मथन कर डालने वाले बल से पूर्ण बलवान् होकर और रस या रथबल और तेज से सम्पन्न होकर, मुझ राजा के पास आवे।

यत् त्वा शिकः परावधीत् तक्षा हस्तेन वास्या ।
आपस्त्वा तस्माज्जीवलाः पुनन्तु शुचयः शुचिम् ॥ ३ ॥

भा०—हे राजन्! जिस प्रकार चतुर शिल्पी बसोली से लकड़ी को छीलता है, उसी प्रकार तुझे जब चतुर शत्रु अपने शस्त्र से खूब घायल कर डाले, तो भी जिस प्रकार जीवन देने वाले जल अधमरे को पुनः जिला देते हैं, उसी प्रकार जीवन-प्राण पुनः प्राप्त कराने वाले, शुद्ध चित्त, वाले आप्तजन, शुद्ध चित्त, निष्कपट तुझको उस आघात की पीड़ा से मुक्त करें।

हिरण्यस्रगयं मणिः श्रद्धां यज्ञं महो दधत् ।
गृहे वसतु नोऽतिथिः ॥ ४ ॥

भा०—यह शिरोमणि पुरुष सुवर्णमाला धारण करने वाला होकर भी ईश्वर और धर्म-कार्य में श्रद्धा अर्थात् सत्य में धारणावती बुद्धि को यज्ञ और तेज को धारण कर, और हमारे घर में अतिथि होकर निवास करे।

तस्मै घृतं सुरां मध्वन्नमन्नं क्षदामहे ।
स नः पितेव पुत्रेभ्यः श्रेयः श्रेयश्चिकित्सतु
भूयोभूयः श्वःश्वो देवेभ्यो मणिरेत्य ॥ ५ ॥

भा०—इस शिरोमणि रूप अतिथि के लिये घी, जल, गन्ध और अनेक प्रकार का मधुर अन्न खिलाते हैं। पुत्रों को जिस प्रकार पिता

परम कल्याण का ही उपदेश करते हैं, उसी प्रकार वह भी हमारे पिता के समान पूजनीय होकर, हमे सब प्रकार के कल्याणमय कर्त्तव्य का ही ज्ञान करावे, और वह शिरोमणि बार बार प्रत्येक दिन विद्वानो से रक्षा प्राप्त कर हमे उपदेश दिया करे ।

यमबध्नाद् बृहस्पतिर्मणिं फालं घृतश्चुतमुग्रं खदिरमोजसे ।
तमग्निः प्रत्यमुञ्चत सो अस्मै दुह आज्यं भूयोभूयः श्वःश्वस्तेन त्वं द्विषतो जहि ॥ ६ ॥

भा०—शत्रु-सेना के तोडने फोडने वाले, वीर्य और बल पराक्रम को दर्शाने वाले, शत्रु के विनाशक, शिरोमणि तीक्ष्णस्वभाव वाले जिस पुरुष को, उसके बल पराक्रम के कारण, वेदवाणी का पालक मन्त्री, राजा के साथ बाधता है अर्थात् उसके कार्य के लिये प्रतिज्ञाबद्ध या नियुक्त करता है, उसको शत्रुतापक, अग्निस्वभाव वाला राजा ही धारण करता है । तभी वह शिरोमणि पुरुष इस राजा के लिये बहुत बहुत प्रकार के और बार बार वीर्य और पराक्रम के कार्य पूर्ण करता है । और हे राजन् ! उसके बल से ही भावी काल मे बराबर तू अपने शत्रुओं का विनाश कर ।

यमबध्नाद् बृहस्पतिर्मणिं० । तमिन्द्रः प्रत्यमुञ्चतौजसे वीर्याय कम् ।
सो अस्मै बलमिद् दुहे भूयोभूयः ० । ० ॥ ७ ॥

भा०—शत्रुसेना के तोडने फोडने वाले, बल पराक्रम के कर्त्ता, शत्रुके विनाशक,तीक्ष्णस्वभाव वाले शिरोमणि पुरुष को, वेदज्ञ महामात्य, राजा के कार्य मे बाधता है, उसको ऐश्वर्यशील राजा अपने तेज और वीर्य की वृद्धि के लिये ही धारण करता है । वह उस राजा के लिये बराबर बल को ही बढ़ाता है । उसके बल से तू हे राजन् ! भविष्य में अपने शत्रुओ को मारने मे समर्थ हो ।

यमब० । तं सोमः प्रत्यमुञ्चत महे श्रोत्राय चक्षसे ।
सो अस्मै वर्च इद् दुहे भूयो० । ० ॥ ८ ॥

वर्म मह्यमयं मणिः फालाज्जातः करिष्यति ।
पूर्णो मन्थेन मागमद् रसेन सह वर्चसा ॥ २ ॥

भा०—शत्रुनाशक सामर्थ्य से सामर्थ्यवान् होकर यह शिरोमणि सेनापति, मुझ राजा के लिये, कवच या रक्षा का साधन करेगा। और वह शत्रु का मथन कर डालने वाले बल से पूर्ण बलवान् होकर और रस या रथबल और तेज से सम्पन्न होकर, मुझ राजा के पास आवे।

यत् त्वा शिक्वः परावधीत् तक्षा हस्तेन वास्या ।
आपस्त्वा तस्माज्जीवलाः पुनन्तु शुचयः शुचिम् ॥ ३ ॥

भा०—हे राजन्! जिस प्रकार चतुर शिल्पी बसोली से लकड़ी को छीलता है, उसी प्रकार तुझे जब चतुर शत्रु अपने शस्त्र से खूब घायल कर डाले, तो भी जिस प्रकार जीवन देने वाले जल अधमरे को पुनः जिला देते हैं, उसी प्रकार जीवन-प्राण पुनः प्राप्त कराने वाले, शुद्ध चित्त, वाले आप्तजन, शुद्ध चित्त, निष्कपट तुझको उस आघात की पीड़ा से मुक्त करें।

हिरण्यस्रगयं मणिः श्रद्धां यज्ञं महो दधत् ।
गृहे वसतु नोऽतिथिः ॥ ४ ॥

भा०—यह शिरोमणि पुरुष सुवर्णमाला धारण करने वाला होकर भी ईश्वर और धर्म-कार्य मे श्रद्धा अर्थात् सत्य में धारणावती बुद्धि को यज्ञ और तेज को धारण करे, और हमारे घर मे अतिथि होकर निवास करे।

तस्मै घृतं सुरां मध्वन्नमन्नं क्षदामहे ।
स नः पितेव पुत्रेभ्यः श्रेयः श्रेयश्चिकित्सतु
भूयोभूयः श्वः श्वो देवेभ्यो मणिरेत्य ॥ ५ ॥

भा०—उस शिरोमणि रूप अतिथि के लिये घी, जल, शहद और प्रत्येक प्रकार का मधुर अन्न खिलाते हैं। पुत्रों को जिस प्रकार पिता

परम कल्याण का ही उपदेश करते हैं, उसी प्रकार वह भी हमारे पिता के समान पूजनीय होकर, हमें सब प्रकार के कल्याणमय कर्त्तव्य का ही ज्ञान करावे, और वह शिरोमणि बार बार प्रत्येक दिन विद्वानों से रक्षा प्राप्त कर हमें उपदेश दिया करे।

यमबध्नाद् बृहस्पतिर्मणिं फालं घृतश्चुतमुग्रं खदिरमोजसे।
तम॒ग्निः प्रत्य॑मुञ्चत सो अ॑स्मै दुह आज्यं भूयो॑भूयः श्वः॑श्व-
स्तेन॒ त्वं द्वि॑ष॒तो ज॑हि ॥ ६ ॥

भा०—शत्रु-सेना के तोडने फोडने वाले, वीर्य और बल पराक्रम को दर्शाने वाले, शत्रु के विनाशक, शिरोमणि तीक्ष्णस्वभाव वाले जिस पुरुष को, उसके बल पराक्रम के कारण, वेदवाणी का पालक मन्त्री, राजा के साथ बांधता है अर्थात् उसके कार्य के लिये प्रतिज्ञाबद्ध या नियुक्त करता है, उसको शत्रुतापक, अग्निस्वभाव वाला राजा ही धारण करता है। तभी वह शिरोमणि पुरुष इस राजा के लिये बहुत बहुत प्रकार के और बार बार वीर्य और पराक्रम के कार्य पूर्ण करता है। और हे राजन्! उसके बल से ही भावी काल में बराबर तू अपने शत्रुओं का विनाश कर।

यमब॑ध्नाद् बृह॒स्पति॑र्म॒णिं० । तमिन्द्रः प्रत्य॑मुञ्चतौज॑से वी॒र्या॒य कम्।
सो अ॑स्मै बल॒मिद् दु॑हे भूयो॑भूयः० । ० ॥ ७ ॥

भा०—शत्रुसेना के तोडने फोडने वाले, बल पराक्रम के कर्त्ता, शत्रु के विनाशक, तीक्ष्णस्वभाव वाले शिरोमणि पुरुष को, वेदज्ञ महामात्य, राजा के कार्य में बांधता है, उसको ऐश्वर्यशील राजा अपने तेज और वीर्य की वृद्धि के लिये ही धारण करता है। वह उस राजा के लिये बराबर बल को ही बढ़ाता है। उसके बल से तू हे राजन्! भविष्य में अपने शत्रुओं को मारने में समर्थ हो।

यमब॑० । तं सोमः प्रत्य॑मुञ्चत म॒हे श्रोत्रा॑य च॒क्षसे।
सो अ॑स्मै वर्च॒ इद् दु॑हे भूयो० । ० ॥ ८ ॥

भा०—शत्रु सेना के तोड़ने .। शेष पूर्ववत् । उस शिरोमणि पुरुष को सोमस्वरूप सबका प्रेरक राजा, अपने बड़े महत्वपूर्ण कार्य करने के लिये अर्थात् राष्ट्र की सब शिकायतों को सुनने के लिये और चक्षु अर्थात् राष्ट्र के निरीक्षण के महत्वपूर्ण कार्य के लिये, धारण करता है। वह राजा तेज को बढ़ाता है । हे राजन् ! उसके बल पर तू भविष्य मे अपने द्वेषकारी लोगों के मारने में समर्थ हो । उत्तम शिरोमणि पुरुषो को राजा वेतन पर राष्ट्र की प्रजाओं के परस्पर के विवादों को श्रवण करने और व्यवस्था के निरीक्षण के लिये नियुक्त करे । इससे राजा का ही तेज बढ़ता है, शत्रु नष्ट होते हैं ।

यमब॑० तं सूर्यः॒ प्रत्य॑मुञ्चत॒ तेने॒मा अ॑जय॒द् दिशः॑ ।
सो अ॑स्मै॒ भूति॒मिद् दु॑हे॒ भूयो॑० ॥ ६ ॥

भा०—शत्रु सेना के तोडने शेष पूर्ववत् । उस शिरोमणि पुरुष को, सूर्य के समान प्रखर तेजस्वी राजा स्वयं धारण करता है, उसके बल पर वह इन समस्त दिशाओं पर जय प्राप्त करता है । वह शिरोमणि पुरुष राष्ट्र और राष्ट्र की सम्पत्ति को बराबर अधिकाधिक बढ़ाया करता है। हे राजन् ! उसके बल पर ही तू भविष्य मे सदा द्वेष करने हारे शत्रुओं को मारने में समर्थ हो ।

यमब॑ध्नाद् बृह॒स्पति॑र्म॒णिं फा॒लं घृ॒तश्चुत॑मु॒ग्रं ख॑दि॒रमोज॑से ।
तं बिभ्र॑च्च॒न्द्रमा॑ म॒णिमसु॑राणां॒ पुरो॑ऽजय॒द् दा॑नवा॒नां॒ हिर॑ण्ययीः ।
सा अ॑स्मै॒ श्रिय॒मिद् दु॑हे॒ भूयो॑० ॥ १० ॥

भा०—शत्रु सेना के तोड़ने ..शेष पूर्ववत् । उस श्रेष्ठ नररत्न को धारण करता हुआ प्रजा को सुखी करने हारा राजा, असुरों और प्रजा के पीड़ाकारी दानवों के लोहे की या सुवर्ण आदि धन सम्पत्ति से भरी हुई नगरियों को विजय करता है । वह नररत्न इस राजा के धन ऐश्वर्य को ही अधिकाधिक बढ़ाता है । उसके बल पर भविष्य में भी राजा अपने शत्रुओं को विनाश करने में समर्थ होता है ।

यमबध्नाद् बृहस्पतिर्वाताय मणिमाशवे ।
सो अस्मै वाजिनं दुहे भूयो० ॥ ११ ॥

भा०—बृहस्पति अर्थात् वेदज्ञ महामन्त्री जिस पुरुष रत्न को, अति शीघ्रकारी वायु के समान तीव्र वेग के कार्य सम्पादन करने के लिये कार्य पर वेतन द्वारा नियुक्त करता है, वह राजा के लिये अधिकाधिक वेगवान् अश्व आदि यानों और रथो को तैय्यार कर देता है। हे राजन्! ऐसे नररत्न के बल पर तू भविष्य मे बराबर शत्रुओ का नाश कर।

यमब०। तेनेमां मणिना कृषिमश्विनावभि रक्षतः।
स भिषग्भ्यां महो दुहे भूयो० ॥ १२ ॥

भा०—बृहस्पति अर्थात् वेदज्ञ महामात्य, आशुगामी वायु जिस प्रकार मेघ को समुद्र से लाकर पृथिवी पर वर्षा देता है, उसी प्रकार अपने प्रबल यन्त्रो से जलधाराओ और नदियों, नहरो को बनाने के कार्य के लिये जिस नर-रत्न को राष्ट्र के कार्य मे नियुक्त करता है, उस नर-रत्न के बल से, राष्ट्र के नर नारी लोग इस अन्न की खेती की रक्षा करते हैं। वही नर-रत्न ओषधि-चिकित्सक और शल्य-चिकित्सक के लिये अधिकाधिक महत्वपूर्ण पदार्थ उत्पन्न करता है। हे राजन्! उससे भविष्य मे तू शत्रुओं का विनाश कर।

यमब०। तं बिभ्रत् सविता मणिं तेनेदमजयत् स्वः।
सो अस्मै सूनृतां दुहे भूयो० ॥ १३ ॥

भा०—बृहस्पति अर्थात् वेदज्ञ पूर्ववत्। उस नर-रत्न को धारण करके सूर्य के समान तेजस्वी राजा, उस नर-रत्न के बल से इस आकाश लोक को विजय कर लेता है। वह नर-रत्न इस राजा के लिये शुभ सत्यवाणी या कीर्ति को अधिकाधिक उत्पन्न करता है। हे राजन्! उसके बल से भविष्य मे शत्रुओ के विजय मे समर्थ हो।

वेगवान् यानो के कर्त्ता शिल्पज्ञ के द्वारा आकाशचारी विमानों से

राजा विशाल आकाश को वश करे और उस बल से यश, कीर्ति प्राप्त करके शत्रुओं को वश करे।

यमब॑॰। तमापो बिभ्र॑तीर्म॒णिं सदा॑ धाव॒न्त्यक्षि॑ताः।
स आ॑भ्यो॒ऽमृत॒मिद् दु॑हे भूयो॑॰ ॥ १४ ॥

भा०—बृहस्पति अर्थात् वेदज्ञ·· पूर्ववत्। उस नर-रत्न को अपने भीतर धारण करने हारी आप प्रजाएं, जल धाराओं के समान बिना विनाश के, अपने अपने मार्ग पर निरन्तर चला करती हैं। वह नर-रत्न इन प्रजाओं के लिये अधिकाधिक अमृत या दीर्घायु या अमर जीवन को पूर्ण करता है। उनके बलों से ··। शेष पूर्ववत्।

यमब॑॰। तं राजा॒ वरु॑णो म॒णिं प्रत्य॑मुञ्चत श॒म्भुव॑म्।
सो अ॑स्मै स॒त्यमिद् दु॑हे भूयो॑॰ ॥ १५ ॥

भा०—बृहस्पति अर्थात् वेदज्ञ ··पूर्ववत्। उस शिरोमणि सुखकारी नर-रत्न को चुना हुआ राजा मणि के समान धारण करता है। वह इस राजा के लिये सत्य न्याय को ही अधिकाधिक बढ़ाता है उसके बल से···। शेष पूर्ववत्।

यमब॑॰। तं दे॒वा बिभ्र॑तो म॒णिं सर्वाँ॑ल्लो॒कान् यु॒धाज॑यन्।
स ए॑भ्यो॒ जिति॒मिद् दु॑हे भूयो॑॰ ॥ १६ ॥

भा०—बृहस्पति अर्थात् वेदज्ञ···पूर्ववत्। उस नर-रत्न को अपने बीच धारण करते हुए विद्वान् पुरुष, अपने युद्ध करने के सामर्थ्य से समस्त लोकों को विजय कर लेते हैं। वह नररत्न इन विद्वान् पुरुषों के लिये अधिकाधिक विजयों को करता है। उस के बल से । शेष पूर्ववत्।

यमब॑ध्ना॒द् बृह॒स्पति॒र्वाता॑य म॒णिमा॒शवे॑।
तमि॒मं दे॒वता॑ म॒णिं प्रत्य॑मुञ्चन्त श॒म्भुव॑म्।
स आ॑भ्यो॒ वि॒श्व॒मिद् दु॑हे भूयो॑भूयः॒ श्वः श्व॒स्तेन॒ त्वं द्वि॑ष॒तो ज॑हि ॥ १७ ॥

भा०—बृहस्पति अर्थात् वेदज्ञ·· पूर्ववत्। कल्याण और सुख के ··· नर-रत्न को दिव्य प्रजाएं धारण करती हैं। वह नर रत्न

इन दिव्य प्रजाओं के लिये समस्त संसार के सारे पदार्थों को अधिकाधिक प्राप्त कराता है। उसके बल से ०। शेष पूर्ववत्।

ऋतवस्तमबध्नतार्तवास्तमबध्नत।
संवत्सरस्तं बद्ध्वा सर्वं भूतं वि रक्षति ॥ १८ ॥

भा०—ऋतुएं उसको अपने मे धारण करती है, ऋतुओं के समूह उसको धारण करते हैं। और उस को संवत्सर बांधकर समस्त प्राणी-समूह की विविध प्रकार से पालना करता है। अर्थात् ऋतु, ऋतुओ के समूह और वर्ष जिस प्रकार सूर्य को धारण करते हैं और प्रजा का पालन करते हैं, उसी प्रकार प्रजाए, अधिकारीगण और राजा भी ऐसे नर-रत्नो को स्वय अपने राष्ट्र मे नियुक्त करते हैं, और इसके द्वारा वे नाना प्रकार से प्राणियों का पालन करते हैं।

अन्तर्देशा अबध्नत प्रदिशस्तमबध्नत।
प्रजापतिसृष्टो मणिर्द्विषतो मेऽधराँ अकः ॥ १९ ॥

भा०—अन्तराल दिशाएं या बीच के देश और मुख्य चार दिशाएं उस नर-रत्न को गले मे मणि के बने हार के समान धारण करती हैं। प्रजापालक परमेश्वर का उत्पन्न किया हुआ वह नर शिरोमणि पुरुष मेरे से द्वेष करने हारे शत्रुओ को नीचे कर देता है।

अथर्वाणो अबध्नताथर्वणा अबध्नत।
तैर्मेदिनो अङ्गिरसो दस्यूनां बिभिदुः पुरस्तेन त्वं द्विषतो जहि ॥ २० ॥ (१९)

भा०—अथर्व अर्थात् निश्चल, स्थिरमति पुरुष और अथर्ववेद के विद्वान् उस नर-रत्न को अपने गले मे हार के समान धारण करते हैं। और उन विद्वानो की सहायता से परिपुष्ट तथा विज्ञानवान् अधिकारी दुष्ट दस्यु लोगो के गढ़ो को तोड डालते हैं। हे राजन उस द्वारा तू अपने शत्रुओ का विनाश कर।

तं धाता प्रत्यमुञ्चत स भूतं व्यकल्पयत् ।
तेन त्वं द्विषतो जहि ॥ २१ ॥

भा०—उस नर-रत्न को प्रजाधारक राजा धारण करता है । वह नररत्न प्रजा को नाना प्रकार से सामर्थ्यवान् करता है । उस नर रत्न द्वारा हे राजन् ! तू शत्रुओं का नाश कर ।

यमबध्नाद् बृहस्पतिर्देवेभ्यो असुरक्षितिम् ।
स मायं मणिरागमद् रसेन सह वर्चसा ॥ २२ ॥

भा०—जिस असुरों के विनाशकारी अथवा प्राणों के रक्षक पुरुष को वेदज्ञ महामात्य श्रेष्ठ पुरुषों के लिये राष्ट्र में नियुक्त करता है, वह मुझ राजा के पास अपने बल और तेज के साथ प्राप्त हो ।

यमब० । स मायं मणिरागमत् सह गोभिरजाविभिरन्नेन प्रजया सह ॥ २३ ॥

भा०—दुष्टों वा असुरों के विनाशक वा प्राणों के रक्षक जिस पुरुष को वेदज्ञ महामात्य श्रेष्ठ पुरुषों की रक्षा के लिये नियुक्त करता है वह नररत्न गौओं, बकरियों और भेडों के साथ और प्रजा के साथ मुझ राजा को प्राप्त हो ।

यमब० । स मायं मणिरागमत् सह व्रीहियवाभ्यां महसा भूत्या सह ॥ २४ ॥

भा०—असुरों के विनाशक वा प्राणों व प्राणियों के रक्षक जिस पुरुष को वेदज्ञ विद्वान्, श्रेष्ठ पुरुषों की रक्षा के लिये नियुक्त करे, वह नरश्रेष्ठ पुरुष, धान्य और जौ आदि अन्नों और बडी भारी धन सम्पत्ति के साथ, मुझ राजा को प्राप्त हो ।

यमब० । स मायं मणिरागमन्मधोर्घृतस्य धारया ।
कीलालेन मणिः सह ॥ २५ ॥

भा०—असुरों के विनाशक, प्राणियों के प्राणों के रक्षक, जिस पुरुष को वेदज्ञ विद्वान्, श्रेष्ठ पुरुषों की रक्षा के लिये नियुक्त करे, वह नरश्रेष्ठ

मधुर पदार्थों और घृत की धारा और अमृत या जल या परम अन्नरस के साथ मुझ राजा को प्राप्त हो ।

यमब० । स मायं मणिरागमदूर्जया पयसा सह द्रविणेन श्रिया सह ॥ २६ ॥

भा०—असुरों के नाशक जिस पुरुष को वेदज्ञ विद्वान् श्रेष्ठ पुरुषों की रक्षा के लिये नियुक्त करे वह नरश्रेष्ठ, अन्न की बलकारी सारवान् शक्ति और पुष्टिकारक दूध और जल के साथ, और धन सम्पत्ति और लक्ष्मी के साथ मुझ राजा को प्राप्त हो ।

यमब० । स माय मणिरागमत् तेजसा त्विष्या सह यशसा कीर्त्या सह ॥ २७ ॥

भा०—पूर्ववत् । वह नर-श्रेष्ठ तेज, कान्ति, यश और कीर्त्ति के साथ मुझ राजा को प्राप्त हो ।

यमबध्नाद् बृहस्पतिर्देवेभ्यो असुरक्षितिम् ।
स माय मणिरागमत् सर्वाभिर्भूतिभिः सह ॥ २८ ॥

भा०—पूर्ववत् । वह नर-श्रेष्ठ समस्त कल्याण सम्पदाओं के साथ मुझ राजा को प्राप्त हो ।

तमिमं देवता मणिं मह्यं ददतु पुष्टये ।
अभिभुं क्षत्रवर्धनं सपत्नदम्भनं मणिम् ॥ २९ ॥

भा०—सबको अपने सामर्थ्य से पराभव करने वाले, क्षत्र-बल को बढ़ाने वाले, शत्रुओं को दबाने वाले उस नरश्रेष्ठ पुरुष को, समस्त दिव्य गुण, राज्य की पुष्टि के लिये मुझे प्रदान करें ।

ब्रह्मणा तेजसा सह प्रति मुञ्चामि मे शिवम् ।
असपत्नः सपत्नहा सपत्नान् मेऽधराँ अकः ॥ ३० ॥ (२०)

भा०—मैं वेदमय ब्राह्मणों के ज्ञानमय तेज के साथ उस कल्याणमय नरश्रेष्ठ को धारण करूं । वह शत्रुनाशक अजातशत्रु नरश्रेष्ठ शत्रुओं को मेरे नीचे करे ।

उत्तरं द्विषतो मामयं मणिः कृणोतु देवजाः ।
यस्य लोका इमे त्रयः पयो दुग्धमुपासते ।
स मायमधि रोहतु मणिः श्रैष्ठ्याय मूर्धतः ॥ ३१ ॥

भा०—यह नर-रत्न, विद्वानों द्वारा सामर्थ्यवान् एवं अधिकार सत्ता को प्राप्त होकर मुझे शत्रुओं के ऊपर, उनसे ऊंचा करे और जिसके उत्पन्न किये हुए ऐश्वर्य को ये तीनों लोक अर्थात् उत्तम, मध्यम और निकृष्ट तीनों श्रेणियों के प्राणी भोग करते हैं। वह नरश्रेष्ठ सबसे श्रेष्ठ पद प्राप्त करने के लिये मेरे भी शिरोभाग पर पूज्य होकर रहे ।

यं देवाः पितरो मनुष्या उपजीवन्ति सर्वदा ।
स मायमधि रोहतु मणिः श्रैष्ठ्याय मूर्धतः ॥ ३२ ॥

भा०—जिस नरश्रेष्ठ पुरुष के आश्रय पर माता, पिता, आचार्य आदि और मननशील जीव, सब कालों में, अपनी आजीविका प्राप्त करते हैं, वह शिरोमणि पुरुष सर्व श्रेष्ठ होने के कारण मुझ से भी ऊंचे पद पर मुख्य होकर रहे ।

यथा बीजमुर्वरायां कृष्टे फालेन रोहति ।
एवा मयि प्रजा पशवोऽन्नमन्नं वि रोहतु ॥ ३३ ॥

भा०—जिस प्रकार उत्कृष्ट भूमि में, हल की फाली से हल चला लेने पर बोया हुआ बीज खूब अच्छी प्रकार उगता है और फलता है, उसी प्रकार मुझ में प्रजाएं, पशु और अन्न विशेष प्रकार से उत्पन्न हों और समृद्ध हों । 'फाल मणि.' का रहस्यार्थ इस मन्त्र में स्पष्ट कर दिया है । अर्थात् जैसे हल की फाली से जोते खेत में बीज उगे उसी प्रकार जिसके कार्य करने पर राजा की प्रजा, पशु, सम्पत्ति बढ़े वही 'फाल मणि' है ।

यस्मै त्वा यज्ञवर्धन मणे प्रत्यमुचं शिवम् ।
तं त्वं शतदक्षिण मणे श्रैष्ठ्याय जिन्वतात् ॥ ३४ ॥

भा०—यज्ञ अर्थात् राष्ट्र की व्यवस्था-संगति को निरन्तर बढ़ाने हारे हे शिरोमणे ! तुझ कल्याणकारी को, जिसके लिये मैं धारण करता हूं, हे सैकड़ों शक्तियों से सम्पन्न शिरोमणे ! उस राजा को सर्वश्रेष्ठ पद प्राप्त कराने के लिये तू समर्थ हो ।

एतमिध्मं समाहितं जुषाणो अग्ने प्रति हर्य होमैः ।
तस्मिन् विदेम सुमतिं स्वस्ति प्रजां चक्षुः पशून्त्समिद्धे जातवेदसि ब्रह्मणा ॥ ३५ ॥ (२१)

भा०—हे शत्रुतापकारिन् राजन् ! जिस प्रकार आग में रक्खे काष्ठ को प्राप्त करके अग्नि घृत चरु के होमों द्वारा तीव्र हो जाती है, उसी प्रकार इस भली प्रकार तुझ में स्थापित दीप्तियुक्त राज्यपद को प्राप्त करना हुआ तू राष्ट्रकर रूप द्रव्यादानों से समृद्ध हो । वेद के विद्वान् ब्राह्मणवर्ग या ब्रह्मबल द्वारा उस ऐश्वर्यवान् राजा के अति प्रदीप्त हो जाने पर हम राष्ट्रवासी कल्याणपूर्वक उत्तम ज्ञान, उत्तम सन्तान, और चक्षु आदि ज्ञानेन्द्रियों और गौ, अश्व आदि पशुओं को प्राप्त करें ।

॥ इति तृतीयोऽनुवाकः ॥

[तत्र सूक्तद्वयम्, पञ्चाशीतिश्च ऋचः]

[७] ज्येष्ठ ब्रह्म स्कम्भ का स्वरूप वर्णन ।

अथर्वा क्षुद्र ऋषिः । मन्त्रोक्तः स्कम्भ अध्यात्मं वा देवता । स्कम्भ सूक्तम् । १ विराड् जगती । २, ८ भुरिजौ । ७, १३ परोष्णिक् । ११, १२, १५, २०, २२, ३७–३९ उपरिष्टाद् ज्योतिर्जगत्यः । १०, १४, १६, १८, १० उपरिष्टाद्बृहत्यः । १७ त्र्यवसाना षट्पदा जगती । २१ बृहतीगर्भा अनुष्टुप् । २३–३०, ३७, ४० अनुष्टुभः । ३१ मध्येज्योतिर्जगती । ३२, ३४, ३६ उपरिष्टाद् विराड् बृहत्यः । ३३ परा विराड् अनुष्टुप् । ३५ चतुष्पदा जगती । ३८, ३, ६, ९, १२, १६, १०, ४२–४३ त्रिष्टुभः । ४१ आर्षी त्रिपाद् गायत्री । ४४ द्विपदा वा पञ्चपदा निचृत् पङ्क्तिः । चतुश्चत्वारिंशदृचं सूक्तम् ।

कस्मिन्नङ्गे तपो अस्याधि तिष्ठति कस्मिन्नङ्ग ऋतमस्याध्याहितम्।
क्व व्रतं क्व श्रद्धास्य तिष्ठति कस्मिन्नङ्गे सत्यमस्य प्रतिष्ठितम्॥१॥

भा०—इसके किस अङ्ग मे तप विराजता है ? इसके किस अङ्ग मे 'ज्ञान' धरा है ?, इसके किस भाग मे व्रत बैठा है, और किस अङ्ग में श्रद्धा स्थित है ? और इसके किस अङ्ग मे सत्य प्रतिष्ठित है ?

कस्मादङ्गाद् दीप्यते अग्निरस्य कस्मादङ्गात् पवते मातरिश्वा।
कस्मादङ्गाद् वि मिमीतेऽधि चन्द्रमा मह स्कम्भस्य मिमानो अङ्गम्॥ २ ॥

भा०—इस स्कम्भ के किस अंग से अग्नि प्रकाशित होता है ? वायु किस अंग से बहता है ? महान्-स्कम्भ अर्थात् ज्येष्ठ ब्रह्म के स्वरूप को प्रकट करता हुआ चन्द्रमा किस अंग से प्रकट होता है ।

कस्मिन्नङ्गे तिष्ठति भूमिरस्य कस्मिन्नङ्गे तिष्ठत्यन्तरिक्षम्।
कस्मिन्नङ्गे तिष्ठत्याहिता द्यौः कस्मिन्नङ्गे तिष्ठत्युत्तरं दिवः॥३॥

भा०—इसके किस अङ्ग मे भूमि विराजती है ? इसके किस अङ्ग मे अन्तरिक्ष विराजमान है ? किस अङ्ग में जड़ा हुआ द्युलोक विराजता है ? और द्यौलोक से भी परे का भाग उस 'स्कम्भ' के किस अङ्ग में स्थित है ?

क्व प्रेप्सन् दीप्यत ऊर्ध्वो अग्निः क्व प्रेप्सन् पवते मातरिश्वा।
यत्र प्रेप्सन्तीरभियन्त्यावृतः स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः॥४॥

भा०—बतला ? ऊपर विराजमान वह सूर्याग्नि किसमे अपनी अभिलाषा बांधे या कहां जाना चाहता हुआ प्रकाशित हो रहा है ? और वायु कहां पहुंचने की अभिलाषा से निरन्तर बहता है ? ये सब आते-जाते नक्षत्र आदि जहां पहुंचना चाहते हुए चलते चले जा रहे हैं ? हे विद्वन्! तू उसमें सर्व जगत् का 'स्कम्भ' या स्तम्भ मे कह, वह अत्यन्त सुखमय है ।

क्वार्धमासाः क्वयन्ति मासाः संवत्सरेण सह संविदानाः ।
यत्र यन्त्यृतवो यत्रार्तवाः स्कम्भं तं० ॥ ५ ॥

भा०—आधे मास और मास संवत्सर के साथ मिल करके कहां जा रहे हैं ? ये ऋतुएं और ऋतुओं के समूह जहां जा रहे हैं हे विद्वन् ! उस सर्वाश्रय को स्कम्भ कह, वह अत्यन्त सुखमय है ।

क्व प्रेप्सन्ती युवती विरूपे अहोरात्रे द्रवतः संविदाने ।
यत्र प्रेप्सन्तीरभियन्त्यापः स्कम्भं तं० ॥ ६ ॥

भा०—विपरीत रूप वाले, काले और उजले रंग के, तमः और प्रकाशस्वरूप मानो दो नर-नारी के समान परस्पर मन्त्रणा करते हुए दिन और रात, कहां पहुंचने की अभिलाषा करके वेग से जा रहे हैं ? ये जल-धाराएं, नदियें जहां भी पहुंचने की अभिलाषा करती हुई चली जा रही हैं, हे विद्वन् ! उसको तू परम आश्रयभूत स्कम्भ अर्थात् जगत् का खम्भा कह, वह अत्यन्त सुखमय ।

यस्मिन्त्स्तब्ध्वा प्रजापतिर्लोकान्त्सर्वाँ अधारयत् ।
स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥ ७ ॥

भा०—प्रजाओं का पालक सूर्य, जिस परम आश्रय में थमा हुआ होकर, समस्त सौर लोकों को धारण किये हुए है, हे विद्वन् ! उसे तू 'स्कम्भ' जगत्-स्तम्भ कह, वह अत्यन्त सुखमय है ।

यत् परममवमं यच्च मध्यमं प्रजापतिः ससृजे विश्वरूपम् ।
कियता स्कम्भः प्र विवेश तत्र यन्न प्राविशत् कियत् तद् बभूव ॥८॥

भा०—हे विद्वन् ! प्रजाओं के पालक सूर्य ने जो परला, नीचे का और मध्य का लोक बनाया है जो कि सब रूपों वाला है, उसमें वह स्कम्भ अपने कितने अंश से प्रविष्ट है, और स्कम्भ का जो भाग उसमें प्रविष्ट नहीं है वह कितना शेष है ?

कियता स्कम्भः प्र विवेश भूतं कियद् भविष्यदन्वाशयेऽस्य ।
एकं यदङ्गमकृणोत् सहस्रधा कियता स्कम्भः प्र विवेश तत्र ॥९॥

भा०—वह 'स्कम्भ' भूतकाल में कितने अंश से प्रविष्ट है ? और भविष्य काल में इस स्कम्भ का कितना अंश व्याप्त है। और एक अंग अर्थात् प्रकृति को जो इसमें सहस्रों रूपों में प्रकट किया है उस प्रकृति में स्कम्भ कितने अंश में प्रविष्ट है।

यत्र लोकांश्च कोशांश्चापो ब्रह्म जना विदुः ।
असच्च यत्र सच्चान्त स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥१०॥(२२)

भा०—विद्वान् जन जिसके आश्रय पर समस्त लोकों को और उनके आवरणों को, समस्त विश्व के कारणरूप, प्रकृति के सूक्ष्म परिमाणुओं को, महान् वेदज्ञान को भी आश्रित जानते हैं। और जिसके भीतर अव्याकृत जगत् को और व्याकृत जगत् को आश्रित जानते हैं उसको तू स्तम्भ कह, वह अत्यन्त सुखमय है।

यत्र तपः पराक्रम्य व्रतं धारयत्युत्तरम् ।
ऋतं च यत्र श्रद्धा चापो ब्रह्म समाहिताः स्कम्भं तं० ॥ ११ ॥

भा०—जिसके आश्रय में तप पराक्रम करके उत्कृष्ट व्रत को धारण करता है, और जहां परम सत्य, और श्रद्धा, समस्त जीवगण या प्रकृति के सूक्ष्म परमाणु या आप्त परमपद में प्राप्त मुक्त जीव, और वेद का परम ज्ञान आश्रित है, उसको तू स्कम्भ कह, वह अत्यन्त सुखमय है।

यस्मिन् भूमिरन्तरिक्षं द्यौर्यस्मिन्नध्याहिता ।
यत्राग्निश्चन्द्रमाः सूर्यो वातास्तिष्ठन्त्यार्पिताः स्कम्भं तं० ॥१२॥

भा०—जिसमें भूमि, अन्तरिक्ष और द्यौलोक स्थित है, जिसमें अग्नि और चन्द्रमा सूर्य और वायु सब प्रकार से आश्रित होकर खड़े हैं उसको तू स्कम्भ कह, वह अत्यन्त सुखमय है।

यस्य त्रयस्त्रिंशद् देवा अङ्गे सर्वे समाहिताः । स्कम्भं तं० ॥१३॥

भा०—जिसके अङ्ग अर्थात् प्रकृति में सबके सब तेंतीस देवगण भली प्रकार स्थित हैं, उसको तू स्कम्भ कह, वह अत्यन्त सुखमय है।

बृहदारण्यक उपनिषत् (३, ९, २–५) मे अग्नि, पृथिवी, वायु, अन्तरिक्ष, आदित्य, द्यौः, चन्द्रमा और नक्षत्र ये आठ 'वसु' कहे हैं, पुरुष-शरीर मे दश प्राण और आत्मा ये ग्यारह मरण काल मे रुलाते हैं, इससे ये 'रुद्र' कहे हैं, वर्ष के १२ मास, इन्द्र और प्रजापति ये ३३ देवता गिनाये हैं।

यत्र ऋषयः प्रथमजा ऋचः साम यजुर्मही ।
एकर्षिर्यस्मिन्नार्पितः स्कम्भं तं० ॥ १४ ॥

भा०—जिसमे सबसे प्रथम उत्पन्न ऋषि अर्थात् अग्नि, वायु, आदित्य और अंगिरा, और उनके हृदय में प्रकाशित ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद और श्रेष्ठ ब्रह्मविद्या वाला अथर्ववेद आश्रित हैं, और जिसमे अकेले विचरने वाला सूर्य विराजमान है, उसको तू स्कम्भ कह, वह अत्यन्त सुखमय है।

यत्रामृतं च मृत्युश्च पुरुषेऽधि समाहिते ।
समुद्रो यस्य नाड्यः पुरुषेऽधि समाहिताः स्कम्भं तं० ॥१५॥

भा०—अमर जीवन और मृत्यु दोनो जिस परम पुरुष में आश्रित हैं, और नदियों समेत जिसमे समुद्र नाड़ियों समेत हृदय के समान स्थित है, उसको तू स्कम्भ कह, वह अत्यन्त सुखमय है।

यस्य चतस्रः प्रदिशो नाड्यस्तिष्ठन्ति प्रथमाः ।
यज्ञो यत्र पराक्रान्तः स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥१६॥

भा०—और जिसके विराट् रूप में मुख्य दिशाएं मुख्य २ नाडियों के समान विराजती हैं, जिसमे यह विश्वरूप महान् यज्ञ बडी उत्कृष्टता से सम्पादित होता है, उसको तू स्कम्भ कह, वह अत्यन्त सुखमय है।

ये पुरुषे ब्रह्म विदुस्ते विदुः परमेष्ठिनम् ।
यो वेद परमेष्ठिनं यश्च वेद प्रजापतिम् ।
ज्येष्ठं ये ब्राह्मणं विदुस्ते स्कम्भमनुसंविदुः ॥ १७ ॥

भा०—जो विद्वान् योगीजन शरीरपुरी में विद्यमान जीवात्मा में अन्तर्यामीरूप से स्थित उस महान् ब्रह्म का साक्षात् ज्ञान करते हैं वे परम अर्थात् उत्कृष्ट जीवात्मा में स्थित ब्रह्म का परमेष्ठी रूप में साक्षात्कार करते हैं और जो ब्रह्मवेत्ता उस परम जीवात्मा में स्थित परमेष्ठी का साक्षात् ज्ञान कर लेते हैं, और साथ ही जो सारे जगत् में स्थित सूर्य के समान समस्त जड़ संसार में स्थित उस पालक का प्रजापति रूप में साक्षात् ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं और जो ब्रह्मवेदी ज्येष्ठरूप से उस ब्रह्म को साक्षात् जान लेते हैं, वे ही इन ज्ञानों के आधार पर उस जगदाधार स्कम्भ का भली प्रकार ज्ञान लाभ करते हैं।

यस्य शिरो वैश्वानरश्चक्षुरङ्गिरसोऽभवन्।
अङ्गानि यस्य यातवः स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥१८॥

भा०—विश्वनेता सूर्य जिसका शिर है, विराट् देह में सारभूत तेजोमय सहस्रों नक्षत्र जिसके चक्षुरूप हैं, और गतिमान् समस्त लोक जिसके अङ्ग प्रत्यङ्ग हैं, उसको तू सर्वाधार 'स्कम्भ' कह, वह अत्यन्त सुखमय है।

यस्य ब्रह्म मुखमाहुर्जिह्वां मधुकशामुत।
विराजमूधो यस्याहु. स्कम्भं तं ॥ १९ ॥ १६ ॥

भा०—वेद को जिसका मुख बतलाते हैं, और मधुर वेदवाणी को जिस स्कम्भ की जिह्वा बतलाते हैं, और प्रकृति को जिसका ऊधस् अर्थात् 'थन' कहते हैं, हे विद्वन्! उसको तू स्कम्भ कह, वह अत्यन्त सुखमय है।

यस्मादृचो अपातक्षन् यजुर्यस्मादपाकषन्।
सामानि यस्य लोमान्यथर्वाङ्गिरसो मुखं स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥ २० ॥ (२३)

भा०—जिससे ऋचाएं प्रकट हुईं और जिससे यजुर्वेद प्रकट हुआ, साम जिसके लोम हैं, और अथर्ववेद जो कि जीवन के रस के समान है वह जिसका मुख है, उसको तू स्कंभ कह, वह अत्यन्त सुखमय है।

असच्छाखां प्रतिष्ठन्तीं परममिव जना विदुः ।
उतो सन्मन्यन्तेऽवरे ये ते शाखामुपासते ॥ २१ ॥

भा०—शाखा-प्रशाखा रूप मे आई अर्थात् प्रकट रूप मे न आई शक्तिमती मूल प्रकृति को ही सर्वसाधारण लोग परम तत्व के समान जानते हैं. और जो लोग शाखा-प्रशाखा रूप मे प्रकट हुए स्थूल जगत् की उपासना करते हैं वे मानो इस सत-जगत् को ही परमशक्ति की न्याईं मानते हैं। वे अवर कोटि के लोग हैं।

यत्रादित्याश्च रुद्राश्च वसवश्च समाहिताः ।
भूतं च यत्र भव्यं च सर्वे लोकाः प्रतिष्ठिता स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥ २ ॥

भा०—जिसमे १२ मास, ११ रुद्र और आठ वसु एकत्र स्थित हैं, और जिसमे भूत भविष्यत् जगत् और समस्त लोक प्रतिष्ठित हैं उसको तू स्कम्भ कह, वह अत्यन्त सुखमय है।

यस्य त्रयस्त्रिंशद् देवा निधिं रक्षन्ति सर्वदा ।
निधिं तमद्य को वेद यं देवा अभिरक्षथ ॥ २३ ॥

भा०—जिसके परम भण्डार की तेंतीस देवगण सदा रक्षा करते हैं, हे देवगणो! जिसकी तुम भी सब प्रकार से रक्षा करते हो, उस खज़ाने को अब कौन जानता है?

यत्र देवा ब्रह्मविदो ब्रह्म ज्येष्ठमुपासते ।
यो वै तान् विद्यात् प्रत्यक्षं स ब्रह्मा वेदिता स्यात् ॥ २४ ॥

भा०—जिसके आश्रय पर समस्त देवगण हैं उस सर्वोत्कृष्ट परमब्रह्म की, ब्रह्मवेत्ता भी उपासना करते हैं। जो भी उन ब्रह्मवेदियो का साक्षात् सत्संग लाभ करे वह भी ज्ञानी ब्रह्मवेत्ता हो जाय।

बृहन्तो नाम ते देवा येऽसतः परि जज्ञिरे ।
एकं तदङ्गं स्कम्भस्यासदाहुः परो जनाः ॥ २५ ॥

भा०—वे देव आकार में बड़े बड़े हैं जो 'असत्' अर्थात् अव्याकृत प्रकृति से उत्पन्न होते हैं। स्कम्भ का वह एक अङ्ग है जिसको लोग इस व्याकृत जगत् से परे, अति सूक्ष्म 'असत्' अव्यक्त रूप से बतलाते हैं।

यत्र स्कम्भः प्रजनयन् पुराणं व्यवर्तयत्।
एकं तदङ्गं स्कम्भस्य पुराणमनुसंविदुः ॥ २६ ॥

भा०—जिस अपने स्वरूप के आधार में 'स्कम्भ' ने, सृष्टि उत्पन्न करते हुए 'पुराण' नामक प्रकृति मे परिवर्तन उत्पन्न किया, विविध रूपमे सृष्टि रूप मे उत्पन्न किया, वह जगदाधार परमेश्वर का एक अङ्ग है जिसको विद्वान् लोग 'पुराण' नाम से जानते हैं।

यस्य त्रयस्त्रिंशद् देवा अङ्गे गात्रा विभेजिरे।
तान् वै त्रयस्त्रिंशद्देवानेके ब्रह्मविदो विदुः ॥ २७ ॥

भा०—जिसके शरीर मे तैंतीस देव अवयव के समान बंटे हुए हैं, कोई कोई ही ब्रह्मवेत्ता उन तैंतीस देवों का ज्ञान प्राप्त करते हैं।

हिरण्यगर्भं परममनत्युद्यं जना विदुः।
स्कम्भस्तदग्रे प्रासिञ्चद्धिरण्यं लोके अन्तरा ॥ २८ ॥

भा०—हिरण्यमय यह संसार जिस के गर्भ में है उस स्कम्भ को लोग परम तत्व जानते है कि जिसके बारे मे अधिक न बतलाया जा सकता है। हिरण्य के समान चमकते हुए जगत् के निर्माता द्रवतत्व को पहिले स्कम्भ ने ही लोकों के अन्दर सींचा था।

स्कम्भे लोकाः स्कम्भे तपः स्कम्भेऽध्यृतमाहितम्।
स्कम्भं त्वा वेद प्रत्यक्षमिन्द्रे सर्वं समाहितम् ॥ २९ ॥

भा०—स्कम्भ में समस्त लोक, स्कम्भ मे तप और स्कम्भ में परम-ज्ञान प्रतिष्ठित है। हे जगदाधार स्कम्भ! मै द्रष्टा तुझको साक्षात् करता हूँ कि तुझ परम ऐश्वर्यवान् परमेश्वर मे समस्त जगत् अच्छी प्रकार स्थित है।

इन्द्रे लोका इन्द्रे तप इन्द्रेऽध्यृतमाहितम्।
इन्द्रं त्वा वेद प्रत्यक्षं स्कम्भे सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥३०॥ (२४)

भा०—ऐश्वर्यवान् परमेश्वर में समस्त लोक स्थित हैं, उस ऐश्वर्यवान् परमेश्वर में तप स्थित है, उस ऐश्वर्यवान् परमेश्वर मे समस्त परम ज्ञान स्थित है, उस जगदाधार परमेश्वर को ही परमैश्वर्यवान् साक्षात् जानूं । उस जगत् के आधारभूत 'स्कम्भ' मे समस्त संसार विराजमान है ।

नाम्ना नाम्नां जोहवीति पुरा सूर्यात् पुरोषसः ।
यदजः प्रथमं संबभूव स ह तत् स्वराज्यमियाय
यस्मान्नान्यत् परमस्ति भूतम् ॥ ३१ ॥

भा०—मनुष्य एक नाम या पद की व्याख्या करने के लिये दूसरे नाम या पद से उसको पुकारता है, या उस नमस्कार योग्य परमेश्वर को किसी भी पद से पुकार लेता है । वह परम तत्व तो इस सूर्य से भी पहले और सूर्य के पूर्व उषा होती है वह उषा से भी पूर्व विद्यमान है । जब सबसे प्रथम वह अजन्मा, परम आत्मा ही एकमात्र था, उस समय, निश्चय से वही स्वयं प्रकाशमान रूप को प्राप्त था । जिससे दूसरा कोई उत्पन्न होने वाला पदार्थ, इस जगत् को अतिक्रमण करने वाला, उससे पूर्व विद्यमान नहीं है ।

यस्य भूमिः प्रमान्तरिक्षमुतोदरम् ।
दिवं यश्चक्रे मूर्धानं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ॥३२॥

भा०—भूमि जिसकी चरणवत् है, और अन्तरिक्ष उदर है । और जो द्यौलोक को अपने शिर के समान बनाये है, उस सर्वश्रेष्ठ ब्रह्म को नमस्कार है ।

यस्य सूर्यश्चक्षुश्चन्द्रमाश्च पुनर्णवः ।
अग्निं यश्चक्र आस्यं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ॥३३॥

भा०—सूर्य और पुनः नवीन रूप मे उत्पन्न होने वाला चन्द्र दोनों जिसकी दो आंखों के समान हैं, और जो अग्नि को अपने मुख के समान बनाये हुए है, उस सर्वश्रेष्ठ परमब्रह्म को नमस्कार है ।

यस्य वातः प्राणापानौ चक्षुरङ्गिरसोऽभवन् ।
दिशो यश्चक्रे प्रज्ञानीस्तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ॥ ३४ ॥

भा०—वात जिसके प्राण और अपान के समान है, और ज्ञानी विद्वान् या तेजस्वी पदार्थ जिसके चक्षु के समान है, और जो दिशाओं को अपनी उत्कृष्ट ज्ञापक पताकाओं के समान बनाये हुए है, उस सर्व-श्रेष्ठ ब्रह्म के लिये नमस्कार है ।

स्कम्भो दाधार द्यावापृथिवी उभे इमे स्कम्भो दाधारोर्वन्तरिक्षम् ।
स्कम्भो दाधार प्रदिशः षडुर्वीः स्कम्भ इदं विश्वं भुवनमाविवेश ॥ ३५ ॥

भा०—वह स्कम्भ इन दोनो द्यौ और पृथिवी को धारण किये हुए है । वही जगदाधार 'स्कम्भ' विशाल इस अन्तरिक्ष को धारण किये हुए है । स्कम्भ ही विशाल इन दिशाओं को धारण करता है । वस्तुतः यह समस्त चराचर लोक स्कम्भ के ही भीतरी घुसा हुआ है । अथवा वह जगदाधार ही समस्त विश्व मे प्रविष्ट है ।

यः श्रमात् तपसो जातो लोकान्त्सर्वान्त्समानशे ।
सोमं यश्चक्रे केवलं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ॥ ३६ ॥

भा०—जो योगाभ्यास मे सतत परिश्रम और तप द्वारा प्रकट होता है और जो समस्त लोको मे पूर्णरूप से व्याप्त है । और जिसने चन्द्रमा को अकेला विचरने वाला बनाया है उस सर्वश्रेष्ठ ब्रह्म को नमस्कार है ।

कथं वातो नेलयति कथं न रमते मनः ।
किमापः सत्यं प्रेप्सन्तीर्नेलयन्ति कदा चन ॥ ३७ ॥

भा०—वायु क्यों नही चैन पाता ? मन क्यों नही एक ही वस्तु में रमता ? वह क्यो चचल है ? उस सत्यस्वरूप को ही प्राप्त होने के लिये उत्सुक होकर क्या जल भी कभी विश्राम नहीं पाते ?

महद् यक्षं भुवनस्य मध्ये तपसि क्रान्तं सलिलस्य पृष्ठे ।
तस्मिन् छ्रयन्ते य उ के च देवा वृक्षस्य स्कन्धः परित इव शाखाः ॥ ३८ ॥

भा०—इस समस्त संसार के बीच मे वह बडा भारी पूजनीय या समस्त शक्तियों का एकमात्र संगम-स्थान है, जो तप मे बडा हुवा और अन्तरिक्ष की भी पृष्ठ पर उसके भी ऊपर शासक रूप से विद्यमान है। जो कोई भी दिव्य पदार्थ हैं वे वृक्ष के तने के चारो ओर शाखाओ के समान शक्तियों के एक मात्र संगमस्थान उस 'यक्ष' में ही आश्रय ले रहे हैं।

यस्मै हस्ताभ्यां पादाभ्यां वाचा श्रोत्रेण चक्षुषा।
यस्मै देवाः सदा बलिं प्रयच्छन्ति विमितेऽमितं
स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥ ३९ ॥

भा०—जिसके निमित्त हाथों और पैरो से, वाणी, कानों और आखों से दिव्य पदार्थ या विद्वान् गण बलि-उपहार या आदरभाव प्रदान करते है, और जो नाना प्रकार से बने हुए इस परिमित संसार मे असीम, अपरिमित, अनन्त है, उस जगदाधारभूत को तू स्कम्भ कह, वह अत्यन्त सुखमय है।

अप तस्य हतं तमो व्यावृत्तः स पाप्मना।
सर्वाणि तस्मिन् ज्योतींषि यानि त्रीणि प्रजापतौ ॥ ४० ॥

भा०—उस परमेश्वर की शक्ति से समस्त अन्धकार विनष्ट हो जाता है। वह समस्त पापो से पृथक् रहता है। जो तीनों अर्थात् अग्नि, विद्युत् और सूर्यरूपी ज्योतियां है वे सब उसी प्रजापति मे ही विराजमान हैं।

यो वेतसं हिरण्ययं तिष्ठन्तं सलिले वेद।
स वै गुह्यः प्रजापतिः ॥ ४१ ॥

भा०—जल मे जिस प्रकार बेंत का पौदा जीवन धारण करता है, इसी प्रकार प्रकृति के समुद्र मे सूक्ष्म रूप से स्थित चमकीले संसार को जो जानता है वही गुप्त प्रजा का स्वामी है।

तन्त्रमेके युवती विरूपे अभ्याक्रामं वयतः षण्मयूखम्।
प्रान्या तन्तूंस्तिरते धत्ते अन्या नाप वृञ्जाते न गमातो अन्तम् ॥४२॥

भा०—दो युवतियों के समान उषा और रात्रि, जो कि तमोमय और प्रकाशमय विरुद्ध रूपों वाली हैं वे बार २ आ आ और जा जा कर, छः दिशाओं वाले या छः ऋतुओं वाले या छः किरणों वाले विश्वरूप जाल को बुन रही हैं। उनमें से एक उषा सूर्य की किरणरूप तन्तुओं को फैलाती हैं और दूसरी रात्रि उन सब किरणों को अपने भीतर लुस कर लेती है। ये दोनों कभी विश्राम नहीं लेतीं और न कार्य के अन्त तक ही पहुंचती हैं।

तयोरहं परिनृत्यन्त्योरिव न वि जानामि यतरा परस्तात्।
पुमानेनद् वयत्युद् गृणत्ति पुमानेनद् वि जभाराधि नाके ॥ ४३

उत्तरार्धः ऋ० १०। १३०। २ इति पूर्वार्धेन समः

भा०—नाचती हुई सी उन दोनों उषा और रात्रि में से मैं य नहीं निर्णय कर सकता कि पहले कौन उत्पन्न हुई। वस्तुतः इस समस्त विश्व को वह परम पुरुष बुनता है और वह पुरुष ही इसको उधेड़ डालता है, संहार करता है और वह परम पुरुष ही इस विश्व को परम सुखमय आश्रय में अथवा आकाश में नाना प्रकार से चला रहा है।

इमे मयूखा उप तस्तभुर्दिवं।
सामानि चक्रुस्तसराणि वातवे ॥ ४४ ॥ (२५)

ऋ० १०। १३२। २ तृ० च ॥

भा०—ये किरणें ही द्यौःलोक या सूर्य को थामे हुए हैं। वायु, आदित्य, मेघ आदि पदार्थ और वाग्, मन, श्रोत्र आदि प्राण ये ही इस लोक को बुनने के लिये तन्तु जालों को बनाये हुए हैं।

[८] ज्येष्ठ ब्रह्म का वर्णन।

कुत्स ऋषिः। आत्मा देवता। उपरिष्टद् बृहती। २ बृहतीगर्भा अनुष्टुप्। ? भुरिग् अनुष्टुप्। ७ पराबृहती। १० अनुष्टुब्गर्भा बृहती। ११ जगती। १२ पु० बृहती त्रिष्टुब्गर्भा आर्षी पंक्तिः। १५ भुरिग बृहती। ६, १४, २१, २३, २१,

२६, ३१-३१, ३७, ३८, ४१, ४३ अनुष्टुभ.। २२ पुरोष्णिक। २३ द्युष्णिग्गर्भा अनुष्टुप्। ५७ भुरिग् बृहती। ३० भुरिक्। ३६ बृहतीगर्भा त्रिष्टुप्। ४२ विराट गायत्री। ३, ४, ८, ६, १३, १६, २४, २८, २६, ३४, ३५, ३६, ४०, ४४ त्रिष्टुभः। चतुश्चत्वारिंशच्च सूक्तम्॥

यो भूतं च भव्यं च सर्वं यश्चाधितिष्ठति।
स्व॒र्यस्य च केवलं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः॥ १॥

भा०—जो परमेश्वर भूतकाल, और भविष्यत्-काल, और जो समस्त जगत् पर अधिष्ठाता होकर वश करता है, और जिसका स्वरूप सुखमय, आनन्दमय और प्रकाशमय है, उस सर्वश्रेष्ठ परब्रह्म के लिये नमस्कार है।

स्कम्भेनेमे विष्टभिते द्यौश्च भूमिश्च तिष्ठतः।
स्कम्भ इदं सर्वमात्मन्वद् यत् प्राणन्निमिषच्च यत्॥२॥

भा०—उस जगदाधार 'स्तम्भ' द्वारा थामे हुए ये दोनो आकाश और पृथ्वी स्थिर हैं, यह समस्त चेतन प्राणिसंसार जिनमे यह आत्मा भोक्ता रूप से विद्यमान है, जो प्राण लेता, और जो आंखें झपकता है, सब इस स्कम्भ मे आश्रित है।

तिस्रो ह प्रजा अत्यायमायन् न्य॒न्या अर्कमभितोऽविशन्त।
बृहन् ह तस्थौ रजसो विमानो हरितो हरिणीरा विवेश॥ ३॥
ऋ० ८। १०। १४॥

भा०—सात्विक, राजस और तामस तीन प्रजाएं अति अधिक आवागमन को प्राप्त होती हैं, और दूसरी अर्थात् त्रिगुण-अतीत, बन्धन-मुक्त प्रजाएं, अर्चना करने योग्य, परम पूजनीय परमेश्वर के पास आश्रय लेती हैं। पर महान् परमात्मा समस्त लोकों को विशेष रूप से निर्माण करता हुआ सर्वत्र विराजमान है, और वही सूर्य के समान अति प्रकाश-वान् समस्त तेजस्वी प्रकाशमान् पदार्थों या समस्त दिशाओं मे व्यापक है।

द्वा॒द॑श प्र॒धय॑श्च॒क्रमेकं॒ त्रीणि॒ नभ्या॑नि॒ क उ॒ तच्चि॑केत ।
तत्रा॑ह॒तास्त्रीणि॑ श॒तानि॑ श॒ङ्कवः॑ ष॒ष्टिश्च॒ खीला॑ अवि॒चाच॒ला ये ॥४॥
ऋ० १ । १६४ । ४८ ॥

भा०—बारह प्रधियां या पुट्ठियां हैं, एक चक्र है, तीन नाभियां हैं, उस आत्मा के स्वरूप को कौन जानता है। वहां ३६० खूंटे लगे हैं, और तीन सौ साठ कीलें भी लगी हैं, जो कि स्थिर हैं नियत हैं। यहां संवत्सररूप से आत्मा का विचार किया गया है। जैसे संवत्सर में १२ मास हैं, संवत्सर का एक चक्र है, तीन महा ऋतु हैं, और ३६० दिन और ३६० रात्रियां हैं। उसी प्रकार आत्मा में १२ प्राण हैं, अकेला आत्मा स्वयं जीवन मरण के चक्र वाला है, उसके तीन नभ्य = बन्धन सत्व, रजस्, तमस् तीन गुण हैं, ७२० कीलें हृदय की नाडियां हैं जो कि स्थिर हैं।

इ॒दं स॑वित॒र्वि जा॑नीहि॒ षड् य॒मा एक॑ एक॒जः ।
तस्मि॑न् हापि॒त्वमि॑च्छन्ते॒ य ए॑षा॒मेक॑ एक॒जः ॥ ५ ॥

भा०—हे प्राणों के प्रेरक सूर्य के समान आत्मन्! तू इसे विशेष रूप से जान कि छः जोडे हैं, और एक स्वयं उत्पन्न है। जो इनमें से एक स्वयं उत्पन्न है उसमें ही अन्य सब अपने को सम्बद्ध हुआ जानते हैं।

संवत्सरपक्ष में छः ऋतुएं ६ यम हैं, वे दो दो मासों से बने हैं, १३ वां सूर्य है। १२ मास सूर्य में अपने को बंधा पाते हैं।

अध्यात्मपक्ष में—दो कान, दो नाक, दो आंख, दो रसना और वाणी, दो हाथ, दो पांव, ये छः यम हैं। एक मन है, उसमें सब बंधे हैं और ये सब प्राण उसी में लीन होते हैं। अथवा पांच इन्द्रियें और छठा मन ये छः यम हैं। आत्मा एकज, स्वयंभू एक है। उसमें वे पांचों सम्बद्ध हैं। अथवा द्वादश प्राण छः यम अर्थात् जोडे हैं वे एक आत्मा में सम्बद्ध हैं।

आविः सन्निहितं गुहा जरन्नाम महत् पदम्।
तत्रेदं सर्वमार्पितमेजत् प्राणत् प्रतिष्ठितम्॥ ६॥

भा०—ब्रह्माण्ड में और इस शरीर मे व्यापक वह महान् ज्ञातव्य, वेद्य पदार्थ है, जो साक्षात् अति समीप मे भीतर स्थित है। उस आत्मा में यह सब गतिशील प्राण लेने वाला देह, इन्द्रिय, चित्त आदि और ब्रह्माण्ड में समस्त सूर्य चन्द्र नक्षत्र वायु आदि सब आश्रित हैं।

एकचक्रं वर्तत एकनेमि सहस्राक्षरं प्र पुरो नि पश्चा।
अर्धेन विश्वं भुवनं जजान यदस्यार्धं क्व तद् बभूव॥ ७॥
अथर्व० ११। ४। २२॥

भा०—यह परमात्मा आगे पीछे सर्वत्र विद्यमान है, वही एक मुख्य कर्तृशक्ति है, अकेला जगत् का नेता है, वह सहस्रों अक्षय शक्तियों से सम्पन्न होकर सदा विद्यमान रहता है, अपनी स्वल्प शक्ति से वह समस्त उत्पन्न होने वाले कार्य जगत् को उत्पन्न करता है और जो इस परमेश्वर की शेष अर्धशक्ति है वह कहां किस रूप मे है, नहीं कहा जा सकता।

पञ्चवाही वहत्यग्रमेषां प्रष्टयो युक्ता अनुसंवहन्ति।
अयातमस्य ददृशे न यातं परं नेदीयोऽवरं दवीयः॥८॥

भा०—पांचों प्राणों और भूतों को वहन करने वाला परमात्मा इनके अग्रभाग में मानो जुतकर इनका वहन कर रहा है, और ये पांचों इसके पीछे लगकर इसके पीछे पीछे चल रहे हैं। इस परमात्मा का न चलना तो दीखता है, और चलना दिखाई नहीं पड़ता। अर्थात् वह अचल है। वह दूर समीप है और वह समीप होकर भी अति अधिक दूर है।

तिर्यग्बिलश्चमस ऊर्ध्वबुध्नस्तस्मिन् यशो निहितं विश्वरूपम्।
तदासत ऋषयः सप्त साकं ये अस्य गोपा महतो बभूवुः॥ ९॥

भा०—एक तिरछे मुख और ऊपर को पैंदे वाला चमस अर्थात् पात्र है। उसमें नाना रूप भूतिमान बल रक्खा है। वहां उस शक्तिमान् आत्मा में सात ऋषि अर्थात् सात शिरोगत प्राण एकत्र होकर विराजते हैं। जो इस महान् आत्मा के रक्षक या द्वारपाल के समान उसको आवरण किये हुए या घेरे हुए हैं।

शतपथ ब्राह्मण के बृहदारण्यक (अ० २ । २ । ३ । ४) भाग में— 'अर्वाग्बिलश्चमस ऊर्ध्वबुध्न इतीदं तच्छिर एवं ह्यर्वाग्बिलश्चमस ऊर्ध्वबुध्नस्तस्मिन् यशो निहितं विश्वरूपं प्राणा वै यशो विश्वरूप तस्यासत ऋषयः सप्त तीरे। प्राणा वा ऋषयः प्राणानेतदाह. ।' यह शिर वह 'चमस्' या पात्र है जिसका बिल अर्थात् मुख पासे पर तिरछे खुला है, और पैंदा अर्थात् कपाल ऊपर है। उसमें यशोरूप प्राण रक्खे हैं। उस पात्र के किनारे २ सात ऋषि, सात प्राण, दो कान (गोतम और भरद्वाज), दो चक्षु (विश्वामित्र और जमदग्नि), दो नासिका (वसिष्ठ और कश्यप), और मुख (अत्रि) ये सात ऋषि विराजते हैं, जो इसके 'गोपा' पहरेदार के समान उसको घेरे हैं।

या पुरस्ताद् युज्यते या च पश्चाद् या विश्वतो युज्यते या च सर्वतः।
यया यज्ञः प्राङ् तायते तां त्वा पृच्छामि कतमा सर्चाम् ॥१०॥(२६)

भा०—ऋचाओं में से वह कौन सी अर्चनीय शक्ति है जो आगे २ भी जुती रहती है और पीछे भी जुती रहती है, जो विश्व में जुती रहती है, तथा सब ओर जुती रहती है, और जिससे विश्वरूप ब्रह्माण्ड पूर्वाभिमुख होकर विस्तृत किया गया है। (देखो, गोपथ ब्रा० १ । १ । २२ ॥ 'ऋचोऽक्षरे परमे व्योमन्०' इत्यादि)।

यदेजति पतति यच्च तिष्ठति प्राणदप्राणन्निमिषच्च यद् भुवत्।
तद् दाधार पृथिवीं विश्वरूपं तत् संभूय भवत्येकमेव ॥ ११ ॥

भा०—यह जो कुछ कम्पन कर रहा है, चल रहा है, और जो खड़ा है, प्राण ले रहा है या प्राण नहीं ले रहा, और झपक रहा है, और सत्ता

वाला है, उस सर्वरूप जगत् को वह परमात्मा ही धारण कर रहा है, वही पृथिवी को धारण करता है वह जगत् एकत्र होकर प्रलयकाल में इस परमात्मा में ही एक हो जाता है।

अनन्तं विततं पुरुत्रानन्तमन्तवच्चा समन्ते ।
ते नाकपालश्चरति विचिन्वन् विद्वान् भूतमुत भव्यमस्य ॥ १२ ॥

भा०—सीमारहित परम कारण और सीमा युक्त कार्य ये दोनों ही एक दूसरे की सीमा हैं। वस्तुतः देखें तो रहित कारण पदार्थ ही है जो नाना रूपों में प्रकट रूप से फैला है, परन्तु कारण और कार्य उन दोनो प्रकार के जगत् को मोक्षधाम का पालक वह प्रभु परमात्मा ही, जो इस विश्व के उत्पन्न हुए अतीत को और उत्पन्न होने वाले भविष्यत् को जानता है वह इन दोनों में विवेक करता हुआ उन दोनों को वश कर रहा है।

प्रजापतिश्चरति गर्भे अन्तरदृश्यमानो बहुधा वि जायते ।
अर्धेन विश्वं भुवनं जजान यदस्यार्धं कतमः स केतुः ॥ १३ ॥

पूर्वार्धः यजु० ३१ । १९ पूर्वार्धेन सम ॥

भा०—गर्भ के भीतर जिस प्रकार आत्मा बिना दीखे ही विचरता है, और बहुत प्रकार से नाना योनियों में नाना शरीर धारण कर उत्पन्न होता है, इसी प्रकार प्रजा का पालक वह प्रभु इस प्रकृति रूपी गर्भ के भीतर विचरता है, और स्वयं दृष्टिगोचर न होता हुआ भी सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र आदि विविध शक्तियो के रूपो में प्रकट होता है। वह आधे जड़ या प्रकृतिमय भाग से समस्त कार्य जगत् को प्रकट करता है और जो इसका शेष अर्ध—आधा या परम सूक्ष्म रूप है वह ज्ञानमय पुरुष कौनसा है? पता नहीं। अथवा वह ज्ञानमय पुरुष 'क-तम = अतिशय सुख स्वरूप है।

ऊर्ध्वं भरन्तमुदकं कुम्भेनेवोदहार्यम् ।
पश्यन्ति सर्वे चक्षुषा न सर्वे मनसा विदुः ॥ १४ ॥

भा०—सिर के ऊपर पानी के घड़े को उठाये हुए व्यक्ति को आंख से देखकर घड़े के द्वारा जिस प्रकार सब लोग कहार या धीवर रूप में देखते हैं उसी प्रकार उस प्रभु को सभी लोग आंखों से उसके कार्यों को देखकर उसका अनुमान तो करते हैं, परन्तु मन से या ज्ञान साधन से उसका साक्षात् ज्ञान नहीं करते हैं।

दूरे पूर्णेन वसति दूर ऊनेन हीयते।
महद् यक्षं भुवनस्य मध्ये तस्मै बलिं राष्ट्रभृतो भरन्ति ॥ १५ ॥

भा०—वह परब्रह्म दूर रह कर भी पूर्ण ब्रह्माण्ड के साथ रहता है, और दूर रह कर ही अल्प परिमाण वाले इस जगत् से परे भी बना रहता है। वह महान् पूजनीय देव इस सत्तावान् जगत् के बीच में व्यापक है। उसके लिये दीप्तिमान् सूर्यादिक भी, बलि या कर, उपहार और भेंट प्रदान करते हैं, जैसे कि राष्ट्रों के पति सम्राट् को भेंट दिया करते हैं।

यतः सूर्य उदेत्यस्तं यत्र च गच्छति।
तदेव मन्येऽहं ज्येष्ठं तदु नात्येति किं चन ॥ १६ ॥

भा०—जिससे सूर्य उदय अर्थात् उत्पन्न होता, और जहां अस्त अर्थात् पुनः प्रलय काल में लीन हो जाता है, उसको ही मैं सबसे श्रेष्ठ ब्रह्म मानता हूं। उसको बड़प्पन में कोई लांघ नहीं सकता।

ये अर्वाङ् मध्य उत वा पुराणं वेदं विद्वांसमभितो वदन्ति।
आदित्यमेव ते परि वदन्ति सर्वे अग्निं द्वितीयं त्रिवृतं च हंसम् ॥ १७ ॥

भा०—जो विद्वान् लोग वर्तमान काल में विद्यमान, मध्यकाल में वर्तमान, और प्राचीनकाल में वर्तमान वेदमयज्ञान को जानने वाले पुरुष के विषय में सर्वत्र वर्णन किया करते हैं, वे सब विद्वान् समस्त ब्रह्माण्ड को अपने भीतर ले लेने वाले उस महान् पुरुष को ही लक्ष्य करके वर्णन करते हैं, और उससे दूसरे दर्जे पर ज्ञान से युक्त मुक्त जीव का वर्णन

किया करते हैं, और तीसरे दर्जे पर हंस अर्थात् शरीर मे गमनागमन करने वाले, त्रिगुण-प्रकृति के बंधन से थंभे, अहंकारवान् जीव के विषय मे वर्णन किया करते हैं।

सहस्राह्ण्यं वियतावस्य पक्षौ हरेर्हंसस्य पततः स्वर्गम्।
स देवान्त्सर्वानुरस्युपदद्य संपश्यन् याति भुवनानि विश्वा ॥१८॥
अथर्व० १३।२।३८॥ १३।३।१४॥

भा०—आदित्य के समान तेजस्वी जो महान् परमात्मा है वह मानो आकाश में उड रहा है, और इसके लिये उसके दोनों पंख अर्थात् द्युलोक और भूलोक हजारों दिनो से खुले हुए हैं। वह आकाश के समस्त तेजस्वी पदार्थों को अपने विशाल वक्ष.स्थल पर लेकर समस्त लोको को देखता हुआ मानो जाता है।

सत्येनोर्ध्वस्तपति ब्रह्मणार्वाङ् वि पश्यति।
प्राणेन तिर्यङ् प्राणति यस्मिन् ज्येष्ठमधि श्रितम् ॥ १९ ॥

भा०—वह महान् ब्रह्म सत्य के प्रकाश से सबसे ऊपर विराजमान होकर तपता है और वेद ज्ञान द्वारा निचले इस कार्य जगत् को नाना प्रकार से प्रकाशित करता है, वह प्राणरूप वायु द्वारा तिर्यक् जगत् को भी जीवन प्रदान करता है। उसमे ही सर्वश्रेष्ठ वेदज्ञान स्थित है।

यो वै ते विद्यादरणी याभ्यां निर्मथ्यते वसु।
स विद्वान् ज्येष्ठं मन्येत स विद्याद् ब्राह्मणं महत् ॥ २० ॥ (२७)

भा०—जो विद्वान पुरुष उन दो अरणियों को जानता है जिनसे कि इस ब्रह्माण्ड में बसने वाली ब्रह्माग्नि मथ कर प्रकाशित कर ली जाती है, वही विद्वान् पुरुष श्रेष्ठ ब्रह्म को जानता है, वही बडे ब्रह्म के स्वरूप को जान लेता है।

श्वेताश्वतर उप० में अ० १।१४॥
स्वदेहमरणिं कृत्वा प्रणवं चोत्तरारणिम्।
ध्यान निर्मथनाभ्यासादेव पश्येत् निगूढवत् ॥

अपने देह को निचली अरणि बनाकर प्रणव 'ओ३म्' को उत्तर अरणि बनावे, और ध्यान के मंथन-दण्ड से बराबर रगड़े तो परम गूढ़ आत्माग्नि के भी दर्शन हो जाते हैं।

अपादग्रे समभवत् सो अग्रे स्वरा भरत् ।
चतुष्पाद् भूत्वा भोग्यः सर्वमादत्त भोजनम् ॥ २१ ॥

भा०—सृष्टि के पूर्व वह परम पुरुष 'अपात्' अविज्ञेय रूप, 'अमात्' स्वरूप रहा। और सृष्टि के उत्पन्न होने के पूर्व वह सुखमय, प्रकाशमय मोक्ष धाम को धारण करता था। वह पुनः धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को प्रकट करके 'चतुष्पात्' होकर, और सब संसार का भोक्ता बन कर समस्त संसार को अपना भोजन बना कर, अपने भीतर लीन कर लेता है, प्रलय में ले लेता है।

भोग्योऽभवदथोऽन्नमदद् बहु ।
यो देवमुत्तरावन्तमुपासाते सनातनम् ॥ २२ ॥

भा०—वह पुरुष समस्त संसार को अपना भोग्य बनाने वाला होकर अर्थात् सबका प्रभु होकर विराजता है, वह ही बहुत सा अन्न अथवा खाने के पदार्थ जीवों को भी प्रदान करता है, जो सबसे उत्कृष्ट पद को प्राप्त इस सनातन देव की उपासना करता है।

सनातनमेनमाहुरुताद्य स्यात् पुनर्णवः ।
अहोरात्रे प्र जायेतेऽअन्योऽअन्यस्य रूपयोः ॥ २३ ॥

भा०—उस परम पुरुष को सनातन पुरुष कहा करते हैं। परन्तु वह तो आज भी फिर भी नया का नया ही है। जैसे दिन और रात सनातन काल से आते हुए भी बराबर नये नये उत्पन्न होते रहते हैं तो भी अपने अपने रूपों में सदा से वे रहते हैं।

शतं सहस्रमयुतं न्यर्बुदमसंख्येयं स्वमस्मिन् निविष्टम् ।
तदस्य घ्नन्त्यभिपश्यत एव तस्माद् देवो रोचत एष एतत् ॥ २४ ॥

भा०—इस परम पुरुष में सैकड़ों, हजारों, दसों हज़ार, लक्षों और असंख्य धन रक्खा है। इसके देखते हुए ही समस्त लोक इसके उस धन को प्राप्त करते रहते हैं। इसलिये वह परम देव जगत् को रुचता है, यह बात सत्य है।

वालादेकमणीयस्कमुतैकं नेव दृश्यते।
ततः परिष्वजीयसी देवता सा मम प्रिया ॥ २५ ॥

भा०—एक वस्तु जो केश से भी अत्यन्त सूक्ष्म है और जो एक वस्तु नहीं के समान दीखती है। तो फिर जो सत्ता उससे भी सूक्ष्म वस्तु के भीतर व्यापक है, अति सूक्ष्मतम है वह देवता मेरे हृदय को तृप्त करता, एवं प्रिय लगता है। मैं उसका उपासक हूं।

इयं कल्याण्य१जरा मर्त्यस्यामृता गृहे।
यस्मै कृता शये स यश्चकार जजार सः ॥ २६ ॥

भा०—यह कल्याणमयी और कभी जीर्ण न होने वाली परम चिति-शक्ति मरणशील जीव के देह में भी अमृत है। जिस जीवात्मा के भले के लिये यह परम चितिशक्ति जीवात्मा के भीतर शयन कर रही है वह जीवात्मा यह है जो कि कर्म करता है और बार बार जीर्ण होता रहता है।

त्वं स्त्री त्वं पुमानसि त्वं कुमार उत वा कुमारी।
त्वं जीर्णो दण्डेन वञ्चसि त्वं जातो भवसि विश्वतोमुखः ॥२७॥
श्वेता० उप० ४ । ३ ॥

भा०—हे जीवात्मन्! तू स्त्री है, तू पुरुष है, तू कुमार है और तू कुमारी है। तू ही बूढ़ा होकर दण्ड हाथ में लेकर चलता है। तू ही शरीरधारीरूप में उत्पन्न होकर नाना प्रकार के मुखों वाला होता रहता है।

उतैषां पितोत वा पुत्र एषामुतैषां ज्येष्ठ उत वा कनिष्ठः।
एको ह देवो मनसि प्रविष्टः प्रथमो जातः स उ गर्भे अन्तः ॥२८॥

भा०—यह जीवात्मा कभी तो इन बालकों का पिता बनता है और कभी इसका पुत्र बन जाता है। यह भाइयों में कभी ज्येष्ठ भाई

और कनिष्ठ भाई बन जाता है। वह एक एक जीवात्मा एक एक मन या अन्तःकरण में प्रविष्ट रहता है, वही पहिले भी शरीर ग्रहण करके उत्पन्न होता रहा है, और वह ही गर्भ मे नए नए रूप में आता रहता है।

पूर्णात् पूर्णमुदचति पूर्णं पूर्णेन सिच्यते।
उतो तदद्य विद्याम यतस्तत् परिषिच्यते ॥ २९ ॥

भा०—पूर्ण परमेश्वर से पूर्ण जगत् उत्पन्न होता है। पूर्ण परमेश्वर से यह समस्त जगत् माली से वाटिका के समान सींचा जा रहा है। और अब उस परब्रह्म का हम ज्ञान करें जिससे कि यह जगत् सींचा जा रहा है।

एषा सनत्नी सनमेव जातैषा पुराणी परि सर्वं बभूव।
मही देव्युषसो विभाती सैकेनैकेन मिषता वि चष्टे ॥३०॥ (२८)

भा०—वह पुराण शक्ति अति पुरातनकाल ही से विद्यमान है। वह अति पुराण शक्ति समस्त संसार मे व्यापक है। वह महती दिव्यशक्ति समस्त उषाओं को प्रकाशित करने हारी है। वही प्रत्येक निमेषोन्मेष में, प्रत्येक क्षण क्षण में सबको देख रही है।

अविर्वै नाम देवतर्तेनास्ते परीवृता।
तस्या रूपेणेमे वृक्षा हरिता हरितस्रजः ॥ ३१ ॥

भा०—वह 'अवि" सर्वपालक देवता है जो 'ऋत' परम सत्य मे व्याप्त है। उसके रोचक रूप से ही ये वृक्ष हरे भरे हैं और हरी पत्र-मालाओं से ढके हैं।

अन्ति सन्तं न जहात्यन्ति सन्तं न पश्यति।
देवस्य पश्य काव्यं न ममार न जीर्यति ॥ ३२ ॥

भा०—पुरुष समीप विद्यमान उस परमदेव को कभी दूर नहीं कर सकता, कभी नहीं त्याग सकता, कभी उससे अलग नहीं हो सकता। और वह पुरुष समीप में विद्यमान उस परमदेव को देखता भी नहीं है।

इसके लिये उस परम देव के वेद रूपी काव्य को देख जो काव्य कि न कभी मरता है और न जीर्ण होता है—पुराना होता है।

अ॒पू॒र्वेणे॑षि॒ता वाच॒स्ता व॑दन्ति यथाय॒थम्।
व॒दन्ती॒र्यत्र॒ गच्छ॑न्ति॒ तदा॑हु॒र्ब्राह्म॑णं म॒हत्॥ ३३॥

भा०—जिसके पूर्व मे कोई न था उस सबके आदि भूत परमेश्वर से प्रेरित वेदवाणियां सत्य सत्य ही तत्व का वर्णन करती है। वे यथार्थ तत्व का वर्णन करती हुई जहां जाती और विश्राम लेती है अर्थात् जहां पहुंचती है उस परम महान् को ऋषि लोग ब्रह्म अर्थात् वेद का प्रवक्ता कहते हैं।

यत्र॑ दे॒वाश्च॑ मनु॒ष्या॒श्चा॒रा नाभा॑विव श्रि॒ताः।
अ॒पां त्वा॒ पुष्पं॑ पृच्छामि॒ यत्र॒ तन्मा॒यया॑ हि॒तम्॥ ३४॥

भा०—जिसमे सूर्य आदि देव और मनुष्य धुरी मे अरों के समान आश्रित हैं, हे विद्वन्! तुम से मैं प्रकृति की उस विकासावस्था के सम्बन्ध मे प्रश्न करता हूं जिस विकासावस्था मे कि वह ब्रह्म अपनी शक्ति के साथ स्थित रहता है।

येभि॒र्वात॑ इषि॒तः प्र॒वाति॒ ये दद॑न्ते॒ पञ्च॒ दिशः॑ स॒ध्रीचीः॑।
य आहु॑तिम॒त्यम॑न्यन्त दे॒वा अ॒पां ने॒तारः॑ कत॒मे त आ॑सन्॥३५॥
जै० उ० ब्रा० १। ३४॥

भा०—जिनसे प्रेरित होकर वायु बहता है, और जो एक साथ मिली हुई पांचो दिशाओ को विभक्त कर लेते हैं या धारण करते हैं, और जो प्रकाश युक्त पदार्थ आहुति या आहुति अर्थात् प्रजा की पुकार या प्रार्थना अभिलाषा को नहीं जानते हैं अर्थात् जड हैं, वे सूक्ष्म जलों वा प्राणो या सूक्ष्म प्रकृति परमाणुओं के प्रणेता कौन हैं?

इ॒माम॑षां पृ॑थि॒वीं वस्त॒ एको॑ऽन्तरि॑क्षं॒ पर्येको॑ बभूव।
दिव॑मेषां ददते॒ यो वि॑ध॒र्ता विश्वा॒ आशाः॒ प्रति॑ रक्ष॒न्त्येके॑॥३६॥
जै० उ० ब्रा०॥

भा०—इनमें से एक अग्नि नामक देव इस पृथिवी में व्यापक है। दूसरा वायु अन्तरिक्ष में व्यापक है। इनमें से एक सूर्य द्यौ को धारण करता है जो समस्त सौर जगत् की विविध प्रकार से धारण करता है। और कुछ चन्द्रमा, नक्षत्र आदि देव समस्त दिशाओं को पालते हैं।

यो विद्यात् सूत्रं वितंतं यस्मिन्नोताः प्रजाऽइमाः।
सूत्रं सूत्रस्य यो विद्यात् स विद्याद् ब्राह्मणं महत् ॥ ३७ ॥

भा०—जिसमें ये समस्त प्रजाएं ओतप्रोत पिरोई हुई हैं जो विद्वान् उस विस्तृत प्रकृति रूपी सूत्र को जानता है, और जो उस सूत्र के भी सूत्र को जानता है वह महान् ब्रह्म के रूप को जानता है।

वेदाहं सूत्रं वितंतं यस्मिन्नोताः प्रजा इमाः।
सूत्रं सूत्रस्याहं वेदाथो यद् ब्राह्मणं महत् ॥ ३८ ॥

भा०—मैं उस व्यापक प्रकृति रूपी सूत्र को जानता हूं जिसमें ये प्रजाएं बिनी हुई हैं, मैं सूत्र के भी सूत्र को जानता हूं, जो कि महान् ब्रह्म है।

यदन्तरा द्यावापृथिवी अग्निरैत् प्रदहन् विश्वदाव्यः।
यत्रातिष्ठन्नेकपत्नीः परस्तात् क्वेवासीन्मातरिश्वा तदानीम् ॥३९॥

भा०—जब ज़मीन और आकाश दोनों के बीच जाज्वल्यमान और समस्त संसार को जलाने हारा अग्नि देव व्याप जाता है, जब कि दूर तक दिशाएं उस एक महान् अग्नि की पत्नी अर्थात् पालक शक्तियों के समान समस्त दिशाएं खड़ी रहती हैं, तब प्रलय काल में वायु कहां रहता है?

अप्स्वासीन्मातरिश्वा प्रविष्टः प्रविष्टा देवाः सलिलान्यासन्।
बृहन् ह तस्थौ रजसो विमानः पवमानो हरित आ विवेश ॥४०॥

भा०—वायु उस समय प्रकृति के सूक्ष्म परमाणुओं में प्रविष्ट रहता है, और अन्य देव भी प्रकृति के सूक्ष्म परमाणुओं में ही प्रविष्ट हो जाते हैं। उस समय वह महान् सब का सञ्चालक परमेश्वर लोकों की रचना

करने वाला विद्यमान रहता है, और वह समस्त जाज्वल्यमान दिशाओं में भी व्यापक रहता है ।

उत्तरेणेव गायत्रीममृतेऽधि वि चक्रमे ।
साम्ना ये साम संविदुरजस्तद् ददृशे क्व ॥ ४१ ॥

भा०—साधक पुरुष गय अर्थात् प्राणों की रक्षा करने वाली चिति-शक्ति को पार करके उससे ऊपर विराजमान अमृत आत्मा के स्वरूप को प्राप्त करते हैं । जो योगी लोग साम अर्थात् शान्त अपनी आत्मा से 'साम' अर्थात् शान्त उस परब्रह्म को जान लेते हैं, वे ही जानते हैं कि उस समय अजन्मा परमात्मा कहां या किस दशा में साक्षात् होता है ।

निवेशनः संगमनो वसूनां देव इव सविता सत्यधर्मा ।
इन्द्रो न तस्थौ समरे धनानाम् ॥ ४२ ॥

यजु० १२ । ६६ ॥ ऋ० १० । १३९ । ३ ॥

भा०—वह देवाधिदेव सूर्य के समान सत्य के बल से समस्त संसार को धारण करने हारा, समस्त जगत् का आश्रय, और पञ्चभूतों का सङ्गमस्थान है । ऐश्वर्यों के निमित्त होने वाले संग्रामों में स्थिर होकर लड़ने वाले सेनापति की न्याईं वह विरोधी शक्तियों का पराजय करता है ।

पुण्डरीकं नवद्वारं त्रिभिर्गुणेभिरावृतम् ।
तस्मिन् यद् यक्षमात्मन्वत् तद् वै ब्रह्मविदो विदुः ॥ ४३ ॥

भा०—नौ द्वारों वाला पुण्डरीक अर्थात् कमल के समान वर्तमान यह शरीर तीन गुणों से घिरा है । उसमें जो पूजनीय ब्रह्मतत्व रहता है, जो कि जीवात्मा के साथ साथ रहता है उसको ही ब्रह्मज्ञानी पुरुष साक्षात् करते हैं ।

अकामो धीरो अमृतः स्वयंभू रसेन तृप्तो न कुतश्चनोनः ।
तमेव विद्वान् न बिभाय मृत्योरात्मानं धीरमजरं युवानम् ४४ (२६)

भा०—वह अपनी सत्ता से सामर्थ्यवान्, संकल्पों से रहित, धीर,

अविनाशी और आनन्द रस से तृप्त है। वह किसी प्रकार भी और कहीं से भी न्यून नहीं है। वह सर्वतः पूर्ण है। उस धीर, अजर, अमर, नित्य तरुण, आत्मा को ही जान कर विद्वान् पुरुष से नहीं डरता।

इति चतुर्थोऽनुवाकः।

[तत्र सूक्ते द्वे, ऋचश्चाष्टाशीतिः]

[६] 'शतौदना' नाम प्रजापति की शक्ति का वर्णन।

अथर्वा ऋषिः। मन्त्रोक्ता शतौदना देवता। १ त्रिष्टुप्। २—११, १३—२४ अनुष्टुभः। १२ पथ्यापंक्तिः। २५ द्व्युष्णिग्गर्भा अनुष्टुप्। २६ पञ्चपदा बृहत्यनुष्टुब् उष्णिग्गर्भा जगती। २७ पञ्चपदा अतिजगत्यनुष्टुब्गर्भा शक्वरी।

सप्तविंशत्यृचं सूक्तम्।

अ॒घा॒य॒तामपि॑ नह्या॒ मुखा॑नि स॒पत्ने॑षु॒ वज्र॒मर्प॑येतम्।
इन्द्रे॑ण द॒त्ता प्र॑थ॒मा श॒तौद॑ना भ्रातृ॒व्य॒घ्नी यज॑मानस्य गा॒तुः ॥१॥

भा०—हे राजन्! प्रभो! पापाचारी लोगों के मुखों को या मुख्य पुरुषों को बांध डाल। और तेरे राष्ट्र पर अपना स्वामित्व जमाने वाले शत्रुओं पर इस वज्र को चला। इस प्रकार की परमेश्वर से, या राजा से प्रदान की हुई सर्वश्रेष्ठ और सैकड़ों वीर्य वाली, तथा शत्रुओं का नाश करने वाली शक्ति यज्ञ अर्थात् राष्ट्रमय व्यवस्था करने वाले के लिये सन्मार्ग है।

'शतौदना'—प्रजापतिवर्गो ओदनः। श० १३। ३। ६। ७॥ तै० ३। ८। ३॥ जिस शक्ति में सैकड़ों प्रजापालक पुरुष विद्यमान हों वह साम्राज्यशक्ति 'शतौदना' है। जो सब राष्ट्र को सुसंगठित करता है वह 'यजमान' है। यह पृथ्वी 'शतौदना' गौ है। अथैष गोसवः स्वाराज्यो यज्ञः। तां० १९। १३। १। स्वराज्य प्राप्त करने को विशाल यज्ञ 'गोसव' या 'गोमेध' है। इस तत्त्व को न जानकर गोमेध में गौ को मारने आदि का उल्लेख करने वालों का अज्ञान प्रकट होता है।

वेदिष्टे चर्म भवतु बर्हिर्लोमानि यानि ते ।
एषा त्वा रशनाग्रभीद् ग्रावा त्वैषोऽधि नृत्यतु ॥ २ ॥

भा०—पृथ्वी का 'गो' स्वरूप वर्णन करते हैं । हे पृथ्वीरूप गौ ! तेरे ऊपर बनी यह वेदि चर्म अर्थात् ऊपर का आवरण है, और कुशा आदि ओषधियां लोम रूप हैं । यह 'रशना' रस्सी राजा की राज-व्यवस्था है जो तुझे बांधती है । यह विद्वान् वाग्मी पुरुष या क्षत्रिय राजा व प्रजा तेरे ऊपर आनन्द प्रसन्न होकर रहे ।

विशो ग्रावाणः ॥ श० ३ । ९ । ३ । ३ ॥ विद्वांसो हि ग्रावाणः ॥ श० ३ । ९ । ३ । ४० ॥ प्रजाएं और विद्वान् 'ग्रावा' कहाते हैं ।

बालास्ते प्रोक्षणीः सन्तु जिह्वा सं मार्ष्ट्वघ्न्ये ।
शुद्धा त्वं यज्ञिया भूत्वा दिवं प्रेहि शतौदने ॥ ३ ॥

भा०—प्रोक्षणियां तेरे पूंछ के बाल के समान हैं । हे गौ के समान न मारने योग्य पृथिवी ! तेरी जिह्वा अग्नि संमार्जन, परिशोधन करती है । इस प्रकार तू यज्ञ की हितकारिणी शुद्ध होकर हे शतौदने ! शतवीर्ये ! तू आकाशमार्ग में गमन करती है । द्युलोक में भी गमन करती है ।

यः शतौदनां पचति कामप्रेण स कल्पते ।
प्रीता ह्यस्यर्त्विजः सर्वे यन्ति यथायथम् ॥ ४ ॥

भा०—जो इस शतवीर्यवती पृथिवी को यथा-समय परिपाक करता है, वह अपने समस्त संकल्पों को पूर्ण करने वाले फल से सम्पन्न हो जाता है । और उस राजा के यथा ऋतु यज्ञ सम्पादन करने वाले अन्य विद्वान् पुरुष भी सुप्रसन्न, तृप्त होकर सब ठीक ठीक काम करते और फल प्राप्त करते हैं ।

स स्वर्गमा रोहति यत्रादस्त्रिदिवं दिवः ।
अपूपनाभिं कृत्वा यो ददाति शतौदनाम् ॥ ५ ॥

भा०—वह सुखमय राज्य पर चढ़ता है, अभिषिक्त होता है जहां तेजोमय लोक के तीनों तेजों से सम्पन्न लोक है, जो कि शतवीर्यों से युक्त

पृथिवी को अपूप अर्थात् अक्षीण राजशक्ति को नाभि या केन्द्र में स्थापित करके राष्ट्र वासियों को प्रदान करता है।

अपूपनाभिः—इन्द्रियम् अपूपः। ऐ० २। २४॥ इन्द्रस्य वीर्यम् इन्द्रियम्। तन्नाभिः सन्नहन बलं यस्याः सा अपूपनाभिः। जिस पृथिवी को राजा का वीर्य सुबद्ध, सुव्यवस्थित करता है वह 'अपूपनाभि' शतौदना पृथिवी है। जो राजा ऐसे सुव्यवस्थित राष्ट्र को बना देता है वह अपने राष्ट्र में तीनों लोकों का सुख प्राप्त करता है।

स तांल्लोकान्त्समाप्नोति ये दिव्या ये च पार्थिवाः।
हिरण्यज्योतिषं कृत्वा यो ददाति शतौदनाम् ॥ ६ ॥

भा०—जो शतवीर्यों वाली पृथिवी को सुवर्णमय सम्पत्ति से युक्त करके प्रदान करता है वह जो दिव्य और जो पार्थिव, पृथिवी पर विद्यमान सुन्दर लोकस्थान हैं उन लोकों को भी प्राप्त कर लेता है।

ये ते देवि शमितारः पक्तारो ये च ते जनाः।
ते त्वा सर्वे गोप्स्यन्ति मैभ्यो भैषीः शतौदने ॥ ७ ॥

भा०—हे देवि ! पृथिवि ! तेरे जो कल्याण करने वाले, और तुझे परिपक्व करने वाले, और जो तेरे ऊपर रहने वाले नाना प्रकार के जन्तु प्रजाजन हैं, वे तेरी सब रक्षा करेंगे। इनमे हे शतवीर्ये पृथिवी ! भय मत कर।

अध्रिगुश्च अपापश्चोभौ देवाना शमितारौ। तै० ३। ६। ६। ४॥ मृत्युस्तदभवद् धाता शमितोग्रो विशांपतिः। तै० ३। १२। ९। ६॥ अर्थात् अध्यक्ष निष्पाप, राजा, प्रजापालक, दुष्टों को दण्ड देने वाले लोग पृथिवी के शमिता है, जो उनको विभाग करके प्रजा को बांटते और उसमें खेती करते हैं।

वसवस्त्वा दक्षिणत उत्तरान्मरुतस्त्वा।
आदित्याः पश्चाद् गोप्स्यन्ति साग्निष्टोममति द्रव ॥ ८ ॥

भा०—हे पृथिवि ! तुझको वसु लोग दक्षिण दिशा से, वैश्यगण तुझे उत्तर दिशा से और ज्ञानी पुरुष तुझे पीछे से रक्षा करेंगे। वह तू अग्निस्तोम नामक यज्ञ को पार कर जा।

'अग्निष्टोमः'—स वा एषोऽग्निरेव यदग्निष्टोमः। तं यदस्तुवँस्तस्मादग्निस्तोमः। ऐ० ३। ४३॥ यो ह वा एष सूर्यः तपति एषोऽग्निष्टोमः एष साह्नः। गो० उ० ४। १०॥ अग्निष्टोमौ वै संवत्सरः। ऐ० ४। १५॥ अग्निष्टोमेन वै देवा इमं (भू) लोकमभ्यजयन्। ता० ९। २। ९॥ प्रतिष्ठा वा अग्निष्टोमः। श० ३। ३। ३। २॥

अग्नि अर्थात् शत्रु-संतापक राजा स्वयं 'अग्निष्टोम' है। उसी की उसमें स्तुति होती है। अथवा सूर्य पृथ्वी को तपाता है यह अग्निष्टोम का स्वरूप है। संवत्सर अग्निष्टोम है। अग्निष्टोम से इस भूलोक का विजय किया जाता है। इस लोक में प्रतिष्ठा प्राप्त करना 'अग्निष्टोम' है।

देवाः पितरो मनुष्या गन्धर्वाप्सरसश्च ये।
ते त्वा सर्वे गोप्स्यन्ति सातिरात्रमति द्रव ॥ ९ ॥

भा०—विद्वान् जन पितृ लोग, पालक, देश के वृद्ध लोग, मननशील प्रजाएं, युवक लोग, और जो स्त्रियें हैं, वे सब तेरी रक्षा करेंगे, वह तू 'अति रात्र' नामक यज्ञ को पार कर जा।

'अतिरात्रः'—भूतं पूर्वो अतिरात्रो भविष्यदुत्तरः, पृथिवी पूर्वोऽतिरात्रो द्यौरुत्तर.॥ अग्नि. पूर्वोऽतिरात्र., आदित्य उत्तरः। प्राणः पूर्वोऽतिरात्र, उदान उत्तर.। ता० १०। ४। १॥ चक्षुषी अतिरात्रौ। ता० १०। ४। २॥ प्रतिष्ठा वा अतिरात्र.॥ श० ५। ५। ३। ५॥ भूत और भविष्यत्, पृथिवी और द्यौः, अग्नि और सूर्य, प्राण और उदान ये दो २ जोड़ें अतिरात्र हैं। जैसे देह में आंखें हैं उसी प्रकार राष्ट्र के निरीक्षक लोग अतिरात्र के रूप हैं। राज्य की प्रतिष्ठा 'अतिरात्र' है।

अन्तरिक्षं दिवं भूमिमादित्यान् मरुतो दिशः।
लोकान्त्स सर्वानाप्नोति यो ददाति शतौदनाम् ॥१०॥ (३०)

भा०—जो शतवीर्या भूमि को प्रदान करता है वह अन्तरिक्ष, द्यौः, भूमि और आदित्यों, वायुओं, दिशाओं और समस्त लोकों को प्राप्त होता है ।

घृतं प्रोक्षन्तीं सुभगा देवी देवान् गमिष्यति ।
पक्तारमघ्न्ये मा हिंसीर्दिवं प्रेहि शतौदने ॥ ११ ॥

भा०—हे पृथिवि ! तू घृत आदि पदार्थों को देने वाली, गौ के समान, अन्न और पुष्टिकारक जल को सर्वत्र अपने समस्त प्रदेशों में नदियों और झरनों द्वारा सींचती हुई, उत्तम अन्न रत्नादि ऐश्वर्य से युक्त होकर, समस्त पदार्थों के देनेहारी होकर, विद्वान् दानियों को प्राप्त होगी । हे न हिंसा करने योग्य देवि ! गौ के समान पृथ्वी ! तू अपने परिपाक करने वाले, तुझे वहु गुणसम्पन्न करने वाले राजा को मत मार । प्रत्युत, स्वयं हे सैकड़ों अन्नादि वीर्यों को धारण करने हारी तू स्वर्ग के समान सुखकारी लोक बन जाने के प्रति गमन कर, अर्थात् राजा को प्राप्त होकर धन धान्य सम्पन्न होकर स्वर्ग भूमि के समान हो जा ।

ये देवा दिविषदो अन्तरिक्षसदश्च ये ये चेमे भूम्यामधि ।
तेभ्यस्त्वं धुक्ष्व सर्वदा क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥ १२ ॥

भा०—जो दान देने वाले और ज्ञान के प्रकाशक और सब तत्वों के यथार्थ द्रष्टा विद्वान् मस्तिष्क के कार्य में विराजमान रहते हैं, और जो विद्वान् अन्तरिक्ष में स्थित वायु आदि पदार्थों और वायु विद्या के ज्ञाता हैं, और जो जल समुद्रादि पदार्थों के ज्ञाता, विद्वानगण भूमि पर विराजते हैं, उनके लिये तू सब कालों में दूध, घृत आदि पौष्टिक पदार्थ और अन्न, मधुर पदार्थ गौ के समान उत्पन्न कर ।

यत् ते शिरो यत् ते मुखं यौ कर्णौ ये च ते हनू ।
आमिक्षां दुह्रतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥ १३ ॥

भा०—हे देवि ! जो तेरा सिर है, जो तेरा मुख है, जो तेरे दो

कान हैं और जो तेरे जबाडे हैं, वे सब दानशील पुरुष को दही, दूध, घी और मधुर पदार्थ प्रदान करें, उत्पन्न करें ।

यौ त ओष्ठौ ये नासिके ये शृङ्गे ये च तेऽक्षिणी । आमिक्षां० १४
यत् ते क्लोमा यद्धृदयं पुरीतत् सहकण्ठिका । आमिक्षां० ॥१५॥
यत् ते यकृद् ये मतस्ने यदान्त्रं याश्च ते गुदाः । आमिक्षां० ॥१६॥
यस्ते प्लाशिर्यो वनिष्ठुर्यौ कुक्षी यच्च चर्म ते । आमिक्षां० ॥१७॥
यत् ते मज्जा यदस्थि यन्मांसं यच्च लोहितम् । आमिक्षां० ॥१८॥
यौ ते बाहू ये दोषणी यावंसौ या च ते ककुत् । आमिक्षां० ॥१९॥
यास्ते ग्रीवा ये स्कन्धा याः पृष्टीर्याश्च पर्शवः । आमिक्षां० २०(२१)
यौ त ऊरू अष्ठीवन्तौ ये श्रोणी या च ते भसत् । आमिक्षां ॥२१॥
यत् ते पुच्छं ये ते बाला यदूधो ये च ते स्तनाः । आमिक्षां० ॥२२॥
यास्ते जङ्घा याः कुष्ठिका ऋच्छरा ये च ते शफाः । आमिक्षां० २३

भा०—(१४) तेरे जो ओठ हैं, जो नासिकाएं हैं, जो दो सींग हैं, और जो तेरी दो आखें हैं । (१५) जो तेरा फ़ेफड़ा है, जो तेरा हृदय है, और जो कण्ठ सहित मलाशय की बडी आंत है । (१६) जो तेरा कलेजा है, जो गुर्दे हैं, जो आतें है, जो तेरी गुदा भाग की आंत है । (१७) जो तेरी पिलही है, जो तेरा गुदा भाग है, जो दो कोख हैं, और जो तेरा चर्म है । (१८) जो तेरी मज्जा है, जो हड्डी है, जो मांस है, और जो तेरा रुधिर है । (१९) जो तेरी दोनों भुजाएं हैं, जो दो बाहुएं हैं, जो दो कन्धे हैं और जो तेरा कुहान है । (२०) जो तेरे गर्दन के मोहरे हैं, जो तेरे कन्धे हैं, जो पीठ के मोहरे हैं और जो पसुलिया है । (२१) जो तेरी पीठ की दो जघाएं हैं, जो दो घुटने हैं, जो दो कूल्हे और जो तेरा गुप्ताग, मूत्र मार्ग है । (२२) जो तेरी पूंछ है, जो तेरे बाल हैं, जो तेरा थान है, और जो तेरे स्तन हैं । (२३) जो तेरी जाघें हैं, जो तेरी हड्डियां, और कलाई के भाग हैं और जो तेरे खुर हैं, ये सब तेरे

अङ्ग हैं। हे गोरूप वसुंधरे ! दान करने हारे पुरुष को दूध, दही, घी और मधु आदि पुष्टिकारक पदार्थ प्रदान करें। पृथ्वी के इन अङ्गों की कल्पना गोरूप से की है। राष्ट्रमय पुरुष के भिन्नभिन्न अङ्गों के समान ही इनकी कल्पना करनी चाहिये। कुछ अङ्गों का वर्णन अगले सूक्त में स्पष्ट होगा।

यत् ते चर्म शतौदने यानि लोमान्यघ्न्ये ।
आमिक्षां दुहतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥ २४ ॥

भा०—हे शतवीर्ये गौ ! हे अहिंसनीय ! जो तेरा चर्म है, और जो लोम हैं, वे दानशील, कल्याणवान् पुरुष को दधि, दूध, घी, मधु आदि दें।

क्रोडौ ते स्तां पुरोडाशावाज्येनाभिघारितौ ।
तौ पक्षौ देवि कृत्वा सा पक्तारं दिवं वह ॥ २५ ॥

भा०—हे गौ ! पृथ्वी ! घृत से मिले हुए दो पुरोडाश अर्थात् तेज से मिले हुए आकाश और द्युलोक दोनों ही तेरे दोनों पार्श्वों के समान हैं। हे ज्ञानशील गौ ! तू उन दोनों को पक्ष बना कर अपने पकाने हारे राजा को सुख में ले जा।

'पुरोडाशौ'—स कूर्मरूपेणाच्छन्नः पुरोडाशो वा एभ्यो मनुष्येभ्य-स्तत्पुरोऽदशयत्। य एभ्यो यज्ञं प्रारोचयत्। य एभ्यो यज्ञ प्रारोचयत् तस्मात् पुरोदाश. पुरोदाशो वै नाम एतत् यत् पुरोडाश इति। श० २। ६। २। ५॥ पुरो वा एतान् देवा अक्रत्। ऐ० २। २३॥ विट् इमाः पुरोडाश.॥ श० ८। २। ५। २२॥ द्यावापृथिव्यौ हि कूर्मः। श०। आकाश और पृथिवी, राजा और प्रजा ये दोनों मिलकर कूर्माकार हो जाते हैं. ये दोनों दो पुरोडाश हैं, इनके नाना रस पदार्थों से सम[illegible] संसार जीवों को भला मालूम हुआ इसलिये ये दोनों पुरोडाश या पुरो-डाश कहे जाते हैं। वे दोनों सूर्य से प्रकाशित हैं, वे पृथ्वी रूप गौ के [illegible]

पार्श्व हैं। उनके ऊपर वह राजा को धारण करती और स्वर्ग का सा आनन्द प्रदान करती है।

उलूखले मुसले यश्च चर्मणि यो वा शूर्पे तण्डुलः कणः।
यं वा वातो मातरिश्वा पवमानो ममाथाग्निष्टद्धोता सुहुतं कृणोतु ॥ २६ ॥

भा०—जो तण्डुल या चावलों का कण ओखली में और मुसल में है, और जो दाने नीचे बिछे चर्म अर्थात् आवरण में, और जो शूर्प या छाज में हैं, और जिसको प्रबल वेगवान् वायु तुषों को कण से अलग करता हुआ एक तरफ गिरा देता है, स्वीकार करने वाला अग्नि उस कण को उत्तम आहुति रूप में स्वीकार करे।

पृथ्वी, क्षेत्र, भूमि आदि के परिपक्व हो जाने पर खेतों से धान काट कर, ऊखल मूसल से कूटकर, उन्हें वायु, छाज द्वारा साफ करके उनसे यज्ञ करे और पुनः उनका भोजन करे, यह वेद का उपदेश है।

अपो देवीर्मधुमतीर्घृतश्चुतो ब्रह्मणां हस्तेषु प्रपृथक् सादयामि।
यत्काम इदमभिषिञ्चामि वोऽहं तन्मे सर्वं सं पद्यतां वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥ २७ ॥ (३२)

भा०—मैं यज्ञशील पुरुष वेद के विद्वानों के हाथों में दिव्य गुण-वाली, मधुर रसवाली, घृत आदि पुष्टिकारक पदार्थ और तेज को उत्पन्न करने वाली, आप्त प्रजाओं को पृथक् पृथक् सौंपता हूं, जिस अभिलाषा से मैं हे विद्वानो! आप लोगों का अभिषेक करता हूं अर्थात् प्रजाओं में आप लोगों को उच्च पद पर प्रतिष्ठित करता हूं, वे मेरी अभिलाषाएं सब पूरी हों। और हम सब धन सम्पत्तियों के स्वामी हों। राजा विद्वान् ब्राह्मणों को पृथक् पृथक् प्रदेशों में मान-आदरपूर्वक अभिषिक्त कर, उनको अधिकारी रूप से प्रतिष्ठित करे ताकि सब धन धान्य सम्पत्ति से युक्त हों। इस प्रकार विद्वानों के हाथों में राज्य के भागों को देना ही वेद-

सम्मत दान है। ऐसे विद्वानों के हाथ में भूमि के सौंपने से भूमि समस्त रत्नों, अन्नों, पशु और गौ, दूध आदि पुष्टिकारक पदार्थों को प्रसव करती है।

इस सूक्त से गौ मार कर होम करने आदि का जो अर्थ निकालते हैं वे भूल में हैं। समस्त सूक्त में कहीं मारने आदि का सम्बन्ध नहीं है। यदि मारने आदि का प्रसङ्ग होता तो उससे तो रुधिर, वशा, मांस आदि प्राप्त होता, घी दूध, दही और मधुर पदार्थ कभी प्राप्त न होते।

[१०] वशा रूप महती शक्ति का वर्णन।

कश्यप ऋषिः। मन्त्रोक्ता वशा देवता। १ ककुम्मती अनुष्टुप्। ५ पञ्चपदाति जागतानुष्टुप् स्कन्धोग्रीवी बृहती। ६, ८, १० विराज। २३ बृहती। २४ उपरिष्टाद् बृहती। २६ आस्तारपङ्क्तिः। २७ शङ्कुमती। २९ त्रिपदा विराड् गायत्री। ३१ उष्णिग्गर्भा। ३२ विराट्पथ्या बृहती। २-४, ७, ९, ११-२२, २५, २८, ३०, ३३, ३४ अनुष्टुभः। चतुस्त्रिंशदृच सूक्तम्।

नमस्ते जायमानायै जाताया उत ते नमः।
वालेभ्यः शफेभ्यो रूपायाघ्न्ये ते नमः ॥ १ ॥

भा०—न त्यागने योग्य हे संसार को वश में करने वाली परमात्म शक्ति! प्रकट होती हुई तुझे नमस्कार है। प्रकट हुई २ तुझ को नमस्कार है। वालों अर्थात् ओषधियों में और शफों अर्थात् कठोर पर्वतों में विद्यमान जो तू है उस के प्रति हमारा नमस्कार है।

वाल = ओषधियां, शफ = अदिति (अथर्व० ० । ७ । ८ । १०)।

यो विद्यात् सप्त प्रवतः सप्त विद्यात् परावतः।
शिरो यज्ञस्य यो विद्यात् स वशां प्रति गृह्णीयात् ॥ २ ॥

भा०—जो सात उपरिचर प्राणों को जानता है, और जो सात अधस्तन प्राणों को जानता है, और जो उपासना-यज्ञ के शिरोभाग प्राण को जानता है, वह इस वशा सम्बन्धी ज्ञान का अधिकारी है।

वेदाहं सप्त प्रवतः सप्त वेद परावतः ।
शिरो यज्ञस्याहं वेद सोमं चास्यां विचक्षणम् ॥ ३ ॥

भा०—मैं सात उपरितन प्राणों को जानता हूं, और सातों अधस्तन प्राणों को भी जानता हूं, और मैं उपासना यज्ञ के शिरोभाग प्राण को भी जानता हूं, और इस वशा पर विशेष रूप से द्रष्टा जो प्रेरक है उसे भी मैं जानता हूं।

वशा का स्वरूप ।

यया द्यौर्यया पृथिवी ययापो गुपिता इमाः ।
वशां सहस्रधारां ब्रह्मणाच्छावदामसि ॥ ४ ॥

भा०—जिसने द्यौलोक को, और जिसने पृथिवी को, और जिसने इन समस्त जलों को अपने भीतर सुरक्षित रक्खा हुआ है उन सहस्रों को धारण पोषण करने वाली अति कमनीय, सब जगत् को वश करने वाली 'वशा' को वेद द्वारा हम भली प्रकार वर्णन करते हैं।

शतं कंसाः शतं दोग्धारः शतं गोप्तारो अधि पृष्ठे अस्याः ।
ये देवास्तस्यां प्राणन्ति ते वशां विदुरेकधा ॥ ५ ॥

भा०—पृथिवी की पीठ पर सैकड़ों शिष्य कांसे के बर्तन के समान उस शक्ति के दोहन फल के पात्र हैं, और सैकड़ों उसके दोहने वाले गुरुजन हैं, उस वशाविद्या के सैकड़ों रक्षक हैं। जो योगी पुरुष उसके आधार पर प्राण धारण करते हैं वे उसको एक रूप से जानते हैं अर्थात् वह एक है ऐसा जानते हैं।

यज्ञपदीराक्षीरा स्वधाप्राणा महीलुका ।
वशा पर्जन्यपत्नी देवाँ अप्येति ब्रह्मणा ॥ ६ ॥

भा०—यह 'वशा' उपासना यज्ञ का एक अङ्ग है, आत्म धारण शक्ति रूप प्राण वाली है, पृथ्वी आदि लोकों को प्रजारूप से धारण करने वाली है, मेघ के समान सुखों की वर्षा करने वाले परमात्मा की वह पत्नीस्वरूप है, यह वशा वेद के साधनों द्वारा विद्वानों को प्राप्त होती है।

अनु त्वाग्निः प्राविंशदनु सोमो वशे त्वा ।
ऊधस्ते भद्रे पर्जन्यो विद्युतस्ते स्तना वशे ॥ ७ ॥

भा०—हे वशे ! तेरे में अग्नि तेरे अनुकूल होकर प्रविष्ट है। तेरे अनुकूल होकर ही चन्द्रमा तुझ मे प्रविष्ट है। हे कल्याण और सुख के करने वाली ! दूध का भरा तेरा 'थान' है, और बिजुलियां तेरे स्तन हैं।

अपस्त्वं धुंक्षे प्रथमा उर्वरा अपरा वशे ।
तृतीयं राष्ट्रं धुक्षेन्नं क्षीरं वशे त्वम् ॥ ८ ॥

भा०—हे वशे ! तू जलों को या दुग्धों को प्रदान करती है। तू सबसे मुख्य, सर्वश्रेष्ठ अन्न और प्रजा के उत्पन्न करने मे समर्थ अपरा विद्या है। और हे वशे ! तू अन्न प्रदान करती है और दूध प्रदान करती है। और तीसरा या सबसे श्रेष्ठ राष्ट्र को राष्ट्रोपयोगी प्रजा, धन, ऐश्वर्य को भी तू ही प्रदान करती है।

यदादित्यैर्हूयमानोपातिष्ठ ऋतावरि ।
इन्द्रः सहस्रं पात्रान्त्सोमं त्वापाययद् वशे ॥ ९ ॥

भा०—हे वशे ! हे सत्यमयी ! जब तू आदित्य ब्रह्मचारियों द्वारा आहुति प्राप्त करती हुई उनके समीप विराजमान होती है तब ऐश्वर्यवान् जीवात्मा तुझको हजारों पात्र, हजारों कलशे भर भर कर भक्ति रूपी सोम का पान कराता है।

यदनूचीन्द्रमैरात् त्वं ऋषभोह्वयत् ।
तस्मात् ते वृत्रहा पयः क्षीरं क्रुद्धोहरद् वशे ॥ १० ॥ (३३)

भा०—हे वशे ! जब तू भक्त के अनुकूल होकर ऐश्वर्यवान् जीवात्मा के पास प्राप्त होती है। और उसके पश्चात् श्रेष्ठ जीवात्मा तुझे अपने प्रति बुलाता है, तुझे अपने अभिमुख करता है। उस समय मे यह जीवात्मा क्रुद्ध सा होकर कामादि वृत्रों को हनन कर देता है, और तेरे रस का आस्वादन करने लगता है।

यत् ते क्रुद्धो धनपतिरा क्षीरमहरद् वशे ।
इदं तदद्य नाकस्त्रिषु पात्रेषु रक्षति ॥ ११ ॥

भा०—हे वशे ! जब वृत्रों के नाश के लिये अति क्रुद्ध हुआ जीवात्मा आत्मिकधनों का पति होकर तेरे रसों को ले लेता है, यह वही तेरा रस है जिसको सदा मोक्षावस्था उत्तम, अधम, मध्यम तीनों प्रकार के लोकों मे अरक्षित रखती है।

त्रिषु पात्रेषु तं सोममा देव्यहरद् वशा ।
अथर्वा यत्र दीक्षितो बर्हिष्यास्त हिरण्यये ॥ १२ ॥

भा०—जब दीक्षित हुआ स्थिर मति अथर्ववेद का विद्वान् आसन जमा कर विराजता है तब वशा उस भक्ति रूपी सोम को तीनों पात्रों में, उत्तम, अधम और मध्यम तीनों प्रकार के लोकों मे स्वीकार करती है।

सं हि सोमेनागत समु सर्वेण पद्वता ।
वशा समुद्रमध्यष्ठाद् गन्धर्वैः कलिभिः सह ॥ १३ ॥

भा०—यह वशा सोम अर्थात् चन्द्रमा के साथ संयुक्त हुई हुई है, यह समस्त चरणों वाले प्राणियों से संगत हुई हुई है। वह वशा क्रीडा करने वाली गन्धर्व शक्तियों के सहित उपासक के हृदय-समुद्र पर अधिष्ठात्री रूप मे विराजमान हो जाती है।

सं हि वातेनागत समु सर्वैः पतत्रिभिः ।
वशा समुद्रे प्रानृत्यदृचः सामानि बिभ्रती ॥ १४ ॥

भा०—यह वशा वायु के साथ संगत हुई हुई है, वह समस्त पक्षियों के साथ संगत हुई हुई है। यह वशा ऋग्वेद और सामवेद को धारण करती हुई भक्त के हृदय समुद्र मे नाच पड़ती है।

सं हि सूर्येणागत समु सर्वेण चक्षुषा ।
वशा समुद्रमत्यख्यद् भद्रा ज्योतींषि बिभ्रती ॥ १५ ॥

भा०—यह वशा सूर्य के साथ संगत हुई हुई है, यह चक्षु वाले

समस्त प्राणियों के साथ संगत हुई हुई है। वह वशा कल्याणकारी तेजा को धारण करती हुई हृदय-समुद्र में अपना रूप प्रकट करती है।

अभीवृता हिरण्येन यदतिष्ठ ऋतावरि।
अश्वः समुद्रो भूत्वाध्यस्कन्दद् वशे त्वा ॥ १६ ॥

भा०—हे सत्यमयी ! जब तू सुवर्ण के समान चमक से घिरी हुई होकर हृदय समुद्र में अपना स्थान बना लेती है तब हे वशे ! तेरे ऊपर शक्तिशाली भक्त की भक्ति समुद्र की न्याईं उमड पड़ती है।

तद् भद्राः समगच्छन्त वशा देष्ट्र्यथो स्वधा।
अथर्वा यत्र दीक्षितो बर्हिष्यास्त हिरण्यये ॥ १७ ॥

भा०—जब दीक्षा ग्रहण करके स्थिर मति अथर्ववेद का ज्ञाता तुझ को चमकीला आसन बनाकर उस आसन पर बैठ जाता है, उस समय भद्र पुरुष एकत्र होते, और यह वशा उस समय आत्म धारण शक्ति के देने वाली उपदेशिका होती है।

वशा माता राजन्यस्य वशा माता स्वधे तव।
वशाया यज्ञ आयुधं ततश्चित्तमजायत ॥ १८ ॥

भा०—यह वशा राजा के समान वर्तमान भक्त की माता है। हे आत्मधारण शक्ति ! तेरी भी यह वशा माता है। वशा शक्ति से वृत्र के नाश के लिये भक्त को शस्त्र प्राप्त हो जाते हैं तत्पश्चात् भक्त का एक नया सा चित्त उत्पन्न होता है।

वशा के देह का अलंकारमय वर्णन

ऊर्ध्वो बिन्दुरुदचरद् ब्रह्मणः ककुदादधि।
ततस्त्वं जज्ञिषे वशे ततो होताजायत ॥ १९ ॥

भा०—ब्रह्मरन्ध्र के श्रेष्ठ भाग में ऊपर की ओर बिन्दु सा सरकता है हे वशे ! तब तू प्रकट होती है। उसके पश्चात भक्त तेरा आह्वान करने लगता है।

आस्नस्ते गाथा अभवन्नुष्णिहाभ्यो बलं वशे ।
पाजस्याज्जज्ञे यज्ञ स्तनेभ्यो रश्मयस्तव ॥ २० ॥ (३४)

भा०—हे वशे ! तेरे मुख के समान ब्राह्मण से गाथाएं, ऋचाएं उत्पन्न होती हैं । गर्दन की धमनियों के समान क्षत्रिय से बल उत्पन्न होता है । उदर के मध्यभाग के समान वर्तमान वैश्य से यज्ञ उत्पन्न होता है । तेरे स्तनों के समान वर्तमान शूद्रों से अशन अर्थात् भोजन के पदार्थ उत्पन्न होते हैं ।

ईर्माभ्यामयनं जातं सक्थिभ्यां च वशे तव ।
आन्त्रेभ्यो जज्ञिरे अत्रा उदरादधि वीरुधः ॥ २१ ॥

भा०—हे वशे ! तेरी गति शक्तियों से सूर्य के दक्षिण और उत्तर अयन होते हैं, आंतों से मानो नाना खाद्य पदार्थ उत्पन्न होते हैं । और तेरे पेट से मानो लताएं ओषधियां उत्पन्न होती हैं ।

यदुदरं वरुणस्यानुप्राविशथा वशे ।
ततस्त्वा ब्रह्मोदह्वयत् स हि नेत्रमवेत् तव ॥ २२ ॥

भा०—हे वशे ! जब तू सबसे श्रेष्ठ वरणीय भक्त के हृदय में, पेट में अन्न के समान प्रविष्ट होती है, उसके बाद वेद और ब्रह्म को जानने वाला विद्वान् तेरा ऊंचे स्वर से आह्वान करता है । तब वह तेरी दृष्टि का सत्पात्र बन जाता है ।

सर्वे गर्भाद् अवेपन्त जायमानाद् असूस्वः ।
ससूव हि तामाहुर्वशेति ब्रह्मभिः क्लृप्तः स ह्यस्या बन्धुः ॥ २३ ॥

भा०—प्रलयावस्था में प्रसव न करने हारी इस वशा के प्रकट होते प्रकृति के गर्भ से उत्पन्न सब सूर्यादि पदार्थ कम्पन करने लगते हैं । उनको उस समय विद्वान् कहते हैं कि वशा उत्पन्न कर रही है, सू रही है । वह भक्त वेदवाणियों से सामर्थ्यवान होकर इस वशा का बन्धु बन जाता है ।

युध एकः सं सृजति यो अस्या एक इद् वशी ।
तरांसि यज्ञा अभवन् तरसां चक्षुरभवद् वशा ॥ २४ ॥

भा०—जो इस वशा का एकमात्र वश करने हारा भक्त होता है वह अकेला ही संसार में बुरी शक्तियों के साथ युद्ध छेड़ देता है, अविद्या-अन्धकारों में से पार करने वाले वे बलवान् भक्त तब यज्ञस्वरूप बन जाते हैं। और उनकी आंख उस समय यह वशा होती है।

वशा यज्ञं प्रत्यगृह्णाद् वशा सूर्यमधारयत् ।
वशायामन्तरविशदोदनो ब्रह्मणा सह ॥ २५ ॥

भा०—वशा यज्ञमय भक्त को स्वयं स्वीकार करती है। वशा सूर्य समान तेजस्वी भक्त का स्वयं धारण पोषण करती है। भक्त ओदन की न्याईं सब का पालक होकर और ब्रह्मज्ञान से सम्पन्न होकर इस वशा में प्रवेश पा जाता है।

वशामेवामृतमाहुर्वशां मृत्युमुपासते ।
वशेदं सर्वमभवद् देवा मनुष्या३ असुराः पितर ऋषयः ॥२६॥

भा०—विद्वान् लोग वशा को ही 'अमृत' कहते हैं, और वशा की ही मृत्यु रूप से उपासना करते हैं। यह सब कुछ वशा ही है, देव, मनुष्य, असुर, पितर और ऋषिगण भी वशा के ही रूपान्तर हैं।

य एवं विद्यात् स वशां प्रति गृह्णीयात् ।
तथा हि यज्ञः सर्वपाद् दुहे दात्रेऽनपस्फुरन् ॥ २७ ॥

भा०—जो भक्त इस प्रकार का तत्व जान लेता है वह वशा को स्वीकार करने में समर्थ होता है। उसी प्रकार के जानने हारे और वशा विद्या के दानी के लिये यह उपासना यज्ञ सर्व चरणों से सम्पन्न होकर बिना व्याकुल हुए ही सब फल प्रदान करता है।

तिस्रो जिह्वा वरुणस्यान्तर्दीद्यत्यासनि ।
तासां या मध्ये राजति सा वशा दुष्प्रतिग्रहा ॥ २८ ॥

भा०—उस समय सर्वश्रेष्ठ भक्त के मुख के भीतर तीन जिह्वाएं अर्थात् वेदत्रयी चमक उठती है। उस वेदत्रयी के बीच मे जो शक्ति सब से अधिक उज्वल होकर चमक रही है वह 'वशा' शक्ति है जिसका प्रतिग्रह करना, स्वीकार करना और वश करना बडा कठिन कार्य है।

चतुर्धा रेतो अभवद् वशायाः ।
आपस्तुरीयममृतं तुरीयं यज्ञस्तुरीयं पशवस्तुरीयम् ॥२९॥

भा०—उस 'वशा' का उत्पादक सामर्थ्य चार प्रकार से विभक्त होता है। एक चतुर्थांश आप्त प्रजाएं हैं, दूसरा चतुर्थांश अमृत अर्थात् उनके लिये मोक्षावस्था है, तीसरा चतुर्थांश यज्ञ है और चौथा चतुर्थांश 'पशु' है जिनके घृत से यज्ञ सम्पन्न होता है।

वशा द्यौर्वशा पृथिवी वशा विष्णुः प्रजापतिः ।
वशाया दुग्धमपिबन्त्साध्या वसवश्च ये ॥ ३० ॥

भा०—वशा द्युलोकरूप है, वशा पृथिवी रूप है। प्रजा का पालक सूर्य और व्यापक वायु भी वशा के रूप हैं। वशा के दूध को, रस को, साधना सम्पन्न व्यक्ति और प्राणों में बसने वाले योगी पान करते हैं। उपनिषदो मे लिखा है कि परमात्मा रसरूप है (रसो वै सः)।

वशाया दुग्धं पीत्वा साध्या वसवश्च ये ।
ते वै ब्रध्नस्य विष्टपि पयो अस्या उपासते ॥ ३१ ॥

भा०—जो साधनासम्पन्न और प्राणो मे वास करने हारे योगी हैं वे उक्त वशा के रसरूप का पान कर के ताप-पीडा आदि से रहित, इस महती शक्ति के स्वरूप मे स्थित होकर इसके रस का लाभ करते हैं।

सोममेनामेके दुह्रे घृतमेक उपासते ।
य एवं विदुषे वशां ददुस्ते गतास्त्रिदिवं दिवः ॥ ३२ ॥

भा०—एक प्रकार के योगाभ्यासी इस वशा से सौम्य शक्ति का दोहन करते हैं, और दूसरे प्रकार के योगाभ्यासी उससे प्रकाश या पुष्टि

का दोहन करते हैं। इस के तत्व को जानने वाले योगाभ्यासियों को जो इस वशा का दान करते हैं वे प्रकाशमय प्रभु के तीनों प्रकाशों को प्राप्त कर लेते हैं। उसके ज्ञान, इच्छा और कृति का प्रकाश यहां अभिमेत है।

ब्राह्मणेभ्यो वशां दत्त्वा सर्वांल्लोकान्त्समश्नुते ।
ऋतं ह्यस्यामार्पितमपि ब्रह्माथो तपः ॥ ३३ ॥

भा०—ब्रह्मविद्या के अधिकारी पुरुषों को उक्त वशा विद्या का दान करके दाता सब लोगों का प्रीति-भाजन बन जाता है। इस 'वशा' मे सत्यज्ञान, वेदज्ञान और तप आश्रित है।

वशां देवा उप जीवन्ति वशां मनुष्या उत ।
वशेदं सर्वमभवद् यावत् सूर्यो विपश्यति ॥ ३४ ॥ (३५)

भा०—योगीगण वशा के आधार पर जीवन धारण करते हैं। और मनुष्य भी इस वशा के आधार पर जीते हैं। जितने भी लोकों को सूर्य प्रकाशित करता है यह सब 'वशा' का ही रूप है।

इति पञ्चमोऽनुवाकः।

इति दशमं काण्डं समाप्तम् ।

[दशमे दश सूक्तानि ऋचः सार्धशतत्रयम्]

वाण-वस्वङ्क-चन्द्राब्दे चैत्रे शुक्ले द्वितीयके ।
भृगौ काण्डं च दशमं पूर्तिमापदथर्वणः ॥

---

* ओ३म् *

अथैकादशं काण्डम् ।

[१] ब्रह्मौदन रूप से प्रजापति के स्वरूपों का वर्णन ।

ब्रह्मा ऋषि. । ब्रह्मौदनो देवता । १ अनुष्टुब्गर्भा भुरिक् पङ्क्तिः । २, ५ बृहतीगर्भा विराट् । ६ चतुष्पदा शाक्वरगर्भा जगती । ४, १५, १६ भुरिक् । ६ उष्णिक । ८ विराड्गायत्री । ६ शाक्वरातिजागतगर्भा जगती । १० विराट् पुरोऽतिजगती विराड् जगती । ११ जगती । १७, २१, २४, २६, २८ विराडजगत्यः । १८ अतिजागतगर्भापरातिजागताविराट् ष्पतिजगती । २० अतिजागतगर्भापरा शाक्वराचतुष्पदा-भुरिग् जगती । २१, ३१ भुरिक् । २७ अतिजागतगर्भा जगती । ३५ चतुष्पात् ककुम्मत्युष्णिक् । ३६ पुरोविराड् । ३७ विराड् जगती । ७, १२, १४, १७, २२, २३, ३०–३४ त्रिष्टुभ । सप्तत्रिंशदृच सूक्तम् ।

अग्ने जायस्वादितिर्नाथितेयं ब्रह्मौदनं पचति पुत्रकामा ।
सप्तऋषयो भूतकृतस्ते त्वा मन्थन्तु प्रजया सहेह ॥ १ ॥

हे राजन् ! अग्नि के समान तेजस्विन् ! तू उत्पन्न हो, प्रकट हो । यह पृथिवी अखण्डित ऐश्वर्य वाली होकर, अपने पुत्र अर्थात् ऐसे पुरुष की कामना करती है जो कि बहुत से पुरुषों की रक्षा कर सके, वह ब्राह्मण शक्ति से युक्त राजा को परिपक्व कर रही है । जैसे चक्षु आदि सात ऋषि शरीर-राष्ट्र की रक्षा करते हैं, वैसे ही सत्य का अनुष्ठान करने वाले ऋषि कोटि के मन्त्री इस राष्ट्र में तेरी सहायता करें और तेरी शक्ति को प्रकट करें ।

कृणुत धूमं वृषणः सखायोऽद्रोघाविता वाचमच्छ ।
अयमग्निः पृतनाषाट् सुवीरो येन देवा असहन्त दस्यून् ॥ २ ॥

मित्रगणो! भा०—हे सुखों की वर्षा करने वाले तथा वीर्यवान् मित्रगणो! आप लोग शत्रु को कंपाने वाले इस वीर्यवान् पुरुष को सम्पन्न करो। यह न द्रोह करने वालों की रक्षा करने हारा है। इसकी वाणी के प्रति तुम ध्यान दो। यह अग्नि के समान तेजस्वी, उत्तम वीर, समस्त शत्रु सेनाओं को दबाने हारा है। जिसके बल से देवगण विनाशकारी दुष्टों को पराजित करते हैं।

अग्नेऽजनिष्ठा महते वीर्याय ब्रह्मौदनाय पक्तवे जातवेदः।
सप्तऋषयो भूतकृतस्ते त्वाजीजनन्नस्य रयिं सर्ववीरं नियच्छ॥३॥

भा०—हे राजन्! तू बड़े भारी सामर्थ्य के लिये उत्पन्न हुआ है। हे जातप्रज्ञ विद्वान् या ऐश्वर्यवान्! तू ब्राह्मण शक्ति को परिपाक या दृढ़ करने के लिये उत्पन्न हुआ है। प्राणियों की सृष्टि को व्यवस्थित करने वाले, ऋषि जन तुझको उत्पन्न करते हैं। इस पृथ्वी के लिये तू सब प्रकार के वीर-जनों से युक्त सामर्थ्य, वश और बल को नियमित कर, व्यवस्थित कर।

समिद्धो अग्ने समिधा समिध्यस्व विद्वान् देवान् यज्ञियाँ एह वक्षः।
तेभ्यो हविः श्रपयं जातवेद उत्तमं नाकमधि रोहयेमम्॥४॥

भा०—हे राजन्! तू समग्र तेज से अति प्रदीप्त होकर प्रकाशित हो। तू विद्वान् होकर इस राष्ट्र में राष्ट्रयज्ञ के योग्य उत्तम विद्वान और सुसभ्य शासकों को धारण कर, स्थापित कर। हे विद्वन्! ऐश्वर्यवान राजन्! उन उत्तम शासकों के लिये मैं राष्ट्रवासी अन्न आदि पदार्थ पकाता हूं। इस राजा को उत्कृष्ट सुखमय राज्य पर चढ़ा।

त्रेधा भागो निहितो यः पुरा वो देवानां पितॄणां मर्त्यानाम्।
अंशान् जानीध्वं वि भजामि तान् वो यो देवानां स इमां पारयाति॥५॥

भा०—जो पहले ही तीन प्रकार के भाग बना कर रखा गया है, एक पालक आचार्य और दानशील राज-शासकों के लिये, दूसरा प्रजा के

माता पिता पितामह आदि के लिये और तीसरा साधारण अन्य मनुष्यो, अतिथियों और गृह वासियों के लिये, हे देव, पितर और मर्त्यजनो! मैं आप लोगों के उन भागो को विशेष रूप से पृथक् पृथक् कर देता हूं। आप लोग अपने अपने अंशों को पृथक् पृथक् जान लें। जो शासकों का भाग है वह इस पृथ्वी को पालन करता है।

अग्ने सहस्वानभिभूरभीदसि नीचो न्युब्ज द्विषतः सपत्नान्।
इयं मात्रा मीयमाना मिता च सजातांस्ते बलिहृतः कृणोतु ॥ ६ ॥

भा०—हे राजन्! तू शत्रु के दबाने वाले बल से सम्पन्न होकर सब प्रकार से शत्रु को दबाने मे समर्थ हो जाता है। तू द्वेष करने हारे शत्रुओं को नीचे दबा। मापी जाती हुई और मापी गई कर की यह मात्रा तेरे साथ उन्नति को प्राप्त हुए अन्य राजाओं को कर लेने वाला करे।

साकं सजातैः पयसा सहैध्युदुब्जैनां महते वीर्याय।
ऊर्ध्वो नाकस्याधि रोह विष्टपं स्वर्गो लोक इति यं वदन्ति ॥ ७ ॥

भा०—हे राजन्! तू अपने क्षात्र बल से, अपने साथ उत्पन्न, उन्नत पद को प्राप्त मित्र राजा और बन्धु और सहोत्थायी लोगो के साथ प्रबल बना रह। और अपने बडे भारी बल को बढ़ा लेने के लिये इस राष्ट्र को उन्नत कर। सुखमय राज्य के विशेष तेजस्वी या पीडा परिताप से रहित उस राजसिंहासन पर तू स्वयं उच्च होकर चढ़, जिसको लोग स्वर्गलोक तक भी कह देते हैं। 'फलं हि राज्यं पदमैन्द्रमाहुः' इति कालिदासः। क्षात्रं वै पयः। श० १२। ७। ३। ८॥ अर्थात् राजा का क्षात्रबल 'पयस' कहाता है।

को स्वीकार करे । और उसके बाद हम राष्ट्र वासी जन पुण्य के लोक को प्राप्त हों ।

एतौ ग्रावाणौ सयुजा युङ्ग्धि चर्मणि निर्भिन्ध्यंशून् यजमानाय साधु । अवघ्नती नि जहि य इमां पृतन्यव ऊर्ध्वं प्रजामुद्भरन्त्युदूह ॥ ९ ॥

भा०—हे पुरोहित ! अमात्य ! तू इन दोनों सदा साथ रहने वाले क्षत्रिय और वैश्य, प्रजा अथवा राजा और प्रजा दोनो को परस्पर मिला। और राष्ट्रपति के लिये तेजोमय अन्नादि पदार्थों को बल से प्राप्त कर। विशो वै ग्रावाणः । श० ३ । ७ । १ ॥

गृहाण ग्रावाणौ सकृतौ वीर हस्त आ ते देवा यज्ञिया यज्ञमगुः । त्रयो वरा यतमांस्त्वं वृणीषे तास्ते समृद्धीरिह राधयामि १० (१)

भा०—हे वीर राजन् ! परस्पर सहकारी क्षत्रियों और प्रजाओं दोनों को अपने वश में तू रख । राष्ट्र पालन में समर्थ, देव तुल्य शासक लोग तेरे राष्ट्र यज्ञ में प्राप्त हों । जिन जिन वरण करने योग्य श्रेष्ठ पुरुषों को तू वरण करता है वे तीन प्रकार के श्रेष्ठ पुरुष हैं । उन नाना प्रकार की सम्पत्तियों को तेरे लिये मैं प्राप्त कराता हूं । तीन प्रकार के श्रेष्ठ पुरुष = तीन प्रकार के दुःखों से राष्ट्र को बचाने वाले अधिकारी ।

इयं ते धीतिरिदमु ते जनित्रं गृह्णातु त्वामदितिः शूरपुत्रा । परा पुनीहि य इमां पृतन्यवोऽस्यै रयिं सर्ववीरं नि यच्छ ॥ ११ ॥

भा०—हे राजन् ! यह प्रजा तेरी दुग्धपान कराने वाली माता के समान है । यह ही तेरा उत्पन्न होने का स्थान है । तेरे समान शूरवीर पुत्र से युक्त होकर यह पृथिवी तुझे स्वीकार करे । जो लोग इस पृथ्वी को सेना संग्रामों द्वारा कष्ट देना चाहते हैं उनको दूर कर डाल । इस पृथिवी के लिये समस्त वीर पुरुषों समेत धन को नियम में बांध कर प्रदान कर ।

उपश्वसे द्रुवये सीदता यूयं वि विंच्यध्वं यज्ञियासस्तुषैः।
श्रिया समानानति सर्वान्त्स्यामाधस्पदं द्विषतस्पादयामि ॥१२॥

भा०—हे प्रजाजनो! आप लोग धनैश्वर्य और स्थिर जीवनयात्रा के लिये बैठो। हे पूजनीय पुरुषो! आप लोग तुष के समान तुच्छ लोगों से पृथक् होकर रहो। हम उत्तम पुरुष लक्ष्मी और धन की सत्ता में समान कोटि के लोगों में से सबसे अधिक श्रेष्ठ हों। और मैं राजा द्वेष करने वाले पुरुषों को नीचे के स्थान में गिरा दूं।

परेहि नारि पुनरेहि क्षिप्रमपां त्वा गोष्ठोऽध्यरुक्षद् भराय।
तासां गृह्णीताद् यतमा यज्ञिया असन् विभाज्यं धीरीतरा जहीतात् ॥१३॥

राष्ट्र की हे गृह-नारि! जा और फिर शीघ्र आ। जलों का भरा घट तेरे सिर पर लाने के लिये रक्खा है। जो उत्तम स्वच्छ जल हो उसको ले ले और जो मलिन जल हो उसको तू बुद्धिमती त्याग दे। अर्थात् नारियां घर के कामों में दत्तचित्त रहें।

एमा अंगुर्योषितः शुम्भमाना उत्तिष्ठ नारि तवसं रभस्व।
सुपत्नी पत्यां प्रजया प्रजावत्या त्वागन् यज्ञः प्रति कुम्भं गृभाय १४

भा०—ये स्त्रियां शोभित होकर वस्त्र-अलंकारादि से सज कर आती हैं। हे नारि! पत्नी! तू बलवान् पुरुष को अपने पतिरूप से प्राप्त कर। उत्तम पति के द्वारा ही स्त्री उत्तम पति वाली होती है। और उत्तम सन्तान से स्त्री प्रजावती होती है। गृहस्थयज्ञ तुझे प्राप्त हुआ है, तू जल लाने के लिये कुम्भ का ग्रहण कर।

ऊर्जो भागो निहितो यः पुरा व ऋषिप्रशिष्टाप आ भरैताः।
अयं यज्ञो गातुविन्नाथवित् प्रजाविदुग्रः पशुविद् वीरविद् वो अस्तु १५

भा०—हे जलो! तुम्हारा सारवान् भाग इस कलश में रक्खा है। हे नारि! तू ऋषि कोटि के व्यक्तियों से उपदेश पा कर जलों का उत्तम

कर्मों को प्राप्त कर । यह गृहस्थ यज्ञ सन्मार्ग, ऐश्वर्य, प्रजा, पशु और वीर पुत्र को प्राप्त कराने वाला है ।

अग्ने चुरुर्यज्ञियुस्त्वाध्यरुक्षुच्छुचिस्तपिष्ठस्तपसा तपैनम् ।
आर्षेया दैवा अभिसुङ्गत्य भागमिमं तपिष्ठा ऋतुभिस्तपन्तु ॥१६॥

भा०—हे अग्नि के समान तेजस्वी राजन् ! यह राष्ट्र-यज्ञ सम्बन्धी वीर्य और तेज शुद्ध है, और दुष्टों को ताप देने वाला है, यह तुझे प्राप्त हुआ है । इसे अपने तेज से तपा और उज्ज्वल कर । तपस्वी ऋषि और देव मिलकर इस राष्ट्र के भाग को ऋतु अनुसार उज्ज्वल करें, परिपक्व करें ।

शुद्धाः पूता योषितो यज्ञिया इमा आपश्चरुमव सर्पन्तु शुभ्राः ।
अदुः प्रजां बहुलान् पशून् नः पक्तौदनस्य सुकृतामेतु लोकम् ॥१७॥

भा०—ये निष्पाप, दान, संगति और पूजा के योग्य स्त्रियां, और उनके समान अनिन्दित और जलों के समान स्वच्छ हृदय वाली सुन्दर गुण अलङ्कार और वस्त्रों से सजी प्रजाएं इस चरु रूप राष्ट्र में आवें और हमें उत्तम सन्तान, बहुत से पशु प्रदान करें । ऐसे राष्ट्र के क्षात्र-बल का परिपाक करने वाला राजा पुण्य आचारवान पुरुषों के उत्तम लोक को प्राप्त हो ।

ब्रह्मणा शुद्धा उत पूता घृतेन सोमस्यांशवस्तण्डुला यज्ञिया इमे ।
अपः प्र विशत प्रति गृह्णातु वश्चरुरिमं पक्त्वा सुकृतामेत लोकम् ॥१८॥

भा०—ये राष्ट्ररूप यज्ञ के योग्य तण्डुल अर्थात् पके भात के समान परिपक्व, राष्ट्र के निवासी, शिक्षित सैनिक युवक, सब के प्रवर्त्तक राजा के भाग हैं । ये ब्रह्म-बल अर्थात् वेदज्ञान से पवित्र, और क्षात्र तेज से पवित्र हैं । हे जलों के समान स्वच्छ प्रजाओ ! तुम राष्ट्र में प्रवेश करो । तुमको यह ओदन का भाण्डरूप राष्ट्र स्वीकार करे । तुम सब इसको पक्व कर, परिपक्व करके पुण्यात्माओं के लोक को प्राप्त होओ ।

'तण्डुलाः'—वसूनां वा एतद् रूप यत्तण्डुलाः। तै० ३।८।४।३॥ वसु राष्ट्र के वासी 'तण्डुल' हैं। तण्डति, ताडयति इति तण्डुलः, इति दयानन्दः। दुष्टों के ताडन करने हारा 'तण्डुल' है। धृज लुटि तनिताडिभ्यश्च उलच् तण्डश्च [उणा० ५।९] राजा को घेरने या पीडकों को धारण करने वाले, शत्रुओं को लूटने वाले, धनुष् को तानने और दुष्टों को ताडना करने वाले पुरुष 'तण्डुल' कहाते हैं।

उरुः प्रथस्व महता महिम्ना सहस्रपृष्ठः सुकृतस्य लोके।
पितामहाः पितरः प्रजोपजाहं पक्ता पञ्चदशस्ते अस्मि ॥ १९ ॥

भा०—हे राजन्! तू सबसे बड़ा होकर बड़े भारी ऐश्वर्य से बढ़। तू पुण्य के लोक में सहस्रों पीठों से युक्त है, अर्थात् जैसे एक पीठ वाला एक बोझ उठाने में समर्थ है वैसे तू हजारों प्रकार के कार्य भार उठाने में समर्थ, मानो हजारों पीठों वाला होकर विद्यमान है। दादा लोग, पिता लोग, सन्तान और सन्तानों की भी सन्तानें हों। और मैं वीर क्षत्रिय सबका परिपाक करने वाला पन्द्रहवां अर्थात् १४ विभागों के ऊपर, पन्द्रहवें स्तोम का भागी होकर रहूं।

'पञ्चदशः'—क्षत्रं पञ्चदश। ऐ० ८।४॥ तस्माद् राजन्यस्य पञ्चदश स्तोमः। राज्य के १४ विभागों के ऊपर १५ वां राजा है।

सहस्रपृष्ठः शतधारो अक्षितो ब्रह्मौदनो देवयानः स्वर्गः।
अमूंस्त आ दधामि प्रजया रेषयैनान् बलिहाराय मृडतान्मह्यमेव ॥ २० ॥ (२)

भा०—सहस्रों पृष्ठों वाला या सहस्रों का पोषक, सैकड़ों का धारण करने वाला, अक्षय, ब्रह्म के बल से संयुक्त प्रजापति अर्थात् क्षत्र-बल की सुखमय देवताओं का मार्ग है। तेरे वश में मैं इन शत्रु लोगों को रखता हूं। इनको प्रजासहित कर देने के लिये पीड़ित कर, दण्डित कर, हमको ही सुखी कर।

उदेहि वेदिं प्रजया वर्धयैनां नुदस्व रक्षः प्रतरं धेह्येनाम् ।
श्रिया समानानति सर्वान्त्स्यामाधस्पदं द्विषत स्पादयामि ॥२१॥

भा०—हे राजन् ! इस पृथ्वी पर उदय को प्राप्त हो । और इसको उत्तम प्रजा से बढ़ा । राक्षस लोगों को दूर कर । इस पृथ्वी को अपनी सर्वोत्तम नाव समझ कर उसकी रक्षा कर । यही तुझको शत्रुओं के बीच और भवसागर में तरावेगी । लक्ष्मी सम्पत्ति मे समान पद अर्थात् सत्ता वाले अन्य सब लोगो से मैं बढ़ जाऊ । और द्वेष करने वालों को नीचे गिराऊं ।

अभ्यावर्तस्व पशुभिः सहैनां प्रत्यङेनां देवताभि. सहैधि ।
मा त्वा प्रापच्छपथो माभिचारः स्वे क्षेत्रे अनमीवा वि राज ॥२२॥

भा०—हे राजन् ! पशु-सम्पत्ति सहित इस पृथ्वी का पालन कर । देवतुल्य पुरुषों सहित इसको प्राप्त हो । लोक-निन्दाएं और शत्रु के गुप्त आक्रमण तुझ तक न पहुंच पावें । तू अपने राष्ट्र के अहाते में नीरोग और विना क्लेश के विराजमान रह ।

ऋतेन तष्टा मनसा हितैषा ब्रह्मौदनस्य विहिता वेदिरग्रे ।
अंसद्रीं शुद्धामुप धेहि नारि तत्रौदनं सादय देवानाम् ॥ २३ ॥

भा०—ब्रह्मवीर्य से युक्त क्षत्र-बल के लिये सम्यग्ज्ञान से या वेद की व्यवस्था से रची गई, और सत्य संकल्प से स्थापित, यह सबसे प्रथम पृथ्वी बनाई गई है । हे नारि ! पत्नि ! शुद्ध थाली को रख और विद्वान पुरुषों के लिये उसमें ओदन अर्थात् भात रख ।

अदितेर्हस्तां स्रुचमेतां द्वितीयां सप्तऋषयो भूतकृतो यामकृण्वन् ।
सा गात्राणि विदुष्योदनस्य दर्विर्वेद्यामध्येनं चिनोतु ॥ २४ ॥

भा०—सत्यानुष्ठान करने वाले ऋषि कोटि के मन्त्री आदि ने पृथ्वी के हस्त रूप, हनन साधन जिस सेना को आहुति की दूसरी 'स्रुचा' भी बनाया है, वह शत्रुओं को विदारण करने में समर्थ, क्षात्रबल या राजा

के समस्त अंगों को जानने वाली इस राजा को इस पृथ्वी पर स्थापित कर दे।

शृतं त्वा हव्यमुप सीदन्तु दैवा निःसृप्याग्नेः पुनरेनान् प्रसीद।
सोमेन पूतो जठरे सीद ब्रह्मणामार्षेयास्ते मा रिषन् प्राशितारः २५

भा०—पूजनीय परिपक्व हे राजन्! तुझको देव तुल्य विद्वान्गण प्राप्त हों। तू अग्नि तुल्य, आचार्य के समीप से या उसके सदृश तेज से निकल कर फिर इनको प्रसन्न कर। तू सोमरूप राष्ट्र से पवित्र होकर, ब्रह्मज्ञानी वेद के विद्वानों के गर्भ में, उनकी रक्षा में रह। वे ऋषियों के सन्तान या वेदज्ञ जन तेरा भोग करने वाले, तेरी शक्ति का लाभ उठाने वाले कभी दुष्टों से पीडित न हों।

सोम राजन्त्संज्ञानमा वपैभ्यः सुब्राह्मणा यतमे त्वोपसीदान्।
ऋषीनार्षेयांस्तपसोऽधि जातान् ब्रह्मौदने सुहवा जोहवीमि॥२६॥

भा०—हे सौम्यगुण युक्त राजन्! तेरे समीप जितने उत्तम ब्रह्म के ज्ञानी ब्राह्मण विद्वान् आवें और बैठें, उनके सत् ज्ञान को तू प्राप्त कर। सदा संकल्प कर कि ऋषियों को, ऋषियों की सन्तानों और शिष्यों को, जो कि तप से द्विजन्मा रूप में उत्पन्न हुए हैं उनको, मैं उत्तम यज्ञ सम्पादन करने द्वारा, ब्रह्मौदन यज्ञ में बुलाऊं। अर्थात् उत्तम राजा अपने राष्ट्र में इन विद्वानों को बुलावे।

शुद्धाः पूता योषितो यज्ञिया इमा ब्रह्मणां हस्तेषु प्रपृथक् सादयामि।
यत्काम इदमभिषिञ्चामि वोऽहमिन्द्रो मरुत्वान्त्स ददादिदं मे ॥२७॥

भा०—हे उत्तम दान आदि के कर्म में विराजने योग्य शुद्ध पवित्र

राष्ट्र यज्ञ में विराजने योग्य ये शुद्ध पवित्र प्रजाएं हैं। इनको विद्वान् ब्राह्मणों के हाथ सौंपता हूं। जिस कामना से हे विद्वान् पुरुषो! मैं आपको अधिकार पदों पर स्थापित करता हूं, वह परमेश्वर मेरी उस कामना को पूर्ण करे।

इदं मे ज्योतिरमृतं हिरण्यं पक्वं क्षेत्रात् कामदुघा म एषा।
इदं धनं नि दधे ब्राह्मणेषु कृण्वे पन्थां पितृषु यः स्वर्गः ॥२८॥

भा०—यह मनोहर सुवर्ण जो कि अमृत स्वरूप तेज है मेरे राष्ट्र रूप क्षेत्र से सुपक्व रूप में मुझे प्राप्त हुआ है। यह पृथ्वी मेरी समस्त कामनाओं, अभिलाषाओं को पूर्ण करने हारी है। यह धन मैं ब्राह्मणों में रखता हूं, उनको प्रदान करता हूं। और पितृजनों में जो सुख को प्राप्त कराने वाला मार्ग है उसका मैं भी पालन करता हूं।

अग्नौ तुषाना वप जातवेदसि परः कम्बूकाँ अप मृड्ढि दूरम्।
एतं शुश्रुम गृहराजस्य भागमथो विद्म निर्ऋतेर्भागधेयम् ॥२९॥

भा०—हे राजन्! तुषों के समान तुच्छ दुष्टों को जातवेदा अग्नि में डाल दे, भस्म कर दे। और इन छिलकों को दूर मार भगा। इस शेष अन्न को शेष उत्तम प्रजा को राष्ट्र गृह के राजा का सेवनीय भाग सुनते हैं। और तुष आदि को पाप या मृत्यु का भाग जानते हैं।

श्राम्यतः पचतो विद्धि सुन्वतः पन्थां स्वर्गमधि रोहयैनम्।
येन रोहात् परमापद्य यद् वय उत्तमं नाकं परमं व्योम ॥३०॥ (३)

भा०—श्रम से, तप साधना करने हारे, ज्ञान और आचार का परिपाक करने वाले, और ज्ञान का शिष्यों को सम्पादन करते हुए विद्वानों को हे राजन! तू भली प्रकार जान। हे ईश्वर! सुखकारी मार्ग पर इस राजा को चढ़ा। जिससे वह परम श्रेष्ठ आयु १०० वर्ष जीवन को प्राप्त होकर सबसे उत्कृष्ट जो सुखमय, दुःख से रहित परम रक्षास्थान, मोक्ष धाम है उसको प्राप्त हो।

अग्रे॑रध्वर्यो मुख॑मे॒तद् वि मृ॑ड्ढ्या॒ज्याय॑ लो॒कं कृ॑णुहि प्रवि॒द्वान्।
घृ॒तेन॒ गात्रानु॒ सर्वा॒ वि मृ॑ड्ढि कृ॒ण्वे पन्थां॑ पि॒तृषु॒ यः स्व॒र्गः ॥३१॥

भा०—राष्ट्र यज्ञ के नेता तथा प्रजा का धारण पोषण करने हारे इस मुख्यस्वरूप राजा को उज्ज्वल और शुद्ध कर। तू अति अधिक विद्वान् है। क्षात्रबल के भोग के लिये इस राष्ट्र को तू तय्यार कर दे। और तेज से राष्ट्र के समस्त अङ्गों को विशेष रूप से परिष्कृत कर दे। मैं प्रधान मन्त्री प्रजा के पालक माता, पिता, गुरु, आचार्य, राजा, राजशासक आदि लोगों के आधार पर आश्रित जो सुखकारी मार्ग है उस मार्ग को तय्यार करूं।

बभ्रे॒ रक्षः॑ सम॒दमा व॒पैभ्यो॒ अब्रा॑ह्मणा॒ यत॒मे त्वो॑प॒सीदा॑न्।
पु॒री॒षिणः॑ प्र॒थमा॑नाः पु॒रस्ता॑दार्षे॒यास्ते॒ मा रि॑षन् प्राशि॒तारः॑ ॥३२॥

भा०—हे प्रजा के धारण और पोषणकर्ता राजन्! जो जो श्रेष्ठ ब्रह्मज्ञानी लोग तेरे समीप आकर बैठें, तेरी शरण लें, इनके लिये तू मदमत्त राक्षसों का विनाश कर। तेरे जो उपभोग करने वाले पुरवासी हैं, और सर्वत्र प्रसिद्ध पूर्वोक्त ऋषियों की सन्तानें हैं वे कभी क्लेश को प्राप्त न हों।

प्रजा वै पशवः पुरीषम्। तै० सं० २।६।४।३॥ अन्नं पुरीषम्। श० ८।१।४।५॥ रक्षिणः पुरीषम्। श० ८।७।४।१७॥ पुरीष्य इति वै तमाहुः यः श्रियं गच्छति। श० २।१।१।७॥ यत्पुरीषं स इन्द्रः। श० १०।४।१।७॥

आ॒र्षे॒येषु॒ नि द॑ध ओदन त्वा॒ नाना॑र्षेया॒णाम॒प्य॑स्त्यत्र।
अ॒ग्निर्मे॑ गो॒प्ता म॒रुत॑श्च॒ सर्वे॒ विश्वे॑ दे॒वा अ॒भि र॑क्षन्तु प॒क्वम् ॥३३॥

भा०—हे राजन्! ऋषियों की सन्तानों के बीच तुझे मैं स्थापित करता हूं, नाना प्रकार की ऋषि सन्तानों का भी इस में भाग है, अथवा अनार्ष लोगों का इस राज्य में कोई भाग नहीं है। राष्ट्र का रक्षक अग्नि के समान तेजस्वी राजा है। और वायु के समान प्रबल, शीघ्रगामी, शत्रुहारी, सैनिक तथा समस्त विद्वद्गण परिषद् राजा की रक्षा करें।

यज्ञं दुहानं सदमित् प्रपीनं पुमांसं धेनुं सदनं रयीणाम्।
प्रजामृतत्वमुत दीर्घमायू रायश्च पोषैरुप त्वा सदेम ॥ ३४ ॥

भा०—राष्ट्रयज्ञ को पूर्ण करने वाले, सदैव बढ़े चढ़े, सब ऐश्वर्यों के आश्रय स्थान, महावृषभ के समान विशाल, तुझ पुंगव-पुरुष को प्राप्त होकर, हम प्रजावासी लोग, पुष्टिकारक अन्न आदि पदार्थों के साथ साथ अपनी सन्तति द्वारा सदा वंश की अमरता और दीर्घजीवन और सुवर्णादि धन को प्राप्त हों।

प्रजाम् अनु प्रजायसे तदु ते मर्त्य अमृतम्। इति तै० ब्रा० १। ५। ५। ६ ॥ प्रजा रूप में उत्पन्न होना ही मनुष्य का अमृत रहना है।

वृषभोसि स्वर्ग ऋषीनार्षेयान् गच्छ।
सुकृतां लोके सीद तत्र नौ संस्कृतम् ॥ ३५ ॥

भा०—हे राजन्! तू समस्त सुखों की राष्ट्र पर वर्षा करने वाला है। तू ही सुख और आनन्द देने वाला होने से 'स्वर्ग' है। तू मन्त्र द्रष्टा ऋषियों और उनके सन्तानों एवं शिष्य प्रशिष्यों को भी प्राप्त हो। तू पुण्य, शुभ आचारी, पुण्यात्मा लोगों के लोक में विराजमान हो। वहां ही तुम प्रजा और राजा दोनों को समान रूप से पुण्य-फल प्राप्त हो।

समाचिनुष्वानुसंप्रयाह्यग्ने पथः कल्पय देवयानान्।
एतैः सुकृतैरनु गच्छेम यज्ञं नाके तिष्ठन्तमधि सप्तरश्मौ ॥ ३६ ॥

भा०—हे राजन्! तू सब राष्ट्र के वासियों को या सैनिक गणों को सुव्यवस्थित कर। और फिर जिन पर आक्रमण करना हो उन पर आक्रमण कर। विद्वानों और शासकों के लिये चलने योग्य मार्गों उनके कर्त्तव्यों का निर्माण कर। इन उत्तम कार्यों के कारण हम यज्ञरूप राष्ट्र-पति का अनुगमन करें। जिस प्रकार सप्तरश्मि अर्थात् सात प्राणों से युक्त मूर्धा में विराजमान आत्मा को योगी प्राप्त होते हैं उसी प्रकार सात विद्वान् अमात्यों से युक्त राजा को हम प्राप्त हों।

येन॑ देवा ज्योति॑षा द्यामु॒दाय॑न् ब्रह्मौद॒नं प॒क्त्वा सु॑कृ॒तस्य॑ लो॒कम्।
तेन॑ गेष्म सुकृ॒तस्य॑ लो॒कं स्व॒रारोह॑न्तो अ॒भि नाक॑मुत्त॒मम् ३७ (४)

भा०—जिस परम ज्योति द्वारा तत्व के द्रष्टा लोग ब्रह्मरूप परम ओदन, रसमय ज्ञान का परिपाक करके पुण्य कर्मों के फल स्वरूप प्रकाशमय लोक को प्राप्त होते हैं, उसी परम ज्योति द्वारा हम भी परम तेजोमय, उत्कृष्टतम, सुखमय लोक पर चढ़ते हुए पुण्य कर्मों से प्राप्त होने योग्य लोक को प्राप्त हों।

यह सूक्त 'ब्रह्मरूप ओदन' अर्थात् ब्रह्म ज्ञान को परिपक्व करके मोक्ष प्राप्त करने पर लगता है।

[२] रुद्र ईश्वर के भव और शर्व रूप।

अथर्वा ऋषि। रुद्रो देवता। १ परातिजागता विराड् जगती। २ अनुष्टुब्गर्भा पञ्चपदा जगती। १३ चतुष्पात्स्वराडुष्णिक्। ४, ५, ७, १३, १५, १६ अनुष्टुभः। ६ आर्षी गायत्री। ८ महाबृहती। ९ आर्षी। १० पुर कृतिस्त्रिपदा विराट्। ११ पञ्चपदा विराट् जगतीगर्भा शक्वरी। १२ भुरिक्। १४, १७–१९, २६, २७ तिस्रो विराट् गायत्र्यः। २० भुरिग्गायत्री। २१ अनुष्टुप्। २२ विषमपादलक्ष्मा त्रिपदा महाबृहती। २४ २९ जगत्यौ। २५ पञ्चपदा अतिशक्वरी। ३० चतुष्पादुष्णिक्। ३१ त्र्यवसाना विपरीतपादलक्ष्मा षट्पदा जगती। ३, १६, २३, २८ त्रिष्टुभः।

एकत्रिंशदृचं सूक्तम्।

भवा॑शर्वौ मृ॒डतं॒ माभि या॑तं॒ भूत॑पती॒ पशु॑पती॒ नमो॑ वाम्।
प्रति॑हिता॒माय॑तां॒ मा वि स्रा॑ष्टं॒ मा नो॑ हिंसिष्टं द्वि॒पदो॒ मा चतु॑ष्पदः ॥ १ ॥

भा०—हे भव! और हे शर्व! अर्थात् हे सर्वोत्पादक और हे सर्वसंहारक! आप दोनों दिव्य शक्तियां हमें सुखी करो। हम पर चढ़ाई मत करो। आप दोनों समस्त प्राणियों के पालक और समस्त पशुओं, जीवों और इन्द्रियात्माओं के पालक हो। तुम दोनों को हमारा नमस्कार

है । धनुष् में रक्खे हुए और डोरी से ताने हुए बाण को हम पर मत
छोड़ो । हमारे दोपायों को मत मारो और हमारे चौपायों को मत मारो ।
सर्वोत्पादक होने से ईश्वर 'भव' है । सर्वसंहारक होने से वही 'शर्व'
है । राष्ट्र पक्ष में प्रजा की उत्पत्ति और वृद्धि करने और सामर्थ्यवान्
होने से राजा 'भव', और दुष्टों का पीडक होने से वही रूपान्तर में या
उसका सेनापति 'शर्व' है । हम यहां ईश्वर पक्ष का अर्थ लिखेंगे ।

शुने क्रोष्ट्रे मा शरीराणि कर्तमलिक्लवेभ्यो गृध्रेभ्यो ये च कृष्णा
अविष्यवः । मक्षिकास्ते पशुपते वयांसि ते विघसे मा विदन्त ॥२॥

भा०—हे समस्त जीवों के स्वामिन् ! हमारे शरीरों को कुत्ते और
गीदड़ों के लिये, भयंकर शब्दकारी गीधों के लिये अथवा निर्भय गीधों
के लिये, और जो काटने वाले या काले हिंसक जन्तु हैं उनके लिये मत
बनाओ । और हे पशुपते ! हे जीवों के स्वामिन् ! तेरी बनाई मक्खियां
और अन्य तेरे बनाये हिंसक पक्षी भी हमको अपने भोजन के निमित्त
न प्राप्त कर सकें ।

क्रन्दाय ते प्राणाय याश्च ते भव रोपयः ।
नमस्ते रुद्र कृण्मः सहस्राक्षायामर्त्य ॥ ३ ॥

भा०—हे सर्वोत्पादक भव ! ईश्वर ! सबको आह्लादित करने और
सबको रुलाने वाले और प्राण के समान सबके प्राणस्वरूप, सबको जीवन
देनेहारे तुझको, और जो तेरी मोहनकारिणी शक्तियां हैं उनको नमस्कार
है । हे सबको रुलाने हारे और दुःखों के विनाशक ! हे अमर्त्य ! तुझ
सहस्रों आंखों वाले, सर्वद्रष्टा को हम नमस्कार करते हैं ।

पुरस्तात् ते नमः कृण्म उत्तरादधरादुत ।
अभीवर्गाद् दिवस्पर्यन्तरिक्षाय ते नमः ॥ ४ ॥

भा०—हे परमेश्वर ! आगे, ऊपर, नीचे विद्यमान तुझ को हम
नमस्कार करते हैं । सब तरफ से घेरने वाले अन्तरिक्ष और आकाश से
भी परे विद्यमान अन्तर्यामी, सर्वव्यापक तुझको नमस्कार है ।

मुखा॑य ते पशुपते॒ यानि॒ चक्षूं॑षि ते भव ।
त्व॒चे रू॒पाय॑ सं॒दृशे॑ प्रती॒चीना॑य ते॒ नमः॑ ॥ ५ ॥

भा०—हे पशुपते ! जीवों के स्वामिन् ! परमात्मन् ! तेरी मुख-शक्ति को नमस्कार है । हे सर्वोत्पादक ईश्वर ! तेरी जो चक्षु-शक्तियां हैं उनको भी नमस्कार है । तेरी त्वचा-शक्ति को नमस्कार है । तेरे सम्यग्दर्शन तथा प्रत्यक् आत्मस्वरूप और तेरे नाना रूपों के लिये नमस्कार है ।

अङ्गे॑भ्यस्त उ॒दरा॑य जि॒ह्वायां॑ आ॒स्याय ते ।
द॒द्भ्यो ग॒न्धाय॑ ते॒ नमः॑ ॥ ६ ॥

भा०—हे परमेश्वर ! तेरे अङ्गों को नमस्कार है । तेरे उदर भाग को नमस्कार है । तेरी जीभ को नमस्कार है । तेरे मुख को नमस्कार है । तेरे दांतों को नमस्कार है । तेरे गन्ध को नमस्कार है ।

५, ६ मन्त्रों में मुख, चक्षु, त्वचा, रूप, उदर, जिह्वा, मुख, दांत, गन्ध आदि नाम आने से ईश्वर का कोई शरीर नहीं सिद्ध होता, प्रत्युत यहां आलंकारिक रूप लेना उचित है जो पूर्व कई स्थानों पर दर्शा चुके हैं । जैसे [अथर्व का० ९ । सू० ७] । जैसे गीता में:—

यथा प्रदीप्तं ज्वलनं पतङ्गा. विशन्ति नाशाय समृद्धवेगाः ।
तथैव नाशाय विशन्ति लोकास्तवापि वक्त्राणि समृद्धवेगाः ॥

मुख जैसे—रूपं महत्ते बहुवक्त्रनेत्रं महाबाहो बहुबाहूरुपादम् ।

रूप जैसे—नभःस्पृशं दीप्तमनेकवर्णम् ।

नेत्र जैसे—अनन्तबाहुं शशिसूर्यनेत्रम् ।

गन्ध और रूप जैसे—पुण्यो गन्धः पृथिव्यां च—(अ० ७ । ९) तेजश्चास्मि विभावसौ ।

दांत और जीभ जैसे—दंष्ट्राकरालानि च ते मुखानि (११ । २५) लेलिह्यसे ग्रसमानः समन्ताल्लोकान् समग्रान् वदनैर्ज्वलद्भिः ।
आख्याहि मे को भवानुग्ररूपो नमोऽस्तु ते देववर प्रसीद ॥ ११।३०।३१॥

अस्त्रा नीलशिखण्डेन सहस्राक्षेण वाजिना ।
रुद्रेणार्धकघातिना तेन मा समरामहि ॥ ७ ॥

भा०—नील केश या कल्गी वाले, वेगवान्, बाण आदि को फेंकने वाले, एक योद्धा के समान भयंकर, हजारों आंखों वाले, इस समग्र संसार बन्धन का सहसा नाश करने वाले, अति भंयकर, रुद्र से हम कभी न लड़ें, उसके हम कभी विरोधी न हों।

स नो भवः परि वृणक्तु विश्वत आप इवाग्निः परि वृणक्तु नो भवः । मा नोभि मांस्त नमो अस्त्वस्मै ॥ ८ ॥

भा०—वह संसार का उत्पादक परमेश्वर हमारी सब ओर से रक्षा करे, हमें अपने संहारकारी कोप से बचाए रक्खे। जैसे अग्नि भड़क कर भी जलों या जलाशय को विना जलाये छोड़ जाता है उसी प्रकार वह सर्व प्रभु अपने संहार से हमें छोड दे। हमें मत संहार करे, उसको हमारा नमस्कार हो।

चतुर्नमो अष्टकृत्वो भवाय दशकृत्वः पशुपते नमस्ते ।
तवेमे पञ्च पशवो विभक्ता गावो अश्वाः पुरुषा अजावयः ॥९॥

भा०—हे जीवों के स्वामिन् ! संसार के उत्पत्ति स्थान रूप आपको चार वार, आठ वार और दश वार नमस्कार हो। तेरे ही विभाग किये हुए ये पांच प्रकार के पशु जीव हैं। गौएं, घोडे, पुरुष, बकरी और भेडें।
नमो नमस्तेऽस्तु सहस्रकृत्वः पुनश्च भूयोऽपि नमो नमस्ते ॥ गी० ११।३९॥

तव चतस्रः प्रदिशस्तव द्यौस्तव पृथिवी तवेदमुग्रोर्व॒न्तरिक्षम् ।
तवेदं सर्वमात्मन्वद् यत् प्राणत् पृथिवीमनु ॥ १० ॥ (५)

भा०—हे सर्वशक्तिमन् ! चारों दिशाएं तेरी हैं। यह महान आकाश व सूर्य तेरा है। यह पृथ्वी तेरी है। यह विशाल अन्तरिक्ष भी तेरा ही है। यह सब चेतन आत्मा से युक्त जो पृथिवी पर जीवन धारण कर रहा है यह सब तेरा ही है।

उरुः कोशो वसुधानस्तवायं यस्मिन्निमा विश्वा भुवनान्यन्तः। स नो मृड पशुपते नमस्ते परः क्रोष्टारो अभिभाः श्वानः परो यन्त्वघरुदो विकेश्यः ॥ ११ ॥

भा०—हे सबको सुखी करने हारे! हे जीवों के स्वामिन्! यह तेरा महान् कोश, भुवन कोश है जिसमें बसाने हारे ये सूर्य, पृथिवी आदि सुरक्षित रक्खे गये हैं। जिसमें ये समस्त भुवन लोक प्रविष्ट हैं। उस तुझको नमस्कार हो। सियार, गीदड़ियां और कुत्ते हमसे परे रहें। और पापों के कारण रोने चीखने वाली, बाल खोल कर भयंकर रूप से विचरने वाली दुष्ट स्त्रियां भी हमसे दूर रहें।

धनुर्बिभर्षि हरितं हिरण्ययं सहस्रघ्नि शतवधं शिखण्डिन्। रुद्रस्येषुश्चरति देवहेतिस्तस्यै नमो यतमस्यां दिशीतः ॥१२॥

भा०—हे शिखण्ड धारण करने वाले, पर-संहारक सेनापति के समान परमात्मन्! तू सहस्रों के नाशक और सैकड़ों के मारने वाले, सुवर्ण के समान कान्तिमान्, तेजस्वी, सर्वसंहारक, सूर्यमय धनुष को धारण करता है। सब पापियों को रुलाने वाले उस परमात्मा का प्रेरित यह बाण ही सर्वत्र चलता है, जो कि परमात्मा का आयुध है। जिस दशा में भी यह उसका बाण है उसको नमस्कार है।

योऽभियातो निलयते त्वां रुद्र निचिकीर्षति।
पश्चादनुप्रयुङ्क्षे तं विद्धस्य पदनीरिव ॥ १३ ॥

भा०—हे दुष्टों को रुलाने वाले! जो आक्रान्त होकर छिप जाता और मुझे नीचा दिखाना चाहता है, तू उसके पीछे पीछे पुनः घायल जानवर की हरण-पंक्तियों के समान उसको खोजता है और उसे दण्ड देता है। पापी को परमात्मा कभी दण्ड दिये बिना नहीं छोड़ता। इसी प्रकार राजा को भी अपने शत्रु को न छोड़ना चाहिये, प्रत्युत उसकी खोज लगाकर दण्ड देना चाहिये।

भवारुद्रौ सयुजा संविदानावुभावुग्रौ चरतो वीर्याय।
ताभ्यां नमो यतमस्यां दिशीतः ॥ १४ ॥

भा०—परमात्मा के दो स्वरूप हैं एक 'भव' जो सर्व जीवों को उत्पन्न करता है, दूसरा 'शर्व' जो उनको नाना प्रकार से संहार करता है। ये ही दोनों भव और रुद्र सदा एक दूसरे के साथ सयुक्त और एक दूसरे के साथ मानो सलाह करके रहते हैं। वे दोनों बलवान अपने वीर्य से सर्वत्र व्यापक हैं। यहां से जिस दिशा मे भी वे दोनों विद्यमान हों उन दोनों रूपो वाले परमात्मा के प्रति हम आदर पूर्वक नमस्कार करते हैं।

नमस्तेऽस्त्वायते नमो अस्तु परायते।
नमस्ते रुद्र तिष्ठत आसीनायोत ते नमः ॥ १५ ॥
अथर्व० ११ । ४ । ७ ॥

भा०—हे रुद्र ! आते हुए, जाते हुए, खडे हुए या बैठे हुए पूजनीय जन के प्रति जैसे आदर से नमस्कार किया जाता है वैसे ही हम तेरे प्रति नमस्कार करते हैं।

नमः सायं नमः प्रातर्नमो रात्र्या नमो दिवा।
भवाय च शर्वाय चोभाभ्यामकरं नमः ॥ १६ ॥

भा०—परमात्मा को सायकाल नमस्कार हो, प्रातःकाल नमस्कार हो। रात्रिकाल मे नमस्कार हो। दिन को नमस्कार हो, सर्वोत्पादक और सर्वसंहारक ईश्वर के दोनों स्वरूपों को मैं नमस्कार करता हूं।

सहस्राक्षमतिपश्यं पुरस्ताद् रुद्रमस्यन्तं बहुधा विपश्चितम्।
मोपाराम जिह्वयेयमानम् ॥ १७ ॥

भा०—मैं साक्षाद् द्रष्टा अपने समक्ष सहस्रों आंखों से सम्पन्न, दुष्टों को रुलाने हारे, समस्त कार्यों और ज्ञानों को जानने हारे, नाना प्रकार के अपने बाण प्रहार करते हुए प्रभु को मैं अतिक्रान्तदर्शिनी दृष्टि से …

रहा हूं। अपनी काल जिह्वा से सर्वत्र व्यापक उसकी हम अव-हेलना न करें।

'सहस्राक्षम्' = सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्। यजु०।

श्यावाश्वं कृष्णमसितं मृणन्तं भीमं रथं केशिनः पादयन्तम्।
पूर्वे प्रतीमो नमो अस्त्वस्मै ॥ १८ ॥

भा०—श्याव अर्थात् दिन और रात्रिरूप दो अश्वों वाले, आकर्षण-शील, बन्धन रहित, इस संसार को मटिया-मेट करने वाले, अति भयानक और केश रूप किरणों से युक्त सूर्य के भी रमणीय गोले को पदाक्रान्त करते हुए और चलाते हुए उस परमात्मा को, हम पूर्ण होकर ही प्राप्त करते एवं साक्षात् करते हैं। उसको हमारा नमस्कार हो।

मा नोऽभि स्रा मृत्यं देवहेतिं मा नः क्रुधः पशुपते नमस्ते।
अन्यत्रास्मद् दिव्यां शाखां वि धूनु ॥ १९ ॥

भा०—हे समस्त प्राणियों के पालक! चमकने वाले दिव्य शस्त्र को हम पर मत चला। हम पर क्रोध मत कर। तुझे नमस्कार है। दिव्य, तेजस्विनी, विजयशालिनी अथवा घनघोर गर्जना करने वाली या मर्दनकारिणी आकाशचारिणी, शक्तिमती विद्युत् लता को हमसे परे कर।

'दिव्या' दिवु परिकूजने, दिवु मर्दने (इति चुरादिः) दिवु क्रीडा-विजिगीषाव्यवहारद्युतिस्तुतिमोदमदस्वप्नकान्तिगतिषु (दिवादि)। शाखा—खे शेत इति शाखा। शक्नोतेर्वा [नि० ६। ६। ४]

मा न हिंसीरधि नो ब्रूहि परि णो वृङ्ग्धि मा क्रुधः।
मा त्वया समरामहि ॥ २० ॥

भा०—हे शक्तिमन् ! रुद्र ! हम जो तुझ से विपरीत नहीं जाते उनकी गौओं, पुरुषों और बकरी और भेडों की अभिकांक्षा मत कर। हे उग्र ! तू अपनी उग्रता को उस पर प्रकट कर जो तेरे विपरीत जाता है। तू हिंसकों की प्रजा का विनाश कर।

यस्य॑ त॒क्मा कासि॑का हे॒तिरेक॒मश्व॑स्येव॒ वृष॑णः॒ क्रन्द॒ एति॑।
अ॒भि॒पू॒र्वं नि॒र्णय॑ते॒ नमो॑ अस्त्वस्मै ॥ २२ ॥

भा०—रुद्र के हथियारों का वर्णन करते हैं। जिस रुद्र के स्वाभाविक ज्वर और खांसी हथियार हैं। वे हथियार बलवान् घोडे के हिनहिनाने के समान किसी भी पुरुष पर आक्रमण करते हैं। पूर्व कर्मों के अनुसार दण्ड निर्धारण करने वाले उस रुद्र को नमस्कार है।

यो॒ऽन्तरि॑क्षे॒ तिष्ठ॑ति॒ विष्ट॑भि॒तोऽय॑ज्वनः प्रमृ॒णन् दे॑वपी॒यून्।
तस्मै॒ नमो॑ द॒शभि॒ः शक्व॑रीभिः ॥ २३ ॥

भा०—जो रुद्र यज्ञ न करने हारे और सत्पुरुषों के घातक पुरुषों को नाश करता हुआ अन्तरिक्ष में स्थिर होकर खडा है, उसको दश शक्तियों सहित नमस्कार है। अथवा उसको हमारा दसों अंगुलियां जोड़ कर नमस्कार है।

तुभ्य॑मार॒ण्याः प॒शवो॑ मृ॒गा वने॑ हि॒ता हं॒साः सु॑प॒र्णाः श॑कु॒ना वयां॑सि।
तव॑ य॒क्षं प॑शुपते अ॒प्स्व॑१॒न्तस्तुभ्यं॑ क्षरन्ति दि॒व्या आपो॑ वृ॒धे ॥ २४ ॥

भा०—हे रुद्र ! तेरे ही ये जङ्गल के पशु हरिण, सिंह, हाथी आदि हैं जो कि जङ्गल में रहते हैं। हंस आदि सुन्दर पक्षी बाज, और अन्य शक्तिशाली गृध्र आदि पक्षी ये सब भी तेरे ही हैं। हे समस्त जीवों के स्वामिन् ! तेरा ही पूज्यतम स्वरूप जलों या प्रजाओं के भीतर है। तेरी महिमा को बढाने के लिये ये आकाशस्थ जल मेघों से नाना रूप से बरसते हैं।

शिंशुमारा अजगराः पुरीकया जषा मत्स्या रजसा येभ्यो अस्यसि ।
न ते दूरं न परिष्ठास्ति ते भव सद्यः सर्वान् परि पश्यसि भूमिं
पूर्वस्माद्धंस्युत्तरस्मिन् त्समुद्रे ॥ २५ ॥

भा०—हे पशुपते ! घडियाल, अजगर, बडे बडे विशाल कच्छुए की कठोर त्वचा वाले जानवर, महामत्स्य, साधारण मच्छ और 'रजस' नाम के प्राणी ये सब तेरे वश हैं। जिन पर तू अपना काल रूप जाल फेंका करता है। तुझ से कोई दूर नहीं। हे भव ! और तुझे कोई छोड़कर या तुझ से परे भी नहीं रहता। तू सदा ही सब को देखता रहता है। और पूर्व समुद्र से उत्तर समुद्र तक समस्त भूमि को व्याप्त रहता है। और क्षण भर में समस्त भूमि को देख लेता है।

मा नो रुद्र तक्मना मा विषेण मा नः सं स्रा दिव्येनाग्निना ।
अन्यत्रास्मद् विद्युतं पातयैताम् ॥ २६ ॥

भा०—हे रुद्र ! हमें ज्वर के समान कष्टदायी रोग से पीडित मत कर। विष से भी हमें पीडित मत कर। मर्दन करने वाली अग्नि से हमारा संपर्क न कर, हमसे अन्य स्थान पर इस बिजुली को डाल।

भवो दिवो भव ईशे पृथिव्या भव आ पप्र उर्वन्तरिक्षम् ।
तस्मै नमो यतमस्यां दिशीतः ॥ २७ ॥

भा०—सर्वोत्पादक परमात्मा द्यौलोक को वश करता है, और वही सर्वोत्पादक भव पृथिवी को भी वश कर रहा है। और वही सर्वोत्पादक परमेश्वर विशाल अन्तरिक्ष को व्याप्त किये हुए है। इधर से वह जिस दिशा में भी है उसको नमस्कार है।

भवं राजन् यजमानाय मृड पशूनां हि पशुपतिर्बभूथ ।
यः श्रद्दधाति सन्ति देवा इति चतुष्पदे द्विपदेऽस्य मृड ॥ २८ ॥

भा०—हे प्रकाशमान ! हे सम्राट् ! हे सर्व लोकसुखकारक ! आप सब प्रकार के पशुओं के पशु-पालक हो। जो पुरुष इस बात

को सत्य जानता है कि देवगण शक्तिशाली होते हैं उसके मनुष्यों और पशुओं सबको सुखी कर।

मा नो॑ म॒हान्त॑मु॒त मा नो॑ अर्भ॒कं मा न॒ो वह॑न्तमु॒त मा नो॑ वक्ष्य॒तः।
मा नो॑ हिंसीः पि॒तरं॑ मा॒तरं॑ च॒ स्वां त॒न्वं॑ रुद्र॒ मा री॑रिषो नः ॥२९॥

भा०—हे रुद्र ! हमारे वृद्ध पुरुष को मत मार, पीड़ा मत दे। हमारे बच्चे को भी पीड़ा मत दे। हमारे कुटुम्ब का भार उठाने वाले को पीड़ा मत दे। भविष्यत् में भार अपने ऊपर लेने हारे हमारे नवयुवकों को भी पीड़ा मत दे। हमारे पिता और माता को भी मत मार। हे रुद्र ! हमारी अपनी देह का भी विनाश न कर, पीड़ित न कर।

रु॒द्रस्यै॑लबका॒रेभ्यो॑ऽसंसूक्तगि॒लेभ्यः॑।
इ॒दं म॒हास्ये॑भ्यः॒ श्वभ्यो॑ अकरं॒ नमः॑ ॥ ३० ॥

भा०—रुद्र का प्रतिनिधि जो कि शत्रुओं को रुलाने वाला हमारा सेनापति है उसके सैनिक क्रीडाओं को करने वाले सैनिकों के प्रति, तथा अनुत्तम वाणियों के बोलने वाले शत्रु सैनिकों को निगल जाने वाले और इसीलिये मानो जो बड़े बड़े मुखों वाले हैं ऐसे सैनिकों के प्रति, तथा जो पालतू कुत्तों की न्याईं स्वामिभक्त हैं ऐसे हमारे सैनिकों के प्रति हमारा नमस्कार हो।

नम॑स्ते घो॒षिणी॑भ्यो॒ नम॑स्ते के॒शिनी॑भ्यः।
नमो॒ नम॑स्कृताभ्यो॒ नमः॑ सम्भु॒ञ्जती॑भ्यः।
नम॑स्ते देव॒ सेना॑भ्यः स्व॒स्ति नो॒ अभ॑यं च नः ॥३१॥ (२)

भा०—हे रुद्र के प्रतिनिधि सेनापति ! तेरी सेनाओं को नमस्कार है। बड़े बड़े नाद करने वाली तेरी सेनाओं को नमस्कार है। तथा अर्थात् किरणों रूपी केशों वाली जो अग्नि, विद्युत् और सूर्य तथा शक्तियां हैं उन शक्तियों वाले हथियारों से सम्पन्न सेनाओं को नमस्कार है। जिन सेनाओं को हमने नमस्कार किया उनके द्वारा हमें

नमस्कार है। अच्छी प्रकार राष्ट्र का पालन करती हुई सेनाओं को नमस्कार है।

इति प्रथमोऽनुवाकः।

[तत्र सूक्तद्वयम्, ऋचश्चाष्टापष्टिः।]

[३ (१)] विराट् प्रजापति का बार्हस्पत्य ओदन रूप से वर्णन।

अथर्वा ऋषिः। बार्हस्पत्यौदनो देवता। १, १४ आसुरीगायत्र्यौ। २ त्रिपदासमविषमागायत्री। ३, ६, १० आसुरीपङ्क्तयः। ४, ८ साम्न्यनुष्टुभौ। ५, १३, १५ साम्न्युष्णिहः। ७, १९–२२ प्राजापत्या अनुष्टुभः। ९, १७, १८ आसुर्यनुष्टुभः। ११ भुरिग् आर्ची-अनुष्टुप्। १२ याजुषी जगती। १६, २३ आसुरीबृहत्यौ। २४ त्रिपदा प्राजापत्याबृहती। २६ आर्ची उष्णिक्। २७, २८ साम्नीबृहती। २९ भुरिक्। ३० याजुषी त्रिष्टुप्। ३१ अल्पाच पङ्क्तिरुत याजुषी।

एकत्रिंशदृचं सूक्तम्।

(प्रथमः पर्यायः)

तस्यौदनस्य बृहस्पतिः शिरो ब्रह्म मुखम् ॥१॥ द्यावापृथिवी श्रोत्रे सूर्याचन्द्रमसावक्षिणी सप्तऋषयः प्राणापानाः ॥ २ ॥ चक्षुर्मुसलं काम उलूखलम् ॥३॥ दितिः शूर्पमदितिः शूर्पग्राही वातोऽपाविनक् ॥ ४ ॥ अश्वाः कणा गावस्तण्डुला मशकास्तुषाः ॥५॥ कब्रु-फलीकरणाः शरोऽभ्रम् ॥६॥ श्याममयोऽस्य मांसानि लोहितमस्य लोहितम् ॥ ७ ॥ त्रपु भस्म हरितं वर्णः पुष्करमस्य गन्धः ॥ ८ ॥ खलः पात्रं स्फ्यावंसावीषे अनूक्ये ॥ ९ ॥ आन्त्राणि जत्रवो गुदा वरत्राः ॥ १० ॥

भा० —(१) विराट्रूप ओदन के अङ्गों की यज्ञमय कल्पना का प्रकार दर्शाते हैं। इस विराट् का बृहस्पति सिर है, वेद उसका ज्ञानमय मुख है। (२) द्यौ और पृथिवी अर्थात् समस्त दिशाएं उसके कान हैं। सूर्य और चन्द्रमा उसकी दो आंखें हैं। सात ऋषि उसके प्राण

अपान आदि शरीरगत वायु है। (३) यज्ञरूप प्रजापति के अङ्गों में विद्यमान मुसल आख है। और उलूखल या ओखली 'काम' सरूप है। (४) खण्डन-कारिणी विभाग शक्ति सूप या छाज है। उस सूप को लेने वाली 'अदिति' अर्थात् 'पृथ्वी' है, वायु पूर्वोक्त ब्रह्मौदन के चावलों को तुषों से पृथक् करने वाला है। (५) अश्व कण हैं, गौएं चावल हैं, मशक आदि क्षुद्र जन्तु तुष हैं। (६) नाना रंग वाले दृश्य उसके ऊपर के छिलके हैं, ऊपर की पपडी मेघ है। (७) काला लोहा इसके मांस हैं, और लाल लोहे, तांबा आदि धातु इसके रुधिर हैं। (८) टीन, सीसा आदि इसका 'भस्म' है, पीला सुवर्ण आदि धातु इसका उत्तम वर्ण है, कमल फूल इसका गन्ध है। (९) खलिहान इसका पात्र है, 'स्फ्य' नाम शकट के स्थान उसके कंधे हैं। 'ईषा' नामक शकट के दो दण्ड इसके अनूक अर्थात् हंसली की हड्डी के समान हैं। (१०) शकट में बैल जोडने की रस्सियां आतें हैं, और बैल को शकट में जोड़ने की पट्टियां गुदा की नसें हैं।

इयमेव पृथिवी कुम्भी भवति राध्यमानस्यौदनस्य द्यौरपिधानम् ॥ ११ ॥
सीताः पर्शवः सिकता ऊबध्यम् ॥ १२ ॥
ऋतं हस्तावनेजनं कुल्योपसेचनम् ॥ १३ ॥

भा०—(११) राधे जाने वाले ओदनरूप प्रजापति के लिये यह पृथिवी ही बडी भारी देगची है। और द्यौलोक ऊपर का ढक्कन है। (१२) हल कृषि आदि इसकी पसुलियां हैं, बालुका रेगिस्तान आदि प्रदेश इसके पेट में पडे मल के समान हैं। (१३) सत्य ज्ञान या समस्त जल इसका हाथ धोने का जल है, और नहरें, नदियां इसके सींचने का जल है।

ऋचा कुम्भ्यधिहितार्त्विज्येन प्रेषिता ॥ १४ ॥
ब्रह्मणा परिगृहीता साम्ना पर्यूढा ॥ १५ ॥
बृहदायवनं रथन्तरं दर्विः ॥ १६ ॥

ऋतवः पक्तार आर्तवाः समिन्धते ॥ १७ ॥
चरुं पञ्चबिलमुखं घर्मोऽभीन्धे ॥ १८ ॥
ओदनेन यज्ञवचः सर्वे लोकाः समाप्याः ॥ १९ ॥

भा०—(१४) ऋग्वेद द्वारा पूर्वोक्त डेगची आग पर रख दी गई, और यजुर्वेद द्वारा आग से गरम की (१५) अथर्व-वेद से धारण की गई, और सामवेद से परिवेष्टित है। (१६) 'बृहत्' नामक गान 'आयवन' अर्थात् जल चावलों को मिलाने वाले दण्ड के समान है। 'रथन्तर' नामक गान कड़छा के समान है। (१७) ऐसे 'ओदन' के पकाने वाले ऋतुगण हैं। ऋतु सम्बन्धी वायुएं ओदन के पाककारी अग्नि को प्रदीप्त करते हैं। (१८) विस्तृत मुख वाले उस ओदन से भरे 'चरु' अर्थात् डेगची को घर्म या घाम, सूर्य वा ताप और भी प्रदीप्त करता है। (१९) ऐसे ओदन द्वारा यज्ञों के प्रतिपादक वैदिक वचन तथा उसमें प्रतिपादित समस्त लोकों के ज्ञान भली प्रकार प्राप्त हो जाते हैं।

यस्मिन्त्समुद्रो द्यौर्भूमिस्त्रयोऽवरपरं श्रिताः ॥ २० ॥
यस्य देवा अकल्पन्तोच्छिष्टे षडशीतयः ॥ २१ ॥
तं त्वौदनस्य पृच्छामि यो अस्य महिमा महान् ॥ २२ ॥

भा०—(२०) जिस ओदन में आकाश, द्यौ और भूमि तीनों एक दूसरे के ऊपर नीचे और उरे परे आश्रित हैं। (२१) प्रलय में भी बचे रहने वाले जिस शेष में ६ गुणा अस्सी = ४८० [चारसौ अस्सी] दिव्यगुण पदार्थ सामर्थ्यवान विद्यमान हैं। (२२) हे गुरो! मैं तुम से इस ओदन के विषय में प्रश्न करता हूं और इसकी जो बड़ी भारी महिमा है, वह भी बतलाइये।

स य ओ॒द॒नस्य॑ महि॒मानं॑ वि॒द्यात् ॥ २३ ॥

नाल्प इति॑ ब्रूयान्नानु॑पसेच॒न इति॒ नेदं च॒ किं च॒ेति॑ ॥ २४ ॥

भा०—(२३–२४) जो 'ओदन' रूप प्रजापति की महिमा को जान ले वह थोड़ा है, ऐसा न कहे। बिना उपसेचन या व्यञ्जन द्रव्य के है ऐसा भी न कहे। साक्षात् यह दीजिये इस प्रकार निर्देश करके भी न कहे। और कुछ थोड़ा सा और दीजिये ऐसा भी न कहे। अर्थात् प्रवक्ता के पास जाकर ब्रह्मज्ञान को सन्तोष से ग्रहण करे।

याव॑द् दा॒ताभि॑मन॒स्येत॒ तन्नाति॑ वदेत् ॥ २५ ॥

भा०—'ब्रह्मौदन' के ज्ञान का प्रदान करने वाला जितने के दान का संकल्प करे उससे अधिक न मांगे।

ब्र॒ह्म॒वा॒दिनो॑ वदन्ति॒ परा॑ञ्चमोद॒नं प्राशी३ः प्र॒त्यञ्चा३मिति॑ ॥ २६ ॥

त्वमो॑द॒नं प्राशी३स्त्वामो॑द॒ना३ इति॑ ॥ २७ ॥

भा०—(२६) ब्रह्म का विचार करने वाले ब्रह्म-ज्ञानी लोग इस प्रकार परस्पर प्रश्न करते हैं, हे पुरुष! क्या तू अपनी आंखों से अदृश्य 'ओदन' का प्राशन करता है या साक्षात् प्रत्यक्ष ओदन का प्राशन करता है। (२७) क्या तू 'ओदन' का प्राशन करता है या यह 'ओदन' तेरा प्राशन करता है? जीव का ब्रह्म को अपने भीतर लेना मानो ब्रह्मप्राशन है, और तत्पश्चात् जीव जब ब्रह्म में तल्लीन होकर अपनी व्यक्ति को खो सा बैठता है तब मानो ब्रह्म ने जीव को खा लिया।

परा॑ञ्चं चैनं॒ प्राशीः॑ प्रा॒णास्त्वा॑ हास्य॒न्तीत्ये॑नमाह ॥ २८ ॥

प्र॒त्यञ्चं॑ चैनं॒ प्राशी॑रपा॒नास्त्वा॑ हास्य॒न्तीत्ये॑नमाह ॥ २९ ॥

भा०—(२८) हे पुरुष! यदि तू इस 'ओदन' का परोक्ष में प्राशन करता है, तो विद्वान् इस भोक्ता के प्रति कहता है कि तुझे प्राण छोड़ देंगे। (२९) और यदि उसका साक्षात् रूप से प्राशन करता है तो विद्वान् उस भोक्ता के प्रति कहा करता है कि तुझ साक्षात् ओदन के भोक्ता को अपान परित्याग कर देंगे। अर्थात् परोक्षरूप से या प्रत्यक्ष रूप

में ब्रह्म का ज्ञान मोक्ष का साधन नहीं। इसमे ज्ञाता का व्यक्तित्व बना ही रहता है। ऐसी परिस्थिति मे प्राणापान को बार बार प्राप्त करना और उनसे बार बार नियुक्त होना रूपी जन्म-मरण बना ही रहता है।

नैवाहमोदनं न मामोदनः ॥ ३० ॥
ओदन एवौदनं प्राशीत् ॥ ३१ ॥ (८)

भा०—(३०) इस मन्त्र मे उत्तर दिया गया है कि न मैं ओदन का प्राशन करता हूं और न ओदन मेरा प्राशन करता है। (३१) सत्य यह है कि ओदन ही ओदन का प्राशन करता है अर्थात् अनुभूति में जबतक जीव मे अपना भोक्तृत्व भासता रहता है, तब तक मुक्ति नहीं हो सकती। परन्तु जीव जब स्वयं भी ओदन बन जाता है और इस प्रकार परमात्मा के स्वरूप मे निष्ट होकर अपने स्वरूप को खो बैठता है तब उसकी मुक्ति हो जाती है।

भोक्तृभोक्तव्यप्रपञ्चात्मक ओदन इति सायणः।

[२] ब्रह्मोदन के उपभोग का प्रकार।

अथर्वा ऋषिः। मन्त्रोक्तो ब्रह्मौदनो देवता। ३२, ३८, ४१ पतासा (प्र०), ३२–३१ पतासा (म०) साम्नीत्रिष्टुभ. । ३२, ४१, ४२, ४७ आसा (द्वि०) ३२–३६ आसा (तृ०) ३३, ३५, ४५–४८ आसा (प०) एकपदा आसुरी गायत्री। ३२, ४१, ४२, ४७ आसा (च०) दैवी जगती। ३८, ४४, ४६ (द्वि०) ३२, ३४–४२, ४९ आसा (पं०) आसुरी अनुष्टुभ.। ३२–४० आसा (प०)

ततश्चैनमन्येन शीर्ष्णा प्राशीर्येन चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन् ।
ज्येष्ठतस्ते प्रजा मरिष्यतीत्येनमाह ।
तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् ।
बृहस्पतिना शीर्ष्णा । तेनैनं प्राशिषं तेनैनमजीगमम् ।
एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः ।
सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ॥ ३२ ॥

भा०—विद्वान् पुरुष जिज्ञासु को उपदेश करे कि हे पुरुष ! जिस शिर से पूर्व मन्त्रद्रष्टा ऋषि लोग इसका प्राशन करते रहे उससे दूसरे शिर से यदि तू प्राशन करता है तो तेरी सन्तति ज्येष्ठ क्रम से मरेगी, प्रथम जेठा, फिर उससे छोटा, फिर उससे छोटा, इस प्रकार तेरी सन्तान मर जायगी, इस प्रकार ब्रह्मौदन का तत्वज्ञानी विद्वान् दूसरे पुरुषों को उपदेश करे । तो फिर मैंने न नीचे के, न पराङ्मुख अर्थात् परली तरफ के, और न अपनी तरफ के ओदन का प्राशन किया है अर्थात् उसके एकाङ्गिरूप का मैंने प्राशन नहीं किया । प्रत्युत बृहस्पति रूप शिर से इस ओदन का मैंने प्राशन किया है । उस शिर से ही इसका मैंने प्राशन किया है, उसी शिर से इसको मैंने प्राप्त किया है । यह ओदन प्राशन के बाद भी समस्त अङ्गों वाला बना रहता है, सब पोरुओं वाला बना रहता है, समस्त शरीर वाला बना रहता है । जो इस रहस्य को जानता है वह स्वयं भी सर्वाङ्ग सब पोरुओं वाला तथा शरीर की सब शक्तियों वाला बना रहता है ।

ततश्चैनमन्याभ्यां श्रोत्राभ्यां प्राशीर्याभ्यां चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन् ।
बधिरो भविष्यसीत्येनमाह । तं वा० । द्यावापृथिवीभ्यां श्रोत्राभ्याम्

तुझमें शक्ति नहीं। इस दृष्टि से तू निपट बहरा ही है। तो फिर मैंने न नीचे के, न परली तरफ के, न अपनी तरफ के ओदन का प्राशन किया है। प्रत्युत द्यौ और पृथिवी इन दोनो श्रोत्रों से उसका प्राशन किया है। उन दोनो से उसका प्राशन किया है, उन दोनो के द्वारा इसको मैंने प्राप्त किया है। यह ओदन सब अंगो वाला, सब पोरुओं वाला, समस्त शरीर वाला बना रहता है। जो यह तत्व जान लेता है वह सर्वाङ्ग सब पोरुओं से युक्त और पूर्ण शरीर से हृष्ट-पुष्ट रहता है।

ततश्चैनमन्याभ्यामक्षीभ्यां प्राशीर्याभ्यां चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन्। अन्धो भविष्यसीत्येनमाह। तं वा०। सूर्याचन्द्रमसाभ्यामक्षीभ्याम् ताभ्यामेन०। ०॥ ३४॥

भा०—विद्वान् पुरुष जिज्ञासु को उपदेश करे कि जिन आंखों से पूर्व के ऋषियों ने इसका प्राशन किया उनसे अतिरिक्त दूसरी आंखों से हे पुरुष! यदि तू प्राशन करेगा तो तू अन्धा हो जायगा। तो फिर मैंने .. पूर्ववत्। सूर्य और चन्द्रमा इन दो आंखो से उस ओदन का प्राशन किया है और इन दोनो से उसको प्राप्त किया है। ...यह ओदन ··पूर्ववत्।

ततश्चैनमन्येन मुखेन प्राशीर्येन चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन्। मुख्यतस्ते प्रजा मरिष्यतीत्येनमाह। तं वा०। ब्रह्मणा मुखेन। तेनैनं प्राशिषं तेनैनमजीगमम। एष वा०। ०॥ ३५॥

भा०—गुरु जिज्ञासु को उपदेश करे कि जिस जिह्वा से इस ओदन का पूर्व काल के ऋषियों ने प्राशन किया उससे अतिरिक्त जिह्वा से यदि तू प्राशन करेगा तो तेरी जिह्वा मरेगी। तो फिर मैंने इत्यादि पूर्ववत्। अग्नि की जिह्वा से इस ओदन का प्राशन किया है। उसमे ही इस ओदन को प्राप्त किया है यह ओदन... पूर्ववत्।

ततश्चैनमन्यैर्दन्तैः प्राशीर्येश्चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन्।
दन्तास्ते शत्स्यन्तीत्येनमाह। तं वा०। ऋतुभिर्दन्तैः।
तैरेनं प्राशिषं तैरेनमजीगमम्। एष वा०। ०॥ ३७॥

भा०—गुरु जिज्ञासु को उपदेश करे कि जिन दांतों से पूर्व ऋषियों ने उस ओदन का प्राशन किया यदि तू उनसे अतिरिक्त दूसरे दांत प्राशन करता है तो तेरे दांत झड जावेंगे। तो फिर मैंने पूर्ववत्। ऋषियों ने इसका ऋतु रूप दांतों से प्राशन किया है। उनसे ही प्राशन किया है, और उन ही से इसको मैंने प्राप्त किया है ओदन पूर्ववत्।

ततश्चैनमन्यैः प्राणापानैः प्राशीर्येश्चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन्
प्राणापानास्त्वा हास्यन्तीत्येनमाह। तं वा०।
सप्तर्षिभिः प्राणापानैः तैरेनं०। ०। ०॥ ३८॥

ततश्चैनमन्येन व्यचसा प्राशीर्येन चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन् ।
राजयक्ष्मस्त्वा हनिष्यतीत्येनमाह । तं वा० । अन्तरिक्षेण व्यचसा ।
तेनैनं प्राशिषं तेनैनमजीगमम् । एष वा० । ० ॥ ३९ ॥

भा०—गुरु जिज्ञासु को उपदेश करता है जिस अन्तराकाश रूपी विस्तार से पूर्व ऋषियों ने इस ओदन का प्राशन किया, यदि तू उससे अतिरिक्त दूसरे मध्य भाग से प्राशन करेगा तो राजयक्ष्मा तुझे मारेगा। तो फिर मैंने पूर्ववत् । पूर्व ऋषियों ने अन्तरिक्ष रूप विस्तार से प्राशन किया । मैंने भी उससे ही प्राशन किया है । उससे ही इसको प्राप्त किया है । यह ओदन इत्यादि पूर्ववत् ।

ततश्चैनमन्येन पृष्ठेन प्राशीर्येन चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन् ।
विद्युत् त्वा हनिष्यतीत्येनमाह । तं वा० । दिवा पृष्ठेन ।
तेतेन० । ० । ० ॥ ४० ॥

भा०—गुरु जिज्ञासु को उपदेश करता है कि जिस पृष्ठ भाग से पूर्व ऋषियों ने इस ओदन का प्राशन किया, यदि तू उसके सिवाय दूसरे पीठ भाग से भोग करेगा तो बिजुली तुझे मार जायगी । तो फिर मैंने... इत्यादि पूर्ववत् । पूर्व ऋषियों ने इसका द्यौ रूप पीठ से भोग किया । मैंने भी उससे ही प्राशन किया है । उससे ही इसको प्राप्त किया है । यह ओदन इत्यादि पूर्ववत् ।

ततश्चैनमन्येनोरसा प्राशीर्येन चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन् ।
कृष्या न रात्स्यसीत्येनमाह । त वा० । पृथिव्योरसा ।
[illegible]

का प्राशन किया है । तो फिर मैंने ...पूर्ववत् । यह ओदन इत्यादि पूर्ववत् ।

ततश्चैनमन्येनोदरेण प्राशीर्येन चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन् ।
उदरदारस्त्वा हनिष्यतीत्येनमाह । तं वा० । सत्येनोदरेण ।
तेनैनं० । ० । ० ॥ ४२ ॥

भा०—गुरु जिज्ञासु को उपदेश करता है कि जिस उदर भाग से ऋषियों ने इस ओदन का प्राशन किया है । यदि तू उसके सिवाय दूसरे उदर भाग से प्राशन करेगा तो उदरदार = अतिसार या उदर नामक रोग तुझे मार देगा । तो फिर मैंने पूर्ववत् । ऋषियों ने सत्य रूप उदर से इसका भोग किया था । तो फिर मैंने ..पूर्ववत् ।

ततश्चैनमन्येन वस्तिना प्राशीर्येन चैतं पूर्व ऋषय प्राश्नन् ।
अप्सु मरिष्यसीत्येनमाह । तं वा० । समुद्रेण वस्तिना ।
तेनैनं० । ० । ० ॥ ४३ ॥

भा०—गुरु जिज्ञासु को उपदेश करता है कि जिस वस्ति से पूर्व ऋषियों ने इस ओदन का प्राशन किया यदि उसके अतिरिक्त दूसरे वस्ति से प्राशन करेगा तो तू जलों में मरेगा । तो फिर मैंने इत्यादि पूर्ववत् । ऋषियों ने उसका समुद्र रूप वस्ति से प्राशन किया तो फिर मैंने इत्यादि पूर्ववत् ।

उन दोनों से मैंने उसका प्राशन किया है. और उन दोनों से रस को प्राप्त किया है। यह ओदन　इत्यादि पूर्ववत् ।

ततश्चैनमन्याभ्यामष्ठीवद्भ्यां प्राशीर्याभ्यां चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन् स्रामो भविष्यसीत्येनमाह । तं वा० । त्वष्टुरष्ठीवद्भ्याम् । ताभ्यामेनं० । ० । ० ॥ ४५ ॥

भा०—गुरु जिज्ञासु को उपदेश करता है—जिन जानुओं से पूर्व ऋषियों ने इस ओदन का प्राशन किया है यदि इस ओदन का तू उनसे दूसरे जानुओं से प्राशन करेगा तो लंगड़ा हो जायगा। तो फिर मैंने . इत्यादि पूर्ववत् । एवं ऋषियों ने त्वष्टा के बने जानुओं से ओदन का प्राशन किया था। उन दोनों से मैंने　इत्यादि पूर्ववत् । यह ओदन . इत्यादि पूर्ववत् ।

ततश्चैनमन्याभ्यां पादाभ्यां प्राशीर्याभ्यां चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन् । बहुचारी भविष्यसीत्येनमाह । तं वा० । अश्विनोः पादाभ्याम ।

पंजों से प्राशन करेगा तो साप तुझे मार देगा । तो फिर मैंने ' पूर्ववत् ।
पूर्व ऋषियों ने सविता के बने पजों से ओदन का प्राशन किया था उन से मैंने पूर्ववत् ।

ततश्चैनमन्याभ्यां हस्ताभ्यां प्राशीर्याभ्यां चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन् ।
ब्राह्मणं हनिष्यसीत्येनमाह । तं । वा० । ऋतस्य हस्ताभ्याम् ।
ताभ्यामेनं० । ० । ० ॥ ४८ ॥

भा०—गुरु जिज्ञासु को उपदेश करता है कि जिन हाथों से पूर्व ऋषियों ने इस ओदन का प्राशन किया था यदि तू उनसे दूसरे हाथों से प्राशन करेगा तो तू ब्राह्मण का घात करेगा । ब्रह्महत्या का भागी होगा । तो फिर मैंने पूर्ववत । ऋत = सत्य परम तप व धर्म के हाथों से ऋषियों ने उसका प्राशन किया । उन से मैंने इत्यादि पूर्ववत ।

ततश्चैनमन्यया प्रतिष्ठया प्राशीर्यया चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन् ।
अप्रतिष्ठानोऽनायतनो मरिष्यसीत्येनमाह ।
तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् ।
सत्ये प्रतिष्ठाय । तयैनं प्राशिषं तयैनमजीगमम् ।
एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः ।

दाहर है। वह अपने जिस जिस अंग से भी भोगने की चेष्टा करेगा वह ही उसका शीघ्र जीर्ण हो जायगा और विपत्तिग्रस्त हो जायगा। इस-लिए उसको ब्रह्म का महान् ऐश्वर्य महान् शक्तियों के द्वारा ही भोगना चाहिये। इसके विराट् रूप का 'बृहस्पति' शिर है, द्यौः पृथिवी दो कान हैं, सूर्य और चन्द्रमा दो आखें हैं, ब्रह्म अर्थात् वेद उसका मुख है, अग्नि या विद्युत् उसकी जिह्वा है, ऋतु दांत हैं, सप्तऋषि सात प्राण हैं, अन्तरिक्ष फुफ्फुस हैं, द्यौ. पृष्ठ हैं, पृथिवी छाती है, सत्य उदर है, समुद्र वस्तिस्थान है, मित्रावरुण उसकी जांघें हैं, त्वष्टा उसकी जानु या गोड़े हैं, दो अश्वी दो पाद हैं, सविता उसके पजे हैं, ऋतु हाथ हैं, सत्य प्रतिष्ठा है। इनके द्वारा परमेश्वर के वास्तविक स्वरूप का ज्ञान करना चाहिये।

इसकी तुलना छान्दोग्य उपनिषद् में आये कैकय देश के राजा अश्वपति द्वारा बतलाये 'वैश्वानर' प्रकरण से करनी चाहिये।

(३) ब्रह्म विद्वान् की निन्दा का बुरा परिणाम।

एतस्माद् वा ओदनात् त्रयस्त्रिंशतं लोकान् निरमिमीत प्रजापतिः ॥ ५२ ॥
तेषां प्रज्ञानाय यज्ञमसृजत ॥ ५३ ॥

भा०—इस 'ओदन' से ३३ देवों को प्रजापति ने बनाया है। उनके उत्तम रीति से ज्ञान करने के लिये प्रजापति ने यज्ञ को रचा। अर्थात् यज्ञ की रचना के ज्ञान से ही जगत् की रचना का भी ज्ञान हो जायगा।

स य एवं विदुष उपद्रष्टा भवति प्राणं रुणद्धि ॥ ५४ ॥
न च प्राणं रुणद्धि सर्वज्यानिं जीयते ॥ ५५ ॥
न च सर्वज्यानिं जीयते पुरैनं जरसः प्राणो जहाति ॥ ५६ ॥ (२)

भा०—जो पूर्वोक्त प्रकार के ब्रह्मरूप ओदन के रहस्य जानने वाले विद्वान् का दोषदर्शी, निन्दक होता है, वह अपने ही प्राण बल को निरुद्ध करता है, अर्थात् अपने प्राण बल का अन्त कर लेता है। और न केवल प्राण-बल का अन्त कर लेता है बल्कि उसका सर्वनाश हो जाता है, और न केवल सर्वनाश हो जाता है बल्कि बुढ़ापे के पहले ही प्राण छोड़ देता है।

[४] प्राणरूप परमेश्वर का वर्णन ।

भा०—हे प्राणस्वरूप परमेश्वर ! सबको आह्लादित करने हारे, परम आनन्दस्वरूप तुझको नमस्कार है। समस्त संसार पर मेघ के समान सुखों, अन्नों, जलों और जीवनों की वर्षा करने हारे पर्जन्यरूप तुझ प्रजापति को नमस्कार है। हे प्राण ! विद्युत् के समान प्रखर कान्ति से चमकने वाले, प्रकाशस्वरूप तुझको नमस्कार है। हे प्राण ! आनन्द-धाराओं को वर्षण करते हुए तुझे नमस्कार है।

यदा त्वमभिवर्षस्यथेमाः प्राणते प्रजाः।

आनन्दरूपास्तिष्ठन्ति कामायान्नं भविष्यति ॥ प्रश्नोप० २ । १० ॥

हे प्राण, जब तू बरसता है तब ये समस्त तेरी प्रजाएं आनन्द प्रसन्न होती हैं कि खूब अन्न होगा।

यत् प्राण स्तनयित्नुनाभिक्रन्दत्योषधीः।
प्र वीयन्ते गर्भान् दधतेऽथो बह्वीर्वि जायन्ते ॥ ३ ॥

भा०—हे समस्त संसार के प्राणस्वरूप ! जब मेघ द्वारा ओषधियों के प्रति गर्जते हो, तब वे ओषधियां विशेष रूप से प्रजनन का कार्य करती हैं अर्थात् नर, मादा, वनस्पतियां परस्पर के कुसुम परागों द्वारा संग करती हैं और फिर गर्भ धारण करती हैं। और बाद में नानाविध होकर विविध प्रकारों से उत्पन्न होती हैं।

यत् प्राण ऋतावागतेऽभिक्रन्दत्योषधीः।
सर्वं तदा प्र मोदते यत् किं च भूम्यामधि ॥ ४ ॥

भा०—जब प्राणप्रद मेघ रूप होकर प्रजापति वर्षा द्वारा विशाल पृथ्वी पर बरसता है। तब पशु प्रसन्न होते हैं कि हमारे लिये बहुत अन्न उत्पन्न होगा।

अभिवृष्टा ओषधयः प्राणेन समवादिरन् ।
आयुर्वै नः प्रातीतरः सर्वा नः सुरभीरकः ॥ ६ ॥

भा०—वर्षा से सिंची हुई ओषधियां प्राणरूप प्रजापति के साथ संवाद करती हैं कि हे प्रजापते! हमें तू निश्चय से जीवन प्रदान करता है। हम सबको तू सुगन्धित फल, रस आदि उत्पन्न करने में समर्थ बना देता है।

नमस्ते अस्त्वायते नमो अस्तु परायते ।
नमस्ते प्राण तिष्ठत आसीनायोत ते नमः ॥ ७ ॥

अथर्व० ११ । २ । १५ ॥

भा०—हे प्राण ! जो तेरा प्रिय स्वरूप है, और हे प्राण ! जो तेरी प्रियतम आत्मरूप तनु है, और जो तेरा कष्टों को दूर करने और आत्मा को शान्ति देने द्वारा अमृतमय स्वरूप है, उसको हमारे जीवन के लिये प्रदान कर।

प्राणः प्रजा अनु वस्ते पिता पुत्रमिव प्रियम्।
प्राणो ह सर्वस्येश्वरो यच्च प्राणति यच्च न ॥ १० ॥ (११)

भा०—पिता जिस प्रकार प्रिय पुत्र के प्रति उत्पादक, जीवनप्रद, पालक पोषक है, उसी प्रकार प्राणस्वरूप परमेश्वर समस्त प्रजाओं के प्रति उनका उत्पादक, जीवनप्रद, पालक और पोषक है। यह प्राण जो प्राण लेता है और जो प्राण नहीं भी लेता है उस सबका ईश्वर अर्थात् स्वामी है।

प्राणो मृत्युः प्राणस्तक्मा प्राणं देवा उपासते।
प्राणो ह सत्यवादिनमुत्तमे लोक आ दधत् ॥ ११ ॥

भा०—प्राण ही मृत्यु अर्थात् शरीर के आत्मा से वियुक्त होने का कारण है। जीवन में ज्वर आदि होने का मूलकारण भी यही प्राण है। समस्त देवगण अर्थात् पृथ्वी, सूर्य, चन्द्र आदि लोक, और वाग्, चक्षु आदि इन्द्रियगण, और विद्वान् पुरुष प्राण की उपासना करते हैं। निश्चय से सर्वप्राणेश्वर ही सत्यवादी पुरुष को उत्तम लोक में स्थापित करता है।

प्राणो विराट् प्राणो देष्ट्री प्राणं सर्व उपासते।
प्राणो ह सूर्यश्चन्द्रमाः प्राणमाहुः प्रजापतिम् ॥ १२ ॥

भा०—प्राण और अपान इन दोनों को वेद के शब्दों में 'व्रीहि' और 'यव' नाम से कहा जाता है। वह पूर्वोक्त प्राण 'अनड्वान' शब्द से कहा जाता है। 'यव' में प्राण स्थित है। और अपान 'व्रीहि' कहाता है। 'यव' शब्द से कहने योग्य वह शक्ति है जो कि संसार में पदार्थों को परस्पर मिलाती है, वह 'प्राण' है। और जो बढ़ाती व पुष्ट करती है वह 'व्रीहि' अर्थात् अपान है। अनस् अर्थात् प्राणशक्ति का वह वहन कर रहा है इसलिये वह अनड्वान् है।

अपानति प्राणति पुरुषो गर्भे अन्तरा।
यदा त्वं प्राण जिन्वस्यथ स जायते पुनः ॥१४॥

भा०—मातृ गर्भ में बच्चा श्वास लेता और श्वास त्यागता है। हे प्राणेश्वर! जब तू उस गर्भगत बालक को परिपुष्ट कर देता है तब वह बालक रूप में उत्पन्न होता है।

प्राणमाहुर्मातरिश्वानं वातो ह प्राण उच्यते।
प्राणे ह भूतं भव्यं च प्राणे सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥ १५ ॥

भा०—प्राणेश्वर को ही 'मातरिश्वा' नाम से पुकारते हैं। वह प्राण 'वात' शब्द से कहा जाता है। भूत और भविष्यत् दोनों प्राण में प्रतिष्ठित हैं। प्राण में सर्व संसार आश्रित है।

'मनुग्जा'। इस प्रकार ये चार विभाग उनके विशेष विशेष उपचारों के कारण प्रतीत होते है।

यदा प्राणो अभ्यवर्षीद् वर्षेण पृथिवीं महीम्।
ओषधयः प्र जायन्तेऽथो याः काश्च वीरुधः ॥ १७ ॥

भा०—जब प्राण वर्षा के रूप मे इस विशाल पृथ्वी पर वर्षता है, तब ओषधियां और जो कोई भी नाना प्रकार से उत्पन्न होने वाली लताएं हैं वे सब खूब पैदा होती हैं।

यस्ते प्राणेदं वेद यस्मिंश्चासि प्रतिष्ठितः।
सर्वे तस्मै बलिं हरानमुष्मिँल्लोक उत्तमे ॥ १८ ॥

भा०—हे प्राणेश्वर! जो उपासक तेरे इस तत्व को साक्षात् जान लेता है, और जिस उपासक मे तू दृढ स्थिति पा जाता है उसे सब लोग भेंट पूजा करते हैं, जब कि वह उपासक सर्वोत्तम तथा दर्शनीय सुख में स्थिति पा लेता है।

यथा प्राण बलिहृतस्तुभ्यं सर्वाः प्रजा इमाः।
एवा तस्मै बलिं हरान् यस्त्वा शृणवत् सुश्रवः ॥ १९ ॥

भा०—हे प्राणेश्वर! जिस प्रकार तुम्हारे लिये ये समस्त प्रजाएं बलि भेंट करती हैं, और तुम्हारी उपासना करती हैं, उसी प्रकार जो उत्तम श्रवण धारण-शक्ति युक्त होकर तेरे विषयक ज्ञान को सुनता है, समस्त प्राणी उसके लिये भी बलि, भेंट पूजा की सामग्री उपस्थित करते, उसका आदर करते हैं।

अन्तर्गर्भश्चरति देवतास्वाभूतो भूतः स उ जायते पुनः।
स भूतो भव्यं भविष्यत् पिता पुत्रं प्र विवेशा शचीभिः ॥ २० ॥ (१२)

भा०—पृथिवी, अप्, तेज, वायु, आकाश आदि देवों मे वह 'प्राण' ही प्राणशक्ति और धारणशक्ति होकर, उनके भीतर निवास कर रहा है। वही स्वयं होकर भूतकाल में प्रकट होकर फिर सद्रूप में प्रकट होना

है। वह भूतकाल में भी विद्यमान वह 'भव्य' अर्थात् भविष्यत् रूप में भी अपनी शक्तियों द्वारा इस प्रकार प्रविष्ट रहता है जिस प्रकार पिता अपने सूक्ष्म अवयवों और संस्कारों से युक्त बीज द्वारा पुत्र में प्रविष्ट होता है।

एकं पादं नोत्खिदति सलिलाद्धंस उच्चरन्।
यदङ्ग स तमुत्खिदेन्नैवाद्य न श्वः स्यान्न रात्री नाहः स्यान्न व्युच्छेत् कदा चन ॥ २१ ॥

भा०—वह हंस की न्याईं स्वच्छ स्वरूप प्राणेश्वर इस महान् संसार से ऊपर मोक्षरूप में असङ्ग रहकर भी अपना एक चरण संसार से नहीं उखाड़ता। इसी से यह संसार चलता है। हे जिज्ञासो! यदि वह परमेश्वर उस चरण को भी ऊपर उठा ले तब तो न आज और न कल हुआ करे अर्थात् न रात और न दिन हुआ करे, और न उषाकाल ही हो। क्योंकि उसकी चालक शक्ति के संसार से उठ जाने से समस्त संसार जड़ हो जाय और न चले। न सूर्य चले न चन्द्र, न अग्नि हो न अन्न।

अष्टाचक्रं वर्तत एकनेमि सहस्राक्षरं प्र पुरो नि पश्चा।
अर्धेन विश्वं भुवनं जजान यदस्यार्धं कतमः स केतुः ॥ २२ ॥

है। मनके संकल्प विकल्प रूप सहस्रों उसमें 'अक्ष' हैं। वह प्राण बाहर और भीतर जाता है। आधे से इस शरीर को थामता और आधे से वह स्वयं आत्मरूप है। अर्थात् एकांश से कर्त्ता और एकांश से भोक्ता है। इसी प्रकार ब्रह्मांड में पृथिवी आदि पञ्चभूत, प्रकृति, महत् और अहंकार ये आठ संसार के प्रवर्त्तक 'चक्र' हैं। उन पर एक 'नेमि' उनका चलाने वाला 'प्राण' परमेश्वर है। वह इस संसार को आगे ढकेलता और पीछे प्रलय में ले जाता है। उसका अर्ध = विभूतिमत् अंश समस्त विश्व को उत्पन्न करता है और दूसरा 'अर्ध' विभूतिमान् स्वरूप ज्ञानमय है जो 'कतमः' अज्ञेय है। न जाने कौनसा और कैसा है? अथवा 'क-तमः' अतिशय सुख स्वरूप, 'परमानन्द' रूप है।

यो अस्य विश्वजन्मन ईशे विश्वस्य चेष्टतः।
अन्येषु क्षिप्रधन्वने तस्मै प्राण नमोऽस्तु ते ॥ २३ ॥

भा०—जो समस्त इस क्रियाशील विश्व की नाना प्रकार की उत्पत्ति पर सामर्थ्यवान् है, अथवा नाना प्रकार से उत्पन्न होने वाले इस क्रियाशील विश्व पर वश कर रहा है, और अन्य प्राणियों में भी अति शीघ्रता से गति दे रहा है। हे प्राणेश्वर! उस तेरे लिये हम नमस्कार करते हैं।

यो अस्य सर्वजन्मन ईशे सर्वस्य चेष्टतः।
अतन्द्रो ब्रह्मणा धीरः प्राणो मानु तिष्ठतु ॥ २४ ॥

भा०—हे प्राण! तू सबके ऊपर विराजमान शासक होकर सबके सो जाने पर भी जागता रहता है। साधारण लोग तो तिरछा होकर नीचे निद्रा में गिर पडता है पर तब भी तू जागता रहता है। सोते हुए प्राणियों में भी इस प्राण के सो जाने के विषय की बात को किसी ने भी नहीं सुना।

प्राण मा मत् पर्यावृतो न मदन्यो भविष्यसि ।
अपां गर्भमिव जीवसे प्राण बध्नामि त्वा मयि ॥२६॥ (१३)

भा०—हे प्राणेश्वर! मुझ से दूर पराङ्मुख मत हो। तू मुझ से पृथक् नहीं हो सकता। हे प्राण! समस्त कर्मों और विज्ञानों को धारण करने हारे, परम सामर्थ्यवान् वस्तु के समान तुझको ही जीवन धारण के लिये अपने में मैं बांधता हूं।

इति द्वितीयोऽनुवाकः ।

[तत्र सूक्तमेकम्, ऋचश्च षड्विंशतिः ।]

[५] ब्रह्मचारी के कर्त्तव्य ।

जाते हैं। वह माता और पिता, विद्या और गुरु दोनों की सेवा करता है। वह अपने आचार्य को तप से पालन और पूर्ण करता है।

ब्रह्मचारिणं पितरो देवजनाः पृथग् देवा अनुसंयन्ति सर्वे।
गन्धर्वा एनमन्वायन् त्रयस्त्रिंशत् त्रिशताः षट्सहस्राः सर्वान्त्स देवांस्तपसा पिपर्ति ॥ २ ॥

भा०—ब्रह्मचारी को देखकर उस पिता आदि दान-शील पुण्यात्मा लोग, और तत्वदर्शी विद्वान् अलग अलग सब उसकी रक्षा के लिये तदनुकूल रूप में उसके पीछे पीछे चलते हैं। गन्धर्व अर्थात् सामान्य पुरुष भी उसकी रक्षार्थ तदनुकूल रूप मे उसके पीछे पीछे चलते हैं। जैसे सूर्य ६३३३ अथवा ३३ और ३०३ और ६००० नक्षत्र आदि की पालना करता है वैसे ही पूर्ण ब्रह्मचारी अपने सदुपदेशों द्वारा ही समस्त पितृगण का अपने तप से पालन करता है, अर्थात् ब्रह्मचर्य के बल से सबका धारण पोषण करता है।

आचार्य उपनयमानो ब्रह्मचारिणं कृणुते गर्भमन्तः।
तं रात्रीस्तिस्र उदरे बिभर्ति तं जातं द्रष्टुमभिसंयन्ति देवाः ॥३॥

ब्रह्मचारी सबका पालन करता और पूर्ण करता है। ब्रह्मज्ञान में दीक्षित ब्रह्मचारी समित् आधान द्वारा और मेखला द्वारा, श्रम द्वारा और तप द्वारा समस्त मनुष्यों का पालन करता है।

पूर्वो जातो ब्रह्मणो ब्रह्मचारी घर्मं वसानस्तपसोदतिष्ठत्।
तस्माज्जातं ब्राह्मणं ब्रह्म ज्येष्ठं देवाश्च सर्वे अमृतेन साकम् ॥५॥

भा०—वेद का विद्वान् ब्रह्मचारी पूर्व आश्रम में उत्पन्न होकर तप करता हुआ बड़ा होता है, उससे प्रकट हुआ वेद का ज्ञान सबसे उत्कृष्ट रूप में फैलता है। और उसके साथ सब विद्वान् अमृतमय तेज के साथ वृद्धि को प्राप्त होते हैं।

ब्रह्मचार्येति समिधा समिद्धः कार्ष्णं वसानो दीक्षितो दीर्घश्मश्रुः।
स सद्य एति पूर्वस्मादुत्तरं समुद्रं लोकान्त्संगृभ्य मुहुराचरिक्रत् ॥६॥

भा०—ब्रह्मचारी प्रज्वलित हुए। समान तेजोमान तेज से तपी

परम स्थान परमेश्वर मे गर्भरूप होकर और साक्षात् इन्द्र होकर आसुर शक्तियों का विनाश करता है।

आचार्यस्ततक्ष नभसी उभे इमे उर्वी गम्भीरे पृथिवीं दिवं च।
ते रक्षति तपसा ब्रह्मचारी तस्मिन् देवाः संमनसो भवन्ति ॥८॥

भा०—जिस प्रकार सब का परम आचार्य परमेश्वर इन दोनों विशाल, गम्भीर, सब को अपने भीतर बांधने वाले पृथिवी और द्यौलोक को बनाता है, उसी प्रकार ब्रह्मचारी का आचार्य ही माता और पिता को, और प्रजा और राजा को भी विशाल, गम्भीर और यशस्वी बना देता है। ब्रह्मचारी अपने तप से उन दोनों की रक्षा करता है। ऐसे ब्रह्मचारी में समस्त विद्वान् गण एकचित्त होकर रहते हैं।

इमां भूमिं पृथिवीं ब्रह्मचारी भिक्षामा जभार प्रथमो दिवं च।
ते कृत्वा समिधावुपास्ते तयोरार्पिता भुवनानि विश्वा ॥ ९ ॥

भा०—सबसे प्रथम ब्रह्मचारी इस विशाल पृथिवी को और द्यौलोक को भिक्षा के निमित्त ग्रहण करता है। और उन दोनों को समिधा बना-कर परमात्मा की उपासना करता है। उन दोनों में ही समस्त भुवन, प्राणी आश्रित हैं। मानो भिक्षा द्वारा वह समस्त प्राणियों के योगक्षेम की ही कामना को प्रगुणित करता है।

अर्वागन्यः परो अन्यो दिवस्पृष्ठाद् गुहा निधी निहितौ ब्राह्मणस्य।
तौ रक्षति तपसा ब्रह्मचारी तत् केवलं कृणुते ब्रह्म विद्वान् ॥१०(१६)

भा०—इस पृथिवी के भी नीचे एक और्वानल नामक अग्नि है, और दूसरा इस पृथिवी का पार्थिव अग्नि है, ये दोनों अग्नि इन दोनों लोकों के बीच में परस्पर सङ्गत होते हैं। उन दोनों में अत्यन्त दृढ़ रश्मियें, किरणें आश्रित हैं। उनको ब्रह्मचारी अपने तपोबल से प्राप्त होता है।

पृथ्वी के भीतर और्वानल जो भूकम्पादि का कारण है और पृथ्वी पर अग्नि जो वनों को जला डालता है दोनों के समान प्रखर तेज और सामर्थ्य को ब्रह्मचारी अपने तप से प्राप्त करता है। अर्थात् वह तपोबल से और्वानल के समान कम्पकारी और अग्नि के समान भीषण बलवान् और दुष्टों का दाहकारी हो जाता है।

अभिक्रन्दन्स्तनयन्नरुणः शितिङ्गो बृहच्छेपोऽनु भूमौ जभार।
ब्रह्मचारी सिञ्चति सानौ रेतः पृथिव्यां तेन जीवन्ति प्रदिशश्चतस्रः ॥ १२ ॥

जिस प्रकार परमेश्वर अपने तेज को अग्नि, सूर्य, चन्द्र, वायु, जल आदि में डालता है और उससे नाना सृष्टि के पदार्थ उत्पन्न होते हैं इसी प्रकार ब्रह्मचारी पुरुष भी अपना सामर्थ्य इन तेजस्वी पदार्थों पर प्रयोग करे तो उन प्रयोगों से देश में अन्न, दुग्ध, पशु पुरुष और वर्षा जल आदि का सब सुख उत्पन्न हो। अर्थात् इन सब तत्वों को उत्पादक, फलप्रद बनाने के लिये तपस्वी ब्रह्मचारी विद्वानों की आवश्यकता है।

आचार्यो मृत्युर्वरुणः सोम ओषधयः पयः।
जीमूता आसन्त्सत्वानस्तैरिदं स्वराभृतम् ॥ १४ ॥

भा०—आचार्य, मृत्यु, वरुण, सोम, ओषधियें, जल और मेघ ये सब पदार्थ बल सम्पन्न हैं। इन्होंने ही यह तेजोमय ब्रह्माण्ड लोक धारण किया है।

अमा घृतं कृणुते केवलमाचार्यो भूत्वा वरुणो यद्यदैच्छत् प्रजापतौ।
तद् ब्रह्मचारी प्रायच्छत् स्वान् मित्रो अध्यात्मनः ॥ १५ ॥

भा०—सर्वश्रेष्ठ पुरुष आचार्य होकर स्वयं अति दीप्त ज्ञानमय अपरिमित तेज को साधता है। इसलिये वह जो २ पदार्थ गुरुदक्षिणा रूप से चाहता है ब्रह्मचारी आचार्य का मित्र होकर अपने धन आदि पदार्थों को प्रजापति अर्थात् गुरु में ही अर्पण करता है।

आचार्यो ब्रह्मचारी ब्रह्मचारी प्रजापतिः।
प्रजापतिर्वि राजति विराडिन्द्रोऽभवद् वशी ॥ १६ ॥

भा०—इस पृथिवी के भी नीचे एक और्वानल नामक अग्नि है, और दूसरा इस पृथिवी का पार्थिव अग्नि है, ये दोनों अग्निएं इन दोनों लोकों के बीच में परस्पर संगत होते हैं। उन दोनों में अत्यन्त दृढ़ रश्मियें, किरणें आश्रित हैं। उनको ब्रह्मचारी अपने तपोबल से प्राप्त होता है।

पृथ्वी के भीतर और्वानल जो भूकम्पादि का कारण है और पृथ्वी पर अग्नि जो वनों को जला डालता है दोनों के समान प्रखर तेज और सामर्थ्य को ब्रह्मचारी अपने तप से प्राप्त करता है। अर्थात् वह तपोबल से और्वानल के समान कम्पकारी और अग्नि के समान भीषण बलवान् और दुष्टों का दाहकारी हो जाता है।

अभिक्रन्दन् स्तनयन्नरुणः शितिङ्गो बृहच्छेपोऽनु भूमौ जभार।
ब्रह्मचारी सिञ्चति सानौ रेतः पृथिव्यां तेन जीवन्ति प्रदिशश्चतस्रः ॥ १२ ॥

भा०—उस ब्रह्म की शक्ति से मेघ के समान ब्रह्मचारी सबको प्रसन्न करता हुआ, गर्जता हुआ, सूर्य के समान तेजस्वी, प्रदीप्ताङ्ग भूमि पर बड़ा भारी वीर्य धारण किये रहता है। वह पर्वत के शिखर के समान महान् उच्च कार्य में या पृथिवी के समान उपकार की विशाल भूमि में अपना वीर्य और सामर्थ्य लगा देता है। उसमें चारों दिशाओं के प्राणी प्राण धारण करते, जीवन जागृति प्राप्त करते और सुखी होते हैं।

अग्नौ सूर्ये चन्द्रमसि मातरिश्वन् ब्रह्मचार्य१प्सु समिधमा दधाति।
तासामर्चींषि पृथगभ्रे चरन्ति तासामाज्यं पुरुषो वर्षमापः ॥ १३ ॥

भा०—ब्रह्मचारी अग्नि में, सूर्य में, चन्द्रमा में, वायु में और जलों में अपने देदीप्यमान तेज को धारण कराता है। अग्नि, सूर्य, चन्द्रमा, वायु और जल इनके अपने अपने तेज अलग अलग आकाश में दृष्टिगोचर होते हैं। उनके ही सामर्थ्य से दूध, घी, अन्न आदि पदार्थ उत्पन्न होते हैं, और पुरुष आदि जीव उत्पन्न होते हैं, काल पर वर्षा होती और यथेष्ट कूप तडागादि के जलों की सुविधा होती है।

जिस प्रकार परमेश्वर अपने तेज को अग्नि, सूर्य, चन्द्र, वायु, जल आदि में डालता है और उससे नाना सृष्टि के पदार्थ उत्पन्न होते हैं इसी प्रकार ब्रह्मचारी पुरुष भी अपना सामर्थ्य इन तेजस्वी पदार्थों पर प्रयोग करे तो उन प्रयोगों से देश में अन्न, दुग्ध, पशु पुरुष और वर्षा जल आदि का सब सुख उत्पन्न हो। अर्थात् इन सब तत्वों को उत्पादक, फलप्रद बनाने के लिये तपस्वी ब्रह्मचारी विद्वानों की आवश्यकता है।

आचार्यो मृत्युर्वरुणः सोम ओषधयः पयः।
जीमूता आसन्त्सत्वानस्तैरिदं स्वराभृतम् ॥ १४ ॥

भा०—आचार्य, मृत्यु, वरुण, सोम, ओषधियें, जल और मेघ ये सब पदार्थ बल सम्पन्न हैं। इन्होंने ही यह तेजोमय ब्रह्माण्ड लोक धारण किया है।

अमा घृतं कृणुते केवलमाचार्यो भूत्वा वरुणो यद्यदैच्छत् प्रजापतौ।
तद् ब्रह्मचारी प्रायच्छत् स्वान् मित्रो अध्यात्मनः ॥ १५ ॥

भा०—सर्वश्रेष्ठ पुरुष आचार्य होकर स्वयं अति दीप्त ज्ञानमय अपरिमित तेज को साधता है। इसलिये वह जो २ पदार्थ गुरुदक्षिणा रूप में चाहता है ब्रह्मचारी आचार्य का मित्र होकर अपने धन आदि पदार्थों को प्रजापति अर्थात् गुरु में ही अर्पण करता है।

आचार्यो ब्रह्मचारी ब्रह्मचारी प्रजापतिः।
प्रजापतिर्वि राजति विराडिन्द्रोऽभवद् वशी ॥ १६ ॥

भा०—आचार्य स्वयं प्रथम ब्रह्मचारी होता है। ब्रह्मचारी पुरुष ही बाद में प्रजापति, प्रजा का पालक, उत्तम गृहाश्रमी होता है। प्रजा का पालक गृहस्वामी ही नाना प्रकार से शोभा पाता है। वशी पुरुष ही विराट्, नाना प्रकार से शोभा देने वाला, साक्षात् इन्द्र, आचार्य हो जाता है।

ब्रह्मचर्येण तपसा राजा राष्ट्रं वि रक्षति।
आचार्यो ब्रह्मचर्येण ब्रह्मचारिणमिच्छते ॥ १७ ॥

भा०—ब्रह्मचर्य रूप तप से राजा राष्ट्र की नाना प्रकार से रक्षा करता है। आचार्य भी ब्रह्मचर्य के बल से ही ब्रह्मचारी को अपने अधीन व्रत पालन कराना चाहता है।

ब्रह्मचर्येण कन्या३ युवानं विन्दते पतिम्।
अनड्वान् ब्रह्मचर्येणाश्वो घासं जिगीर्षति ॥ १८ ॥

भा०—ब्रह्मचर्य के पालन से कन्या युवा पति को प्राप्त करती है। और ब्रह्मचर्य रूप इन्द्रिय संयम द्वारा ही गाड़ी का भार उठाने वाला बैल और घोड़ा घास खाने में समर्थ होता है।

ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत।
इन्द्रो ह ब्रह्मचर्येण देवेभ्यः स्व१राभरत् ॥ १९ ॥

भा०—ब्रह्मचर्य के तपोबल से विद्वान् पुरुष मृत्यु को भी विनाश कर देते हैं, वे मृत्युंजय हो जाते हैं। निश्चय से इन्द्र, ऐश्वर्यवान् राजा ब्रह्मचर्य के बल पर प्रजा-वासियों को अपने राष्ट्र में स्वर्ग के समान सुख प्राप्त कराता है।

ओषधयो भूतभव्यमहोरात्रे वनस्पतिः।
संवत्सरः सहर्तुभिस्ते जाता ब्रह्मचारिणः ॥ २० ॥

भा०—ओषधियें, भूत काल, भविष्यत् काल, दिन और रात्रि, ऋतुओं सहित वर्ष, वे सभी मानो अपने अपने काल में ब्रह्मचारी का रूप धारण करते हैं।

पार्थिवा दिव्याः पशव आरण्या ग्राम्याश्च ये।
अपक्षाः पक्षिणश्च ये ते जाता ब्रह्मचारिणः ॥ २१ ॥

भा०—पृथिवी के और द्यौलोक के समस्त जीव, पशु जो जंगली और जो गांव के हैं और बिना पंख के प्राणी और जो पंख वाले भी हैं, वे सब ब्रह्मचारी के समान ही अपना अपना वीर्य सञ्चय करते हैं।

पृथक् सर्वे प्राजापत्याः प्राणानात्मसु बिभ्रति।
तान्त्सर्वान् ब्रह्म रक्षति ब्रह्मचारिण्याभृतम् ॥ २२ ॥

भा०—सब प्रजापति परमात्मा की सन्तानें जो अपने देहों में पृथक् पृथक् प्राणों को धारण करते हैं, उन सबकी ब्रह्मचारी में सुरक्षित वीर्य ही रक्षा करता है।

देवानामेतत् परिषूतमनभ्यारूढं चरति रोचमानम्।
तस्माज्जातं ब्राह्मणं ब्रह्म ज्येष्ठं देवाश्च सर्वे अमृतेन साकम् ॥२३॥

भा०—ब्रह्मचारी मानो सार है दिव्य शक्तियों का, जिसे कि दबाया नहीं जा सकता, और जो चमकता हुआ विचरता है। इसके सदुपदेशों से ब्रह्म से प्रकट हुआ सर्वोत्कृष्ट वेदज्ञान प्रकट होता है, तथा देव मोक्ष प्राप्त करते हैं।

ब्रह्मचारी ब्रह्म भ्राजद् बिभर्ति तस्मिन् देवा अधि विश्वे समोताः।
प्राणापानौ जनयन्नाद् व्यानं वाचं मनो हृदयं ब्रह्म मेधाम् ॥२४॥

भा०—ब्रह्मचारी पुरुष अति प्रकाशमान ब्रह्म अर्थात् वीर्य और वेद को धारण करता है। उसमें ही समस्त इन्द्रियगण और उत्तम गुण समाये हुए हैं। वह प्राण और अपान को और अनन्तर व्यान अर्थात् व्यापक प्राण, वाणी, मन, हृदय, ब्रह्म और मेधा बुद्धि को स्वयं अपने भीतर उत्पन्न करके धारण करता है।

चक्षुः श्रोत्रं यशो अस्मासु धेह्यन्नं रेतो लोहितमुदरम् ॥ २५ ॥

भा०—हे ब्रह्मचारिन्! हम प्रजाओं में आप चक्षु, श्रोत्र, यश और अन्न, वीर्य, रक्त और उत्तम जाठर अग्नि से युक्त पेट को भी धारण कराओ।

तानि कल्पद् ब्रह्मचारी सलिलस्य पृष्ठे तपोऽतिष्ठत् तप्यमानः समुद्रे।
स स्नातो बभ्रुः पिङ्गलः पृथिव्यां बहु रोचते ॥२६॥ (१६)

भा०—पूर्वोक्त प्राण, अपान, व्यान, वाणी, मन, हृदय, चक्षु, श्रोत्र, ब्रह्म, मेधा, यश, अन्न, वीर्य आदि समस्त धातुओं को धारण करता हुआ ब्रह्मचारी समुद्र के समान ज्ञान और सामर्थ्य में गम्भीर परमेश्वर के

आधार पर, सलिल अर्थात् जल के समान सर्व जीवनाधार परमेश्वर के आनन्द रस के पृष्ठ पर, समुद्र के जल के ऊपर तपते हुए सूर्य के समान तप करता हुआ विराजता है। वह विद्या और व्रत में निष्णात होकर ज्ञान धारण में समर्थ, प्रकाशमान, तेजस्वी, ओजस्वी होकर, अत्यन्त अधिक शोभा देता है।

[६] पाप से मुक्त होने का उपाय।

शन्तातिर्ऋषिः. चन्द्रमा उत मन्त्रोक्ता देवताः। २३ बृहतीगर्भा अनुष्टुप्। १–१७, १९–२२ अनुष्टुभः। १८ पथ्यापङ्क्तिः। त्रयोविंशर्चं सूक्तम्॥

अग्निं ब्रूमो वनस्पतीनोषधीरुत वीरुधः।
इन्द्रं बृहस्पतिं सूर्यं ते नो मुञ्चन्त्वंहसः॥ १॥

भा०—परमेश्वर वनस्पतियों, ओषधिरूप लताओं, ज्ञानैश्वर्यवान् आचार्य और वेदवाणी के पालक तथा सूर्य के समान तेजस्वी, आदित्य ब्रह्मचारी के गुणों का वर्णन करें कि जिससे वे सब हमें पाप और कष्टों से मुक्त करें।

ब्रूमो राजानं वरुणं मित्रं विष्णुमथो भगम्।
अंशं विवस्वन्तं ब्रूमस्ते नो०॥ २॥

भा०—सबके राजा, सर्वश्रेष्ठ, सर्वव्यापक, सबके स्नेही तथा मृत्यु से भी त्राणकारी और ऐश्वर्यवान, सर्वान्तर्यामी, सब लोकों को बसाने हारे, सबके हृदयों में नाना रूपों से बसने वाले परमात्मा का या इन इन गुणों के धारण करने वाले महात्माओं का हम वर्णन करें कि वे हमें अपने गुणों के प्रभाव से पाप से मुक्त करें।

ब्रूमो देवं सवितारं धातारमुत पूषणम्।
त्वष्टारमग्रियं ब्रूमस्ते नो०॥ ३॥

भा०—सर्वदाता, सर्वप्रेरक, सर्वधारक, सर्वपोषक, सर्वजगदुत्पादक,

सबके आदि मूल कारण प्रभु परमेश्वर का वर्णन करें कि परमात्मा के वे समस्त गुण हमें पाप से बचावें ।

गन्धर्वाप्सरसौ ब्रूमो अश्विना ब्रह्मणस्पतिम् ।
अर्यमा नाम यो देवस्ते नो० ॥ ४ ॥

भा०—सच्चरित्र नवयुवक पुरुष और सती स्त्रियां, माता और पिता, वेद के पालक विद्वान् आचार्य और सर्वश्रेष्ठ, न्यायकारी जो सब देवों का देव राजा है हम उनसे प्रार्थना करते हैं कि वे हमें पापों से मुक्त करें।

अहोरात्रे इदं ब्रूमः सूर्याचन्द्रमसावुभा ।
विश्वानादित्यान् ब्रूमस्ते नो० ॥ ५ ॥

भा०—दिन और रात, दोनों सूर्य और चन्द्रमा, समस्त आदित्यों, १२ मासो का इस प्रकार से हम वर्णन करें कि वे हमें अपने सत्य प्रभाव से पाप से मुक्त करें ।

वातं ब्रूमः पर्जन्यमन्तरिक्षमथो दिशः ।
आशाश्च सर्वा ब्रूमस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥ ६ ॥

भा०—वायु, मेघ, अन्तरिक्ष और दिशाएं इन समस्त ईश्वर की शक्तियों का हम वर्णन करें कि वे अपने प्रभावों से हमें पाप से मुक्त करें।

मुञ्चन्तु मा शपथ्यादहोरात्रे अथो उषाः ।
सोमो मा देवो मुञ्चतु यमाहुश्चन्द्रमा इति ॥ ७ ॥

भा०—परनिन्दा या दूसरे के विषय में कठोर दुःखदायी वचनों के कहने से उत्पन्न होने वाले पाप से, दिन और रात और उषा मुझे मुक्त करें । सोम देव जिसको विद्वान् 'चन्द्रमा' कहते हैं वह भी मुझे पाप से मुक्त करे । अर्थात् दिन रात्रि और उषा काल और चन्द्र को पवित्र और शान्तिकारक मनन करके हम अपने चित्त को परनिन्दा और क्रोध से बचावें।

पार्थिवा दिव्याः पशव आरण्या उत ये मृगाः ।
शकुन्तान् पक्षिणो ब्रूमस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥ ८ ॥

भा०—पृथिवी के पर्वत, नदी आदि उत्तम पदार्थ, और आकाश के सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, मेघ आदि दिव्य पदार्थ, अरण्य के रहने वाले सिंह, हाथी आदि पशु और जो अन्य नाना पशु और शक्तिशाली पक्षिगण हैं हम उनका वर्णन करें। वे सब अपने अपने उत्तम गुणों के प्रभाव से हमे पाप की प्रवृत्तियों और कष्टों से दूर करें।

भवाशर्वाविदं ब्रूमो रुद्रं पशुपतिश्च यः।
इषूर्या एषां संविद्म ता नः सन्तु सदा शिवाः ॥ ९ ॥

भा०—भव, शर्व और रुद्र स्वरूप की, तथा सर्व जीवों के पालक ईश्वर के विशेष गुणों से युक्त स्वरूपों की हम स्तुति करें। और जो इनके इषु, प्रेरक शक्तियां हैं जिनमे जीव प्रेरित होते हैं हम उनको भी जानें। वे हमारे लिये सदा सुखकारी हों।

दिवं ब्रूमो नक्षत्राणि भूमिं यक्षाणि पर्वतान्।
समुद्रा नद्यो वेशन्तास्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥१०॥ (१७)

भा०—सूर्य, नक्षत्र, पूज्य स्थान, पर्वत, समुद्र, नदियें, जलाशय आदि के नाना उत्तम गुण वर्णन करते हैं। वे हमें पाप प्रवृत्तियां और बुरे प्रभावों से मुक्त करें।

सप्तर्षीन् वा इदं ब्रूमोऽपो देवीः प्रजापतिम्।
पितॄन् यमश्रेष्ठान ब्रूमस्ते नो० ॥ ११ ॥

भा०—हम सात ऋषियों, दिव्य जलों और विचारों, और प्रजापालक परमेश्वर और आत्मा के उत्तम गुणों का वर्णन करते हैं। हम लोग यम नियम के पालक ब्रह्मचारियों में भी श्रेष्ठ अपने पिता आदि और आचार्यों के गुणों का वर्णन एवं पुण्य-कथा करते हैं। वे हमें पाप भावों से मुक्त करें।

ये देवा दिविषदो अन्तरिक्षसदश्च ये।
पृथिव्यां शक्रा ये श्रितास्ते नो० ॥ १२ ॥

भा०—जो दिव्य पदार्थ द्यौलोक मे सूर्य आदि रूप से स्थित हैं, और जो वायु, मेघ आदि अन्तरिक्ष में विराजमान हैं, और जो शक्तिमान् दिव्य पदार्थ और शक्तिमान्, राजर्षि, ब्रह्मर्षि लोग और शक्तिशाली महापुरुष इस पृथिवी पर विराजमान हैं वे हमे पाप के भावो से मुक्त करें।

आदित्या रुद्रा वसवो दिवि देवा अथर्वाणः ।
अङ्गिरसो मनीषिणस्ते नो० ॥ १३ ॥

भा०—आदित्य के समान ४८ वर्ष के ब्रह्मचारी, रुद्र ब्रह्मचारी, वसु अर्थात् २४ वर्ष के ब्रह्मचारी, अथवा आदित्य १२ मास, रुद्र १० प्राण और आत्मा, वसु पृथिवी आदि आठ लोक, तथा जो द्यौःलोक मे स्थिर या सात्विक स्थिति मे विराजमान देवगण, जगत् के रक्षक विद्वान् गण, ज्ञानी, मनस्वी, विचारक लोग हैं वे सब हमें पाप के भावों से मुक्त करें।

यज्ञं ब्रूमो यजमानमृचः सामानि भेषजा ।
यजूंषि होत्रा ब्रूमस्ते नो० ॥ १४ ॥

भा०—हम यज्ञ, यजमान, सामवेद के पवित्र गायनों, अथर्व-वेद के रोगहारी उपायों और यजुर्वेद के कर्म-काण्डो और आहुति या होम आदि कार्यों का वर्णन करते हैं वे हमें पापो से मुक्त करें।

पञ्च राज्यानि वीरुधां सोमश्रेष्ठानि ब्रूमः ।
दर्भो भङ्गो यवः सहस्ते नो० ॥ १५ ॥

भा०—लताओं के पाच राज्यों या श्रेणियो का हम वर्णन करते है। जिनमे सबसे श्रेष्ठ 'सोम' है और शेष चार दर्भ, भङ्ग [पण], यव और सहस् = सहमाना ओषधि हैं। वे हमें पाप, रोगादि से मुक्त करें।

अरायान् ब्रूमो रक्षांसि सर्पान् पुण्यजनान् पितॄन् ।
मृत्यूनेकशतं ब्रूमस्ते नो० ॥ १६ ॥

भा०—धन सम्पत्ति से रहित दरिद्रों, दुष्ट पुरुषों, सांपों, प्रजापीडक मायावी लोगों, और उनसे बचाने वाले पालकों का हम नाना प्रकार से वर्णन करते हैं, और एक सौ एक या सौ प्रकार की मृत्युओं, देह से प्राणों के छूटने के प्रकारों का वर्णन करते हैं। वे सब हमें पाप कर्म से छुड़ा देवें।

ऋतून् ब्रूम ऋतुपतीनार्तवानुत हायनान्।
समाः संवत्सरान् मासांस्ते नो० ॥ १७ ॥

भा०—ऋतुओं, ऋतुपतियों, ऋतु पर होने वाले विशेष वृक्ष आदि पदार्थों और घटनाओं और अयन के परिवर्तन कालों, समान दिन रात्रि वाले कालों का, और संवत्सरों का वर्णन करते हैं, वे हमें पाप तथा कष्टों से मुक्त करें।

'हायन, समा, संवत्सर'—ये वर्ष के ही पर्याय हैं। परन्तु इन शब्दों का प्रयोग चान्द्र, सौर और प्रायः सावन भेद से किया जाता है। अत. उन तीनों का एक साथ ग्रहण किया गया है।

एत देवा दक्षिणतः पश्चात् प्राञ्च उदेत।
पुरस्तादुत्तराच्छक्रा विश्वे देवाः समेत्य ते नो० ॥ १८ ॥

भा०—हे राजाओ और विद्वान पुरुषो ! आप लोग दक्षिण दिशा से आओ, हे शक्तिशाली समस्त राजाओ ! और विद्वान पुरुषो ! पीछे से और उत्तर दिशा, बायें से और हम लोगों के समक्ष से आकर उपस्थित होओ और अपने आदर्श जीवनों से वे सब हमें पाप कर्म से मुक्त करें।

विश्वान् देवानिदं ब्रूम सत्यसंधानृतावृधः।
विश्वाभिः पत्नीभिः सह ते नो० ॥ १९ ॥

भा०—समस्त सत्य प्रतिज्ञा करने वाले, और सत्य की वृद्धि करने वाले विद्वान् अधिकारी पुरुषों से हम यह प्रार्थना करते हैं कि वे

अपनी समस्त पत्नियों या पालक शक्तियों सहित हम प्रजाओं को पाप से छुड़ावें।

सर्वा॑न् दे॒वानि॒दं ब्रू॑मः स॒त्यसं॑न्धानृता॒वृधः॑ ।
सर्वा॑भिः पत्नी॑भिः स॒ह ते नो॑० ॥ २० ॥

भा०—समस्त सत्यप्रतिज्ञ, सत्यव्यवहार आचरण को बढ़ाने वाले, प्रजा के भीतर रहने वाले विद्वानों से हम यह प्रार्थना करते हैं कि वे अपनी समस्त धर्मपत्नियों या पालक शक्तियों सहित हमें पाप कर्म से मुक्त करें।

भू॒तं ब्रू॑मो भूत॒पतिं॑ भू॒ताना॑मु॒त यो व॒शी ।
भू॒तानि॒ सर्वा॑ सं॒गत्य॒ ते नो॑ मुञ्च॒न्त्वंह॑सः ॥ २१ ॥

भा०—सामर्थ्यवान् पुरुष, सामर्थ्यवान् पुरुषों के स्वामी, और जो समस्त प्राणियों को वश करने हारा है उनकी हम स्तुति करते हैं। ये सब शक्तियां मिलकर हमें पाप कर्म से बचावें।

या दे॒वीः पञ्च॑ प्र॒दिशो॒ ये दे॒वा द्वाद॑श॒र्तवः॑ ।
सं॒व॒त्स॒रस्य॒ ये दंष्ट्रा॒स्ते नः॑ सन्तु॒ सदा॑ शि॒वाः ॥ २२ ॥

भा०—जो दिव्यगुणयुक्त पांच मुख्य दिशाओं के समान गुरु आदि पांच शिक्षक हैं, और जो बारह ऋतु मधु, माधव आदि मास हैं, और जो संवत्सर की दाढ़ों के समान दिन और रात में आने वाले जीवन के भयोत्पादक अवसर हैं वे हमें सदा कल्याणकारी हों।

यन्मा॑त॒ली र॑थक्री॒तम॒मृतं॒ वेद॑ भेष॒जम् ।
तदिन्द्रो॑ अ॒प्सु प्रावे॑शय॒त् तदा॑पो दत्त भेष॒जम् ॥२३॥ (१८)

भा०—मातलि अर्थात् ज्ञान का संग्रह करने वाला जीव जिस भव-रोगनिवारक विषयों के इन्द्रियरसों के परित्याग के बदले में प्राप्त अपने अमृत स्वरूप को साक्षात् जान लेता है, उस अमृत स्वरूप आत्मा

को परमेश्वर आप्त प्रजाओं में या प्रज्ञावान् पुरुषों में प्रविष्ट करता है। समस्त आप्त पुरुष उसी पर ओषधिरूप आत्मज्ञान को हमें प्रदान करें।

इति तृतीयोऽनुवाकः ।

[तत्र सूक्तद्वयम्, ऋचश्चैकोनपञ्चाशत् ।]

[७] सर्वोपरि विराजमान उच्छिष्ट ब्रह्म ।

अथर्वा ऋषिः । अध्यात्मम् उच्छिष्टो देवता । पुरोष्णिग् बार्हतपरा । २१ स्वराट् । २२ विराट् पथ्याबृहती । ११ पथ्यापङ्क्तिः । १-५, ७-१०, २०, २२-२७ अनुष्टुभः । सप्तविंशर्चं सूक्तम् ।

उच्छिष्टे नाम रूपं चोच्छिष्टे लोक आहितः ।
उच्छिष्ट इन्द्रश्चाग्निश्च विश्वमन्तः समाहितम् ॥ १ ॥

भा०—समस्त जगत् के प्रलय हो जाने के अनन्तर जो शेष रह जाता है अथवा 'नेति', 'नेति' इस भावना से समस्त प्रपञ्चों का निषेध कर देने पर जो सबसे अतिरिक्त 'सत्' शेष रह जाता है जिसको वेद और उपनिषदादि शास्त्रों ने सर्वोपरि उपदेश किया है वह 'परब्रह्म' 'उच्छिष्ट' है। उसमें नाम अर्थात् शब्द से कहे जाने योग्य, और 'रूप' अर्थात् चक्षु से देखे जाने योग्य दोनों प्रकार का जगत् स्थिर है। यह सर्वद्रष्टा आत्मा अथवा वह सूर्यादि समस्त लोक उस उच्छिष्ट में स्थित है उस 'उच्छिष्ट' में वायु और अग्नि स्थित हैं, और यह समस्त विश्व उसके भीतर भली प्रकार विराजमान है।

उच्छिष्टे द्यावापृथिवी विश्वं भूतं समाहितम् ।
आपः समुद्र उच्छिष्टे चन्द्रमा वात आहितः ॥ २ ॥

भा०—इस पूर्वोक्त 'उच्छिष्ट' नाम परब्रह्म में आकाश और पृथिवी, और समस्त उत्पन्न कार्य-जगत् भी स्थित है। जल और समुद्र भी 'उच्छिष्ट' में है। और इसी 'उच्छिष्ट' में चन्द्रमा और वायु भी स्थित हैं।

सन्नुच्छिष्टे असंश्चोभौ मृत्युर्वाजः प्रजापतिः ।
लौक्या उच्छिष्ट आयत्ता व्रश्च द्रश्चापि श्रीर्मयि ॥ ३ ॥

भा०—'उच्छिष्ट' नाम उस परब्रह्म में 'सत्' या सत्ता के अन्तर्गत समस्त भाव रूप जगत्, और अभाव रूप या अव्यक्त रूप प्रकृति, वे दोनों, और मृत्यु जो सब प्राणियो को जीवित दशा से शरीर रहित करता है, अन्न और जल, प्रजा का पालक मेघ सब उसी मे विद्यमान है । उस परब्रह्म में समस्त लोको में विद्यमान प्रजाएं, सब का आवरण करने वाला यह महान् आकाश और सबका 'द्र' अर्थात् द्रावक या गति देने वाला काल भी बंधे हैं । इसी प्रकार मुक्त आत्मा मे विद्यमान जो कर्म करने और अनेक उत्तम फलैश्वर्य प्राप्त करने का सामर्थ्य है वह भी उसी का है ।

दृढो दृंहस्थिरो न्यो ब्रह्म विश्वसृजो दश ।
नाभिमिव सर्वतश्चक्रमुच्छिष्टे देवताः श्रिताः ॥ ४ ॥

भा०—कठोर तथा स्थिर यह पृथिवी, उसके भीतर गति देने वाला वेद, और समस्त संसार के बनाने वाले दशो प्राण और पंचभूत आदि तत्व, स्थूल और सूक्ष्म तत्व, और समस्त सूर्यादि लोक नाभि के चारों ओर चक्र के समान उस 'उच्छिष्ट' मे ही आश्रित हैं ।

ऋक् साम यजुरुच्छिष्ट उद्गीथः प्रस्तुतं स्तुतम् ।
हिङ्कार उच्छिष्टे स्वरः साम्नो मेडिश्च तन्मयि ॥ ५ ॥

भा०—ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद ये उच्छिष्ट मे ही विराजमान हैं । इसी प्रकार साम सम्बन्धी उद्गीथ अर्थात् उद्गाता से गाया गया सामभाग, प्रस्तोता से स्तुति किया गया सामभाग और स्तवन द्वारा उपस्थित साम भाग 'हिं' रूप से साम के प्रारम्भ मे उद्गाता आदि द्वारा किया गया सामभाग, स्वर अर्थात् क्रुष्ट, प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, मन्द्र, अति मन्द्र, सात स्वर अथवा अ, आ, इ, ई इत्यादि स्वर, और ऋचा के अक्षरों को परस्पर मिलाने वाला 'स्तोम' या साम

सम्बन्धी स्वर मेलन रूप वाक्, ये सब उच्छिष्ट में आश्रित हैं। वह परम सूक्ष्म उच्छिष्ट ब्रह्म मुझ आत्मा में समृद्ध हो।

ऐन्द्राग्नं पावमानं महानाम्नीर्महाव्रतम्।
उच्छिष्टे यज्ञस्याङ्गान्यन्तर्गर्भ इव मातरि ॥ ६ ॥

भा०—माता के गर्भ के भीतर जिस प्रकार बालक के अङ्ग पुष्ट होते हैं और बनते हैं उसी प्रकार 'उच्छिष्ट' में इन्द्र और अग्नि सम्बन्धी सामवेद के भाग, पवमान सम्बन्धी सामवेद के भाग, महानाम्नी नाम ऋचाएं, साम का 'महाव्रत' नामक प्रकरण ये सब यज्ञ के अङ्ग हैं, वे सब उसी परमात्मा के भीतर उत्पन्न होते और पुष्ट होते हैं।

ऐन्द्र काण्ड, आग्नेय काण्ड, पावमान काण्ड और महानाम्नी आर्चिक महाव्रत नामक उत्तरार्चिक ये सामवेद के भाग हैं। वे सब 'उच्छिष्ट' नामक सर्वोत्कृष्ट परमात्मा के भीतर हैं अर्थात् ये सब उसी की महिमा का वर्णन करते हैं।

राजसूयं वाजपेयमग्निष्टोमस्तदध्वरः।
अर्काश्वमेधावुच्छिष्टे जीवबर्हिर्मदिन्तमः ॥ ७ ॥

भा०—राजसूय यज्ञ, वाजपेय यज्ञ, अग्निष्टोम यज्ञ और वह नाना प्रकार के हिंसा रहित ज्ञानमय यज्ञ, और विराट् रूप से उपासना करने योग्य चितियाग और अश्वमेध यज्ञ, और सबसे अधिक आनन्दप्रद जीव की शक्तियों को बढ़ाने वाला ब्रह्मोपासनामय यज्ञ सब उस उत्कृष्टतम परब्रह्म में मगन होता है। ये सब यज्ञ और उपासना और साधनाएं उस परमेश्वर का ही वर्णन करती हैं।

अग्न्याधेयमथो दीक्षा कामप्रश्छन्दसा सह।
उत्सन्ना यज्ञाः सत्राण्युच्छिष्टेऽधि समाहिताः ॥ ८ ॥

भा०—अग्नि आधान करने योग्य यज्ञकर्म, और दीक्षा, सब कामना के पूर्ण करने वाले काम्य कर्म, 'छन्दस्' गायत्री आदि अथवा वर्णाश्र

सहित वे ब्रह्मयज्ञ जिनसे जीव मुक्त होकर उत्तम लोक, मोक्ष में निर्बन्ध होकर गति करते हैं, अथवा वे यज्ञकर्म या प्रजापति के रूप जो काल क्रम से लुप्त हो जाते हैं, और सोम याग आदिक बृहद् याग नामक सत्र, ये सब सर्वोत्कृष्ट परम मोक्षमय ब्रह्म में ही आश्रित हैं।

अग्निहोत्रं च श्रद्धा च वषट्कारो व्रतं तपः।
दक्षिणेष्टं पूर्तं चोच्छिष्टेऽधि समाहिताः ॥ ९ ॥

भा०—अग्निहोत्र, श्रद्धा और वषट्कार, स्वाहाकार, व्रत और तप, दक्षिणा यज्ञ, और कूप तालाब बनवाने आदि सब परोपकार के पुण्य कार्य उत्कृष्टतम सर्वोपरि प्रतिपाद्य परब्रह्म में ही आश्रित हैं अर्थात् यह ईश्वर न हो तो ये सब भी न हो।

एकरात्रो द्विरात्रः सद्यःक्रीः प्रक्रीरुक्थ्यः।
ओतं निहितमुच्छिष्टे यज्ञस्याणूनि विद्यया ॥ १० ॥ (१६)

भा०—एक दिन मे समाप्त होने योग्य और दो दिन मे समाप्त होने योग्य सोमयाग विशेष, और सद्यस्क्री और प्रक्री नामक विशेष प्रकार के सोमयाग, अग्निष्टोम के बाद के स्तुति-मन्त्रों के उच्चारण रूप 'उक्थ्य' ये सब उत्कृष्टतम परम परमेश्वर मे गुंथे हुए हैं, और उसी मे आश्रित है। और यज्ञ के छोटे छोटे भाग भी अपने ज्ञान तत्व के रूप से उसी 'उच्छिष्ट' परमात्मा में आश्रित है। अर्थात् समस्त प्रकार के सोम याग और सब यज्ञके छोटे छोटे याग भी उसी परमात्मा का वर्णन करते हैं।

चतूरात्रः पञ्चरात्रः षड्रात्रश्चोभयः सह।
षोडशी सप्तरात्रश्चोच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे ये यज्ञा अमृते हिताः ॥ ११ ॥

भा०—चार दिनों, पाच दिनों और छः दिनो मे होने वाले नाना प्रकार के सोमयाग, और इसी प्रकार इनके साथ इनके द्विगुणित अष्टरात्र, दशरात्र, द्वादशरात्र, सप्तरात्र और चतुर्दशरात्र नामक सोमयाग, और 'षोडश' नाम स्तोत्र वाला षोडशी-याग, तथा जो भी यज्ञ अमर आत्मा

सम्बन्धी स्वर मेलन रूप वाक्, ये सब उच्छिष्ट में आश्रित हैं। वह परम सूक्ष्म उच्छिष्ट ब्रह्म मुझ आत्मा में समृद्ध हो।

ऐन्द्राग्नं पावमानं महानाम्नीर्महाव्रतम्।
उच्छिष्टे यज्ञस्याङ्गान्यन्तर्गर्भ इव मातरि ॥ ६ ॥

भा०—माता के गर्भ के भीतर जिस प्रकार बालक के अङ्ग पुष्ट होते हैं और बनते हैं उसी प्रकार 'उच्छिष्ट' में इन्द्र और अग्नि सम्बन्धी सामवेद के भाग, पवमान सम्बन्धी सामवेद के भाग, महानाम्नी नाम ऋचाएं, साम का 'महाव्रत' नामक प्रकरण ये सब यज्ञ के अङ्ग हैं, वे सब उसी परमात्मा के भीतर उत्पन्न होते और पुष्ट होते हैं।

ऐन्द्र काण्ड, आग्नेय काण्ड, पावमान काण्ड और महानाम्नी आर्चिक महाव्रत नामक उत्तरार्चिक ये सामवेद के भाग हैं। वे सब 'उच्छिष्ट' नामक सर्वोत्कृष्ट परमात्मा के भीतर हैं अर्थात् ये सब उसी की महिमा का वर्णन करते हैं।

राजसूयं वाजपेयमग्निष्टोमस्तदध्वरः।
अर्काश्वमेधावुच्छिष्टे जीवबर्हिर्मदिन्तमः ॥ ७ ॥

भा०—राजसूय यज्ञ, वाजपेय यज्ञ, अग्निष्टोम यज्ञ और वह नाना प्रकार के हिंसा रहित ज्ञानमय यज्ञ, और विराट् रूप से उपासना करने योग्य चितियाग और अश्वमेध यज्ञ, और सबसे अधिक आनन्दमद जीव की शक्तियों को बढ़ाने वाला ब्रह्मोपासनामय यज्ञ सब उस उत्कृष्टतम परब्रह्म में संगत होता है। ये सब यज्ञ और उपासना और साधनाएं उस परमेश्वर का ही वर्णन करती हैं।

अग्न्याधेयमथो दीक्षा कामप्रश्छन्दसा सह।
उत्सन्ना यज्ञाः सत्राण्युच्छिष्टेऽधि समाहिताः ॥ ८ ॥

भा०—अग्नि आधान करने योग्य यज्ञकर्म, और दीक्षा, सर्व कामना के पूर्ण करने वाले काम्य कर्म, 'छन्दस्' गायत्री आदि अथवा अथर्ववेद

सहित वे ब्रह्मयज्ञ जिनसे जीव मुक्त होकर उत्तम लोक, मोक्ष में निर्बन्ध होकर गति करते हैं, अथवा वे यज्ञकर्म या प्रजापति के रूप जो काल क्रम से लुप्त हो जाते है, और सोम याग आदिक बृहद् याग नामक सत्र, ये सब सर्वोत्कृष्ट परम मोक्षमय ब्रह्म में ही आश्रित हैं।

अग्निहोत्रं च श्रद्धा च वषट्कारो व्रतं तपः ।
दक्षिणेष्टं पूर्तं चोच्छिष्टेऽधि समाहिताः ॥ ९ ॥

भा०—अग्निहोत्र, श्रद्धा और वषट्कार, स्वाहाकार, व्रत और तप, दक्षिणा यज्ञ, और कूप तालाब बनवाने आदि सब परोपकार के पुण्य कार्य उत्कृष्टतम सर्वोपरि प्रतिपाद्य परब्रह्म मे ही आश्रित है अर्थात् वह ईश्वर न हो तो ये सब भी न हों।

एकरात्रो द्विरात्रः सद्यःक्रीः प्रक्रीरुक्थ्यः ।
ओतं निहितमुच्छिष्टे यज्ञस्याणूनि विद्यया ॥ १० ॥ (१६)

भा०—एक दिन में समाप्त होने योग्य और दो दिन मे समाप्त होने योग्य सोमयाग विशेष, और सद्यस्क्री और प्रक्री नामक विशेष प्रकार के सोमयाग, अग्निष्टोम के बाद के स्तुति-मन्त्रों के उच्चारण रूप 'उक्थ्य' ये सब उत्कृष्टतम परम परमेश्वर मे गुंथे हुए हैं, और उसी मे आश्रित है। और यज्ञ के छोटे छोटे भाग भी अपने ज्ञान-तत्व के रूप से उसी 'उच्छिष्ट' परमात्मा में आश्रित हैं। अर्थात् समस्त प्रकार के सोम याग और सब यज्ञके छोटे छोटे याग भी उसी परमात्मा का वर्णन करते हैं।

चतूरात्रः पञ्चरात्रः षड्रात्रश्चोभयः सह ।
षोडशी सप्तरात्रश्चोच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे ये यज्ञा अमृते हिताः ॥ ११ ॥

भा०—चार दिनों, पाच दिनों और छः दिनों मे होने वाले नाना प्रकार के सोमयाग, और इसी प्रकार इनके साथ इनके द्विगुणित अष्टरात्र, दशरात्र, द्वादशरात्र, सप्तरात्र आ चतुर्दशरात्र नामक सोमयाग, और 'षोडश नाम स्तोत्र वाला षोडशी-याग, तथा जो भी यज्ञ अमर आत्मा

या मोक्षधाम में आश्रित हैं, वे सब 'उच्छिष्ट' सर्वोत्कृष्ट परमात्मा से उत्पन्न होते हैं।

प्रतीहारो निधनं विश्वजिच्चाभिजिच्च यः ।
सान्हातिरात्रावुच्छिष्टे द्वादशाहोऽपि तन्मयि ॥ १२ ॥

भा०—सामगान के भाग 'प्रतीहार' और 'निधन' और जो विश्वजित् याग और अभिजित् याग हैं, और सान्ह और अतिरात्र नामक याग, और द्वादशाह नामक याग भी उस उत्कृष्ट परमात्मा में ही आश्रित हैं। वे भी उसी के स्वरूप का वर्णन करते हैं। वह प्रभु मुझमें, मेरी आत्मा में सम्पन्न हो, मेरी शक्ति और श्री की वृद्धि करे।

सूनृता संनतिः क्षेमः स्वधोर्जामृतं सहः ।
उच्छिष्टे सर्वे प्रत्यञ्चः कामाः कामेन तातृपुः ॥ १३ ॥

भा०—उत्तम शुभ, सत्य वाणी, उत्तम भक्ति भाव अथवा उत्तम फल की प्राप्ति, कल्याणमय वृद्धि, अन्न, बलकारी विशेष शक्ति, परम आनन्द रूप अमृत और बल, और सब आत्मा में साक्षात् अनुभव होने वाली अभिलाषाएं जो काम्य फल से अथवा पूर्ण काम या पूर्वोक्त कामसूक्त में प्रतिपादित सर्वकाम परमात्मा के दर्शन से तृप्त हो जाती हैं वे सब उस परमोत्कृष्ट परमात्मा में आश्रित हैं।

नव भूमीः समुद्रा उच्छिष्टेऽधि श्रिता दिवः ।
आ सूर्यो भात्युच्छिष्टेऽहोरात्रे अपि तन्मयि ॥ १४ ॥

भा०—नव भूमियां, समस्त समुद्र, और आकाश के सब भाग भी उस उत्कृष्ट परमात्मा में आश्रित हैं। उस परमात्मा के आश्रय में सूर्य प्रकाशमान हो रहा है। दिन रात भी उसी पर आश्रित हैं। वह परमात्मा मुझ में, मेरे अन्तरात्मा में प्रकाशित हो।

उपहव्यं विषूवन्तं ये च यज्ञा गुहा हिताः ।
[illegible] विश्वस्योच्छिष्टो जनितुः पिता ॥ १५ ॥

भा०—'उपहव्य' नामक सोमयाग और विषुवान् नामक अर्थात् 'गवाम्-अयन' नामक संवत्सर के छः छः मासो के दोनो पूर्व और उत्तर पक्षो के बीच मे 'एकविंशस्तोम' नामक सोमयाग, और भी जो यज्ञ, उस परमात्मा के उपासना के नाना प्रकार हैं, जो विद्वानो के हृदय मे और ब्रह्माण्ड की रचना कौशल मे अज्ञात रूप से वर्त्तमान हैं उन सबको विश्व का भरण पोषण करने वाला, उत्पादक कारण का पालक, परम कारण, परमपिता सर्वोत्कृष्ट परमेश्वर ही स्वयं धारण करता है।

पिता जनितुरुच्छिष्टोऽसोः पौत्रः पितामहः ।
स क्षियति विश्वस्येशानो वृषा भूम्यामतिघ्न्यः ॥ १६ ॥

भा०—वह सबसे उत्कृष्ट और दृश्य जगत् से भी परे विद्यमान परमात्मा, समस्त उत्पादक प्राणियों और लोकों का भी स्वयं पालक है। और प्राण शक्ति का स्वयं पुत्र का भी पुत्र, मानो स्वयं व्यक्त देहो में प्रकट होने वाला है, और स्वयं इस महान् विराट्-देहो का निर्माता होने से उसका पितामह है। वह समस्त संसार का स्वामी, समस्त सुखों और जीवनो की वर्षा करने हारा होकर इस भूमि पर सबको अतिक्रमण करके सबसे ऊचा होकर विराजमान है।

'असु' का पुत्र मन है उसमे ज्योति रूप से प्रकट होने से उसका वह 'पौत्र' है। और जीव के उत्पादकों का उत्पादक होने से 'पितामह' है।

ऋतं सत्यं तपो राष्ट्रं श्रमो धर्मश्च कर्म च ।
भूतं भविष्यदुच्छिष्टे वीर्यं लक्ष्मीर्बलं बले ॥ १७ ॥

भा०—ऋत, सत्य, तप, राष्ट्र, धर्म और कर्म, भूत और भविष्यत्, वीर्य, लक्ष्मी और बल ये सब उस बलशाली सर्वोत्कृष्ट परमात्मा में विद्यमान हैं।

समृद्धिरोज आकूतिः क्षत्रं राष्ट्रं षडुर्व्यः ।
संवत्सरोऽध्युच्छिष्ट इडा प्रैषा ग्रहा हविः ॥ १८ ॥

भा०—समस्त सम्पत्तियां, तेज, संकल्प, क्षात्रबल, राष्ट्र, छहों महान् पदार्थ द्यौः, पृथिवी, दिन, रात्रि, आपः, ओषधि ये छहों, वर्ष, अन्न, मन्त्र या मानस संकल्प, यज्ञ के देवताओं के नाम पर दिये सोमांश अथवा इन्द्रियगण, चरु पुरोडाश आदि अथवा अन्न, ये सब उसी ईश्वर में आश्रित, उसी के बल पर और उसी के द्वारा उत्पन्न और प्राप्त हैं।

चतुर्होतार आप्रियश्चातुर्मास्यानि नीविदः ।
उच्छिष्टे यज्ञा होत्राः पशुबन्धास्तदिष्टयः ॥ १९ ॥

भा०—चतुर्होतृनामक अनुवाक, पशुयाग सम्बन्धी प्रयोगों के आप्री देवता की याज्या ऋचाएं, चातुर्मास्य में किये जाने योग्य वैश्वदेव, वरुण-प्रघास, काममेध, शुनासीरीय आदि पर्व, और स्तुति करने योग्य इष्ट-देव के विशेष गुणप्रदर्शक वेद की ऋचाएं, यज्ञ, होता आदि सात ऋत्विक्, पशुबन्ध अर्थात् द्रष्टा परमात्मा को हृदय मे बांधने द्वारा किये जाने वाले सोमयाग के अंगभूत यज्ञ, और उनके बीच की अङ्गरूप इष्टियें, ये सब उस सर्वोत्कृष्ट में आश्रित हैं, उन सबका तात्पर्य परब्रह्मपरक है।

अर्धमासाश्च मासाश्चार्तवा ऋतुभिः सह ।
उच्छिष्टे घोषिणीरापः स्तनयित्नुः श्रुतिर्मही ॥ २० ॥ (२०)

भा०—अर्धमास = पक्ष, मास, ऋतुओं सहित ऋतुओं में उत्पन्न नाना पदार्थ, गर्जना करने वाली जलधाराएं, गर्जने हारा मेघ या बिजुली, और बड़ी भारी यह पृथिवी, और परम ज्ञानमय वेद वाणी, ये सब उत्कृष्ट परब्रह्म में ही आश्रित हैं। ये सब उसी की शक्ति के चमत्कार हैं।

शर्कराः सिकता अश्मान ओषधयो वीरुधस्तृणा ।
अभ्राणि विद्युतो वर्षमुच्छिष्टे संश्रिता श्रिता ॥ २१ ॥

भा०—कंकरी, बालू, पत्थर, ओषधियां, लताएं, घास, मेघ

विजुलियां वर्षा ये सब उस सर्वोत्कृष्ट परमेश्वर मे भली प्रकार आश्रय लेकर अपनी सत्ता बनाये हुए है, टिके हुए है ।

राद्धिः प्राप्तिः समाप्तिर्व्याप्तिर्मह एधतुः ।
अत्याप्तिरुच्छिष्टे भूतिश्चाहिता निहिता हिता ॥ २२ ॥

भा०—फल की सिद्धि या आराधना, परम फल की प्राप्ति, सर्वकर्म की समाप्ति, नाना मनोरथानुरूप फलों को प्राप्त करना, तेज और आनन्द उत्सव करना, वृद्धि आशा से अधिक फल पाना, नाना समृद्धि, ये सब उत्कृष्टतम परमेश्वर मे स्थित होकर सुरक्षित हैं और इसीलिये जीव लोक के हितकर भी हैं ।

यच्च प्राणति प्राणेन यच्च पश्यति चक्षुषा ।
उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे दिवि देवा दिविश्रितः ॥ २३ ॥

भा०—जो भी प्राणिवर्ग प्राण द्वारा प्राण लेता है, और जो भी आंख से देखता है, और समस्त आकाश मे आश्रित सूर्य चन्द्र आदि प्रकाशमान पदार्थ या प्रकाशमय मोक्षपद में आश्रित विद्वान् लोग सभी उस सर्वोत्कृष्ट परमेश्वर से उत्पन्न होते हैं ।

ऋचः सामानि छन्दांसि पुराणं यजुषा सह ।
उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे० ॥ २४ ॥

भा०—ऋग्वेद के मन्त्र, सामवेद और उसके सहस्रों सामगान के भेद, गायत्री आदि छन्द अथवा अथर्व के मन्त्र, यजुर्वेद अर्थात् कर्म-प्रवर्त्तक मन्त्रों के साथ साथ सृष्टि उत्पत्ति प्रलय आदि के वर्णन करने हारे मन्त्र और आकाशस्थ सूर्यादि समस्त दिव्य लोक उस सर्वोत्कृष्ट परमेश्वर से उत्पन्न होते है ।

प्राणापानौ चक्षुः श्रोत्रमक्षितिश्च क्षितिश्च या ।
उच्छिष्टा० ॥ २५ ॥

भा०— प्राण और अपान, यह दर्शनशक्ति, श्रवणशक्ति, पृथिवी, अथवा पदार्थों का क्षीण होना अथवा नाशवान् देहादि पदार्थ, और पृथिवी

से अतिरिक्त वायु, अग्नि, आकाश, जल, आत्मा और मन आदि, अथवा अविनश्वर पदार्थ आत्मा, आकाश, काल आदि, अथवा पदार्थों का नित्य-भाव, और द्यौलोक में गगनचारी सूर्यादि प्रकाशमान लोक, सब उस सर्वोत्कृष्ट परमात्मा से उत्पन्न होते हैं।

आनन्दा मोदाः प्रमुदोऽभीमोदमुदश्च ये ।
उच्छिष्टा० ॥ २६ ॥
देवाः पितरो मनुष्या गन्धर्वाप्सरसश्च ये ।
उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे दिवि देवा दिविश्रितः ॥ २७ ॥ (५१)

भा०—(२६) सब प्रकार के आनन्द, सब प्रकार के विनोद और हर्ष, विशेष हर्ष, साक्षात् प्राप्य सुखों से उत्पन्न होने वाले आनन्द, और (२७) विद्वान् ग ग, पालक लोग, माता, पिता, पितामह, गुरु आदि मनुष्य और जो गन्धर्व = युवा पुरुष, और अप्सराएं = युवतियें हैं, तथा समस्त आकाश में वर्तमान प्रकाशमान सूर्यादि पदार्थ हैं ये सब उस सर्वोत्कृ
परमात्मा से ही उत्पन्न होते हैं।

[८] मन्यु रूप परमेश्वर का वर्णन।

कौरुपथिर्ऋषिः । अध्यात्म मन्युर्देवता । १–३२, ३४ अनुष्टुभः । ३३ पथ्याप
चतुश्चत्वारिंशदृच सूक्तम् ॥

यन्मन्युर्जायामावहत् संकल्पस्य गृहादधि ।
क आसं जन्याः के वराः क उ ज्येष्ठवरोऽभवत् ॥ १ ॥

भा०—जब ज्ञानमय परमेश्वर संकल्प के ग्रहण-सामर्थ्य से
संसार को उत्पन्न करने वाली प्रकृति को धारण करता है, तब
साथ २ और कौन से सृष्टि-उत्पत्ति में विशेष कारण थे, और
'वर' अर्थात् वरण करने योग्य, प्रवर्तक कारण थे, जिनमें से स
श्रेष्ठ प्रवर्तक कारण कौन-सा था।

आत्मा ने भी अपने सङ्कल्प से अपनी बुद्धि को ग्रहण कर अपनी दैहिक सृष्टि उत्पन्न की ।

तपश्चैवास्तां कर्म चान्तर्महत्यर्णवे ।
त आसं जन्यास्ते वरा ब्रह्म ज्येष्ठवरोऽभवत् ॥ २ ॥

भा०—उस प्रकृति के परमाणुओं से बने बडे भारी अव्यक्त कारण रूप समुद्र में या इस महान् आकाश के बीच, तप और कर्म ये दो ही थे वे घराती थे और वे ही बराती थे । वे ही 'जन्य' अर्थात् सृष्टि के उत्पादक मूलकारण, और वे ही 'वर' अर्थात् प्रवर्त्तक कारण थे । उनमें से ही ज्येष्ठ वर सर्वश्रेष्ठ प्रवर्त्तक था ।

दश साकमजायन्त देवा देवेभ्यः पुरा ।
यो वै तान् विद्यात् प्रत्यक्षं स वा अद्य महद् वदेत् ॥ ३ ॥

भा०—अग्नि आदि देवों से भी पूर्व दश देव एक साथ प्रादुर्भूत हुए। जो पुरुष उनका साक्षात् ज्ञान कर लेता है वह पुरुष ही उस 'महत्' ब्रह्म का उपदेश कर सकता है ।

'दश देवा' = ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय । अथवा वेद स्वयं अगले मन्त्र में कहेगा । देवेभ्यः पुरा देवाः । देवों से पूर्व उत्पन्न देव प्राण, अपान आदि हैं ।

प्राणापानौ चक्षुः श्रोत्रमक्षितिश्च क्षितिश्च या ।
व्यानोदानौ वाङ् मनस्ते वा आकूतिमावहन् ॥ ४ ॥

भा०—प्राण और अपान, आंख और कान, 'अक्षिति' अर्थात् अविनाशिनी ज्ञानशक्ति, और 'क्षिति' क्षयशील, क्रियाशक्ति और व्यान तथा उदान, वाणी और मन, उन्होंने भी आकूति नाम बुद्धिरूप 'जाया' को धारण किया ।

अजाता आसन्नृतवोऽथो धाता बृहस्पतिः ।
इन्द्राग्नी अश्विना तर्हि कं ते ज्येष्ठमुपासत ॥ ५ ॥

भा०—सृष्टि के प्रारम्भ में जब कि ऋतुएं, सूर्य और वायु, विद्युत् और अग्नि, दिन और रात्रि ये सब भी अभी प्रकट नहीं हुए तब वे अपने से भी महान् किस ज्येष्ठ प्रभु की उपासना करते थे ? अर्थात् उस समय ये कहां विलीन थे ?

तपश्चैवास्तां कर्म चान्तर्महत्यर्णवे।
तपो ह जज्ञे कर्मणस्तत् ते ज्येष्ठमुपासत ॥ ६ ॥

भा०—उस महान् अर्णव अर्थात् समुद्र रूप परमेश्वर में केवल तप और कर्म अर्थात् क्रियाशक्ति ये दो ही पदार्थ विद्यमान थे। और वह तप भी कर्म अर्थात् क्रिया से उत्पन्न हुआ था, वे पूर्वोक्त ऋतु आदि अनुत्पन्न पदार्थ, अपनी उत्पत्ति के पूर्व उस कर्म को ही सर्वश्रेष्ठ मान कर उस परम शक्तिमान् की उपासना करते थे, उसमें आश्रित थे, उसी में लीन थे।

येत आसीद् भूमिः पूर्वा यामद्धातय इद् विदुः।
यो वै तां विद्यान्नामथा स मन्येत पुराणवित् ॥ ७ ॥

भा०—जो इस प्रत्यक्ष जगत् से पूर्व की भूमि थी, अर्थात् सृष्टि की पूर्व-भाविनी, कारणरूप दशा थी, जिसको सत्य का साक्षात् ज्ञान करने वाले तत्वज्ञानी वैज्ञानिक लोग ही जानते हैं, जो उस कारणरूप पूर्वदशा को ठीक २ रूप में जानता है वही पुरुष, पुराण अर्थात् सृष्टि के पूर्व के पदार्थों के यथार्थज्ञान का जानने हारा विद्वान् मानने योग्य है।

कुत इन्द्रः कुतः सोमः कुतो अग्निरजायत।
कुतस्त्वष्टा समभवत् कुतो धाताजायत ॥ ८ ॥

भा०—इन्द्र किससे उत्पन्न हुआ ? इसका पूर्व रूप क्या था ? सोम किससे उत्पन्न हुआ ? अग्नि किससे पैदा हुआ ? त्वष्टा अर्थात् विद्युत् किससे उत्पन्न हुआ ? और 'धाता' किससे उत्पन्न हुआ ?

इन्द्रादिन्द्रः सोमात् सोमो अग्नेरग्निरजायत।
त्वष्टा ह जज्ञे त्वष्टुर्धातुर्धाताजायत ॥ ९ ॥

भा०—इन्द्र से इन्द्र उत्पन्न हुआ, सोम से सोम उत्पन्न हुआ, अग्नि से अग्नि उत्पन्न हुआ, त्वष्टा से त्वष्टा उत्पन्न हुआ, धाता से धाता उत्पन्न हुआ। अर्थात् इन्द्रादि देवों का पूर्व रूप भी इन्द्र आदि ही थे, अर्थात् उनका उत्पादक मूलकारण भी इन्द्र आदि शक्ति से सम्पन्न था, इसलिये उससे वे उत्पन्न हुए।

ये त आसन् दश जाता देवा देवेभ्यः पुरा।
पुत्रेभ्यो लोकं दत्वा कस्मिंस्ते लोक आसते ॥१०॥ (२२)

भा०—जो दश प्राण आदि, अग्नि आदि से भी पूर्व उत्पन्न हुए थे, वे अपने अनन्तर उत्पन्न होने वाले अग्नि आदि को यह उत्पन्न लोक देकर स्वय फिर किस लोक या आश्रय में जा विराजे। अर्थात् प्राण आदि से उत्पन्न होकर अग्नि आदि ने जब इस जगत् को व्याप लिया तब प्राण आदि किस आश्रय पर रहने लगे या किस स्वरूप मे विद्यमान रहे?

यदा केशानस्थि स्नावं मांसं मज्जानमाभरत्।
शरीरं कृत्वा पादवत् कं लोकमनु प्राविशत् ॥ ११ ॥

भा०—जब केशो, हड्डियो, स्नायुओं, मांस और मज्जा को एक देह में एकत्र किया। और फिर इस शरीर को चरण आदि अगों सहित बनाया फिर वह आत्मा किस लोक या स्थान मे प्रविष्ट हो गया, कहां जाकर रहने लगा।

परमात्मा ने सृष्टि की उत्पत्ति करते हुए महान् जगत् मय शरीर बनाया और शरीर के इस उत्पत्ति काल में आत्मा के कर्म और तप से मातृगर्भ मे आत्मा ने अपना शरीर संचित किया, और पुनः सम्पूर्ण अंग होकर स्वय उसमे प्रविष्ट हुआ।

कुतः केशान् कुतः स्नाव कुतो अस्थीन्याभरत्।
अङ्गा पर्वाणि मज्जानं को मांसं कुत आभरत ॥ १२ ॥

भा०—प्रजापति ने केशो को कहां से अर्थात् किस मूल उपादान से बना कर रक्खा? स्नायुओं को किस पदार्थ से बनाया, और हड्डियों को

किस उपादान से बनाया । इसके बाद फिर अन्य अंगो को, पोरुओं को और मांस को किस उपादान से बना कर इस शरीर में लाकर रक्खा है ?

संसिचो नाम ते देवा ये संभारान्त्समभरन् ।
सर्वं संसिच्य मर्त्यं देवाः पुरुषमाविशन् ॥ १३ ॥

भा०—वे दिव्य गुण वाले सूक्ष्म तत्व 'संसिच्' नाम के हैं, जो शरीर-रचना के योग्य समस्त पदार्थों को एकत्र करते हैं, वे दिव्य सूक्ष्म तेजोमय पदार्थ ही समस्त इस मरणधर्मा शरीर को भली प्रकार सेचन करके पुनः इस देह से युक्त आत्मा में प्रविष्ट होकर रहते हैं ।

ऊरू पादावष्ठीवन्तौ शिरो हस्तावथो मुखम् ।
पृष्टीर्बर्जह्ये पार्श्वे कस्तत् समदधादृषिः ॥ १४ ॥

भा०—वह कौन सर्वद्रष्टा विवेकी है जो जांघों को, जानुओं वाले चरणों को, सिर और हाथों को और मुख को, पीठ की मोहरों और हंसली की हड्डियों, और छाती की पसुलियों के दोनों भागों को उन सब अंगों को भली प्रकार परस्पर जोड़ता है ?

शिरो हस्तावथो मुखं जिह्वां ग्रीवाश्च कीकसाः ।
त्वचा प्रावृत्य सर्वं तत् संधा समदधान्मही ॥ १५ ॥

भा०—समस्त अंगों को जोड़ने वाली शक्ति का नाम 'संधा' है । वह बड़ी भारी 'संधा' शक्ति है जिसने गर्दन के मोहरे और कीकस = पीठ के मोहरे, शरीर के इन सब अंगों को चमड़े से मढ़कर एकत्र जोडकर रक्खा है । वह बड़ी भारी 'संधा' नाम की ईश्वरी शक्ति है ।

यत्तच्छरीरमशयत् संधया संहितं महत् ।
येनेदमद्य रोचते को अस्मिन् वर्णमाभरत् ॥ १६ ॥

भा०—जब वह बडा शरीर अर्थात् ब्रह्माण्ड या व्यक्ति-शरीर 'संधा' नामक पूर्वोक्त शक्ति द्वारा जोड दिया गया, तब यह जिस कारण से सदा चमकता है वर्ण को इस ब्रह्माण्ड या शरीर में कौन ला देता है, उस वर्ण को कौन उत्पन्न करता है ?

सर्वे देवा उपाशिक्षन् तदजानाद् वधूः सती ।
ईशा वशस्य या जाया सास्मिन् वर्णमाभरत् ॥ १७ ॥

भा०—समस्त प्राणादि ने उसमे अपना वीर्य आधान किया, उसे सत्-स्वरूपा चेतना ने जान लिया । जो सबके वशयिता आत्मा की स्त्री के समान सर्वोत्पादिका ईश्वरी, वशकारिणी, सामर्थ्यवती शक्ति है वह इस देह और विराड्-देह मे वर्ण, कान्ति वा तेज को प्राप्त कराती है ।

यदा त्वष्टा व्यतृणत् पिता त्वष्टुर्य उत्तरः ।
गृहं कृत्वा मर्त्यं देवाः पुरुषमाविशन् ॥ १८ ॥

भा०—शिल्पियों का भी जो बढ़कर उत्कृष्ट पिता परमेश्वर है वह स्वयं सब जीवो का बनाने वाला महाशिल्पी है, वह जब उस महान् विराड्-देह में, और इस व्यक्ति देह मे प्राणो के नाना छिद्र कर देता है, तब प्राण आदि देवगण मर्त्य पुरुष-देह को अपना घर बना कर उसमें प्रवेश करते हैं ।

स्वप्नो वै तन्द्रीर्निर्ऋतिः पाप्मानो नाम देवताः ।
जरा खालत्यं पालित्यं शरीरमनु प्राविशन् ॥ १९ ॥

भा०—प्राण, अपान आदि देव जब उस शरीर मे प्रवेश कर चुकते है तब शरीर मे निद्रा, आलस्य, पाप प्रकृति और नाना पाप के भाव और देवभाव अर्थात् सात्विक गुण, वृद्धावस्था, गंजापन, केश पकना आदि विकार भी प्रविष्ट हो जाते हैं ।

स्तेयं दुष्कृतं वृजिनं सत्यं यज्ञो यशो बृहत् ।
बलं च क्षत्रमोजश्च शरीरमनु प्राविशन् ॥ २० ॥ (२३)

भा०—इसी प्राणादि के प्रवेश के बाद ही चोरी का भाव, दुष्टाचार की प्रवृत्ति, पाप कर्म, और सत्य, यज्ञ और बड़ा यश और बल, क्षत्र वीर्य और तेज भी शरीर मे प्रविष्ट होते हैं ।

भूतिश्च वा अभूतिश्च रातयोऽरातयश्च याः ।
क्षुधश्च सर्वास्तृष्णाश्च शरीरमनु प्राविशन् ॥ २१ ॥

समृद्धि या असमृद्धि, दान के भाव और जो कंजूसी या कृपणता के भाव हैं, और भूख तथा सब प्रकार की तृष्णाएं शरीर में प्रविष्ट हो जाती हैं।

निन्दाश्च वा अनिन्दाश्च यच्च हन्तेति नेति च ।
शरीरं श्रद्धा दक्षिणाश्रद्धा चानु प्राविशन् ॥ २२ ॥

भा०—समस्त निन्दाओं और अनिन्दाओं के भाव, और जो 'हां' या 'न' इस प्रकार के इच्छा और अनिच्छा के भाव हैं, धर्मकार्यों में श्रद्धा, दक्षिणा, उनके लिये पुरस्कार देने के विचार और उनके प्रति अश्रद्धा ये भी शरीर में प्रविष्ट होते हैं।

विद्याश्च वा अविद्याश्च यच्चान्य दुपदेश्यम् ।
शरीरं ब्रह्म प्राविशद् ऋचः सामाथो यजुः ॥ २३ ॥

भा०—समस्त विद्याएं और समस्त अविद्याएं अर्थात् कर्मजाल, और जो कुछ भी उपदेश करने योग्य है, और ऋग्वेद, सामवेद और यजुर्वेद और ब्रह्मवेद अर्थात् अथर्व-वेद ये सब इस पुरुष शरीर में प्रविष्ट हुए।

आनन्दा मोदाः प्रमुदोऽभीमोदमुदश्च ये ।
हसो नरिष्टा नृत्तानि शरीरमनु प्राविशन् ॥ २४ ॥
पूर्वार्ध. अथर्व० ११ । ९ । २९ ॥

भा०—समस्त आनन्द, समस्त हर्ष, समस्त विनोद और जो भी साक्षात् सुखों से उत्पन्न होने वाली खुशियां हैं वे और सब हंसियें, स्वच्छन्द चेष्टाएं, नृत्य विलास, ये सभी इस पुरुष शरीर में प्रविष्ट हो जाते हैं।

आलापाश्च प्रलापाश्चाभीलापलपश्च ये ।
शरीरं सर्वे प्राविशन्नायुजः प्रयुजो युजः ॥ २५ ॥

भा०—समस्त परस्पर के वार्त्तालाप, समस्त व्यर्थ बकवाद, और जो प्रत्यक्ष मे दूसरे की बातें सुनकर प्रत्युत्तर मे या देखा-देखी जो बातें कही जाती है, और समस्त आयोजनायें, समस्त प्रयोग और प्रयोजन, और समस्त योजनाएं विधान या परस्पर मेल-जोल या योग क्रियाएं ये सब शरीर मे प्रविष्ट हो जाते है।

प्राणापानौ चक्षुः श्रोत्रमक्षितिश्च क्षितिश्च या।
व्यानोदानौ वाङ्मनः शरीरेण त ईयन्ते ॥ २६ ॥

पूर्व पादत्रयम् अथर्व० ११ । ८ । ४ ॥

भा०—प्राण और अपान, चक्षु और श्रोत्र, शरीर का क्षय होना और स्थिर रहना, व्यान और उदान, वाणी और मन, ये सब शरीर के साथ साथ कार्य करते हैं।

आशिषश्च प्रशिषश्च संशिषो विशिषश्च याः।
चित्तानि सर्वे संकल्पाः शरीरमनु प्राविशन् ॥ २७ ॥

भा०—समस्त आशीर्वाद, अभिलषित फलो की आशाएं, और समस्त प्रशासन, अपने से छोटे और निम्न पुरुषों के प्रति आज्ञाएं, समान पुरुषों के प्रति अनुज्ञाएं और सम्मति, और अन्य नाना प्रकार की जो विशेष रूप से कही गई आज्ञाएं या मनोरथ है, समस्त चित्त अर्थात् विचार, और समस्त संकल्प विकल्प शरीर के भीतर प्रविष्ट होते है।

आस्तेयीश्च वास्तेयीश्च त्वरणाः कृपणाश्च याः।
गुह्याः शुक्रा स्थूला अपस्ता बीभत्सावसादयन् ॥ २८ ॥

भा०—'अस्ति' हृदय या मुख में विद्यमान रुधिर या थूक, और 'वस्ति' मूत्राशय मे जमा होने वाले मूत्र के जल, शरीर मे वेग से चलने वाले अथवा प्रवाह से बहने वाले, और जो मन्दगति अथवा तुच्छ स्वरूप से विद्यमान, गुप्त रूप से अंगो मे विद्यमान, वीर्य रूप मे विद्यमान, अब

रूप में पान करने योग्य समस्त प्रकार के जल वे सब इस सुबद्ध, सुघटित शरीर में रक्खे हुए हैं।

अस्थि कृत्वा समिधं तदृष्टापो असादयन् ।
रेतः कृत्वाज्यं देवाः पुरुषमाविशन् ॥ २९ ॥

भा०—आठों प्रकार के रस, 'आस्तेयी' आदि उस शरीर में हड्डियों की समिधा बनाकर प्राप्त होते हैं। और इस शरीर में रेतस् = वीर्य को 'आज्य' घृत बनाकर प्राण आदि देव इस पुरुष देह में प्रविष्ट हो गये।

या आपो याश्च देवता या विराड् ब्रह्मणा सह ।
शरीरं ब्रह्म प्राविशच्छरीरेऽधि प्रजापतिः ॥ ३० ॥

भा०—जो 'आप.' और जो अन्य देवता प्राण आदि, जो आत्मा की विशेष शक्ति ब्रह्म के साथ है तथा वह ब्रह्म शरीर में प्रविष्ट होते हैं। उसी शरीर में प्रजापति अर्थात् जीवात्मा अधिष्ठाता रूप से विद्यमान रहता है।

सूर्यश्चक्षुर्वातः प्राणं पुरुषस्य वि भेजिरे ।
अथास्येतरमात्मानं देवाः प्रायच्छन्नग्नये ॥ ३१ ॥

भा०—सूर्य उस पुरुष का चक्षुःस्वरूप होकर उसका अंग बन गया और वायु प्राण होकर उसका एक अंग हो गया। इस प्रकार सभी देवगण उस पुरुष के देह को बांट कर बैठ गये। उसके बाद इसके दूसरे शेष देह को देवगण ने जाठराग्नि के अधीन सौंप दिया।

तस्माद् वै विद्वान् पुरुषमिदं ब्रह्मेति मन्यते ।
सर्वा ह्यस्मिन् देवता गावो गोष्ठ इवासते ॥३२॥

भा०—इसी कारण ही अध्यात्म तत्व का ज्ञानी पुरुष इस पुरुष को ब्रह्म करके भी जानता है। क्योंकि समस्त देवगण, समस्त दिव्य शक्तियां, पृथिवी आदि तत्व इस पुरुष देह में उसी प्रकार आ विराजे हैं जिस प्रकार बाड़े में गौवें आ बैठती हैं।

प्रथमेन प्रमारेण त्रेधा विष्वङ् वि गच्छति ।
अद एकेन गच्छत्यद एकेन गच्छतीहैकेन नि षेवते ॥२३॥

भा०—प्रथम प्राण के छूट जाने पर पुरुष का सूक्ष्म लिङ्गशरीरवान् आत्मा तीन प्रकारों से नाना योनियों में जाता है । उस उत्तम लोक को एक प्रकार के उत्तम कर्म से प्राप्त होता है । उस नरक, तिर्यक् लोक को भी एक विशेष प्रकार के पाप कर्म से प्राप्त होता है, और इस मनुष्य लोक में एक विशेष प्रकार के कर्म से अपने कर्म फल भोगता है ।

अप्सु स्तीमासु वृद्धासु शरीरमन्तरा हितम् ।
तस्मिञ्छवोऽध्यन्तरा तस्माच्छवोऽध्युच्यते ॥ २४ ॥ (२४)

भा०—उन बढ़े हुए, आर्द्र अर्थात् गीला कर देने या सदा तरो ताज़ा रखने वाले जलों, रुधिरों के भीतर यह शरीर स्थित है । अर्थात् जलों व रुधिर पर शरीर का सदा जीवन स्थिर है । उसके भीतर बलस्वरूप आत्मा अधिष्ठाता रूप से रहता है । उसी कारण से वह महान् आत्मा को भी 'शव.' बलस्वरूप कहा जाता है ।

इति चतुर्थोऽनुवाकः ।

[तत्र सूक्तद्वयम्, एकषष्टिश्च ऋचः ।]

[९] महासेना संचालन और युद्ध ।

काकायन ऋषिः । मन्त्रोक्ता अर्बुदिर्देवता । १ सप्तपदा विराट् शक्करी त्र्यवसाना । ३ परोष्णिक् । ४ त्र्यवसाना उष्णिग्बृहतीगर्भा परा त्रिष्टुप् षट्पदातिजगती । ९, ११, १४, २३, २६ पथ्यापङ्क्तिः । १५, २२, २४-२५ त्र्यवसाना सप्तपदा शक्करी । १६ त्र्यवसाना पञ्चपदा विराडुपरिष्टाज्ज्योतिस्त्रिष्टुप् । १७ त्रिपदा गायत्री । २, ५-८, १०, १२, १३, १७-२१ अनुष्टुभः । षड्विंशर्चं सूक्तम् ॥

ये बाहवो या इषवो धन्वनां वीर्याणि च ।
असीन् परशूनायुधं चित्ताकूतं च यद्धृदि ।
सर्वं तदर्बुदे त्वममित्रेभ्यो दृशे कुरूदारांश्च प्र दर्शय ॥ १ ॥

भा०—हे मेघ के समान शत्रुओं पर अस्त्रों के वर्षण करने वाले, और लक्षों पुरुषों से बनी हुई सेना के अध्यक्ष ! तेरी जो शत्रुओं को रोकने वाली बाहुएं, जो बाण, और जो धनुर्धारियों के बल हैं उनको, और तलवारों, फरसों, नाना हथियारों को, और हृदय में जो चित्त के संकल्प हैं उस सबको, तू शत्रुओं को दिखलाने के लिए विशाल २ यन्त्रों या महास्त्रों को तय्यार कर और दिखला ।

उत्तिष्ठत सं नह्यध्वं मित्रा देवजना यूयम् ।
संदृष्टा गुप्ता वः सन्तु यो नो मित्राण्यर्बुदे ॥ २ ॥

भा०—हे मित्र राष्ट्र के नृपतियो ! और हे विद्वान् राजा लोगो ! तुम सब लोग उठ खड़े होओ, एक साथ बंध जाओ, संगठित हो जाओ, हे लक्षों सेनाओं के पति ! जो हमारे मित्र लोग हैं और जो तुम्हारे मित्र लोग हैं, वे सब भली प्रकार दृष्टिगोचर रहते हुए भी खूब सुरक्षित होकर रहें ।

उत्तिष्ठतमा रभेथामादानसंदानाभ्याम् ।
अमित्राणां सेना अभि धत्तमर्बुदे ॥ ३ ॥

भा०—हे अर्बुदे ! लक्ष सेनापते ! और न्यर्बुदे ! दश लक्ष सेनापते तुम दोनों उठो । आदान और संदान अर्थात् धर और पकड़ द्वारा अपना कार्य शुरू करो, शत्रुओं को पकड़ो । और इस प्रकार शत्रुओं की सेनाओं को बांध लो ।

अर्बुदिर्नाम यो देव ईशानश्च न्यर्बुदिः ।
याभ्यामन्तरिक्षमावृतमियं च पृथिवी मही ।
ताभ्यामिन्द्रमेदिभ्यामहं जितमन्वेमि सेनया ॥ ४ ॥

भा०—जो देव 'अर्बुदि' नाम वाला है वह मेघ के समान शत्रु पर शरों की वर्षा करता है, और दूसरा जो न्यर्बुदि है वह 'ईशान' अर्थात् विद्युत् के समान तीव्र प्रहार करने वाला है । जिन दोनों ने अन्तरिक्ष

और यह विशाल पृथिवी भी घेर रक्खी है। राजा के स्नेही उन दोनों के साथ मैं विजय से प्राप्त किये देश को सेना के बल से वश करता हूं।

उत्तिष्ठ त्वं देवजनार्बुदे सेनया सह।
भञ्जन्नमित्राणां सेनां भोगेभिः परि वारय ॥ ५ ॥

भा०—हे विजिगीषो ! अर्बुदे सेनानायक ! तू सेना के साथ उठ। शत्रुओं की सेना को तोड़ता फोड़ता हुआ सांप जिस प्रकार अपने फणों से घेर लेता है उसी प्रकार तू अपने सेना-व्यूहों से उनको घेर ले।

सप्त जातान् न्यर्बुद उदाराणां समीक्षयन्।
तेभिष्ट्वमाज्ये हुते सर्वैरुत्तिष्ठ सेनया ॥ ६ ॥

भा०—हे महासेनापते ! तू अपने विशाल, ऊपर उठने वाले या ऊपर से प्रहार करने वाले महायन्त्रों में से सात प्रकार के उत्पातों को दिखाता हुआ, अग्नि में घी पड़ चुकने पर जैसे अग्नि प्रचण्ड हो जाती है उसी प्रकार युद्ध की अग्नि के प्रचण्ड हो जाने पर उन सब महास्त्रों सहित अपनी सेना से उठ खड़ा हो।

अपनी सेना की आगे की दिशा में शत्रु है, उस दिशा को छोड़ शेष सातों दिशाओं में सात महास्त्रों की योजना करे और युद्ध छिड़ जाने पर सेना सहित महास्त्रों से लड़े।

प्रतिघ्नानाश्रुमुखी कृधुकर्णी च क्रोशतु।
विकेशी पुरुषे हते रदिते अर्बुदे तव ॥ ७ ॥

भा०—हे सेनानायक ! सांप जिस प्रकार थोड़ा सा दांत लगा कर ही पुरुष को मार देता है उसी प्रकार तेरे थोड़ासा भी प्रहार करके शरीर के क्षत विक्षत करने पर पुरुष के मर जाने पर, उसकी स्त्री अपनी छाती पीटती हुई, आंसुओं से मुंह धोती हुई, खुले कानों को लिये, अपने बाल खोले रोए, चिल्लाए।

संकर्षन्ती करूकरं मनसा पुत्रमिच्छन्ती।
पतिं भ्रातरमात्स्वान् रदिते अर्बुदे तव ॥ ८ ॥

भा०—हे सेनानायक ! सांप के समान तेरे डस लेने पर शत्रु की स्त्री, अपने हाथ पैर की हड्डियों को मचकाती हुई, अपने मन में पुत्र को चाहती हुई, पति, भाई और अपने अन्य बन्धुओं को भी चाहती हुई अर्थात् उनके नाम ले ले कर उनको याद करती हुई विलाप करे ।

अलिक्लवा जाष्कमदा गृध्राः श्येनाः पतत्रिणः ।
ध्वाङ्क्षाः शकुनयस्तृप्यन्त्वमित्रेषु समीक्षयन् रदिते अर्बुदे तव ॥९॥

भा०—हे अर्बुदे ! महानाग के समान तेरे डस लेने पर, भयानक बड़े बड़े पक्षी, बाज़ आदि शिकारी जानवर, गीध, उकाब आदि बड़े बड़े पंखों वाले पक्षी, और कौवे और शक्तिशाली पक्षी शत्रुओं के मांसों पर तृप्त हों, और तू अपना बल दिखलाता रह ।

अथो सर्वं श्वापदं मक्षिका तृप्यतु क्रिमिः ।
पौरुषेयेऽधि कुणपे रदिते अर्बुदे तव ॥१०॥ (२५)

भा०—हे महातीक्ष्ण सेनानायक ! नाग के समान तेरे डस लेने पर, और सब प्रकार के कुत्ते के समान पञ्जों वाले शेर, चीते, बघेरे आदि जंगली जानवर, मक्खियां और कीड़े मकोड़े भी मानुष मुर्दार पर अपना पेट भरकर तृप्त हों ।

आ गृह्णीतं सं बृहतं प्राणापानान् न्यर्बुदे ।
निवाशा घोषाः सं यन्त्वमित्रेषु समीक्षयन् रदिते अर्बुदे तव ॥११॥

भा०—हे प्रबल सेनानायक ! महानाग के समान तेरे डस लेने पर, और जब तू भय प्रदर्शन कराता हो तब शत्रुओं में चीखें और कोलाहल के शब्द होने लग जायं । हे अर्बुदे ! हे न्यर्बुदे ! तुम दोनों प्राणों और अपानों को पकड़ लो, और उनके शरीरों से निकाल लो ।

उद् वेपय सं विजन्तां भियामित्रान्त्सं सृज ।
उरुग्राहैर्बाह्वङ्कैर्विध्यामित्रान् न्यर्बुदे ॥ १२ ॥

भा०—हे सेनापते ! महानाग के समान भयानक तू शत्रुओं को कंपा दे । वे भय से मैदान छोड़ कर भाग जाय । उनको भय से युक्त

कर। और शत्रुओं को बडी पकड़ वाले बाहु के समान रूप वाले शस्त्रों से ताडन कर।

'ऊरुग्राहैर्बाहुवंकैः' इति सायणाभिमतः पाठः। अर्थात् जघाओं को पकडने या जकड़ने वाले और बाहुओ को बाधने वाले प्रयोगो से शत्रुओं को मार।

मुह्यन्त्वेषां बाहवश्चित्ताकूतं च यद्धृदि।
मैषामुच्छेषि किं चन रदिते अर्बुदे तव ॥ १३ ॥

भा०—हे सेनापते ! महानाग के समान महाभयकर तेरे काट लेने पर इनकी बाहुएं जकड जावें, जो हृदय मे चेतना और सकल्प विकल्प हैं वे भी मूढ हो जाय, इनका कुछ भी न बचा रहे।

प्रतिघ्नानाः सं धावन्तूरः पटूरावाघ्नानाः।
अघारिणीर्विकेश्यो रुदत्यः पुरुषे हते रदिते अर्बुदे तव ॥ १४ ॥

भा०—हे सेनापते ! महानाग के समान तेरे डस लेने पर शत्रु के मरे मुर्दे पर छाती को पीटती हुई, और जघाओ को दुहत्थड़ मार मार कर रोती हुई, अपने सम्बन्धी पुरुषो के वियोग से दुखी हो होकर, बाल खिलारती हुई, रोती पीटती हुई शत्रु स्त्रिया विलाप करें।

श्वन्वतीरप्सरसो रूपका उतार्बुदे।
अन्तः पात्रे रेरिहतीं रिशां दुर्णिहितैषिणीम् ॥
सर्वास्ता अर्बुदे त्वममित्रेभ्यो दृशे कुरूदारांश्च प्र दर्शय ॥१५॥

भा०—हे सेनापते ! तू शत्रुओं को दिखाने के लिये, नाना रूपों या व्यूहो वाली, कुत्तो के समान स्वामिभक्त आकाश तथा जल के युद्धो मे कुशल, शत्रुओ का हित न चाहने वाली, पात्रों में पड़ी शत्रुओं की भोजन सामग्री को खा जाने वाली, और शत्रु का नाश कर देने वाली सेना को तय्यार कर। इन सब सेनाओं और नाना प्रकार के महायन्त्रों द्वारा किये जाने योग्य उत्पातो को भी दिखला।

खड्डूरेऽधिचङ्क्रमां खर्विकां खर्ववासिनीम् ।
य उदारा अन्तर्हिता गन्धर्वाप्सरसश्च ये ।
सर्पा इतरजना रक्षांसि ॥ १६ ॥
चतुर्दंष्ट्रांछ्यावदतः कुम्भमुष्काँ असृङ्मुखान् ।
स्वभ्यसा ये चोद्भ्यसाः ॥ १७ ॥

भा०—आकाश में दूर तक जाने वाली, छोटे छोटे रूप वाली, विकृत शब्द करने वाली शस्त्रास्त्रशक्ति को दर्शा । जो ऊपर चमत्कारी पदार्थ भीतर छिपे हुए हों और जो गन्ध द्वारा हिंसा करने वाली और जल तथा आकाश में विचरने वाली सेनाएं हैं उनको नाग इतरजन आदि नीच भयंकर लोगों और राक्षक अर्थात् क्रूर लोगों को भी समय समय पर दर्शा । चार दाढ़ों के समान शत्रु को चबा जाने वाले, काले दांत वालों के समान भयंकर बड़े बड़े आकारों वाले, शत्रु का खून पीने वाले भयं-कर सैनिकों को दिखा जो कि स्वयं भयंकर हों और दूसरों में भय उत्पन्न करने में समर्थ हों ।

उद् वेपय त्वमर्बुदे मित्राणाममूः सिचः ।
जयांश्च जिष्णुश्चामित्राँ जयतामिन्द्रमेदिनौ ॥ १८ ॥

भा०—हे अर्बुदे ! तू शत्रुओं की उन दूर खड़ी सेना-पङ्क्तियों को कंपा दे । और इस प्रकार स्वयं विजय करने हारा विजिगीषु राजा शत्रुओं को विजय करे, और इन्द्र के मित्र अर्बुदि और न्यर्बुदि दोनों सेनापति भी विजय करें ।

प्रब्लीनो मृदितः शयां हतोऽमित्रो न्यर्बुदे ।
अग्निजिह्वा धूमशिखा जयन्तीर्यन्तु सेनया ॥ १९ ॥

भा०—हे न्यर्बुदे ! शत्रु चारों तरफ से घेरा जाय, कुचला जाय और मारा जाकर भूमि पर लेट जाय । आग की लपटों वाली और धूएं की चोटियों वाली सेनाएं विजय करती हुई आगे बढ़ें ।

तयार्बुदे प्रणुत्तानामिन्द्रो हन्तु वरंवरम् ।
अमित्राणां शचीपतिर्मामीषां मोचि कश्चन ॥२०॥ (२६)

भा०—हे सेनापते ! उक्त सेना के बल से पराजित हुए शत्रुओ में से बडे बडे, श्रेष्ठ पुरुष को सेनापति मरवा डाले । उन शत्रुओ मे से कोई भी बच न पावे ।

उत्कसन्तु हृदयान्यूर्ध्वः प्राण उदीषतु ।
शौष्कास्यमनु वर्ततामित्रान् मोत मित्रिणः ॥ २१ ॥

भा०—शत्रुओं के हृदय उखड जायं । ऊपरी प्राण शरीर को छोड़ कर निकल जाय । शत्रुओ का गला सूख सूख कर रह जाने का कष्ट हो। परन्तु यह कष्ट मित्रो को कभी न हो ।

ये च धीरा ये चाधीराः पराञ्चो बधिराश्च ये ।
तमसा ये च तूपरा अथो वस्ताभिवासिनः ।
सर्वांस्तां अर्बुदे त्वममित्रेभ्यो दृशे कुरूदारांश्च प्र दर्शय ॥२२॥

भा०—हे सेनापते ! जो बुद्धिमान् है, परन्तु समय समय पर जो अपने आप को मूर्ख रूप मे दर्शा सकते हो । जो शत्रुओ मे दूर दूर तक घुस जाने वाले है और वहा अपने बहरे रूप को दर्शाने वाले हैं, अन्धकार मे घुसकर जो अपने आपको वे भोले भाले दर्शाने वाले हैं, और जो भेड बकरो के समान बलबलाते है, उन सबको शत्रुओं को दिखाने के लिये तय्यार कर । और बडे बडे नाशक प्रयोग दिखला ।

अर्बुदिश्च त्रिषन्धिश्चामित्रान् नो वि विध्यताम् ।
यथैषामिन्द्र वृत्रहन् हनाम शचीपतेऽमित्राणां सहस्रशः ॥ २३ ॥

भा०—अर्बुदि और तीन सन्धियों वाले त्रिसधिनामक बाण या महाज्वाला सेनापति हमारे शत्रुओं पर ऐसा प्रहार करें कि जिससे हे घेर लेने वाले शत्रुओ के नाशक ! हे शक्तिपते ! सेनापते ! इन शत्रुओं को हम हजारो की संख्या में मारें ।

वनस्पतीन् वानस्पत्यानोषधीरुत वीरुधः ।
गन्धर्वाप्सरसः सर्पान् देवान् पुण्यजनान् पितॄन् ।
सर्वांस्ताँ अर्बुदे त्वममित्रेभ्यो दृशे कुरूदारांश्च प्र दर्शय ॥२४॥

भा०—वृक्षों और वृक्षों के बने नाना प्रकार के हथियारों को, ओषधियों और लताओं को, नवयुवकों, स्त्रियों, सांपो या गुप्तचरों, विजिगीषुओं, पुण्यात्मा पुरुषों और बुजुर्ग लोगो उन सबको हे सेनापते! तू अपने शत्रुओं को दिखलाने के लिये तय्यार कर, और बडे बड़े सहारकारी उपायों को दिखला ।

ईशां वो मरुतो देव आदित्यो ब्रह्मणस्पतिः ।
ईशां व इन्द्रश्चाग्निश्च धाता मित्रः प्रजापतिः ।
ईशां व ऋषयश्चक्रुरमित्रेषु समीक्षयन् रदिते अर्बुदे तव ॥ २५ ॥

भा०—हे सेनानायक! तुम्हारे शत्रुओं के हार जाने पर उन पर वायुओं के समान वेगवान् हमारे भट, सूर्य के समान प्रतापी हमारे पुरुष, तथा हमारे ब्रह्मज्ञानी शासन करें । इन्द्र रूप वाले, अग्नि रूप वाले, धाता अर्थात् सर्वपालक रूप वाले, सबके मित्र और शत्रु-प्रजा की भी पालना करने वाले पुरुष उन पर शासन करें । तुम्हारे शत्रुओं पर ऋषि अर्थात् मन्त्रद्रष्टा विद्वान् लोग शासन करें । तेरे आक्रमण कर लेने पर भी उनको भली प्रकार देखता हुआ तू शत्रु का नाश कर ।

तेषां सर्वेषामीशाना उत्तिष्ठत सं नह्यध्वं मित्रा देवजना यूयम् ।
इमं संग्रामं संजित्य यथालोकं वि तिष्ठध्वम् ॥ २६ ॥ (२७)

भा०—हे मित्र राजाओ! और हे विद्वान योद्धा जनो! तुम सब उक्त शत्रुपक्ष के उन सब बडे बडे ऐश्वर्यशील पुरुषों पर भी अपना प्रभुत्व जमाते हुए उठ खडे होओ, कमर कस के लडाई के लिये तैयार हो जाओ । इस संग्राम' को भली प्रकार जीत कर अपने अपने स्थान पर स्थिर हो ।

[१०] शत्रुसेना का विजय ।

भृग्वङ्गिरा ऋषिः । मन्त्रोक्तास्त्रिषन्धिर्देवता । १ विराट् पथ्याबृहती । २ त्र्यवसाना षट्पदा त्रिष्टुब्गर्भातिजगती । ३ विराड् आस्तार पङ्क्तिः । ४ विराट् । ५ विराट् त्रिष्टुप् । ६ पुरो विराट् पुरस्ताज्ज्योतिस्त्रिष्टुप् । १२ पञ्चपदा पथ्यापङ्क्तिः । १३ षट्पदा जगती । १६ त्र्यवसाना षट्पदा ककुम्मती अनुष्टुब्गर्भा शक्वरी । १७ पथ्यापङ्क्तिः । २१ त्रिपदा गायत्री । २२ विराट् पुरस्ताद् बृहती । २५ ककुप् । २६ प्रस्तारपङ्क्तिः । ६, ८, १०, ११, १४, १५, १८—२०, २३, २४, २७ अनुष्टुभः । सप्तविंशत्यृचं सूक्तम् ॥

उत्तिष्ठत सं नह्यध्वमुदाराः केतुभिः सह ।
सर्पा इतरजना रक्षांस्यमित्राननु धावत ॥ १ ॥

भा०—हे ऊपर से शत्रुओं पर शस्त्रों को वर्षण करने हारे वीर योद्धाओ ! आप लोग अपने अपने चिह्नों से युक्त झण्डों सहित उठ खड़े हो, और युद्ध के लिये कमर कस कर तैयार हो जाओ । हे सर्पो ! सर्प के समान विषैले शस्त्रों का प्रयोग करने वालो या शत्रु के छिद्रों में प्रवेश करने वाले पुरुषो ! हे इतर लोगो ! हे रक्षाकारी लोगो ! तुम सब लोग शत्रुओं पर चढ़ाई करो ।

ईशां वो वेद राज्यं त्रिषन्धे अरुणैः केतुभिः सह ।
ये अन्तरिक्षे ये दिवि पृथिव्यां ये च मानवाः ।
त्रिषन्धेस्ते चेतसि दुर्णामान उपासताम् ॥ २ ॥

भा०—हे त्रिसन्धि नामक अस्त्रके धारण करने वाले सेनापते ! लाल झण्डों सहित शक्तिशाली तुम लोगों के राज्य को, सामर्थ्य को मैं जानता हूं । अन्तरिक्ष, द्यौलोक और पृथिवी में भी जो मानव लोग हैं और जो दुष्ट नाम वाले, दुष्टस्वभाव वाले पुरुष हैं, वे सब तुम 'त्रिसन्धि' नामक महास्त्र के धारण करने वाले पुरुष के चित्त या इच्छा में रहें । तेरे अनुकूल रहें ।

अयोमुखाः सूचीमुखा अथो विकङ्कतीमुखाः ।
क्रव्यादो वातरंहस आ सजन्त्वमित्रान् वज्रेण त्रिषन्धिना ॥३॥

भा०—वज्र के समान तीक्ष्ण, त्रिसन्धि नामक बाण या अस्त्र के साथ, लोहे के समान कठोर मुख वाले, सूई के समान तीक्ष्ण चोंच वाले और कंघी के समान मुख वाले, शत्रु का मांस खाने वाले, वायु के समान वेगवान् बाण शत्रुओं को जा जा कर लगें।

अन्तर्धेहि जातवेद आदित्य कुणपं बहु ।
त्रिषन्धेरियं सेना सुहितास्तु मे वशे ॥ ४ ॥

भा०—हे विद्वन् ! अग्ने ! सेनापते ! हे सूर्य के समान शत्रुओं का तेज अपने भीतर लेने हारे ! तू बहुतसी लोथों को युद्ध के भीतर गिरा। त्रिसन्धि वज्र या तीन प्रकार के महास्त्र चलाने वालों की यह सेना मेरे वश में उत्तम रीति से व्यवस्थित होकर रहे।

उत्तिष्ठ त्वं देवजनार्बुदे सेनया सह ।
अयं बलिर्व आहुतस्त्रिषन्धेराहुतिः प्रिया ॥ ५ ॥

भा०—हे विजिगीषु सेनापते ! तू सेना के साथ तुम लोगों की यह बलि, युद्ध रूप अग्नि में डाली जाती है। त्रिषन्धि महास्त्र की सेना को इस प्रकार की आहुति अति प्रिय होती है।

शितिपदी सं द्यतु शरव्येऽयं चतुष्पदी ।
कृत्येऽमित्रेभ्यो भव त्रिषन्धेः सह सेनया ॥ ६ ॥

भा०—श्वेत चरणवाली यह बाणों की पंक्ति अर्थात् बाण-धारियों की फौज, चार पदों वाली चतुरंगिणी सेना होकर शत्रु का नाश करे। हे हिंसाकारिणि सेने ! तू त्रिसन्धिनामक अस्त्रधारी की सेना के साथ शत्रुओं के नाश के लिये हो।

धूमाक्षी सं पततु कृधुकर्णी च क्रोशतु ।
त्रिषन्धेः सेनया जिते अरुणाः सन्तु केतवः ॥ ७ ॥

भा०—शत्रु की सेना धूएं से पीड़ित चक्षु होकर भाग जाय, और यह छोटे कान करके अर्थात् कान दबा कर चीखे। त्रिसन्धि नामक महास्त्र के बल पर सेना द्वारा शत्रु के जीत लेने पर लाल झण्डे खड़े किये जायं।

अवायन्तां पक्षिणो ये वयांस्यन्तरिक्षे दिवि ये चरन्ति।
श्वापदो मक्षिकाः सं रभन्तामामादो गृध्राः कुणपे रदन्ताम् ॥८॥

भा०—जो अन्तरिक्ष मे तथा और भी ऊचे आकाश मे विचरते है वे पक्षी वा विमान भी नीचे आ उतरें। कुत्ते के पञ्जो वाले मांसाहारी पशु, मक्खियां, गीध मुर्दों पर अपने नखो और चोचो से प्रहार करें, उनको काटें, फाडें।

यामिन्द्रेण सन्धां समधत्था ब्रह्मणा च बृहस्पते।
तयाहमिन्द्र संधया सर्वान् देवानिह हुव इतो जयत मामुतः ॥९॥

भा०—हे वेद के विद्वान्! जिस सन्धि को राजा और ब्रह्म के ज्ञानी विद्वान् ब्राह्मण के साथ तू कर लेता है, राजा के साथ की हुई उस सन्धि के अनुसार मै सब करप्रद राजाओं को यहां बुलाता हू और आज्ञा देता हू कि इस इस दिशा मे विजय करो और अमुक अमुक दिशाओ मे विजय मत करो।

बृहस्पतिराङ्गिरस ऋषयो ब्रह्मसंशिताः।
असुरक्षयणं वधं त्रिषन्धिं दिव्याश्रयन् ॥ १० ॥ (२८)

भा०—अथर्ववेद का वेत्ता विद्वान्, और ब्रह्म अर्थात् वेद के स्वाध्याय मे सुशिक्षित ऋषिगण, असुरों के विनाशकारी त्रिसन्धि नामक हथियार को सूर्य या विद्युत् के आश्रय स्थापित करते हैं।

'त्रिसन्धि' नाम का अस्त्र सूर्य की किरणो से या विद्युत् से सम्बन्ध रखता प्रतीत होता है।

येनासौ गुप्त आदित्य उभाविन्द्रश्च तिष्ठतः।
त्रिषन्धिं देवा अभजन्तौजसे च बलाय च ॥ ११ ॥

भा०—जिस 'त्रिसन्धि' नामक महास्त्र से यह आदित्य सम तेजस्वी राजा सुरक्षित है, तथा राजा और सेनापति अपने अपने स्थान पर स्थिर रहते हैं, उस त्रिसन्धि नामक आयुध को, तेज और बल के कार्य के लिये विद्वान् लोग भी उसे अपनाते हैं।

सर्वांल्लोकान्त्समजयन् देवा आहुत्यानया।
बृहस्पतिराङ्गिरसो वज्रं यमसिञ्चतासुरक्षयणं वधम् ॥ १२ ॥

भा०—अथर्ववेद का विद्वान् जिस महाविद्युत् को असुरों के नाशकारी हथियार के रूप में निर्माण करता है, इस वज्र की आहुति से विद्वान् लोग समस्त लोकों को विजय करते हैं।

बृहस्पतिराङ्गिरसो वज्रं यमसिञ्चतासुरक्षयणं वधम्।
तेनाहममूं सेनां नि लिम्पामि बृहस्पतेऽमित्रान् हन्म्योजसा ॥१३॥

भा०—अथर्ववेद का विद्वान् असुरों के नाशकारी जिस हथियार के रूप में महाविद्युत् को बनाता है, उससे मैं उस सेना का विनाश करूं। हे वेदज्ञ विद्वन्! मैं उसके तेज और पराक्रम से शत्रुओं का विनाश करूं।

सर्वे देवा अत्यायन्ति ये अश्नन्ति वषट् कृतम्।
इमां जुषध्वमाहुतिमितो जयत मामुतः ॥ १४ ॥

भा०—जो राजगण यज्ञ के पवित्र अन्न भाग को खाते हैं वे सब शत्रुओं को अतिक्रमण करके हमारे पास आते हैं। हे राजगण! हमारी इस आहुति का सेवन करो, इधर से विजय करो, उस शत्रुपक्ष की तरफ से मत लड़ो।

सर्वे देवा अत्यायन्तु त्रिषन्धेराहुतिः प्रिया।
संधां महतीं रक्षत ययाग्रे असुरा जिताः ॥ १५ ॥

भा०—हे राजगण! आप सब लोग शत्रु का पक्ष त्याग कर हमारी ओर आ जाओ। त्रिसन्धि नाम अस्त्र को आहुति दी प्रिय है। जिस

सन्धि द्वारा असुरों का विजय किया जाता है उस महान् सन्धि को सुरक्षित रक्खो ।

वायुरमित्राणामिष्वग्राण्याञ्चतु ।
इन्द्र एषां बाहून् प्रति भनक्तु मा शकन् प्रतिधामिषुम् ।
आदित्य एषामस्त्रं वि नाशयतु चन्द्रमा युतामगतस्य पन्थाम् ॥१६॥

भा०—वायु से बना अस्त्र शत्रुओ के बाणों के अग्र भागों को आकर लगे । विद्युत् से साधित अस्त्र उन शत्रुओ की बाहुओं को तोड़ डाले, जिससे वे बाण को हम पर फेंकने के लिये धनुषों मे लगा भी न सकें । सूर्य से साधित अस्त्र इन शत्रुओं के अस्त्र को विनाश करदे । चन्द्रमा से साधित अस्त्र हमारे तक न पहुँचे हुए शत्रु के मार्ग को भ्रष्ट कर दे ।

यदि प्रेयुर्देवपुरा ब्रह्म वर्माणि चक्रिरे ।
तनूपानं परिपाणं कृण्वाना यदुपोचिरे सर्वं तदरसं कृधि ॥१७॥
अथर्व० ५ । ८ । ६ ॥

भा०—यदि शत्रु लोग वायु आदि तत्वो के विज्ञाताओं से परिपालित होकर हम पर आ चढ़ें, और वेद के विज्ञान के अनुसार ही अपनी रक्षा के साधन करते हैं, और यदि अपनी शरीर की रक्षा को, और सब प्रकार की रक्षा को करते हुए हम तक पहुचते हैं तो हे राजन् ! उस सब को भी तू निर्बल कर दे ।

क्रव्यादानुवर्तयन् मृत्युना च पुरोहितम् ।
त्रिषन्धे प्रेहि सेनया जयामित्रान् प्र पद्यस्व ॥ १८ ॥

भा०—हे त्रिसन्धे ! मृत्यु से मासखोरों को आगे से घेर कर और पीछे से घेर कर, सेना से शत्रु पर चढ़ाई कर, शत्रुओ तक पहुंच और उनको जीत ।

त्रिषन्धे तमसा त्वममित्रान् परि वारय ।
पृषदाज्यप्रणुत्तानां मामीषां मोचि कश्चन ॥ १९ ॥

भा०—हे त्रिसन्धे ! तू शत्रुओं को अन्धकार मे घेर ले। महान् पराक्रम से पराजित उन शत्रुओं में से कोई छूट कर भागने न पावे।

शितिपदी सं पतत्वमित्राणाममूः सिचः ।
मुह्यन्त्वद्यामूः सेना अमित्राणां न्यर्बुदे ॥२०॥ (२६)

भा०—श्वेत स्वरूप वाली विद्युत् शक्ति शत्रु के उन दूर स्थित सेना की पंक्तियों की तरफ वेग से जाय। हे न्यर्बुदे ! शीघ्र ही उन शत्रुओं की सेनाएं विमूढ हो जायं।

मूढा अमित्रा न्यर्बुदे जह्येषां वरंवरम् ।
अनया जहि सेनया ॥ २१ ॥

भा०—हे न्यर्बुदे ! शत्रु लोग जब चेतना रहित हो जायं तब उनके श्रेष्ठ श्रेष्ठ सेनापतियों को मार डाल और उनका इस सेना द्वारा विनाश कर।

यश्च कवची यश्चाकवचोऽमित्रो यश्चाज्मनि ।
ज्यापाशैः कवचपाशैरज्मनाभिहतः शयाम् ॥ २२ ॥

भा०—जो शत्रु कवच पहने है और जो कवच नहीं पहने हैं, और जो रथ पर सवार है वह भी, डोरियों के फासों और कवच के फासों से और रथ पाश से ही ताडित होकर या वध कर धरती पर लेट जाय।

ये वर्मिणो येऽवर्माणो अमित्रा ये च वर्मिणः ।
सर्वांस्ताँ अर्बुदे हताँछ्वानोऽदन्तु भूम्याम् ॥ २३ ॥

भा०—जो कवच पहने हैं और जो कवच नहीं पहने है, और जो शत्रु लोग कवच धारण किये हुये हैं उन सब मरे हुओं को हे सेनापते ! पृथिवी पर सियार, कुत्ते खावें।

ये रथिनो ये अरथा असादा ये च सादिनः ।
सर्वानदन्तु तान् हतान् गृध्राः श्येनाः पतत्रिणः ॥ २४ ॥

भा०—जो रथों पर सवार हैं और जो रथों पर सवार नहीं हैं, जो

घोडो पर सवार नहीं हैं, और जो घोडो पर सवार है, उन सब मरे हुओं को गीध-सेना, बाज और अन्यान्य चील, कौवे आदि पक्षी खावें ।

सहस्रकुणपा शेतामामित्री सेना समरे वधानाम् ।
विविद्धा ककजाकृता ॥ २५ ॥

भा०—हथियारों की लडाई में शत्रु-सेना हजारो लाशो वाली होकर और नाना प्रकार से ताडित हो होकर दुर्दशा से पीड़ित, बेहाल होकर पृथ्वी पर बिछ जाय ।

मर्माविधं रोरुवतं सुपर्णैरदन्तु दुश्चितं मृदितं शयानम् ।
य इमां प्रतीचीमाहुतिममित्रो नो युयुत्सति ॥ २६ ॥

भा०—जो शत्रु इस हमारी शत्रु के अभिमुख वेग से जाती युद्धाहुति के विरुद्ध लडना चाहता है, अति वेगवान् बाणों से मर्म अर्थात् शरीर के कोमल मर्मस्थानो पर ताडित हुए, रोते और कराहते, दुःख में पडे, कुटे पिटे, भूमि पर पडे उस शत्रु को कुत्ते, सियार, कौए और चील खावें ।

यां देवा अनुतिष्ठन्ति यस्या नास्ति विराधनम् ।
तयेन्द्रो हन्तु वृत्रहा वज्रेण त्रिषन्धिना ॥ २७ ॥ (३०)

भा०—जिस यज्ञाहुति का ज्ञानद्रष्टा पुरुष अनुष्ठान करते हैं, और जिसका विनाश चूक या विपरीतगमन नहीं होता, उससे और 'त्रिसन्धि' नाम वज्र से, शत्रुनाशक ऐश्वर्यवान् राजा अपने शत्रु का नाश करे । तीन प्रकार के सैन्यों का वर्ग = 'त्रिसन्धि' है ।

इति पञ्चमोऽनुवाकः ।

[तत्र सूक्तद्वयम्, ऋचः सप्त पञ्चाशत् ।]

इत्येकादशं काण्डं समाप्तम् ।

—— ——

॥ ओ३म् ॥

अथ द्वादशं काण्डम् ।

[१] पृथिवी सूक्त ।

अथर्वा ऋषिः । भूमिर्देवता । १ त्रिष्टुप् । २ भुरिक् । ४–६, १०, ३२ त्र्यवसानाः षट्पदा जगत्यः । ७ प्रस्तारपङ्क्तिः । ८, ११ त्र्यवसाने षट्पदे विराडष्टी । ९ परानुष्टुप् । १२, १३ त्र्यवसाने शक्वर्यौ । १५ पञ्चपदा शक्वरी । १४ महाबृहती । १६, २१ एकावसाने साम्नीत्रिष्टुभौ । १८ त्र्यवसाना षट्पदा त्रिष्टुबनुष्टुब्गर्भातिशक्वरी । १९ पुरोबृहती । २२ त्र्यवसाना षट्पदा विराड् अतिजगती । २३ पञ्चपदा विराड् जगती । २४ पञ्चपदानुष्टुब्गर्भा जगती । २५ सप्तपदा उष्णिग् अनुष्टुब्गर्भा शक्वरी । २६–२८ अनुष्टुभः । ३० विराड् गायत्री । ३२ पुरस्ताज्ज्योतिः । ३३, ३५, ३९, ४०, ५०, ५३, ५४, ५६, ५९, ६३ अनुष्टुभः । ३४ त्र्यवसाना षट्पदा त्रिष्टुप् बृहतीगर्भातिजगती । ३६ विपरीतपादलक्ष्मा पङ्क्तिः । ३७ पञ्चपदा व्यवसाना शक्वरी । ३८ त्र्यवसाना षट्पदा जगती । ४१ सप्तपदा ककुम्मती शक्वरी । ४२ स्वराडनुष्टुप् । ४३ विराड् आस्तारपङ्क्ति । ४४, ४५, ४९ जगत्यः । ४८ पुरोऽनुष्टुप् । ५० अनुष्टुप् । ५१ त्र्यवसाना षट्पदा अनुष्टुब्गर्भा ककुम्मती शक्वरी । ४७ षट्पदा विराड् अनुष्टुब्गर्भा परातिशक्वरी । ४८ पुरोऽनुष्टुप् । ५२ पञ्चपदाऽनुष्टुब्गर्भा परातिजगती । ५३ पुरोबृहती अनुष्टुप् । ५७, ५८ पुरस्ताद्बृहत्यौ । ६१ पुरोबार्हता । ६२ पराविराट् । १, ३, १३, १७, १९, २०, २९, ३१, ४६, ५५, ६० त्रिष्टुभः । त्रिषष्ट्यृचं सूक्तम् ॥

सत्यं बृहदृतमुग्रं दीक्षा तपो ब्रह्म यज्ञः पृथिवीं धारयन्ति ।
सा नो भूतस्य भव्यस्य पत्न्युरुं लोकं पृथिवी नः कृणोतु ॥ १ ॥

भा०—महान् सत्य, भयकारी सत्यव्यवस्था, कार्य करने का दृढ़ संकल्प, तपस्या, वेद का ज्ञान और यज्ञ ये पदार्थ समस्त पृथिवी को धारण करते हैं। वह पृथिवी हमारे गुजरे हुए कामों और आगे होने वाले कार्यों की स्वामिनी है। वह पृथिवी हमारे लिये विशाल स्थान प्रदान करे, जिसमें हम खूब रहें और फलें फूलें।

असंबाधं बध्यतो मानवानां यस्या उद्वतः प्रवतः समं बहु।
नानावीर्या ओषधीर्या बिभर्ति पृथिवी नः प्रथतां राध्यतां नः ॥२॥

भा०—मनुष्यों की बस्तियों के बीच में बिना एक दूसरे को पीड़ा दिये ही अर्थात् बे-आबाद पड़ी हुई जिस भूमि के ऊंचे और लम्बे चौड़े या नीचे बहुत से भाग हैं और बहुत सा भाग समान भी है, जो पृथिवी नाना प्रकार के वीर्यों वाली ओषधियों को धारण करती है, वह हमारे लिये विशाल रूप से प्राप्त हो, हमारी भूमि, सम्पत्ति खूब बढ़े और हमें खूब अन्न, फल आदि सम्पत्ति प्राप्त करावे।

यस्यां समुद्र उत सिन्धुरापो यस्यामन्नं कृष्टयः संबभूवुः।
यस्यामिदं जिन्वति प्राणदेजत् सा नो भूमिः पूर्वपेये दधातु ॥३॥

भा०—जिस भूमि पर समुद्र और बहने वाले नदी नाले और नाना प्रकार के जल हैं, और जिस पर अन्न और नाना खेतियां होती हैं, जिस पर यह जीता जागता, चलता फिरता संसार अन्न जल खा पीकर तृप्त होता और प्राण धारण करता है, वह भूमि हमें पूर्व पुरुषों से प्राप्त करने योग्य उत्तम पद पर स्थापित करे।

यस्याश्चतस्रः प्रदिशः पृथिव्या यस्यामन्नं कृष्टयः संबभूवुः।
या बिभर्ति बहुधा प्राणदेजत् सा नो भूमिर्गोष्वप्यन्ने दधातु ॥४॥

भा०—जिस पृथिवी के चारों ओर चार विशाल दिशाएं दूर तक फैली हैं, जिस पर मनुष्य लोग कृषि द्वारा अन्न उत्पन्न करते हैं, जो प्राण लेने हारे, जीते जागते और चलते फिरते चराचर संसार का बहुत

प्रकारों से पालन पोषण करती है, वह हमारी भूमि हमें गउओं और अन्नादि सम्पत्ति में धारण करे । हमें बहुत से पशु और बहुतसा अन्न दे ।

यस्यां पूर्वे पूर्वजना विचक्रिरे यस्यां देवा असुरानभ्यवर्तयन् ।
गवामश्वानां वयसश्च विष्ठा भगं वर्चः पृथिवी नो दधातु ॥५॥

भा०—जिस भूमि पर पूर्व काल के श्रेष्ठ पुरुष नाना प्रकार के विक्रम के कार्य किया करते हैं, और जिस पर दिव्य शक्तिसम्पन्नपराक्रमी पुरुष प्रजापीड़क असुरों का दमन करते हैं, और जो पृथिवी गौओं, घोड़ों और पक्षियों का विशेष रूप से रहने का स्थान है, वह भूमि हमें सौभाग्य और तेजःसम्पत्ति को प्रदान करे ।

विश्वंभरा वसुधानी प्रतिष्ठा हिरण्यवक्षा जगतो निवेशनी ।
वैश्वानरं बिभ्रती भूमिरग्निमिन्द्रऋषभा द्रविणे नो दधातु ॥६॥

भा०—समस्त विश्व का भरण पोषण करने वाली वह पृथिवी ही सब बहुमूल्य धन सम्पत्तियों का खजाना है । वह सब की प्रतिष्ठा, मान और यश को बढ़ाने वाली, सुवर्ण आदि धातुओं को अपनी कोख में धारण करने वाली, और समस्त संसार को अपने ऊपर बसाती है । वह सबको उत्पन्न करने वाली भूमि समस्त प्राणियों को, और उनके हितकारी अग्नि और उसके समान तापकारी राजा को धारण करती हुई, इन्द्र अर्थात् राजा को सर्वश्रेष्ठ रूप से अपने ऊपर शासक रूप से धारण करती हुई, हमें धन ऐश्वर्य में स्थापित करे ।

यां रक्षन्त्यस्वप्ना विश्वदानीं देवा भूमिं पृथिवीमप्रमादम् ।
सा नो मधु प्रियं दुहामथो उक्षतु वर्चसा ॥ ७ ॥

भा०—जिस धन अन्नादि के उत्पन्न करने वाली पृथिवी की, सदा सचेत राजा लोग बिना प्रमाद के रक्षा करते हैं वह हमें प्रिय मधु के समान मधुर, मनोहर अन्न आदि पदार्थ उत्पन्न करे, और हमें तेज और बल से पुष्ट करे ।

यार्णवेऽधि सलिलमग्र आसीद् यां मायाभिरन्वचरन् मनीषिणः ।
यस्या हृदयं परमे व्योमन्त्सत्येनावृतममृतं पृथिव्याः ।
सा नो भूमिस्त्विषिं बलं दधातूत्तमे ॥ ८ ॥

भा०—जो पृथिवी सृष्टि की उत्पत्ति के पूर्व महान् आकाश के भीतर द्रवस्वरूप थी और जिसको मननशील पुरुष अपनी नाना निर्माण शक्तियों द्वारा भोग रहे हैं। जिस पृथिवी के निवासियों के हृदय परम रक्षक परमात्मा मे लगे हुए और सत्य भावनाओ से घिरे हुए हैं, वह भूमि हमारे उत्तम राष्ट्र मे तेज और बल धारण करावे ।

यस्यामापः परिचराः समानीरहोरात्रे अप्रमादं क्षरन्ति ।
सा नो भूमिर्भूरिधारा पयो दुहामथो उक्षतु वर्चसा ॥ ९ ॥

भा०—जिस पृथिवी पर जल लोक सेवा में लगे परिचारकों के समान भाव से दिन रात प्रमाद शून्य होकर बहते हैं, वह भूमि बहुतसी जल-धाराओ से युक्त हमें पुष्टिकारक जल और अन्न आदि पदार्थ अधिक मात्रा मे उत्पन्न करे, और तेज और धन से हमे सींचे, तेजस्वी बनावे ।

यामश्विनावमिमातां विष्णुर्यस्यां विचक्रमे ।
इन्द्रो यां चक्र आत्मनेऽनमित्रां शचीपतिः ।
सा नो भूमिर्वि सृजतां माता पुत्राय मे पयः ॥ १० ॥ (१)

भा०—जिसको दिन और रात्रि, सूर्य और चन्द्र दोनो मानो मापा करते हैं। और व्यापक परमात्मा जिसमें नाना प्रकार की सृष्टि उत्पन्न करता है। और शक्ति और सेना का स्वामी ऐश्वर्य-वान् राजा जिसको अपने लिये शत्रु से रहित करता है, वह भूमि माता जिस प्रकार पुत्र के लिये स्वयं प्रेम से दूध पिलाती है उसी प्रकार मुझ पुत्र के लिये अपना जल, अन्न-रस आदि नाना पुष्टिकारक पदार्थ प्रदान करे ।

गिरयस्ते पर्वता हिमवन्तोऽरण्यं ते पृथिवि स्योनमस्तु ।
बभ्रुं कृष्णां रोहिणीं विश्वरूपां ध्रुवां भूमिं पृथिवीमिन्द्रगुप्ताम् ।
अजीतोऽहतो अक्षतोऽध्यष्ठां पृथिवीमहम् ॥ ११ ॥

भा०—हे पृथिवी। तेरे पहाड़ और हिमों से ढके हुए बड़े बड़े पर्वत, और तेरा जंगल सुखकारी हो। मैं स्वयं किसी से पराजित न होकर, किसी से न मारा जाकर, किसी से जख्मी न होकर स्वस्थ रह कर, सदा सब को भरण पोषण करने वाली, किसानों से जोती गयी, नाना अन्न वनस्पतियों से सम्पन्न, नाना प्रकार के समस्त प्राणियों से सम्पन्न, राजा से सुरक्षित अथवा इन्द्र, मेघ से सुरक्षित, स्थिर, सर्वोत्पादक पृथिवी पर अधिष्ठाता होकर शासन करूं, उस पर सुख से रहूं।

यत् ते मध्यं पृथिवि यच्च नभ्यं यास्त ऊर्जस्तन्वः संबभूवुः।
तासु नो धेह्यभि नः पवस्व माता भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्याः।
पर्जन्यः पिता स उ नः पिपर्तु ॥ १२ ॥

भा०—हे पृथिवि। जो तेरा मध्य भाग है, और जो तेरा नाभि भाग है, और जो अन्न आदि बलकारक पदार्थ तेरे शरीर से उत्पन्न होते हैं, हमें उन में प्रतिष्ठित कर, हमें पवित्र कर। तू सब की उत्पादक होने के कारण मेरी माता है। और मैं पृथिवी का पुत्र हूं। समस्त रसों का प्रदान करने वाला मेघ सबका पालक 'पिता' है, वह ही हमारा पालन करे।

यस्यां वेदिं परिगृह्णन्ति भूम्यां यस्यां यज्ञं तन्वते विश्वकर्माणः।
यस्यां मीयन्ते स्वरवः पृथिव्यामूर्ध्वाः शुक्रा आहुत्याः पुरस्तात्
सा नो भूमिर्वर्धयद् वर्धमाना ॥ १३ ॥

भा०—जिस भूमि पर विश्वकर्मा, शिल्पी लोग वेदि बनाते हैं, और वे ही विद्वान् शिल्पी लोग जिस पर उपकारकारी यज्ञ रचते हैं, और जिस पृथ्वी पर आहुति के पूर्व ही ऊंचे ऊंचे दीप्तिमान् यज्ञयूप रचे जाते हैं, वह भूमि स्वयं बढ़ती हुई हमें बढ़ावे।

यो नो द्वेषत् पृथिवि यः पृतन्याद् योऽभिदासान्मनसा यो वधेन।
तं नो भूमे रन्धय पूर्वकृत्वरि ॥ १४ ॥

भा०—हे पृथिवी ! हम से जो द्वेष करता है, प्रेम से वर्ताव नहीं करता है, और जो हम पर सेना से चढ़ाई करता है, और जो अपने मन से या विचारो से और हथियारो से हमारा नाश करता है, हे भूमे ! पूर्व से ही शत्रुओं के नाश करने योग्य बनाई हुई भूमि ! तू उस पुरुष को हमारे वशीभूत कर ।

त्वज्जातास्त्वयि चरन्ति मर्त्यास्त्वं बिभर्षि द्विपदस्त्वं चतुष्पदः ।
तवेमे पृथिवि पञ्च मानवा येभ्यो ज्योतिरमृतं मर्त्येभ्य
उद्यन्त्सूर्यो रश्मिभिरातनोति ॥ १५ ॥

भा०—हे पृथिवि ! तुझ से उत्पन्न हुए मरने हारे प्राणी तुझ पर ही विचरते हैं। तू ही दोपायो और चौपायो को पालती पोषती है। हे पृथिवि ! ये पांचो प्रकार के मनुष्य लोग भी तेरे ही हैं, जिनके लिये उदय होता हुआ सूर्य अपनी किरणो से अमृतमय प्रकाश को फैलाता है।

ता नः प्रजाः सं दुह्रतां समग्रा ।
वाचो मधु पृथिवि धेहि मह्यम् ॥ १६ ॥

भा०—वे समस्त प्रजाएं हमें सब प्रकार से पूर्ण करें, अपने अपने परिश्रमों और शिल्पों द्वारा बढ़ावें। हे पृथिवि ! तू मुझे वाणी की मधुरता प्रदान कर।

विश्वस्वं मातरमोषधीनां ध्रुवां भूमिं पृथिवीं धर्मणा धृताम् ।
शिवां स्योनामनु चरेम विश्वहा ॥ १७ ॥

भा०—समस्त धनो को धारण और उत्पन्न करने वाली, ओषधियों को उत्पन्न करने वाली, स्थिर, धर्म द्वारा परिपालित, कल्याणकारिणी, सुखकारिणी, सबको उत्पन्न करने हारी पृथिवी में हम सदा और सब प्रदेशों में सब प्रकारों से नित्य विचरण करें।

महत् सुधस्थं महती बभूविथ महान् वेग एजथुर्वेपथुष्टे ।
महांस्त्वेन्द्रो रक्षत्यप्रमादम् । सा नो भूमे प्र रोचय
हिरण्यस्येव संदृशि मा नो द्विक्षत कश्चन ॥ १८ ॥

भा०—हे पृथिवि ! एकत्र होने के लिये तू एक बड़ा भारी भवन है । तू बहुत ही बड़ी है । तेरा वेग भी बहुत बड़ा है । तेरा कम्पन भी बड़ा भारी होता है, तेरा संचलन भी बहुत बड़ा है । बड़ा भारी राजाधिराज, ऐश्वर्यवान् परमात्मा तेरी विना प्रमाद के रक्षा करता है । हे सर्वोत्पादक पृथिवि ! वह तू हमें तेजस्वी बना जैसे कि सुवर्ण अपने निज रूप में तेजस्वी प्रतीत होता है । हममें कोई भी द्वेष न करे ।

अग्निर्भूम्यामोषधीष्वग्निमापो बिभ्रत्यग्निरश्मसु ।
अग्निरन्तः पुरुषेषु गोष्वश्वेष्वग्नयः ॥ १९ ॥

भा०—अग्नि भूमि के ऊपर अधिष्ठाता रूप से विद्यमान है । वह ओषधियों में विद्यमान है । जल अग्नि को धारण करते हैं । अग्नि पत्थरों के भीतर भी विद्यमान है, पुरुषों के भीतर अग्नि है । नाना रूप की अग्नि गौओं, बैलों और घोड़ों तक में विद्यमान है ।

अग्निर्दिव आ तपत्यग्नेर्देवस्योर्व१न्तरिक्षम् ।
अग्निं मर्तास इन्धते हव्यवाहं घृतप्रियम् ॥ २० ॥ (२)

भा०—आकाश से भी अग्नि रूप सूर्य तपता है । प्रकाशमान अग्नि के वश में ही विशाल अन्तरिक्ष है । मनुष्य भी हव्य को सर्वत्र पहुंचा देने वाले और घृत आदि ज्वलनशील पदार्थों के प्रिय अग्नि को ही यज्ञों में प्रदीप्त करते हैं ।

अग्निवासाः पृथिव्यसितज्ञूस्त्विषीमन्तं संशितं मा कृणोतु ॥२१॥

भा०—अग्नि से बाहर भीतर और सर्वत्र आच्छादित पृथिवी, उस बन्धन रहित, व्यापक परमेश्वर रूप अग्नि को जतलाने वाली है । वह मुझको दीप्तिमान् और तेजस्वी करे ।

भूम्यां देवेभ्यो ददति यज्ञं हव्यमरंकृतम् ।
भूम्यां मनुष्या जीवन्ति स्वधयान्नेन मर्त्याः ।
सा नो भूमिः प्राणमायुर्दधातु जरदष्टिं मा पृथिवी कृणोतु ॥२२॥

भा०—मनुष्य भूमि पर सुन्दर सुशोभित हव्यो और पूजा आदि सत्कारों को देव सदृश विद्वानो के प्रति प्रदान करते हैं। और तब मरण-धर्मा मनुष्य लोग भूमि पर ही स्वधारूप अन्न से प्राण धारण करते हैं। वह भूमि हमें प्राण और आयु प्रदान करे। मुझे पृथिवी वृद्धावस्था तक दीर्घजीवी करे।

यस्ते गन्धः पृथिवि संबभूव यं बिभ्रत्योषधयो यमापः।
यं गन्धर्वा अप्सरसश्च भेजिरे तेन मा सुरभिं कृणु
मा नो द्विक्षत कश्चन ॥ २३ ॥

भा०—हे पृथिवि! तुझ मे जो गंध सर्वत्र विशेष गुणरूप से विद्यमान है, जिसको प्रत्यक्षरूप से ओषधियां और जिसको नाना प्रकार के जल और द्रव पदार्थ भी धारण करते हैं, जिसको पुरुष और स्त्रियां सेवन करती हैं, उस गन्ध से मुझको सुगन्धित कर, और हमें कोई भी द्वेष न करे।

यस्ते गन्धः पुष्करमाविवेश यं संजभ्रुः सूर्याया विवाहे।
अमर्त्याः पृथिवि गन्धमग्रे तेन मा सुरभिं कृणु
मा नो द्विक्षत कश्चन ॥ २४ ॥

भा०—जो तेरा गन्ध नील कमल में प्रविष्ट है, जिस गन्ध को सूर्या अर्थात् वरवर्णिनी कन्या के विवाह मे या प्रातः उषा के प्राप्त होने के अवसर पर अमरण धर्मा, विद्वान् पुरुष या वायु आदि दिव्य पदार्थ भी सबसे पूर्व धारण करते हैं, हे पृथिवि! उससे मुझे भी सुगन्धित कर, और हम से कोई द्वेष न करे।

यस्ते गन्धः पुरुषेषु स्त्रीषु पुंसु भगो रुचिः।
यो अश्वेषु वीरेषु यो मृगेषूत हस्तिषु।
कन्यायां वर्चो यद् भूमे तेनास्मा अपि सं सृज
मा नो द्विक्षत कश्चन ॥ २५ ॥

भा०—हे सबके उत्पत्ति स्थान ! पृथिवि ! तेरा जो गन्ध पुरुषों और स्त्रियों में विद्यमान है, और जो तेरा गन्ध नरों में सौभाग्यमय मनोहर कान्तिरूप से विद्यमान है, जो अश्वों में, वीर्यवान् पुरुषों में, जो मृगों में, और जो हाथियों में है, जो तेज कुमारी कन्या में विद्यमान है, उस गन्ध और कान्ति से हमें भी युक्त कर। हमसे कोई द्वेष न करे।

शिला भूमिरश्मा पांसुः सा भूमिः संधृता धृता।
तस्यै हिरण्यवक्षसे पृथिव्या अकरं नमः ॥ २६ ॥

भा०—शिला आदि पदार्थ भूमि ही है। पत्थर और धूलि यह भी भूमि ही है। ये सब पदार्थ उस भूमि ने भली प्रकार धारण किये है, इसी से वे यहां स्थिरता से पड़े है। सुवर्णादि धातुओं को अपने गर्भ में धारण करने वाली उस पृथिवी को हम नमस्कार करते है।

यस्यां वृक्षा वानस्पत्या ध्रुवास्तिष्ठन्ति विश्वहा।
पृथिवीं विश्वधायसं धृतामच्छा वदामसि ॥ २७ ॥

भा०—जिसमें वृक्ष और नाना प्रकार की वनस्पतियां सदा स्थिर रूप से विराजती है, समस्त पदार्थों और समस्त जगत् को धारण करने हारी उस स्थिर पृथिवी की हम स्तुति करते है।

उदीराणा उतासीनास्तिष्ठन्तः प्रक्रामन्तः।
पद्भ्यां दक्षिणसव्याभ्यां मा व्यथिष्महि भूम्याम् ॥ २८ ॥

भा०—हम लोग उठते हुए और बैठे हुए, खड़े हुए और चलते फिरते, दायें और बायें पैरों से भूमि पर कभी कष्ट अनुभव न करें।

विमृग्वरीं पृथिवीमा वदामि क्षमां भूमिं ब्रह्मणा वावृधानाम्।
ऊर्जं पुष्टं बिभ्रतीमन्नभागं घृतं त्वाभि नि षीदेम भूमे ॥ २९ ॥

भा०—मैं नाना प्रकार से पवित्र करने वाली, सब कुछ सहन करने वाली, वेदज्ञान के जानने वाले ब्राह्मणों और विद्वानों से निरन्तर बढ़ने हारी, सर्वोत्पादक पृथिवी की सर्वत्र स्तुति करता हूं। बलकारी, पुष्टि-

कारी अन्न के अंश को और घी, दूध आदि पदार्थों को धारण करने वाली तुझ पर हे भूमि ! हम निवास करें ।

शुद्धा न आपस्तन्वे क्षरन्तु यो नः सेदुरप्रिये तं नि दध्मः ।
पवित्रेण पृथिवि मोत् पुनामि ॥ ३० ॥ (३)

भा०—हमारे शरीर के लिये शुद्ध जल बहे । जो हमें कष्ट देने वाले कार्य हैं उन्हें अप्रिय जान कर त्याग दें । हे पृथिवि ! मैं अपने आपको शुद्ध आचरण से पवित्र करूं ।

यास्ते प्राचीः प्रदिशो या उदीचीर्यास्ते भूमे अधराद् याश्च पश्चात्
स्योनास्ता मह्यं चरते भवन्तु मा नि पप्तं भुवने शिश्रियाणः॥३१॥

भा०—हे पृथिवि ! जो तेरे प्रदेश पूर्व दिशा में विद्यमान हैं, जो प्रदेश उत्तर दिशा में, जो प्रदेश तेरे नीचे हैं और जो प्रदेश पश्चिम दिशा में है, वे सब प्रदेश, विचरण करने हारे मुझे सुखकारी हों । मैं इस लोक में आश्रय पाकर कभी नीच न बनूं ।

मा नः पश्चान्मा पुरस्तान्नुदिष्ठा मोत्तरादधरादुत ।
स्वस्ति भूमे नो भव मा विदन् परिपन्थिनो
वरीयो यावया वधम् ॥ ३२ ॥

भा०—हे भूमे ! तू हमें पीछे से, आगे से, कभी मत प्रहार कर । ऊपर से और नीचे से भी प्रहार मत कर । हमारे लिये तू कल्याणकारी हो । हमें लुटेरे, डाकू और चोर लोग न पकड़ पावें । बड़े हत्याकारी हथियारों को भी तू दूर कर ।

यावत् तेऽभि विपश्यामि भूमे सूर्येण मेदिना ।
तावन्मे चक्षुर्मा मेष्टोत्तरामुत्तरां समाम् ॥ ३३ ॥

भा०—हे पृथिवि ! मित्रभूत सूर्य की सहायता से जब तक तेरे विविध रूपों को मैं साक्षात् देखता रहूं तब तक मेरी आंखें ज्यों ज्यों वर्ष गुजरते जाय, त्यों त्यों कभी विनष्ट न हों । अभिप्राय यह है कि स्वाभा-

विक सूर्य प्रकाश के सेवन से तथा प्रकृति के नाना रूपों के साथ चक्षु का सम्बन्ध बनाए रखने से दृष्टि-शक्ति खराब नहीं होने पाती ।

यच्छयानः पर्यावर्ते दक्षिणं सव्यमभि भूमे पार्श्वम् ।
उत्तानास्त्वा प्रतीचीं यत् पृष्ठीभिरधिशेमहे ।
मा हिंसीस्तत्र नो भूमे सर्वस्य प्रतिशीवरि ॥ ३४ ॥

भा०—हे भूमे ! जब मैं सोता हुआ दायें से बायें और बायें से दायें पासे करवट लूं, और जब हम तुझको अपने नीचे किये हुये स्वयं उत्तान हुए पीठ के मोहरों के बल पर सोते हैं तब हे सब को अपने ऊपर सुलाने वाली ! हमें तू कभी मत मार ।

यत् ते भूमे विखनामि क्षिप्रं तदपि रोहतु ।
मा ते मर्म विमृग्वरि मा ते हृदयमर्पिपम् ॥ ३५ ॥

भा०—हे भूमि ! तुझ से जो ओषधि आदि पदार्थ मैं नाना प्रकार से खोद लूं वह भी शीघ्र ही पुनः उग आवे । हे विशेष रूप से शुद्ध पवित्र करने हारी ! मैं तेरे मर्मस्थानों को और हृदय को कभी पीडित और विनाश न करूं । ओषधि आदि खोदते समय सदा ध्यान रक्खें कि पृथ्वी के मर्म अर्थात् जिनमें पृथ्वी के ओषधि पोषक अंश हों और हृदय जिनमें उनके रसप्रद अंश हो उनको नष्ट न करें, नहीं तो भूमि अनुपजाऊ और बंजर हो जाती है ।

ग्रीष्मस्ते भूमे वर्षाणि शरद्धेमन्तः शिशिरो वसन्तः ।
ऋतवस्ते विहिता हायनीरहोरात्रे पृथिवि नो दुहाताम् ॥ ३६ ॥

भा०—हे भूमे ! तेरे निमित्त या तेरे द्वारा ही ग्रीष्म ऋतु, वर्षाएं, शरत्, हेमन्त, शिशिर और वसन्त ये ऋतुएं परमात्मा ने बनाई हैं । इसी प्रकार तेरे द्वारा या तेरे निमित्त वर्ष तथा दिन और रात बने हैं । वे सब हमें अभिलषित सुख और सुखकारी पदार्थ प्रदान करें ।

याप॑ स॒र्पं वि॒जमा॑ना वि॒मृग्व॑री॒ यस्या॒मास॑न्न॒ग्नयो॒ ये अ॒प्स्व॒१॒॑न्तः
परा॒ दस्यू॒न् दद॑ती देवपी॒यूनिन्द्रं॑ वृणा॒ना पृ॑थि॒वी न वृ॒त्रम् ।
शक्रा॑य दध्रे वृष॒भाय॒ वृष्णे॑ ॥ ३७ ॥

भा०—जो सर्प के समान कुटिल पुरुष से भय खाती हुई शुद्ध पवित्र करने हारी पृथिवी है, जिसमें ज्ञानज्योति से चमकने वाले तेजस्वी विद्वान्, जलों के भीतर रहने वाले और्वानलों के समान, प्रजाओं के भीतर विद्यमान हैं, वह पृथ्वी श्रेष्ठ पुरुषों के नाशक दस्यु चोर डाकू पुरुषों को दूर करती, उनका परित्याग करती हुई, सूर्य के समान ऐश्वर्य-शाली राजा को अपने पति रूप से वरण करती है, और मेघ के समान केवल माया के आवरण करने वाले दुष्ट पुरुष को अपना पति नहीं वरती। वह अपने आपको शक्ति-शाली, वीर्यवान् और प्रजा के प्रति सुखों के वर्षक राजा के लिये धारण करती है, अपने को उसके प्रति सौंप देती है।

यस्यां॒ सदो॑हविर्धा॒ने यूपो॒ यस्यां॑ निमी॒यते॑ ।
ब्र॒ह्मा॒णो यस्या॒मर्च॑न्त्यृ॒ग्भिः साम्ना॑ यजु॒र्विदः॑ ।
यु॒ज्यन्ते॒ यस्या॑मृ॒त्विजः॒ सोम॒मिन्द्रा॑य॒ पात॑वे ॥ ३८ ॥

भा०—जिस पृथिवी पर यज्ञ में 'सद' नामक मण्डप और 'हवि-र्धान' नामक सोम-शकट या सोमपात्र बनाये जाते हैं। जिसमें यज्ञ का स्तम्भ 'यूप' गाड़ा जाता है। जिसमें यजुर्वेद के वेत्ता यजुर्मन्त्रों से, अथर्ववेद के वेत्ता अथर्ववेद के मन्त्रों से, तथा ऋग्वेद के वेत्ता ऋचाओं से और सामवेद के वेत्ता सामगानों से इष्टदेव की स्तुति करते हैं। जिस पृथ्वी पर ऋतु-अनुकूल यज्ञ करने हारे ऋत्विग् लोग राजा, यजमान एवं आत्मा को सोम पान कराने के लिये एकत्र होते, और समाहित होकर आध्यात्म यज्ञ करते हैं।

यस्या॒ पूर्वे॑ भूत॒कृत॒ ऋष॑यो॒ गा उदा॑नृ॒चुः ।
स॒प्त स॒त्रेण॑ वे॒धसो॑ य॒ज्ञेन॒ तप॑सा स॒ह ॥ ३९ ॥

भा०—जिस भूमि पर समस्त तत्वों के साक्षात्कार करने वाले सात विधाता अर्थात् विधि का निर्माण करने वाले मन्त्रद्रष्टा ऋषिगण यज्ञ, सत्र और तप के साथ सम्पन्न होकर वेद वाणियों का उच्चारण करते हैं।

सा नो भूमिरा दिशतु यद्धनं कामयामहे ।
भगो अनुप्रयुङ्क्तामिन्द्र एतु पुरोगवः ॥ ४० ॥ (४)

भा०—वह भूमि जिस धन की हम कामना करें उसे हमें प्रदान करे । ऐश्वर्यवान्, परमात्मा हमें सदा सहायता करें और परमेश्वर ही हमारे सब कार्यों में अग्रगामी होकर रहे ।

यस्यां गायन्ति नृत्यन्ति भूम्यां मर्त्या व्यैलबाः ।
युध्यन्ते यस्यामाक्रन्दो यस्यां वदति दुन्दुभिः ।
सा नो भूमिः प्र णुदतां सपत्नानसपत्नं मा पृथिवी कृणोतु ॥४१॥

भा०—जिस भूमि पर मरण धर्मा मनुष्य नाना प्रकार के शब्द करते हुए गाते नाचते और युद्ध करते हैं, और जिस पर अति शब्द-कारी नगाडा बजता है, वह भूमि हमारे शत्रुओं को परे करे और पृथिवी मुझको शत्रु रहित करे ।

यस्यामन्नं व्रीहियवौ यस्या इमाः पञ्च कृष्टयः ।
भूम्यै पर्जन्यपत्न्यै नमोऽस्तु वर्षमेदसे ॥ ४२ ॥

भा०—जिस पर अन्न धान्य और जौ जाति के अन्न उत्पन्न होते हैं, और जिससे ये पाच इन्द्रिय शक्तियों से सम्पन्न मनुष्य उत्पन्न होते हैं, पर्जन्य द्वारा सींची जाने वाली तथा वर्षा के जल से परिपूर्ण उस भूमि को सदा हमारा नमस्कार हो ।

यस्याः पुरो देवकृताः क्षेत्रे यस्या विकुर्वते ।
प्रजापतिः पृथिवीं विश्वगर्भामाशामाशां रण्यां नः कृणोतु ॥४३॥

भा०—जिसकी पीठ पर शिल्पी या राजाओं के बनवाए बड़े बड़े नगर और कोट गढे हैं । और जिसके खेतों में लोग नाना प्रकार की

खेतिया करते हैं, समस्त विश्व को अपने गर्भ में धारण करने वाली इस पृथ्वी को, हमारे लिये, प्रजा का पालक परमात्मा प्रत्येक दिशा में रमणीय बनावे।

निधिं बिभ्र॑ती बहुधा गुहा वसु॑ म॒णिं हिर॑ण्यं पृथि॒वी द॑दातु मे।
वसू॑नि नो वसु॒दा रास॑माना दे॒वी द॑धातु सु॒मन॒स्यमा॑ना ॥ ४४ ॥

भा०—छिपी खानों के भीतर बहुत प्रकार के बहुमूल्य पदार्थों के खजाने को धारण करती हुई पृथिवी मुझे मणि, वैदूर्य, वैक्रान्त आदि और सुवर्ण आदि बहुमूल्य धातु रूप धन प्रदान करे। वह धनों को देने वाली पृथिवी नाना प्रकार के धन ऐश्वर्यों को प्रदान करती हुई शुभ चित्त होकर हमें पुष्ट करे।

जनं॒ बिभ्र॑ती बहुधा विवा॑चसं॒ नाना॑धर्माणं पृथि॒वी य॑थौक॒सम्।
स॒हस्रं॒ धारा॑ द्रवि॑णस्य मे दुहां ध्रु॒वेव॑ धे॒नुर॑नपस्फुरन्ती ॥ ४५ ॥

भा०—विविध वाणियें या विविध भाषाएं बोलने वाले नाना धर्म के पालक जनसमूह को उनके देश या निवासस्थान के अनुसार बहुत से भिन्न भिन्न प्रकारों से पालन करती हुई पृथिवी, गौ के समान निश्चल बिना छट-पटाहट किये धन ऐश्वर्य की हजारों धाराएं प्रदान करे।

यस्ते॑ स॒र्पो वृश्चि॑कस्तृ॒ष्टद॑ंश्मा हे॒मन्त॑जब्धो भृम॒लो गुहा॒ शये॑।
क्रिमि॒र्जिन्व॑त् पृथिवि॒ यद्य॒देज॑ति प्रा॒वृषि॒ तन्नः॒ सर्प॒-
न्मोप॑ सृप॒द् यच्छि॒वं तेन॑ नो मृड ॥ ४६ ॥

भा०—हे पृथिवि! जो तेरा बिच्छू, तीखे काटने वाले सांप जाति के जीव, और जो हेमन्त काल के शीत से पीडित होकर भौंरे जाति के जीव, भीतर छिपी खोहों में सोया करते हैं और कीड़े मकोड़े आदि जो भी वर्षा काल में पुन वर्षा जल से तृप्त या प्राणित होकर चलते हैं, वे सब रेंगते हुए हम तक न रेंग आवें। जो सुखकारी पदार्थ हों उनसे हमें सुखी कर।

ये ते पन्थानो बहवो जनायना रथस्य वर्त्मानसश्च यातवे ।
यैः संचरन्त्युभये भद्रपापास्तं पन्थानं जयेमानमित्रमतस्करं यच्छिवं तेन नो मृड ॥ ४७ ॥

भा०—हे पृथिवि ! जो तेरे बहुत सारे मनुष्यों के जाने के रास्ते हैं, और रथों के और गाड़ों के जाने के लिये रास्ते हैं, जिनसे भले और बुरे दोनों प्रकार के लोग बराबर चला करते हैं, उस मार्ग को हम लोग विजय करें, जिससे वह शत्रु रहित और चोर डाकू रहित हो जाय । हे पृथिवि ! जो मङ्गल हो उससे हमें सुखी कर ।

मल्वं बिभ्रती गुरुभृद् भद्रपापस्य निधनं तितिक्षुः ।
वराहेण पृथिवी संविदाना सूकराय वि जिहीते मृगाय ॥ ४८ ॥

भा०—तुच्छ पदार्थ को जैसे धारण करती है उसी प्रकार भारी पदार्थ पर्वत आदि को भी उठाती हुई यह पृथिवी, भले और बुरे सबके देह को या मृत मुर्दे को स्वयं सहन करती है । यह पृथिवी मेघ आदि कोषों समेत उत्तम किरणों वाले तथा शोधन करने वाले सूर्य के प्रति गति कर रही है ।

ये त आरण्याः पशवो मृगा वने हिताः सिंहा व्याघ्राः पुरुषादश्चरन्ति ।
उलं वृकं पृथिवि दुच्छुनामित ऋक्षीकां रक्षो अप बाधयास्मत् ॥४९॥

भा०—हे पृथिवि ! तेरे जो जंगली पशु, और वन में पालित पोषित मृग, हाथी आदि और मनुष्यों को भी खा जाने वाले सिंह, बाघ आदि विचरते हैं, उनको और सियार, भेड़िये दुःखदायी ऋच्छ जाति और अन्य कष्टदायी राक्षस स्वभाव के जन्तुओं को यहां से और हम से दूर रख ।

ये गन्धर्वा अप्सरसो ये चारायाः किमीदिनः ।
पिशाचान्त्सर्वा रक्षांसि तानस्मद् भूमे यावय ॥ ५० ॥ (५)

भा०—जो गन्ध के पीछे चलने वाले विलासी लोग और विलासिनी स्त्रियां और जो निर्धन, निकम्मे या दूसरों के जान माल को तुच्छ समझने

वाले हैं उनको और मांसभक्षी लोगो और राक्षस वृत्ति वाले सब लोगों को हे भूमे ! हम से दूर कर

यां द्विपादः पक्षिणः सपतन्ति हंसाः सुपर्णाः शकुना वयांसि ।
यस्यां वातो मातरिश्वेयते रजांसि कृण्वंश्च्यावयंश्च वृक्षान् ।
वातस्य प्रवामुप वामनु वात्यर्चिः ॥ ५१ ॥

भा०—जिस पृथिवी पर दो पैर वाले हंस, सुन्दर पंखो से युक्त शक्तिशाली गरुड आदि पक्षी उड़ते हैं, और जिसमें बड़े वेग से चलने वाला प्रचण्ड वायु धूलिया उड़ाता हुआ और बड़े बड़े वृक्षों को गिराता हुआ चलता है, और जहा प्रचण्ड वायु के निरन्तर बहने के साथ साथ आग की ज्वाला या लू भी बहा करती है ।

यस्यां कृष्णमरुणं च संहिते अहोरात्रे विहिते भूम्यामधि ।
वर्षेण भूमिः पृथिवी वृतावृता सा नो दधातु भद्रया प्रिये धामनिधामनि ॥ ५२ ॥

भा०—जिस भूमि पर काली रात्रि का अन्धकार, और लाल सूर्य का प्रकाश, और दिन तथा रात दोनों परस्पर मिले हुए, सदा एक दूसरे के पीछे लगे हुए सुसम्बद्ध रहते हैं । वह विशाल पृथिवी वर्षा के जल से ढकी हुई, कल्याण और सुखकारिणी लक्ष्मी से सम्पन्न या घिरी हुई, प्रिय मनोहर प्रत्येक देश मे हमें सब प्रकार से धारण पोषण करे ।

द्यौश्च म इदं पृथिवी चान्तरिक्षं च मे व्यचः ।
अग्निः सूर्य आपो मेधां विश्वे देवाश्च सं ददुः ॥ ५३ ॥

भा०—द्युलोक, पृथिवी और अन्तरिक्ष ये तीनों विशाल विस्तृत प्रदेश मेरे ही फलने फूलने और समृद्ध होने के लिये हैं । अग्नि, सूर्य, जल और जगत् की समस्त दिव्य शक्तियां मुझे उक्त तीनों विशाल प्रदेशों को वश करने के लिये बुद्धि प्रदान करें ।

अहमस्मि सहमान उत्तरो नाम भूम्याम् ।
अभीषाडस्मि विश्वाषाडाशामाशां विषासहिः ॥ ५४ ॥

भा०—मैं ही भूमि पर सब पदार्थों को वश करने वाला, इन सब तिर्यग् पशुओं से ऊंचा, सबको नमाने में समर्थ हूं। मैं चारो ओर विजय करने वाला हूं। और मैं सर्व विजयी प्रत्येक अपने मनोरथ या प्रत्येक दिशा को विशेष रूप से विजय कर अपने वश करूं।

अदो यद् देवि प्रथमाना पुरस्ताद् देवैरुक्ता व्यसर्पो महित्वम्।
आ त्वा सुभूतमविशत् तदानीमकल्पयथाः प्रदिशश्चतस्रः ॥५५॥

भा०—हे पृथिवि! जब तूने इस प्रकार का अवर्णनीय अपना विशाल स्वरूप विविध प्रकार से विस्तृत किया, तब सबसे पूर्व विद्वान् लोगों ने तुझ विस्तृत पृथिवी का वर्णन किया। तुझमें उत्पन्न होने हारे उत्तम पदार्थ सब ओर से प्रविष्ट है। उन उत्तम पदार्थों के प्रवेश से तूने चारों महा-दिशाओं को सामर्थ्यवान् बनाया है।

ये ग्रामा यदरण्यं याः सभा अधि भूम्याम्।
ये संग्रामाः समितयस्तेषु चारु वदेम ते ॥ ५६ ॥

पूर्वार्धः यजु० ३ । ४५ प्र० द्वि० ॥

भा०—हे पृथिवि! जो ग्राम हैं, जो जंगल है, और भूमि पर जो सभाएं और जो संग्राम, युद्धस्थान और समितियें हैं उनमें हम तेरा उत्तम यशोगान करें।

अश्वं इव रजो दुधुवे वि तान् जनान् य आक्षियन् पृथिवीं यादजायत
मन्द्राग्रेत्वरी भुवनस्य गोपा वनस्पतीनां गृभिरोषधीनाम् ॥५७॥

भा०—अश्व जिस प्रकार अपने शरीर को कपाकर धूल को झाड फेंकता है उसी प्रकार जो लोग पृथिवी पर आकर बसे उनको यह पृथिवी झाड फेंकती रही है जब से कि यह पृथिवी उत्पन्न हुई है। यह पृथिवी सदा प्रसन्न करनेहारी, आगे आगे शीघ्रता से चलने वाली, समस्त उत्पन्न होने वाले पदार्थों की रक्षा करनेहारी, वनस्पतियों और ओषधियों को अपने भीतर ग्रहण करने वाली है।

यद् वदामि मधुमत् तद् वदामि यदीक्षे तद् वनन्ति मा ।
त्विषीमानस्मि जूतिमानवान्यान् हन्मि दोधतः ॥ ५८ ॥

भा०—जब बोलूं तब मधु से भरा वचन बोलूं । जब देखूं तब मुझे लोग प्रेम से देखें । मैं स्वयं तेजस्वी और उत्साही रहूं, और मेरे प्रति द्रोह करनेहारे अन्यों को मैं नीचे गिरा मारूं ।

शन्तिवा सुरभिः स्योना कीलालोध्नी पयस्वती ।
भूमिरधि ब्रवीतु मे पृथिवी पयसा सह ॥ ५९ ॥

भा०—शांतिसम्पन्न, उत्तम गन्ध से युक्त, सुखकारिणी, अमृतमय रस को गाय की तरह से अपने थनों में बराबर धारण करने वाली, क्षीर, अन्न आदि पुष्टिकारक पदार्थों से सम्पन्न, पृथिवी अपने समस्त पुष्टिकारक पदार्थों सहित मुझे आशीर्वाद करे ।

यामन्वैच्छद्धविषा विश्वकर्मान्तरर्णवे रजसि प्रविष्टाम् ।
भुजिष्यं पात्रं निहितं गुहा यदाविर्भोगे अभवन्मातृमद्भ्यः ॥६०॥

भा०—महान् समुद्र और धूलि या मट्टी से बनी जिस पृथिवी को समस्त जगत् को बनाने वाला परमेश्वर सृष्टि के निमित्त अपने सृष्टि उत्पन्न करने के लिये उपयुक्त जानकर उसे सृष्टि के लिये चुनता है । वह भूमि इस महान् आकाश में वस्तुतः भोग करने योग्य अन्नादि से सुसज्जित पात्र के समान रक्खी है, जो पृथिवी को अपनी माता के समान मानने वाले उसके पुत्रों के लिये उन पदार्थों के भोग के अवसर पर साक्षात् रूप से प्रकट होती है ।

त्वमस्यावपनी जनानामदितिः कामदुघा पप्रथाना ।
यत् त ऊनं तत् त आ पूरयाति प्रजापतिः प्रथमजा ऋतस्य ॥६१॥

भा०—हे पृथिवि ! तू मनुष्यों और प्राणियों के सब ओर बीज वपन करने और उनको उत्पन्न करने के लिये क्षेत्र के समान है । तू अक्षय और विशाल है । प्राणियों की समस्त कामनाओं को पूरने वाली है । उस

वर्त्तमान संसार के भी पूर्व विद्यमान प्रजा का पालक परमेश्वर जो तेरे में कमी आ जाती है। तेरी उस कमी को भी सब प्रकार से पूर्ण कर देता है।

उपस्थास्ते अनमीवा अयक्ष्मा अस्मभ्यं सन्तु पृथिवि प्रसूताः ।
दीर्घं न आयुः प्रतिबुध्यमाना वयं तुभ्यं बलिहृतः स्याम ॥६२॥

भा०—हे पृथिवि ! हमारी उत्पन्न सन्तानें तेरी गोद में रहकर सदा रोग रहित, तपेदिक आदि से रहित सुखी हृष्ट पुष्ट होकर रहें। हमारी आयु बड़ी लम्बी है ऐसे समझते हुए हम तेरी रक्षा के लिये भेट पूजा या कर देने वाले रहें।

भूमे मातर्नि धेहि मा भद्रया सुप्रतिष्ठितम् ।
संविदाना दिवा कवे श्रियां मा धेहि भूत्याम् ॥ ६३ ॥ (६)

भा०—हे भूमे ! हे मातः ! मुझे कल्याण और सुखकारिणी लक्ष्मी से उत्तम रीति से प्रतिष्ठित कर। हे कवियों और विद्वानों वाली पृथिवी तू द्यौलोक या प्रकाशमान सूर्य से सुसंगत होकर मुझे श्री, लक्ष्मी और धन सम्पत्ति, विभूति में स्थापित कर।

इति प्रथमोऽनुवाकः ।

[तत्रैक सूक्तं, ऋचश्च त्रिषष्टिः]

[२] क्रव्यात् अग्नि का वर्णन, दुष्टों का दमन और राजा के कर्त्तव्य।

भृगुर्ऋषिः । अग्निरुत मन्त्रोक्ताः देवताः । २१—३३ मृत्युः । २, ५, १२—२०, ३४—३६, ३८—४१, ४३, ५१, ५४ अनुष्टुभः । [१६ ककुम्मती पराबृहती अनुष्टुप् । १८ निचृद् अनुष्टुप्, ४० पुरस्तात् ककुम्मती] । ३ आस्तारपंक्तिः । ६ भुरिग आर्षी पंक्तिः । ७, ४५ जगती । ८, ४८, ४९ भुरिग अनुष्टुब्गर्भा विपरीत पादलक्ष्मा पंक्तिः । ३७ पुरस्ताद् बृहती । ४२ त्रिपदा एकावसाना भुरिगार्ची गायत्री । ४४ एकावसाना द्विपदा आर्ची बृहती । ४६ एकावसाना द्विपदा

साम्नी त्रिष्टुप् । ४७ पञ्चपदा बार्हतवैराजगर्भा जगती । ५० उपरिष्टाद् विराड् बृहती । ५२ पुरस्ताद् विराड्बृहती । ५२ बृहतीगर्भा विराट् । १, ४, १०, ११, २१, ३३, ५३ त्रिष्टुभः । पञ्चपञ्चाशदृच सूक्तम् ॥

नडमा रोह न ते अत्र लोक इदं सीसं भागधेयं त एहि ।
यो गोषु यक्ष्मः पुरुषेषु यक्ष्मस्तेन त्वं साकमधराङ् परेहि ॥ १ ॥

भा०—हे कच्चा मांस खाने वाले अग्नि के समान संतापकारी जन्तु ! तू नड़के बने वाण का शिकार हो । इस जीव-लोक में तेरे रहने की जगह नहीं है । यह सीसे की बनी घातक गोली आदि तेरा भाग्य है । तू आ, तुझे मारूं । जो गौओं पर पीड़ाकारी और पुरुषों पर रोग के समान आक्रमण करने वाला है उसके साथ ही तू भी नीचे गिर कर दूर भाग जा ।

कच्चा मांस खाने वाले, गौओं और पुरुषों पर आक्रमण करने वाले, शेर आदि हिंसक और दुष्ट जन्तुओं को वाण या नलकाल द्वारा सीसे की गोली से मारना चाहिये ।

अघशंसदुःशंसाभ्यां करेणानुकरेण च ।
यक्ष्मं च सर्वं तेनेतो मृत्युं च निरजामसि ॥ २ ॥

भा०—पापी या हत्याकारी और दुष्ट-कार्य करने वालों के साक्षात् कर्त्ता को, और उसके सहायक लोगों तथा उनके द्वारा उत्पन्न समस्त प्रजापीड़न के कारणों को पूर्व मन्त्र में उक्त उपाय से दूर करें, और उसी उपाय से मृत्यु को भी अपने राष्ट्र से हम निकाल दें ।

निरितो मृत्युं निर्ऋतिं निररातिमजामसि ।
यो नो द्वेष्टि तमद्ध्यग्ने अक्रव्याद्
यमु द्विष्मस्तमु ते प्र सुवामसि ॥ ३ ॥

भा०—इस राष्ट्र से मृत्युभय को हम सर्वथा दूर करदें । और प्रजा की पीड़ा और भय को भी सर्वथा दूर करें । प्रजा के शत्रु, जो

क्रव्यादमग्निमिषितो हरामि जनान् दृंहन्तं वज्रेण मृत्युम् ।
नि तं शास्मि गार्हपत्येन विद्वान् पितॄणां लोकेऽपि भागो अस्तु ॥९॥

भा०—मैं दृढ़ इच्छा शक्ति से सम्पन्न पुरुष, मनुष्यों का कठोर वज्र द्वारा विनाश करते हुए मांसभक्षी सन्तापजनक जन को दूर करता हूं । मैं ज्ञानी उस मृत्युकारक क्रव्याद् अग्नि का, गार्हपत्य अग्नि प्रतिनिधि भूत राजा के कर्त्तव्य से मैं शासन करता हूं, दमन करता हूं । इसका भाग्य पालक अधिकारियों के न्यायालय में हो ।

क्रव्यादमग्निं शशमानमुक्थ्यं प्र हिणोमि पथिभिः पितृयाणैः ।
मा देवयानैः पुनरा गा अत्रैवैधि पितृषु जागृहि त्वम् ॥१०॥ (७)

भा०—दुष्ट पुरुष को वेद की आज्ञानुसार 'पितृयाण' अर्थात् शासकों के बनाये नियमों के अनुकूल दूर करदें । उसे फिर राजमार्गों में न आने दें । और वह शासकों के बीच अपना जीवन बितावे ।

समिन्धते संकसुकं स्वस्तये शुद्धा भवन्तः शुचयः पावकाः ।
जहाति रिप्रमत्येन एति समिद्धो अग्निः सुपुना पुनाति ॥११॥

भा०—शुद्ध चित्त वाले, अन्यों को भी पाप से शुद्ध करने वाले, स्वयं शुद्ध रहते हुए विद्वान लोग, संसार के कल्याण के लिये, उत्तम शासक को उज्ज्वल अग्नि के समान खूब प्रदीप्त करते हैं । उसमें पड़कर अपराधी अपने पाप कर्म को छोड़ देता है, और अपने दुष्ट पाप से ऊपर उठ जाता है । और खूब प्रदीप्त अग्नि के समान दुष्टों का संताप-कारक राजा उत्तम रीति से पवित्र करने वाला होकर पापी को पवित्र कर देता है ।

देवो अग्निः संकसुको दिवस्पृष्ठान्यारुहत् ।
मुच्यमानो निरेणसोऽमोगस्माँ अशस्त्याः ॥ १२ ॥

भा०—अच्छी प्रकार प्रदीप्त या शासन करने द्वारा परमात्मा, जो कि अग्नि के समान दुष्टों का सन्तापक है द्यौलोक में स्थित समस्त

लोकों में व्यापक है। वही हम सबको पापों से सर्वथा मुक्त करता हुआ निन्दा योग्य बुरी प्रवृत्ति से मुक्त करे।

अस्मिन् व॒यं सं॑क॒सुके॑ अ॒ग्नौ रि॒प्राणि॑ मृज्महे।
अभू॑म य॒ज्ञियाः॑ शु॒द्धाः प्र ण॒ आयूं॑षि तारिषत् ॥ १३ ॥

भा०—अति प्रदीप्त, सर्वोपरि शासक इस महान्, कालाग्नि रूप परमात्मा में ही हम अपने पापों, मलों को जला कर शुद्ध करते हैं। और हे परमात्मन्! आपके संसर्ग से हम जीव बन्धन-मुक्त होकर आप पूजनीय देव की पूजा और संग लाभ करने के योग्य शुद्ध पवित्र हो जाते हैं। हमारे जीवनों को आप तराओ, सफल करो।

सं॑क॒सुको॒ वि॑क॒सुको॑ निर्ऋ॒थो यश्च॑ निस्व॒रः।
ते ते॒ यक्ष्मं॒ सवे॑दसो दू॒राद् दू॒रम॑नीनशन् ॥ १४ ॥

भा०—'संकसुक' अर्थात् अतिदीप्त सम्राट्, विशेष रूप से प्रकाशमान विराट् और पीडा को सर्वथा नाश करने वाला, और अन्यों को उपताप या पीडा न देने वाला ये चारों तेजस्वी पुरुष, समान ज्ञान और ऐश्वर्य से सम्पन्न होकर, प्रजा के पीडक यक्ष्मा आदि रोगों को दूर से दूर ही नाश करें।

यो नो॒ अश्वे॑षु वी॒रेषु॒ यो नो॒ गोष्व॑जा॒विषु॑।
क्र॒व्यादं॒ निर्णु॑दामसि॒ यो अ॒ग्निर्ज॑न॒योप॑नः ॥ १५ ॥

भा०—जो हमारे घोड़ों में, पुत्रों और वीर सैनिकों में, और जो हमारे गौओं, बकरियों और भेड़ों में, जन्तुओं का नाशक अग्नि के समान तापकारी जन्तु या रोग है, उस मांस खाने वाले को सदा हम दूर करें।

अ॒न्येभ्य॑स्त्वा॒ पुरु॑षेभ्यो॒ गोभ्यो॒ अश्वे॑भ्यस्त्वा।
निः क्र॒व्यादं॑ नुदामसि॒ यो अ॒ग्निर्जी॑वि॒तयोप॑नः ॥ १६ ॥

भा०—हे मांस खाने वाले! तू जो अग्नि के समान तापकारी होकर

जीवन का नाशकारी है, जीवों के मांस को खाने वाले तुझको, पुरुषों और गौओं और घोड़ों की रक्षा के लिये, इस राष्ट्र से परे हम निकालते हैं।

ईश्वर अग्नि का वर्णन

यस्मि॑न् दे॒वा अमृ॑जत॒ यस्मि॑न् मनु॒ष्या॑ उ॒त ।
तस्मि॑न् घृत॒स्तावो॑ मृ॒ष्ट्वा त्वम॑ग्ने॒ दिवं॑ रुह ॥ १७ ॥

भा०—जिसमें आश्रय पाकर विद्वान् आत्म-ज्ञानी पुरुष शुद्ध हो जाते हैं, और जिसके आश्रय मे आकर मनुष्य भी पवित्र हो जाते हैं, उस परमपद परमेश्वर में आश्रय पाकर अमृतरूप परमात्मा की स्तुति करता हुआ तू अपने पापों से पवित्र होकर और ज्ञानवान् होकर उस प्रकाशमय मोक्षलोक में चढ़ जा।

समि॑द्धो अग्न आहुत॒ स नो॒ माभ्यप॑क्रमीः ।
अत्रै॒व दी॑दिहि द्य॒वि ज्योक् च॒ सूर्यं॑ दृ॒शे ॥ १८ ॥

भा०—हे परम पूजनीय परमात्मन्! तू वह परम स्वरूप, अत्यन्त दीप्त, तेजोमय है। तू हमें छोड़ कर मत जा। तू प्रकाशमान यज्ञाग्नि के समान हमारे इस अंतःकरण में प्रकाशित हो, जिससे हम भी चिर-काल तक, आकाश में सर्वप्रकाशक सूर्य के समान प्रकाशमान तुझ सूर्य का, अपने अन्तःकरण में दर्शन करते रहें।

सीसे॑ मृड्ढ्वं न॒डे मृ॑ड्ढ्वम॒ग्नौ सं॑कसु॒के च॒ यत् ।
अथो॒ अव्यां॑ रा॒मायां॑ शी॒र्षक्ति॑मुप॒बर्ह॑णे ॥ १९ ॥

भा०—सीसे में जिस प्रकार चांदी आदि धातु का मल रह जाता है और धातु निखर आती है उसी प्रकार अपनी आत्मा को उस ज्ञानमय अग्नि में तपाओ और शुद्ध करो, मल छूट जायगा और आत्मा शुद्ध हो जायगा। जिस प्रकार नड़ों या सरकण्डों की बनाई चालनी में से जल निकालने से मल ऊपर अटक जाता है उसी प्रकार उस परमेश्वर की बनी

छाननी में से गुजार कर अपने को शुद्ध करो। सर्वनाशक सर्व भस्मकारी अग्नि में जल फेंकने से सब जल जाता है और स्थान शुद्ध हो जाता है, या सर्व प्रकाशक राजा के हाथ में अपराधी को देने से उसके अपराध दूर हो जाते हैं या क्रव्याद-अग्नि में शव को डालने से जैसे मलिन भाग जल जाता है, उसी प्रकार सर्व प्रकाशक परमात्मा में अपने आपको शुद्ध करो। और जिस प्रकार शिर की पीडा होने पर शिर को सिरहाने पर आराम से रख देने पर रोगी शिरोरोग से मुक्त होकर सुख से सोता है, उसी प्रकार तुम सर्व रमणकारिणी 'परम दिव्या' सब की रक्षा करने हारी उस परमात्मशक्ति पर अपने को अर्पित करो और सब के बढ़ाने-हारे उस ब्रह्म में आश्रय लेकर, अपने सब कष्टों को वहीं धर कर सुखी हो जाओ।

इस मन्त्र में केवल उपमान शब्दों का संग्रह करके उपमा का प्रयोग किया है। और लुप्त उपमेय के सम्बन्ध में उपदेश किया है। जैसे 'सीसम्'—सर्व बन्धनों का काटने वाला, 'नडः'—सर्वोपदेष्टा, इत्यादि।

मानवधर्म सूत्र में—सीसेन मलिम्लुचामहे शिरोर्त्तिमुपबर्हणे।

क्रव्याद रामया मृष्ट्वा अस्तं मेत सुदानवः॥

अर्थ—जिस प्रकार सीसे से धातु के मल को दूर करते हैं, सिरहाने पर सिरके दर्द को अच्छा करते है, और जिस प्रकार भेड़ देकर हम 'क्रव्याद्' भेड़िये आदि को अपने से दूर करते हैं, उसी प्रकार क्रव्यात् अग्नि को नगर से बाहर छोडकर अपने अपने घर जावो। सीसे से धातु के मल शोधन होने का प्रकार न्यारिया, सुनार आदि के द्वारा जानना चाहिये।

सीसे मलं सादयित्वा शीर्षक्तिमुपबर्हणे।
अव्यामसिक्न्यां मृष्ट्वा शुद्धा भवत यज्ञियाः॥ २०॥ (२)

भा०—हे यज्ञमय परमात्मा की उपासना करने हारे विद्वान् पुरुषो! जिस प्रकार न्यारिया सीसा में धातु के मल को गाल कर शुद्ध कर

लेता है, और जिस प्रकार शिर-रोगी शिर के भारीपन के रोग को सिर-हाने पर रखकर सुखी हो जाता है, उसी प्रकार आप लोग असीम रक्षकशक्ति के आश्रय में पाप मल को धोकर शुद्ध हो जाओ।

परं मृत्यो अनु परेहि पन्थां यस्ते एष इतरो देवयानात्।
चक्षुष्मते शृण्वते ते ब्रवीमीहेमे वीरा बहवो भवन्तु ॥ २१ ॥

ऋ० १०।१८।१ ॥ यजु० ३५।७ ॥

भा०—हे मृत्यो! मुमुक्षुओं के ब्रह्मज्ञानमार्ग से अतिरिक्त जो तेरा वह 'पितृयाण' का मार्ग है उस मार्ग को ही तू प्राप्त रह। हे मुमुक्षु! दिव्य आंख वाले और दिव्य श्रोत्र वाले तुझको मैं कहता हूं कि तेरे उपदेश से ये पितृमार्ग भी वीर्यवान्, सामर्थ्यवान् और बलवान् होजायं।

इमे जीवा वि मृतैराववृत्रन्नभूद् भद्रा देवहूतिर्नो अद्य।
प्राञ्चो अगाम नृतये हसाय सुवीरासो विदथमा वदेम ॥२२॥

ऋ० १०।१८।३॥

भा०—ये जीव मृत्यु के कारणों से विविध रूप से घिरे हुए हैं। हम मुमुक्षु मार्ग से जानेहारों को अत्र अति कल्याणकारिणी अध्यात्म ज्ञानी विद्वानों की आज्ञा या बुलाहट हो गयी है। हम उत्तम वीर्य-सम्पन्न होकर नृत्य और हास, आनन्द और प्रमोद के लिये और भी आगे पूर्व की ओर अर्थात् ज्ञानमय सूर्य की तरफ बढ़ें। और ज्ञान-कथा की चर्चा करें।

इमं जीवेभ्यः परिधिं दधामि मैषां नु गादपरो अर्थमेतम्।
शतं जीवन्तः शरदः पुरूचीस्तिरो मृत्युं दधतां पर्वतेन ॥ २३ ॥

ऋ० १०।१८।४॥ यजु० ३५।१५ ॥

भा०—मैं परमात्मा जीवन धारण करने वाले प्राणियों की य परकोट के समान जीवन की मर्यादा या रक्षा करता हूं। इनमें से कं भी इस मृत्यु रूप प्रयोजन के लिये इस रक्षाविधि के पार कभी

जाय । प्रत्युत हे मनुष्यो ! आप लोग सौ बरस और उससे भी अधिक जीते हुए, जिस प्रकार पर्वत या पर्वत के समान ऊंचे परकोट से बाहर के पदार्थ छिप जाते हैं उसी प्रकार मेरी बनाई इस रक्षा के उपाय से मृत्यु को अपने आंखों से परे रक्खो ।

आ रोहतायुर्जरसं वृणाना अनुपूर्वं यतमाना यति स्थ ।
तान् वस्त्वष्टा सुजनिमा सजोषाः सर्वमायुर्नयतु जीवनाय ॥२४॥
ऋ० १० । १८ । ६ ॥

भा०—हे मनुष्यो ! आप लोग वृद्धावस्था को दूर करते हुए दीर्घ जीवन प्राप्त करें । और पहले के समान नियमपूर्वक यत्न करते हुए संयम या ब्रह्मचर्य के जीवन मे रहो । तुम्हारा उत्पादक परमात्मा आप लोगों के साथ प्रेम का व्यवहार करनेहारा, उन आप साधनासम्पन्न पुरुषों को जीवन के लिये उत्तम जन्म और समस्त पूर्ण जीवन प्राप्त करावे ।

यथाहान्यनुपूर्वं भवन्ति यथर्तव ऋतुभिर्यन्ति साकम् ।
यथा न पूर्वमपरो जहात्येवा धातरायूंषि कल्पयैषाम् ॥ २५ ॥
ऋ० १० । १८ । ५ ॥

भा०—जिस प्रकार दिन एक दूसरे के बाद क्रम से हुआ करते हैं, और जिस प्रकार ऋतुए ऋतुओ के साथ एक दूसरे के पीछे बराबर जुड़ी जुडी आया और जाया करती हैं, और जिस प्रकार अपने से पहले को आगे आने वाला दूसरा नवयुवक सन्तान नहीं त्यागता, इसी प्रकार हे सब के धारक पोषक परमेश्वर ! आप इन जीवों के जीवनों की व्यवस्था करते हो ।

अश्मन्वती रीयते सं रभध्वं वीरयध्वं प्र तरता सखायः ।
अत्रा जहीत ये असन् दुरेवा अनमीवानुत्तरेमाभि वाजान् ॥२६॥
ऋ० १० । ५३ । ८॥ यजु० ३५।१० ॥

भा०—पत्थरो और शिलाओं से भरी नदी जिस प्रकार बड़े वेग से

जाती है उसी प्रकार यह जीवन की या संसार की नदी बह रही है। इसलिये हे पुरुषो ! सब मिल कर अपने कार्य उत्तमता से प्रारम्भ करो। वीर के समान पराक्रमशील होकर कार्य करो। इस गम्भीर नदी को उत्तम रीति से तरने का यत्न करो। जो दुष्ट कामनाओं और आचारों वाले नीच पुरुष हैं उनको यहीं त्याग दो। और हम रोग और दुःखों से रहित उत्तम सुखमय लोकों को प्राप्त हों।

'वाजो वै स्वर्गो लोकः'। ता० १८। ७। १२ ॥गो० उ० ५। उ०५।८॥

उत्तिष्ठता प्र तरता सखायोऽश्मन्वती नदी स्यन्दत इयम्।
अत्रा जहीत ये असन्नशिवाः शिवान्त्स्योनानुत्तरेमाभि वाजान् ॥२७॥

ऋ० १०।५३।८॥

भा०—हे मित्रो ! पत्थरों और शिलाओं से भरी यह संसाररूप साक्षात् नदी बह रही है। उठो और अच्छी प्रकार तरो और पार करो। जो अमङ्गलकारी बुरे लोक हैं उनको यहां ही छोड़ दो। मंगलकारी सुख-मय लोकों को प्राप्त होओ।

वैश्वदेवीं वर्चस आ रभध्वं शुद्धा भवन्तः शुचयः पावकाः।
अतिक्रामन्तो दुरिता पदानि शतं हिमाः सर्ववीरा मदेम ॥२८॥

पूर्वार्ध—अथर्व० ६।६२।३ प्र० द्वि० ॥

भा०—हे पुरुषो ! आप लोग शुद्ध चित्त, अग्नि के समान परम पवित्र और मलरहित होते हुए तेज को प्राप्त करने के लिये, प्रजापति परमात्मा की ज्ञानकथा और उपासना किया करो। और हम सब समस्त सामर्थ्यवान प्राणों से सम्पन्न और पुत्रों से और वीरों से और वीर्यवान् पुरुषों से युक्त होकर या स्वयं सब वीर्यवान होकर दुःख से पार करने योग्य, दुर्गम स्थानों और अवसरों को पार करते हुए सौ वर्षों तक आनन्द से जीवन व्यतीत करें।

उदीचीनैः पथिभिर्वायुमद्भिरतिक्रामन्तोवरान् परेभिः।
त्रिः सप्त कृत्व ऋषयः परेता मृत्युं प्रत्यौहन् पदयोपनेन ॥२९॥

भा०—मन्त्रद्रष्टा ऋषि लोग ऊर्ध्वगामी अर्थात् परब्रह्म तक ले जाने वाले, प्राणमय रूप, उत्कृष्ट मार्गों अर्थात् साधनों से नीचे के तुच्छ मार्गों को पार करते हुए, परम पद तक पहुंचे हैं। और देहों के विलोपन द्वारा या मृत्यु के आने के कारणों को दूर करके मृत्यु को २१ स्थानों से पराजित करते हैं। अर्थात् ५ कर्मेन्द्रियां, ५ ज्ञानेन्द्रियां, ५ सूक्ष्मभूत, ५ स्थूलभूत, १ मनस्तत्व इन २१ की मृत्यु पर विजय पा जाते है।

मृत्योः पदं योपयन्तु एत द्राघीय आयुः प्रतरं दधानाः।
आसीना मृत्युं नुदता सधस्थेऽथ जीवासो विदथमा वदेम ३०(६)

भा०—मृत्यु के आने के कारणों को मिटाते हुए, इस ही जीवन को अति दीर्घ और सब कष्टों से पार तराने योग्य बनाते हुए व्रत, उपवास, यम, नियम आदि से स्थिर होकर बैठते हुए, मृत्यु की घटना को दूर भगा दो। और हे जीवो! एक ही स्थान पर एकत्र होकर हम सब लोग ज्ञान-कथा या ज्ञान-यज्ञ की चर्चा करें।

इमा नारीरविधवाः सुपत्नीराञ्जनेन सर्पिषा सं स्पृशन्ताम्।
अनश्रवो अनमीवाः सुरत्ना आ रोहन्तु जनयो योनिमग्रे ॥३१॥

भा०—ये नारियें कभी विधवाएं न हों, बल्कि उत्तम गृहपत्नियें रहकर शरीर पर मलने योग्य घृत को अपने शरीरों पर लगावें और नीरोग रहें। कभी आंसू न बहाया करें। सुन्दर रत्न, भूषण धारण करें। और पुत्रोत्पादन में समर्थ वधू होकर सबसे प्रथम घर में, पलंग पर, रथ या एकत्र होने की सभा आदि स्थानों पर ऊँचे आदर योग्य स्थान पर आदरपूर्वक विराजें।

व्याकरोमि हविषाहमेतौ तौ ब्रह्मणा व्यहं कल्पयामि।
स्वधां पितृभ्यो अजरां कृणोमि दीर्घेणायुषा समिमान्त्सृजामि ॥३२॥

भा०—मैं इन स्त्री और पुरुष दोनों को हव्य से और अन्न से विविध रूप से पुष्ट करता हूं। और इन दोनों को वेद ज्ञान से मैं नाना प्रकार

से समर्थ करता हूं। और परिपालक बूढ़े लोगों के लिये शीघ्र बुढ़ापा न लाने वाले, अर्थात् शरीर के पोषक अन्न को प्रदान करता हूं। और उन समस्त जीवों को दीर्घ जीवन से युक्त करता हूं।

यो नो॑ अ॒ग्निः पि॑तरो हृ॒त्स्व॑१॒न्तरा॑वि॒वेशा॒मृतो॒ मर्त्ये॑षु।
मय्य॒हं तं परि॑ गृह्णामि दे॒वं मा सो अ॒स्मान् द्वि॑क्षत॒ मा व॒यं तम् ॥३३

भा०—हे आत्मा की शक्तियों के पालक एवं ज्ञानपालक पुरुषो ! जो प्रकाशमय अमर आत्मा मनुष्यों के हृदयों में भीतर प्रविष्ट है, उस प्रकाशमान उपास्य, परम आत्मदेव को मैं ज्ञानी साधक पुरुष अपने भीतर धारण करूं। वह हमारे से कभी द्वेष न करे और उससे हम भी कभी द्वेष, विराग न करें, प्रत्युत परमात्मा हम से प्रेम करे और हम उससे प्रेम करें।

अ॒पा॒वृत्य॒ गार्ह॑पत्यात् क्र॒व्यादा॒ प्रेत॑ दक्षि॒णा।
प्रि॒यं पि॒तृभ्य॑ आ॒त्मने॑ ब्र॒ह्मभ्यः॑ कृणुता प्रि॒यम् ॥ ३४ ॥

भा०—'गार्हपत्य' अग्नि से हट कर दक्षिण दिशा में शवाग्नि के प्रति आओ। और तुम्हारे बूढ़े या मृत पिता पितामह आदि को जो प्रिय अभिलषित कार्य हो वह और जो तुम्हारे अपने आत्मा को अच्छा प्रतीत हो वह और जो वेद के विद्वान् ब्राह्मण लोगों को अभिलषित कार्य हो वह करो। अर्थात् पितादि के मर जाने पर 'गार्हपत्य' अग्नि से पृथक् होकर, शवाग्नि को ग्राम या निवास से दक्षिण दिशा में चिता में आधान करो, और बाद में अपने वृद्धों को, अपनी और विद्वान् ब्राह्मणों की अभिलाषा के अनुकूल कार्य करो।

द्वि॒भा॒ग॒ध॒नमा॒दाय॒ प्र क्षि॑णा॒त्यव॑र्त्या।
अ॒ग्निः पु॒त्रस्य॑ ज्ये॒ष्ठस्य॒ यः क्र॒व्याद॒निरा॑हितः ॥३५॥

भा०—शवाग्नि का यदि गृहस्थजीवन में निराकरण नहीं होता तो गृहस्वामियों की असामयिक मृत्यु हो जाने पर ज्येष्ठ पुत्र अपना दुगना

भाग लेकर, (और शेष पुत्र अपना अपना भाग लेकर अलग हो जायगे।) इस प्रकार वृत्ति प्राप्त न होने पर गृह-व्यवस्था नष्ट हो जाती है।

यत् कृषते यद् वनुते यच्च वस्नेन विन्दते।
सर्वं मर्त्यस्य तन्नास्ति क्रव्याच्चेदनिराहितः॥ ३६॥

भा०—यदि शवभक्षक अग्नि पृथक् न किया जाय तो मनुष्य जो खेती बाडी से उत्पन्न करता है, और जो पितृधन में से हिस्सा प्राप्त करता है, और जो कुछ व्यापार से या वेतन से प्राप्त करता है, उस का वह सब कुछ सफल नहीं होता।

अयज्ञियो हृतवर्चा भवति नैनेन हविरत्तवे।
छिनत्ति कृष्या गोर्धनाद् यं क्रव्यादनुवर्त्तते॥ ३७॥

भा०—जिसके पीछे शवाग्नि लग जाता है वह पुरुष यज्ञ के अयोग्य और निस्तेज हो जाता है। यह यज्ञ का हवि खाने योग्य नहीं रहता। वह खेती बाडी, गौ आदि पशुओं और धन सम्पत्ति से भी वञ्चित हो जाता है।

मुहुर्गृध्यैः प्र वदत्यार्तिं मर्त्यो नीत्य।
क्रव्याद् यानग्निरन्तिकादनुविद्वान् वितावति॥ ३८॥

भा०—जिनके समीप शव को खाने वाला अग्नि रहता है, वह पुरुष अपनी अभिलाषा के पात्र प्रिय मृतों से मानो बार बार बात चीत करता और वह मनुष्य पीडा को प्राप्त होकर, पीछे से भी वेदना या दुःख को प्राप्त होकर, विविध प्रकार से कष्ट पाता है।

ग्राह्या गृहाः सं सृज्यन्ते स्त्रिया यन्म्रियते पतिः।
ब्रह्मैव विद्वानेष्यो३ यः क्रव्यादं निरादधत्॥ ३९॥

भा०—जब स्त्री का पति मर जाता है तब घर के जन जकड़ने वाले कष्टों से जकड़ जाते हैं। इसलिये ऐसा वेदज्ञ ज्ञानी ही आवश्यक है

जो शवाग्नि को पृथक् करने में समर्थ हो। अर्थात् वेदज्ञ विद्वान् गृहस्थों को ऐसे साधन बताएं जिससे कि असामयिक मृत्युएं न हों।

यद् रिप्रं शमलं चकृम यच्चं दुष्कृतम्।
आपो मा तस्माच्छुम्भन्त्वग्नेः संकसुकाच्च यत् ॥४०॥ (१०)

भा०—जो पाप, मलिन और बुरे काम हम करते हैं, जलों के समान पवित्र आप्त पुरुष, हमें उन पापादि से और शव भक्षी अग्नि से पवित्र करें।

ता अधरादुदीचीरावंवृत्रन् प्रजानतीः पथिभिर्देवयानैः।
पर्वतस्य वृषभस्याधि पृष्ठे नवाश्चरन्ति सरितः पुराणीः ॥४१॥

भा०—वे पूर्वोक्त आप्त जनो की श्रेणियां, स्वच्छ जल-धाराओं के समान नीचे से ऊपर की तरफ जाती हुईं, उत्कृष्ट ज्ञान सम्पन्न होकर विद्वानो से गमन करने योग्य मोक्ष के मार्गों और साधनो से आचरण करती हैं। पर्वत के पीठ पर जैसे सदा नयी जल-धाराएं अति प्राचीन काल से बहा करती हैं उसी प्रकार समस्त सुखों की वर्षा करने हारे परमेश्वर के आश्रय में अति पुरातन काल के और नये भी आप्तजन विचरते हैं।

अग्ने अक्रव्यान्निः क्रव्यादं नुदा देवयजनं वह ॥ ४२ ॥

भा०—हे अग्ने! परमेश्वर! तू मांसाहारी व्याघ्र या हिंसक जन के समान नहीं होकर मांसभक्षी जनों को परे कर। और देवों की उपासना करने वाले सत्पुरुष को हमें प्राप्त करा। अथवा हे परमात्मन! देह के मांस को खाने वाले मृत्यु को दूर कर और देव, परमेश्वर की संगति प्राप्त कराने वाले आत्म स्वरूप को प्राप्त करा।

इमं क्रव्यादा विवेशायं क्रव्यादमन्वंगात्।
व्याघ्रौ कृत्वा नानानं तं हरामि शिवापरम् ॥ ४३ ॥

भा०—जिस पुरुष में मांस खाने का स्वभाव प्रविष्ट हो जाय या जो पुरुष स्वयं मांसभक्षी के अनुकरण से उसका संगी हो जाय तो उन

दोनो व्याघ्र स्वभाव के पुरुषो को पृथक् पृथक् करके शिव = मंगल से अतिरिक्त अमगल स्थान जेल आदि मे ले जाया जाय।

अन्तर्धिर्देवानां परिधिर्मनुष्याणाम्।
अग्निर्गार्हपत्य उभयानन्तरा श्रितः ॥ ४४ ॥

भा०—गार्हपत्य अग्नि देवो के लिये रक्षास्थान है, और मनुष्यो के लिये नगर के कोट के समान है। वह देव और मनुष्य दोनो के बीच मे विराजमान है।

जीवानामायुः प्र तिर त्वमग्ने पितृणां लोकमपि गच्छन्तु ये मृताः
सुगार्हपत्यो वितपन्नरातिमुषामुषां श्रेयसीं धेह्यस्मै ॥ ४५ ॥

भा०—हे राजन् या परमेश्वर! तू जीवो को दीर्घ जीवन प्रदान कर। और जो लोग मर जायं वे भी परिपालक वायु, चन्द्र, सूर्य आदि तत्वो मे या वृद्ध पितृजनो के यश या पद को प्राप्त हों। तू उत्तम "गार्हपत्य" नामक राजा शत्रु को विविध प्रकार से सतप्त करता हुआ, प्रति दिन इस प्रजा को सर्वोत्तम लक्ष्मी प्रदान कर। एष वै गार्हपत्यो यमो राजा। श० २।३।२।२॥

सर्वानग्ने सहमानः सपत्नानैषामूर्जं रयिमस्मासु धेहि ॥ ४६ ॥

भा०—हे अग्नि के समान दुष्टो को सताप देने हारे राजन्! तू समस्त शत्रुओ को पराजित करता हुआ, उनके धन को और अन्न आदि पुष्टिकारी पदार्थों को हमे प्रदान कर।

इममिन्द्रं वह्निं पप्रिमन्वारभध्वं स वो निर्वक्षद् दुरितादवद्यात्।
तेनाप हत शरुमापतन्तं तेन रुद्रस्य परि पातास्ताम् ॥ ४७ ॥

भा०—इस ऐश्वर्यशील राज्य-कार्य के भार को उठाने मे समर्थ नरपुङ्गव और सब के पालक राजा को उसके अनुकूल होकर उसके समीप आकर सब प्रकार से उसे प्राप्त करो, उसे अपनाओ। वह राजा हमे निन्दनीय, दुखदायी पापाचरण से पृथक् रक्खे। हे प्रजाजनो! उस राजा

के बल से हिंसक पुरुष को मारो। और उसी के बल पर प्रजा को रुलाने वाले उस चोर डाकू के फेंके हुए शस्त्रास्त्र से प्रजा की सब प्रकार से रक्षा करो।

अनड्वाहं प्लवमन्वारभध्वं स वो निर्वक्षद् दुरितादवद्यात्।
आ रोहत सवितुर्नावमेतां षड्भिरुर्वीभिरमतिं तरेम ॥ ४८ ॥

भा०—अनस् = शकट को जिस प्रकार बैल उठाता है राष्ट्ररूप शकट को उठाने वाले राजा' और ब्रह्माण्ड रूप शकट को ले चलने वाले सर्व-प्रवर्तक परमेश्वर स्वरूप जहाज को आप लोग प्राप्त करो। वह आप सबको निन्दनीय, बुरे कामों से मुक्त करे। हे सज्जनो! सब के उत्पादक और प्रेरक परमेश्वर और उत्तम राजा की बनायी इस नाव के समान, सब को भवसागर और दुःखसागर से पार उतारने वाली और सबको अपने बीच में सुरक्षा से रखने वाली राजव्यवस्था रूप नाव में चढ़ो, उसमें शरण लो। और छहों उर्वी, विशाल शक्तियों से हम अज्ञान और कुमति को पार करें।

'षट् ऊर्वय' = छः बड़ी शक्तियां, पांच ज्ञान इन्द्रिय और छठा मन। ये आत्मा की छः बड़ी शक्तियां हैं जिनसे वह भारी अमति = अविद्या को तरता और ज्ञान प्राप्त करता है।

अहोरात्रे अन्वेषि बिभ्रत् क्षेम्यस्तिष्ठन् प्रतरणः सुवीरः।
अनातुरान्त्सुमनसस्तल्प बिभ्रज्ज्योगेव नः पुरुषगन्धिरेधि ॥४९॥

भा०—हे सबके प्रतिष्ठापक! पलग के समान सबको सुख से अपने में विश्राम देने हारे परमेश्वर एवं राजन! तू दिन और रात हमें धारण पोषण करता हुआ, सब का कुशल मंगल करने हारा, उत्तम वीर्यवान् या उत्तम वीर पुरुषों से युक्त, नौका के समान सबको पार तारने वाला, स्थिर रूप से विराजमान होकर, सबके अनुकूल होकर प्राप्त है। तू शुभ चित्त वाले, काम क्रोधादि से अनातुर, शान्त, तृष्णारहित स्वस्थ पुरुषों को अपने में धारण करता हुआ आ, हे पलङ्ग के समान सबको विश्राम

देने हारे। चिरकाल से पुरुषों को उनके पापकर्मों का दण्ड देने वाला 'जनार्दन' होकर विराजमान है।

ते देवेभ्य आ वृश्चन्ते पापं जीवन्ति सर्वदा।
क्रव्याद् यानग्निरन्तिकादश्व इवानुवपते नडम् ॥५०॥ (११)

भा०—जो लोग सदा पापमय जीवन विताते हैं वे साधु पुरुषों से सदा के लिये कट जाते हैं, उनको सज्जनों का संग प्राप्त नहीं होता। जिस प्रकार सूखे नड को घोड़ा पैरों से रौंद रौंद कर तोड़ फोड़ देता है उसी प्रकार जिनके समीप मांस खाने वाला, अग्नि के समान सन्तापकारी निर्दय स्वभाव वाला व्यक्ति होता है वह उनके नड = नरस्वभाव या मानुष स्वभाव को या मनुष्यता को निरन्तर नाश कर देता है।

येऽश्रद्धा धनकाम्या क्रव्यादा समासते।
ते वा अन्येषां कुम्भीं पर्यादधति सर्वदा ॥ ५१ ॥

भा०—जो लोग श्रद्धा अर्थात् सत्य धारणा से रहित, नास्तिक, उच्छृंखल होकर, धन के लोभी मांसभक्षी जन के संग बैठते और उनका सा पेशा करते हैं, वे भी सदा औरों की हांडी पर ही अपनी आशा बांधे रहते हैं।

प्रेव पिपतिषति मनसा मुहुरा वर्तते पुनः।
क्रव्याद् यानग्निरन्तिकादनुविद्वान् वितावति ॥ ५२ ॥

भा०—जिनको अति समीप से मृत्यु का भय पीछे लग कर नाना प्रकार से सताता है वह पुरुष, जब भी अपने मन से आगे को जाना चाहता है फिर भी वार बार लौट ही आता है।

अविः कृष्णा भागधेयं पशूनां सीसं क्रव्यादपि चन्द्रं त आहुः।
माषाः पिष्टा भागधेयं ते हव्यमरण्यान्या गह्वरं सचस्व ॥५३॥

भा०—हे मांस खाने वाली अग्नि! काली रात जैसे मांसाहारी पशुओं के भाग्य में पड़ी है इसी प्रकार सीसा तेरा धन है, और पिसे

हुए 'माष' उड़द की दालें तेरे भाग्य के पदार्थ हैं। तू बड़े जंगल के गहरे भाग को चली जा। इसका अभिप्राय यह है मांसाहारी सीसे की गोली से मारा जाय और माष की दाल के समान दल दिया जाय यही उसका भाग्य है।

इ॒षी॒कां जर॑तीमि॒ष्ट्वा ति॒ल्पि॒ञ्जं दण्ड॑नं न॒डम्।
तमिन्द्र॑ इ॒ध्मं कृ॒त्वा य॒मस्या॒ग्निं नि॒राद॑धौ ॥ ५४ ॥

भा०—जीर्ण हुई सींक, तिल के डंठल और बांस तथा नड़ के समान जीर्ण देह की अग्नि में आहुति करके, ज्ञानैश्वर्यवान् पुरुष उस अपनी आत्मा को ईंधन बना कर या प्रदीप्त करके, सर्वनियन्ता परमेश्वर के ज्ञानमय-अग्नि के समान स्वरूप को अपने भीतर धारण करे।

सींक, तिलपिञ्ज और दण्डन-बांस और नडे ये चारों पदार्थ जीर्ण हो जाने पर जला दिये जाते हैं और फिर ऋतु पर नये उत्पन्न होते हैं। इसी प्रकार यह पुरुष भी अपने जीर्ण देह को अग्नि में जला दे और स्वयं ईश्वर के तेजोमय स्वरूप में प्रवेश पा जाय।

प्र॒त्यञ्च॑म॒र्कं प्र॑त्यर्पयि॒त्वा प्र॑वि॒द्वान् पन्थां॒ वि ह्या॒विवेश॑।
परा॒मीषा॒मसू॑न् दि॒देश॑ दी॒र्घेणायु॑षा॒ समि॒मान्त्सृ॑जामि ॥५५॥ (१२)

भा०—'प्रत्यक्' अर्थात् प्रत्येक के हृदय में प्रकाशमान, सूर्य के समान प्रदीप्त परमेश्वर के प्रति अपने आपको सौंप कर, अति उत्कृष्ट ज्ञानी, उस परम मोक्ष मार्ग में निश्चय से चला जाता है। तब उन मोक्ष-गत मुक्तात्माओं के सूक्ष्म प्राणों को वह परमेश्वर रास्ता दर्शाता है। और इन जीवों को दीर्घ जीवन के साथ में वह परमेश्वर फिर उत्पन्न करता है, इस प्रकार परमेश्वर कहता है।

इति द्वितीयोऽनुवाकः।

[तत्रैकेन सूक्तमृचश्च पञ्चपञ्चाशत्]

[३] स्वर्गौदन की साधना या गृहस्थधर्म का उपदेश ।

यम ऋषिः । मन्त्रोक्तः स्वर्गौदनोऽग्निर्देवता । १, ४२, ४३, ४७ भुरिजः । ८, १२, २१, २२, २४ जगत्यः । १३ [१] त्रिष्टुप् । १७ स्वराड् । आर्षी पङ्क्तिः । ३४ विराड्गर्भा पङ्क्तिः । ३९ अनुष्टुब्गर्भा पङ्क्ति । ४४ पराबृहती । ५५–६० त्र्यवसाना सप्तपदाऽतिजागतशाकरातिशाक्वरधार्त्यगर्भातिधृतये । [५५, ५७–६० कृतयः । ५६ विराट् कृति.] । षष्ट्यृचं सूक्तम् ॥

पुमा॑न् पुं॒सोऽधि॑ तिष्ठ॒ चर्मे॑हि॒ तत्र॑ ह्वयस्व॒ यत॒मा प्रि॒या ते॑ ।
याव॑न्तावग्रे॑ प्रथ॒मं स॑मे॒यथु॒स्तद् वां॒ वयो॑ यम॒राज्ये॑ समा॒नम् ॥१॥

भा०—हे पुरुष ! तू वीर्यवान् मर्द हो कर अन्य पुरुषो पर अध्यक्ष रूप से विराजमान हो । तू आसन पर आ विराज । उसी आसन पर सब स्त्रियो मे से एक तुझे जो सबसे अधिक प्रिय स्त्री है उसको बुलाकर पत्नीस्वरूप में ग्रहण कर । हे पति पत्नी ! सबसे प्रथम जितनी शक्ति और सामर्थ्य से युक्त होकर तुम दोनो प्रथम परस्पर संगत होओगे वह सब कुछ तुम दोनो का जीवन सामर्थ्य सर्व नियन्ता परमेश्वर के या गृहस्थ के राज्य में समान रहे ।

ताव॑द् वां॒ चक्षु॒स्तति॑ वी॒र्याणि॒ ताव॑त् तेज॑स्तति॒धा वाजि॑नानि ।
अ॒ग्निः शरी॑रं सचते य॒दैधो॑ऽधा॑ प॒क्वान्मि॑थु॒ना सं भ॑वाथः ॥२॥

भा०—हे पति और पत्नी ! तुम दोनों की उतने सामर्थ्य वाली प्रेम से युक्त आख है, और तुम दोनों के उतने सामर्थ्य हैं कि कहा नहीं जा सकता । और इसी प्रकार तुम दोनों का उतना अधिक तेज है और नाना प्रकार के बलयुक्त कार्य हैं कि जिनका वर्णन नहीं किया जा सकता । परन्तु याद रक्खो कि जब वीर्यरूप या ब्रह्मचर्य रूप तप, काष्ठ को अग्नि के समान, शरीर को कांतिमान् करे, तब परिपक्व वीर्य से तुम दोनो पति पत्नी परस्पर मैथुन करके पुत्रोत्पन्न करो ।

समस्मिँल्लोके समु देवयाने सं स्मा समेतं यमराज्येषु ।
पूतौ पवित्रैरुप तद्ध्वयेथां यद्यद् रेतो अधि वां संबभूव ॥३॥

भा०—हे पति पत्नी ! तुम दोनों इस गृहस्थ लोक में सदा एक साथ समान भाव से रहो। देव अर्थात् परमेश्वर की उपासना या मोक्ष मार्ग की साधना में भी सदा दोनो एकत्र ही रहो। और सदा साथ रहते हुए नियन्ता राजा के राज्य के कार्यों में अथवा गृहस्थ के समस्त कार्यों में तुम दोनो समान भाव से एकत्र होकर रहो। और जब जब भी तुम दोनों का वीर्य गर्भ मे एकत्र होकर पुत्र रूप से स्थिर हो जाय, तब तब पवित्र आचरणो और पवित्र कार्यो से तुम दोनो शुद्ध पवित्र होकर, गर्भ में स्थित उस वीर्यांश को शुभ संस्कारो मे पुष्ट करो, उस पर उत्तम उत्तम संस्कार डालो।

आपस्पुत्रासो अभि सं विशध्वमिमं जीवं जीवधन्याः समेत्य ।
तासां भजध्वममृतं यमाहुर्यमोदनं पचति वां जनित्री ॥ ४ ॥

भा०—हे युवक पुत्रो ! तुम भी अपने समीप प्राप्त अपनी पत्नियों के साथ गृहस्थधर्म का पालन करो। हे जीवन के श्रेष्ठ धन से सम्पन्न पुरुषो ! आप लोग इस पुत्र को प्राप्त होकर अपनी गृहपत्नियों के या वीर्यरक्षा रूप उस अमृतमय परम गृहस्थ सुख को प्राप्त करो। जिस ओदन के समान पुष्टिकारक वीर्य को तुम दोनों की माता ब्रह्मचर्य पालनादि द्वारा पकाती या परिपक्व करती रही है।

देव्यो हि आप. । श० १ । १ । ३ । ७॥ रेतो वा आपः । ऐ० १ । ३॥ अग्निना वा आपः सुपत्न्य. । श० ६ । ८ । २ । ३ ॥

यं वां पिता पचति यं च माता रिप्रान्निर्मुक्त्यै शमलाच्च वाचः ।
स ओदनः शतधारः स्वर्ग उभे व्याप नभसी महित्वा ॥ ५ ॥

भा०—हे स्त्री पुरुषो ! जिस 'ओदन' अर्थात् वीर्य को तुम दोनों के के पिता और माता पितृऋण के ऋणी रहने रूप पाप से और वाणी के

पाप से सर्वथा मुक्त होने के लिये परिपक्व करते हैं, वह वीर्य, ब्रह्मचर्य आदि का पवित्र व्रत ही शत वर्ष की आयु को धारण करने वाला स्वर्ग अर्थात् सुखकारी आनन्द को प्राप्त करने का श्रेष्ठ उपाय है। वह अपनी महिमा से ब्रह्मचर्य और गृहस्थ दोनो आश्रमो को व्याप्त करता है।

उभे नभसी उभयांश्च लोकान् ये यज्वनामभिजिताः स्वर्गाः ।
तेषां ज्योतिष्मान् मधुमान् यो अग्रे तस्मिन् पुत्रैर्जरसि सं श्रयेथाम् ॥ ६ ॥

भा०—द्यौ के समान पति और पृथिवी के समान पत्नी ये दोनो प्रकार के लोकों अर्थात् ब्रह्मचर्य और गृहस्थ को जो कि यज्ञशील पुरुषों द्वारा प्राप्त करने योग्य तथा सुखमय हैं उन्हे प्राप्त करके, उनमें से जो लोक कि मधु के समान आनन्दरस से पूर्ण और प्रकाशमय ज्ञानमय लोक है उस सर्वश्रेष्ठ लोक मे, अपने पुत्रो सहित अपने ढलते जीवन मे अच्छी प्रकार से रहो।

प्राचींप्राचीं प्रदिशमा रभेथामेतं लोकं श्रद्दधानाः सचन्ते ।
यद् वां पक्वं परिविष्टमग्नौ तस्य गुप्तये दंपती सं श्रयेथाम् ॥७॥

भा०—हे स्त्री पुरुषो! आप लोग पूर्व दिशा के समान सूर्य के द्वारा प्रकाशमान प्रदेश या लोक को ही प्राप्त करो। इस श्रेष्ठ लोक वा आश्रम को सत्य को धारण करने वाले लोग ही प्राप्त होते हैं। हे पति पत्नी लोगो! जो तुम दोनों का परिपक्व वीर्य अग्नि अर्थात् प्रजनन कार्य मे पड़ गया है, गर्भ में स्थिर हो गया है, उसकी रक्षा के लिये, तुम दोनो एक दूसरे पर आश्रित होकर रहो।

प्रजननं वा अग्निः। तै० १। २। १। ४॥ यज्ञाग्नि में पक्व चरुका डालना प्रतिनिधिवाद से अग्नि मे आहुति और स्त्री मे वीर्याधान का प्रतिनिधि है। योषा वाव गोतमाग्निः। तस्या उपस्थ एव समित्। यदु-पमन्त्रयते स धूमः। यदन्तः करोति त अङ्गाराः। अभिनन्दाः विस्फु-लिङ्गाः। तस्मिन् एतस्मिन् नग्नो देवा रेतो जुह्वति। तस्य आहुतेर्गर्भः

सम्पद्यते । छा० उप० ५ । ८ ॥ स्त्री स्वयं अग्नि है । कामांग काष्ठ हैं, स्त्री पुरुषों का परस्पर प्रेम धूम है, भोग ज्वाला है, सुख विस्फुलिङ्ग हैं, उस अग्नि में विद्वान् लोग वीर्य की आहुति देते हैं वह गर्भ रूप से उत्पन्न होते हैं । इसी के लिये वेद योषा अग्नि में परिपक्व वीर्य की आहुति देने की आज्ञा देता है और उसकी रक्षा का उपदेश करता है ।

दक्षिणां दिशमभि नक्षमाणौ पर्यावर्तेथामभि पात्रमेतत् ।
तस्मिन् वां यमः पितृभिः संविदानः पक्वाय शर्म बहुलं नि यच्छात् ॥ ८ ॥

भा०—हे पति और पत्नि ! तुम दोनों दक्षिण दिशा अर्थात् पूर्व पितरों की दिशा, गृहस्थ धर्म का सब प्रकार से आचरण करते हुए, इस परस्पर के पालन करने रूप गृहस्थ धर्म के प्रति ही चले आया करो । उस परस्पर पालन करने हारे धर्म मे विद्यमान तुम दोनों में से जो यम, परम संयमी ब्रह्मचारी है वह गुरुजनों से उत्तम ज्ञान लाभ करता हुआ परिपक्व वीर्य होने के कारण बहुत अधिक सुख प्राप्त कराने में समर्थ है ।

एषा वै दक्षिणा दिक् पितृणाम् । श० १ । २ । ५ । १७ ॥ पितरो नमस्याः । श० १ । ५ । २ । ३ ॥ दक्षिण दिशा पितरों की है । नमस्कार करने योग्य लोग 'पितर' हैं ।

प्रतीची दिशामियमिद् वरं यस्यां सोमो अधिपा मृडिता च ।
तस्यां श्रयेथां सुकृतः सचेथामधा पक्वान्मिथुना सं भवाथः ॥ ९ ॥

भा०—यह पश्चिम दिशा अर्थात् ब्रह्मचर्य के पीछे आने वाला गृहस्थ ही समस्त दिशाओं मे अच्छा है, जिसमें सर्वोत्पादक परमेश्वर या उत्पादक शुक्र ही पालक, अधिष्ठाता और सब को सुख देने वाला है । उस दिशा में तुम दोनों स्त्री पुरुष आश्रय प्राप्त करो और शुभ कर्मों का पालन करो । और वहां ही पक्व वीर्य से, पक्व वीर्य होकर परस्पर जोड़ा होकर सन्तान पैदा करो ।

उत्तरं राष्ट्रं प्रजयोत्तरावद् दिशामुदीची कृणवन्नो अग्रम् ।
पाङ्क्तं छन्दः पुरुषो बभूव विश्वैर्विश्वाङ्गैः सह सं भवेम ॥१०॥(१३)

भा०—उत्कृष्ट राष्ट्र उत्तम 'प्रजा' से ही उत्कृष्ट होता है, जिसको कि दिशाओं में से उत्तर दिशा, अपने दृष्टान्त से, हमारे लिये श्रेष्ठ बतलाती है । उत्तम प्रजा वह है जब कि यह देहवासी पुरुष पांच स्वतन्त्र प्राणों से युक्त रहता है । इसलिये हम लोग सब के सब समस्त अङ्गों सहित प्रजा-रूप से उत्पन्न हों ।

ध्रुवेयं विराण्नमो अस्त्वस्यै शिवा पुत्रेभ्य उत मह्यमस्तु ।
सा नो देव्यदिते विश्ववार इर्य इव गोपा अभि रक्ष पक्वम् ॥११॥

भा०—ध्रुवा-दिशा, यह अन्न से पूर्ण विविध प्रकार से शोभा देने वाली पृथिवी है । इसको हमारा नमस्कार हो । यह पुत्रों के लिये कल्याण-कारिणी और मेरे लिये भी कल्याण और सुख की देने वाली हो । हे स्थिर ! तथा समस्त संसार से वरण करने योग्य और उनको दुःखों से बचाने वाली देवि ! वह तू हमारे अन्न के स्वामी के समान पालन करने हारी होकर हमारे परिपक्व वीर्य एवं उससे उत्पन्न प्रजा को सब प्रकार से सुरक्षित कर ।

पितेव पुत्रानभि सं स्वजस्व नः शिवा नो वाता इह वान्तु भूमौ ।
यमोदनं पचतो देवते इह तं नस्तप उत सत्यं च वेत्तु ॥ १२ ॥

भा०—जिस प्रकार पिता पुत्रों को आलिंगन करता है और प्रेम करता है उसी प्रकार हे पृथिवि ! या हे परमेश्वर ! तू हम मनुष्यों को भली प्रकार आलिंगन कर, प्रेम कर । इस भूलोक में हमारे लिये वायुएं सदा कल्याण और सुख देने हारी होकर बहें । देवस्वभाव के स्त्री और पुरुष यहां जिस ओदनरूपी वीर्य को परिपक्व करते, परिपुष्ट करते और ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं, उसको हमारा तप और सत्य आचरण प्राप्त करे ।

यद्यत् कृष्णः शकुन एह गुत्वा त्सरन् विषक्तं बिल आससाद ।
यद्वा दास्या३र्द्रहस्ता समङ्क्त उलूखलं मुसलं शुम्भतापः ॥ १३ ॥

भा०—जब जब मलिन कर्मवाला शक्तिशाली चोर आदि यहां हमारे घर में आकर कुटिल चालें चलता हुआ पृथक् एकान्त में छुपे छुपे खोह या घर में आ जाय या यदि गीले हाथों वाली नौकरानी ऊखल और मुसल की वस्तुओं को गीला कर खराब कर दे, तो हे आप्त पुरुषो ! तुम उन सब को शुद्ध करो ।

अयं ग्रावा पृथुबुध्नो वयोधाः पूतः पवित्रैरप हन्तु रक्षः ।
आ रोह चर्म महि शर्म यच्छ मा दंपती पौत्रमघं नि गाताम् ॥१४॥

भा०—यह मूसल, ऊखल विशाल आधार वाला, अन्नों का धारण करने वाला, पवित्र करने हारे उपायों से स्वयं पवित्र होकर, अन्न के ऊपर के रक्षा करने वाले आवरण छिलकों को कूट कूट कर पृथक् कर दे । हे ऊखल ! तू बिछे वस्त्र पर विराज और बड़ा भारी सुख प्रदान कर । स्त्री पुरुष अपने पुत्रों की हत्या आदि पाप को प्राप्त न हों ।

वनस्पतिः सह देवैर्न आगन् रक्षः पिशाचाँ अपबाधमानः ।
स उच्छ्रयातै प्र वदाति वाचं तेन लोकाँ अभि सर्वान् जयेम ॥१५॥

भा०—महान् वृक्ष के समान सबको अपनी छत्रछाया में रखने वाला चक्रवर्ती राजा, विद्वान् पुरुषों और अन्य शासकों सहित, राक्षसों और पिशाचों को मार कर दूर भगाता हुआ हमें प्राप्त हो । वह सबसे ऊंचा होकर वाणी को कहे, सब को आज्ञा करे या सब को शिक्षा प्रदान करे । उसके बल से हम समस्त लोकों को अपने वश करें, उन पर विजयी हों ।

सप्त मेधान् पशवः पर्यगृह्णन् य एषां ज्योतिष्माँ उत यश्चकर्श ।
त्रयस्त्रिंशद् देवतास्तान्त्सचन्ते स नः स्वर्गमभि नेष लोकम् ॥१६॥

भा०—समस्त जीव सात अन्नों को भोजन के रूप में प्राप्त करते हैं। तेंतीस देवगण उन जीवों या अन्नों के साथ समवाय या देह रूप से संघ बनाते हैं। इन देवताओं मे से जो सबसे अधिक प्रकाशमान और सबसे सूक्ष्म है वह परमात्मा हमे सुखमय लोक को प्राप्त करावे। सप्त अन्नों का रहस्य देखो बृहदारण्यक उप० [१ । ५]

अन्नं मेध. । मेधायेत्यन्नायेत्येतत् । श० ७ । ५ । ३२ ॥ अन्न हुत, प्रहुत, पय॰, मनः, वाक्, प्राण, ये सात मेध या अन्न हैं, इनको प्रजापति ने मेधा अपनी ज्ञानशक्ति से उत्पन्न किया।

स्वर्गं लोकम॒भि नो॑ नयासि॒ सं जा॒यया॑ स॒ह पु॒त्रैः स्या॑म।
गृ॒ह्णामि॒ हस्त॒मनु॑ मैत्व॒त्र मा न॑स्तारी॒न्निर्ऋ॑ति॒र्मो अरा॑तिः ॥१७॥

भा०—हे परमात्मन्! आप हमे सदा सुखकारी लोक में ही साक्षात् प्राप्त कराते हो। हम सदा पुत्र उत्पन्न करने हारी स्त्री और उससे उत्पन्न पुत्रों के साथ रहे। जिसका भी मैं हाथ पकड़ूं, वह स्त्री मेरे पीछे पीछे मेरी धर्मपत्नी होकर चले। पाप-वासना मुझे कष्ट न दे। और अदानशील कृपण लोग या कंजूसी भी मुझे न सतावे।

ग्राहिं॑ पा॒प्मान॒मति॒ ताँ अ॑याम॒ तमो॒ व्य॑स्य॒ प्र व॑दासि व॒ल्गु।
वा॒न॒स्प॒त्य उद्य॑तो॒ मा जि॑हिंसी॒र्मा त॑ण्डु॒लं वि श॑रीर्दे॒वय॑न्तम् ॥१८॥

भा०—मन को पकड़ लेने वाली शोक रूप पिशाची को और उस पाप प्रवृत्ति को भी हम पार कर जायं। हे राजन्! तू हमारे हृदय के शोक रूप अन्धकार को दूर करके अति मनोहर वचन कह, उत्तम शिक्षा दे। हे वृक्ष के विकार लकड़ी के बने मूसल के समान राजकीय तेज के अंश से सम्पन्न दण्डकारी राजदण्ड! तू उठ कर हमें मत मार और जिस प्रकार मूसल आघात करता हुआ भी तुषों को दूर करता और चावल को नहीं तोड़ता है उसी प्रकार हे राजदण्ड! तू भी देव के समान उत्तम आचरण करने-हारे पुरुष को दण्डित या पीड़ित मत कर।

विश्वव्यंचा घृतपृष्ठो भविष्यन्त्सयोनिर्लोकमुप याह्येतम् ।
वर्षवृंद्धमुप यच्छ शूर्पं तुषं पलावानप तद् विनक्तु ॥ १९ ॥

भा०—हे राजन् ! यदि तू संसार में फैला हुआ जगत् प्रसिद्ध और सूर्य के समान अति तेजस्वी होना चाहता है तो अपने योनि, उत्पत्ति स्थान, प्रजा सहित इस स्वर्गमय लोक को प्राप्त हो, और वर्षा काल में बढ़े हुए सींकों से बने सूप के समान वर्षों मे बूढे अनुभवी पुरुष को अपने हाथ में ले, और जिस प्रकार छाज तुष और तिनकों को फटक फटक कर अलग अलग कर देता है उसी प्रकार तू भी अनुभवी न्यायशील पुरुष के द्वारा तुच्छ हिंसक दुष्ट पुरुषों को अपने राष्ट्र रूप अन्न में से फटक फटक कर निकाल डाल ।

त्रयो लोकाः संमिता ब्राह्मणेन द्यौरेवासौ पृथिव्य१न्तरिक्षम् ।
अंशून् गृभीत्वान्वारभेथामा प्यायन्तां पुनरा यन्तु शूर्पम् ॥२०॥(१४)

भा०—वेद का विद्वान तीनों लोकों का भली प्रकार ज्ञान कर लेता है कि वह द्यौ है, वह पृथिवी है और वह अन्तरिक्ष है । हे स्त्री, पुरुषो ! जिस प्रकार तुम लोग अन्न के शुद्ध दानों को ले कर बराबर कृषि करते रहते हो तो वे अन्न बहुत बढ़ जाते हैं और फिर वे छाज पर आ जाते हैं, ठीक उसी प्रकार तुम प्रजा और राजा दोनों मिल कर उक्त तीनों लोकों के व्यापक गुणों को लेकर कार्य आरम्भ करो । इस प्रकार समस्त लोक फलें फूलें और छाज के समान सत् असत् अर्थात् भले बुरे का विवेक करने वाले पुरुष के पास प्राप्त हों ।

पृथग्रूपाणि बहुधा पशूनामेकरूपो भवसि सं समृद्ध्या ।
एतां त्वचं लोहिनीं तां नुदस्व ग्रावा शुम्भाति मलग इव वस्त्रा ॥२१॥

भा०—जीवों के पृथक् पृथक्, जुदा जुदा, बहुत प्रकार के रूप नमूने होते हैं, तो भी हे राजन ! या हे आत्मन ! तू अपनी समृद्धि से सब के प्रति एक रूप रहता है । इस राजस आवरण को परे कर दे और

स्वयं शुद्ध ज्ञानी होकर जैसे धोबी कपडो को धो डालता है उसी प्रकार तू भी अपने को शुद्ध पवित्र कर और सुशोभित कर ।

पृथिवीं त्वां पृथिव्यामा वेशयामि तनूः समानी विकृता त एषा ।
यद्यद् द्युत्तं लिखितमर्पणेन तेन मा सुस्रोर्ब्रह्मणापि तद् वपामि ॥२२

भा०—तुझ खाद रूप पृथिवी को इस पृथिवी में स्थापित करता हूं। ताकि हे पृथिवी ! यह तेरी बिगडी हुई देह भी पूर्व के समान ही हो जाय और इसमें जो कुछ जुत गया है या हल चलाने से खुद गया है उससे अपना सारभाग नष्ट मत कर, उसको भी मैं अन्न द्वारा बो देता हूं ।

जनित्रीव प्रति हर्यासि सूनुं सं त्वा दधामि पृथिवीं पृथिव्या ।
उखा कुम्भी वेद्यां मा व्यथिष्ठा यज्ञायुधैराज्येनातिषक्ता ॥ २३ ॥

भा०—हे पृथिवि ! तू माता जिस प्रकार पुत्र को प्यार से अपने गोद मे ले लेती है उसी प्रकार तू मुझे प्रेम करती है । तुझ पृथिवी को खाद रूपी पृथिवी से मैं जोड देता हू । हे पृथिवी ! तू हाड़ी या उखा रूप में या कुम्भी, घडे, मटके आदि के रूप मे होकर वेदी मे ठीक टिकी रह। यरा तू यज्ञ के उपकरणों द्वारा घृत वा जल से युक्त होकर रह ।

अग्निः पचन् रक्षतु त्वा पुरस्तादिन्द्रो रक्षतु दक्षिणतो मरुत्वान् ।
वरुणस्त्वा दृंहाद् धरुणे प्रतीच्या उत्तरात् त्वा सोमः सं ददातै ॥२४

भा०—हे पृथिवि ! परिपक्क करता हुआ अग्नि आगे से तेरी रक्षा करे । प्राणो और विद्वान्-गणो तथा नाना दिव्य शक्तियों से सम्पन्न इन्द्र दक्षिण दिशा से तेरी रक्षा करे । पश्चिम दिशा के धारण करने वाले आधार स्थान मे तुझे वरुण दृढ करे, सुरक्षित रक्खे । और उत्तर की ओर से सोम तुझे भली प्रकार सुरक्षित रक्खे । चाहिये कि यह भिन्न भिन्न अधिकारियों को भिन्न भिन्न दिशाओं में नियुक्त करके राष्ट्र की रक्षा करे ।

पूताः पवित्रैः पवन्ते अभ्राद् दिवं च यन्ति पृथिवीं च लोकान् ।
ता जीवला जीवधन्याः प्रतिष्ठाः पात्र आसिक्ताः पर्यग्निरिन्धाम् ॥ २५ ॥

भा०—जिस प्रकार मेघ से आते हुए जल पवित्र करने वाले वायुओं द्वारा पवित्र होकर द्यौलोक मे भी ऊपर उठ जाते हैं और पृथिवी लोक पर भी आते हैं, और वे जल पृथ्वी पर जीवन को प्राप्त कराने वाले जीवों के लिये धन होने योग्य प्राणों की प्रतिष्ठा स्वरूप हैं । और जिस प्रकार वे पात्र आदि मे डाले जाते हैं और उनको अग्नि चारों ओर से तप्त करती है इसी प्रकार वे आप्त जन पवित्र आचरणों से पवित्र होकर गति-शील, सर्वव्यापक परमात्मा से, मेघ से जलों के समान आते हैं और वे द्यौलोक, पृथिवी लोक और सूर्य आदि नाना लोकों को प्राप्त होते हैं । वे आप्त जन अति दीर्घ जीवन धारण करने वाले जीवों में स्वयं धन्य अति श्रेष्ठ, पात्र मे रक्खे जलों के समान, उचित स्थान मे नियुक्त होकर उत्तम रूप से प्रतिष्ठा के पात्र होते हैं । उनको ज्ञानमय, प्रकाशक परमेश्वर सब प्रकार से ज्ञान प्रदान करके प्रकाशित करता है ।

आ यन्ति दिवः पृथिवीं सचन्ते भूम्याः सचन्ते अध्यन्तरिक्षम् ।
शुद्धाः सतीस्ता उ शुम्भन्त एव ता नः स्वर्गमभि लोकं नयन्तु ॥ २६ ॥

भा०—वे आप्त जन प्रकाशमान उस परमेश्वर के पास से, मेघ से आने वाले स्वच्छ जलों के समान, पृथिवी लोक पर आते हैं, भूमि पर एकत्र होते हैं, अन्तरिक्ष मे भी प्राप्त होते हैं । वे सदा शुद्ध रहने के कारण से ही शोभा को प्राप्त होते हैं । वे हमें सुखमय लोक को प्राप्त करावें ।

उतेव प्रभ्वीरुत संमितास उत शुक्राः शुचयश्चामृतासः ।
ता ओदनं दंपतिभ्यां प्रशिष्टा आपः शिक्षन्तीः पचता सुनाथाः ॥ २७ ॥

भा०—और वे ही उत्कृष्ट सामर्थ्य युक्त और उत्तम ज्ञानवान और दीप्तिमान, तथा शुद्ध पवित्र, काम, क्रोध, लोभ, मोह, छल, द्रोह आदि

से रहित और अमृतमय ज्ञान से युक्त दीर्घायु, एवं ब्रह्मज्ञानी होते हैं। वे अति अधिक शिष्ट, सुसभ्य, सुशिक्षित, उत्तम ऐश्वर्यवान्, एवं तपस्या युक्त, तपस्वी शुद्ध जलों के समान स्वच्छ हृदय वाले आप्त जन, उत्तम शिक्षाएं, विद्याएं और उपदेश आदि प्रदान करते हुए, गृहस्थ के स्त्री पुरुषों के बल वीर्य को जलों के समान ही परिपक्व करें। उन को दृढ़ सदाचारी बनावें।

संख्याता स्तोकाः पृथिवीं सचन्ते प्राणापानैः संमिता ओषधीभिः असंख्याता ओप्यमानाः सुवर्णाः सर्वं व्यापुः शुचयः शुचित्वम् ॥२८

भा०—संख्या में परिमित जलबिन्दु जिस प्रकार पृथिवी पर आते हैं, उसी प्रकार उत्तम ज्ञान से युक्त सुप्रसन्न, आप्तजन, पृथिवी पर आते हैं। वे स्वयं इस दुनियां के प्राण और अपानों की उपमा प्राप्त होते हैं, अर्थात् वे सबके प्राण और अपान के समान जीवन के आधार होते हैं, और वे सबके भव-रोगों और मानस दुःखों के हरने हारे होने के कारण ओषधियों के समान माने जाते हैं। वे असंख्य उत्तम वर्ण, कान्ति, आचार और शिल्पों से युक्त होकर धर्म, अर्थ और काम तीनों में शुचि, निर्लोभ, निष्कपट, तृष्णारहित, निष्काम होकर, प्रजा के कार्यों में लगाये जाते हुए भी सब प्रकार के शुद्ध, निर्दोष, निष्कपट व्यवहार को विशेष रूप से करते हैं। इसीलिये वे 'आप्त' कहाते हैं।

उद्योधन्त्यभि वल्गन्ति तप्ताः फेनमस्यन्ति बहुलांश्च बिन्दून्। योषेव दृष्ट्वा पतिमृत्वियायैतैस्तण्डुलैर्भवता समापः ॥२६॥

भा०—ये प्रजाएं क्रुद्ध होकर, प्रतप्त हांडी के जलों के समान, खौल कर परस्पर युद्ध करते है, उनके समान कुद-कुदा कर एक दूसरे के प्रति ललकारते हैं, खौलते हुए जल जिस प्रकार झाग ऊपर फेंकते हैं, इसी प्रकार वे एक दूसरे पर फेन, वज्र, तलवार एवं तोप आदि बड़े बड़े हननकारी अस्त्रों को फेंकते हैं। और जल जिस प्रकार बहुत से

विन्दुओं को उड़ाते हैं उसी प्रकार वे भी बहुत से 'विन्दु' गोली, छर्रे आदि छोड़ते हैं। परन्तु हे आप्त प्रजाजनो! जिस प्रकार स्त्री पति को देखकर ऋतुधर्म के लिये उसके साथ मिलकर तन्मय रहती है, और जिस प्रकार जल खौलकर भी चावलों के साथ मिल भाप के रूप में एक हो जाते हैं, उसी प्रकार आप लोग भी अपने मारने, ताडने, घेरने और तानने वालों के साथ भी समयानुसार कार्यवश अपने प्रेम के बल से सन्धि करके एक होकर रहो।

उत्थापय सीदतो बुध्न एनानद्भिरात्मानमभि सं स्पृशन्ताम्।
अमासि पात्रैरुदकं यदेतन्मितास्तण्डुलाः प्रदिशो यदीमाः ॥३०(१५)

भा०—हे राजन्! इन नीचे हाडी के तले पर ताप में तप्त हुए, तले लगे चावलों के समान नीचे भूतल पर या नीचे शोचनीय दशा में पड़े इन लोगों को ऊपर उठा। और जिस प्रकार तले में लगे चावलों को कड़छी से जल द्वारा गीला करके ऊपर उठा दिया जाता है उसी प्रकार हे राजन्! आप्त पुरुषों द्वारा ये नीचे गिरे लोग भी अपने आप को उठावें। और जिस प्रकार इस जल को चमस आदि पात्रों से माप लेता है, और उन पात्रों से ही भात के चावल भी माप लिये जाते हैं उसी प्रकार ये नाना दिशाएं या नाना दिशाओं में रहने वाले जीव भी पालन करने वाले शासकों द्वारा जान लिये एवं वश कर लिये जाते हैं।

प्र यच्छ पर्शुं त्वरया हरौषमहिंसन्त ओषधीर्दान्तु पर्वन्।
यासां सोमः परि राज्यं बभूवामन्युता नो वीरुधो भवन्तु ॥३१॥

भा०—हे राजन्! फरसा सनवनी से पकड़ और शीघ्रता कर, उसे शीघ्र ले आ। लोग जिस प्रकार ओषधियों को उनका मूल नाश न करते हुए जोड़ पर से काट लेते हैं, उसी प्रकार तेरे वीर भी, प्रजा को संताप देने वालों के मूलों की रक्षा करते हुए, या प्रजा का नाश न करते हुए, पोरु पोरु पर उनमें मर्म को काटें। जिसका परिणाम यह

होगा कि जिन प्रजाओं के राज्य के ऊपर सोमलता के समान वीर्यवान्, या चन्द्र के समान आह्लादकारी प्रजारंजन मे दक्ष राजा राज्य करता है, वे लताओं के समान नाना प्रकार की व्यवस्थाओं से रूढ़ या व्यवस्थित प्रजाएं, हमारे प्रति क्रोध से रहित हो।

नवं बर्हिरोदनाय स्तृणीत प्रियं हृदश्चक्षुषो वल्गवस्तु।
तस्मिन् देवाः सह दैवीर्विशन्त्विमं प्राश्नन्त्वृतुभिर्निषद्य ॥ ३२ ॥

भा०—हे भद्र पुरुषो! इस नवीन प्रजा या नये विजित देश को वीर्य प्राप्त किये राजा के लिये फैला दो, देश पर फैल कर वश करने दो। और यह राजा और राष्ट्र प्रजा के हृदय को प्रिय और आंख को सुन्दर लगे। और उस राष्ट्र मे राजा और विद्वान् लोग अपनी देवीरूप रानियों या दिव्य-गुण युक्त प्रजाओं के साथ प्रवेश करें। और उत्तम रीति से स्थिर होकर इस राष्ट्र का भी ऋतुओं के अनुसार अथवा राजसभा के सदस्यों के साथ उत्तम रीति से भोग करें।

'बर्हिः'—प्रजा वै बर्हिः। कौ० ५। ७॥ क्षत्रं वै प्रस्तरो विश इतर बर्हिः। श० १। ३। ४। १०॥ अय वै लोको बर्हिः। श० १। ४। १२४॥

वनस्पते स्तीर्णमा सीद बर्हिरग्निष्टोमैः संमितो देवताभिः।
त्वष्ट्रेव रूपं सुकृतं स्वधित्यैना एहाः परि पात्रे ददृश्राम् ॥३३॥

भा०—हे महावृक्ष के समान सबको अपनी छाया में आश्रय देने हारे राजन्! तू इन आसन के समान विस्तृत प्रजाओं पर विराजमान हो। और अग्नि अर्थात् राजा के सद्गुणो के बतलाने वाले वेद के सूक्तों और विद्वानो के द्वारा उत्तम रीति से पूजित हो। जिस प्रकार उत्तम शिल्पी अपने बसोले से लकड़ी को घढ घटकर उसका उत्तम रूप बना देता है उसी प्रकार इस राजा रूप वनस्पति को भी परमात्मा ने अपने ऐश्वर्य के धारण सामर्थ्य से रूप, कान्ति, तेज से उत्तम बनाया है।

इसके साथ सहोद्योग करने वाले इसके सहोद्योगी शासक अपने पालन करने वाले इस राजा में ही आश्रित होकर उसके चारों ओर विराजते, दिखाई देते हैं ।

पृथ्व्यां शरत्सु निधिपा अभीच्छात् स्वः पक्वेनाभ्यश्नवातै ।
उपैनं जीवान् पितरश्च पुत्रा एतं स्वर्गं गमयान्तमग्नेः ॥ ३४ ॥

भा०—पृथ्वीरूप राष्ट्र या धन का पालन करने वाला राजा, साठवें वर्ष तक अपने परिपक्व सामर्थ्य से स्वर्ग के समान सुखकारी राज्य को भोग करने की इच्छा करे । अर्थात् राजा अपनी आयु के ६० वर्ष तक पृथ्वी को वश कर उसका भोग करे । और इसका आश्रय लेकर उसके वृद्ध मा बाप और आचार्य लोग और छोटे पुत्र लोग अपना जीवन व्यतीत करें । उसको अग्नि के समान शत्रु के सन्तापकारी राजा के, सबसे अन्तिम पद प्राप्त करने के पश्चात्, स्वर्ग के समान सुखमय राज्य प्राप्त करा ।

'निधिपाः'—पृथिवी ह्येष निधिः । श० ६ । ५ । २ । ३ ॥ तत्पाति इति निधिपाः पृथ्वीपालः ।

धर्ता ध्रियस्व धरुणे पृथिव्या अच्युतं त्वा देवताश्च्यावयन्तु ।
तं त्वा दंपती जीवन्तौ जीवपुत्रावुद् वासयातः पर्यग्निधानात् ॥ ३५ ॥

भा०—हे राजन् ! तू समस्त पृथ्वी या राष्ट्र का धारण करनेहारा होकर पृथिवी के धारण करने के कार्य में या प्रतिष्ठित पद पर स्थापित किया जाय । अपने कर्त्तव्यपथ से कभी च्युत न होने वाले तुझको भी राजसभा के सदस्यगण अपने पद से च्युत करने में समर्थ हैं । ऐसे प्रमादशून्य तुझको अपने जीवित पुत्रों सहित स्वयं जीते हुए गृहस्थ स्त्री-पुरुष पतिपत्नीभाव से बद्ध होकर, अपने गृह में अग्नि-आधान करने अर्थात् ईश्वरोपासन या देवपूजा से उतर कर अन्य लौकिक सब कार्यों के ऊपर तुझे उत्कृष्टपद पर स्थापित करें ।

सर्वान्त्समागा अभिजित्य लोकान् यावन्तः कामाः समतीतृपस्तान्
वि गाहेथामायवनं च दर्विरेकस्मिन् पात्रे अध्युद्धरैनम् ॥३६॥

भा०—हे राजन् ! सब मनुष्यों को तू प्राप्त हो। और अपने उत्तम गुणों से समस्त मनुष्यों को वश करके उनकी जितनी अभिलाषाएं हैं उन सबको सन्तुष्ट कर। पुनः जैसे भात की हांडी मे 'आयवन' नामक घी आदि मिलाने का चमस और 'दर्वि' कडछी घुमाते हैं और फिर एक बडे थाल मे उस भात को निकाल लिया जाता है उसी प्रकार शत्रु और राष्ट्र के हानिकारक पुरुषों के नाश करने वाला पोलीस बल और सेना-बल या दण्डबल और दुष्टों के गर्दों का विदारण करने वाला सेनाबल ये दोनों सर्वत्र विचरण करें। और हे राजन् ! इस राष्ट्र के भार को पालन करने मे समर्थ एक 'महामात्र' या 'महापात्र' नामक पुरुष पर उत्तम रूप से स्थापित कर।

उप स्तृणीहि प्रथय पुरस्ताद् घृतेन पात्रमभि घारयैतत्।
वाश्रेवोस्रा तरुणं स्तनस्युमिमं देवासो अभिहिङ्कृणोत ॥३७॥

भा०—हे राजन् ! तू अपने वीर्य या सामर्थ्य को तेज से सम्पन्न कर। आगे को विस्तृत कर। पालन करने हारे महामात्य को या पालन करने योग्य राष्ट्र को अपने समान प्रदीप्त तेज से युक्त कर। दूधपान करने के इच्छुक बछडे को देख कर रंभाती हुई दुधार गाय जिस प्रकार प्रेम से 'हुम् हुन्' करती है उसी प्रकार इस ओदन रूप वीर्य सम्पन्न परम पद मे स्थित प्रजापति रूप राजा को देखकर हे राजाजनो, शासको ! आप लोग अपने प्रसन्नतासूचक शब्द करो।

उपास्तरीरकरो लोकमेतमुरुः प्रथतामसमः स्वर्गः।
तस्मिं छ्रयातै महिषः सुपर्णो देवा एनं देवताभ्यः प्र यच्छान् ॥३८॥

भा०—हे राजन् ! तू इस लोक को स्वयं उत्तम रूप से बनाता है, और स्वयं उसको फैलाता है। यह लोक जिसके समान दूसरा कोई नहीं

ऐसा सुखमय स्थान खूब बढ़े और फैले, विस्तृत हो। उस लोक में उत्तम पालना करने वाला और ज्ञानसाधनों से सम्पन्न महान् शक्तिशाली राजा स्वयं विद्यमान है। उस राष्ट्र को विद्वान् लोग स्वयं देवता के समान पुरुषों के हाथ सौंप देते हैं।

यद्यज्जाया पचति त्वत् परःपरः पतिर्वा जाये त्वत् तिरः।
सं तत् सृजेथां सह वां तदस्तु संपादयन्तौ सह लोकमेकम् ॥३९॥

भा०—हे पुरुष! पत्नी तुझ पति से दूर दूर रह कर जो जो वस्तु या जिस जिस बलवीर्य को पकाती है, वीर्य को परिपक्व करती है, और हे पत्नि! तुझ से ओझल होकर पति जो कुछ पकाता है, वीर्य को परिपक्व करता है। उसको तुम दोनों पुत्रोत्पादन के कार्य में व्यय करो। हे स्त्री पुरुषो! आप दोनों एक साथ मिल कर एक लोक बनाते रहते हैं, अतः वह परिपक्व वीर्य या भोग्य पदार्थ भी तुम दोनों का एक साथ ही हो।

यावन्तो अस्याः पृथिवीं सचन्ते अस्मत् पुत्राः परि ये संबभूवुः,
सर्वांस्ताँ उप पात्रे ह्वयेथां नाभिं जानानाः शिशवः समायान् ॥४०(१६)

भा०—जितने भी इस हमारी धर्मपत्नी से और हमारे वीर्य से उत्पन्न पुत्र पृथिवी को प्राप्त होते हैं, और जो इधर उधर चारों ओर फैल कर बस गये हैं, या जो अपने योग्य जोड़े मिलाकर और भी सन्तान उत्पन्न कर लेते हैं उन सबको, वे पूर्व के मा बाप एक गृह या भोजन के पात्र में अपने समीप बुला लें। और समस्त शिशु उन मा बाप को एक सूत्र में बांधने वाले जानते हुए एक स्थान पर एकत्र हुआ करें।

वसोर्या धारा मधुना प्रपीना घृतेन मिश्रा अमृतस्य नाभयः।
सर्वास्ता अव रुन्धे स्वर्गः षष्ट्यां शरत्सु निधिपा अभीच्छात् ॥४१॥

भा०—जो मधुर और आनन्द से खूब बढ़ी हुई घी, दूध आदि पदार्थों से युक्त, परमानन्द या शतवर्ष के दीर्घ जीवन को उत्पन्न करने

वाली, देह मे वास करने वाले आत्मा की धारणा शक्तियां एवं जीवन की सुख की धाराएं हैं, उनको स्वर्गमय लोक अपने भीतर सुरक्षित रखता है। ऐसे स्वर्ग को वीर्यरूप निधि और अक्षय सुखों के खजानों की रक्षा करने वाला ब्रह्मचारी या गृहस्थ या पृथ्वी का पालक राजा स्वयं साठ वर्ष की अवस्था मे प्राप्त करता है।

निधिं निधिपा अभ्येनमिच्छादनीश्वरा अभितः सन्तु येऽन्ये ।
अस्माभिर्दत्तो निहितः स्वर्गस्त्रिभिः काण्डैस्त्रीन्त्स्वर्गानरुक्षत् ॥४२॥

भा०—पृथ्वी को पालन करने वाला राजा उस साम्राज्य रूप पृथ्वी के खजाने को प्राप्त करे। और जो दूसरे ऐश्वर्य मे हीन निर्बल पुरुष हैं वे उस राजा के चारों ओर उस के आश्रित होकर रहे। हम लोग स्वयं इस स्वर्ग को उस राजा को प्रदान करते और स्वयं बनाते हैं। यह राजा तीन प्रकार की व्यवस्थाओं से तीनों सुखमय लोकों के ऊपर चढ़े, उन सब पर शासन करे।

बालक, युवक और वृद्ध इन तीनों के लिये तीन प्रकार की व्यवस्थाएं हों। अथवा तीन काण्ड तीन वेद हैं। अथवा उत्तम, मध्यम, अधम भेद से तीन अथवा त्रिवर्णों की तीन व्यवस्थाएं। धर्म, अर्थ, काम इनकी साधना की तीन व्यवस्थाएं। इसी प्रकार उनके तीन क्षेत्र तीन स्वर्ग हैं, आध्यात्मिक, गृहस्थ और राष्ट्र ये तीन स्वर्ग हैं। राजा सबका शासन अपने हाथ में रखे।

अग्नी रक्षस्तपतु यद् विदेवं क्रव्यात् पिशाच इह मा प्र पास्त ।
नुदाम एनमप रुध्मो अस्मदादित्या एनमङ्गिरसः सचन्ताम् ॥४३॥

भा०—जो विद्वानों और देवभाव के उत्तम पुरुषों और राजा अर्थात् राजनियम के विपरीत आचरण करने वाला दुष्ट पुरुष है उसको अग्नि के समान तापकारी राजा सन्तप्त करे। इस राष्ट्र में कच्चा मांस खाने वाला और मांसभक्षी पुरुष कभी जलपान भी प्राप्त न कर पावे।

उसको हम परे भगा दें। हम अपने से परे ही रोक दें, पास न आने दें। आदित्य के समान तेजस्वी और शरीर के विज्ञानवेत्ता अथवा अन्य विविध विज्ञानों के वेत्ता लोग उसको पकड़ें।

आदित्येभ्यो अङ्गिरोभ्यो मध्विदं घृतेन मिश्रं प्रति वेदयामि।
शुद्धहस्तौ ब्राह्मणस्यानिहत्यैतं स्वर्गं सुकृतावपीतम् ॥ ४४ ॥

भा०—आदित्य के समान तेजस्वी पुरुषों और ज्ञानी पुरुषों के लिये, घृत से युक्त मधु अर्थात् मधुपर्क जिस प्रकार अतिथियों को दिया जाता है उसी प्रकार मैं भी तेज से युक्त ज्ञान प्रदान करता हूं। उसी प्रकार हे पति पत्नियो! तुम दोनों भी शुद्ध हाथों से वेद के जानने वाले विद्वान् का पूर्वोक्त मधुपर्क से आदर सत्कार करो। उसको बिना किसी प्रकार का कष्ट दिये उत्तम आचारवान् हुए तुम दोनों इस पूर्वोक्त सुखमय लोक या स्थान को प्राप्त करो।

इदं प्रापमुत्तमं काण्डमस्य यस्माल्लोकात् परमेष्ठी समाप।
आ सिञ्च सर्पिर्घृतवत् समङ्ग्ध्येष भागो अङ्गिरसो नो अत्र ॥४५॥

भा०—मैं राजा इस उत्तम स्तम्भरूप वेद को प्राप्त करता हूं, जिसके प्रकाश से परमस्थान पर स्थित परमात्मा समस्त संसार को अपने वश करता है। हे पुरुष! तू घृत से युक्त मधु को मिश्रित कर। यहां हमारा यह विद्वान् ज्ञानी पुरुषों का यह उचित भाग है।

सत्याय च तपसे देवताभ्यो निधिं शेवधिं परि दद्म एतम्।
मा नो द्यूतेऽव गान्मा समित्यां मा स्मान्यस्मा उत्सृजता पुरा मत् ॥४६॥

भा०—हम राष्ट्रवासी लोग पृथ्वी और पृथ्वी से प्राप्त अन्य नाना द्रव्य रूप खजानों को, सत्य और तप के कारण देवसदृश पुरुषों के हाथों सौंपते हैं। वे इस बात के ज़िम्मेदार हैं कि यह सब खजाना खेल तमाशों और जूए के शौक या व्यसन में न निकल जाय। आपस के मेलों और गोष्ठियों में भी यह राष्ट्र का धन नष्ट न हो। और मेरे सामने हे खजाने के रक्षक भद्रपुरुषो! ऐसे किसी बुरे काम में खजाने को मत दे डालना।

अहं पचाम्यहं ददामि ममेदु कर्मन् करुणेऽधि जाया ।
कौमारो लोको अजनिष्ट पुत्रोऽन्वारभेथां वयं उत्तरावत् ॥४७॥

भा०—मैं राजा अपने बल और वीर्य को खूब परिपक्व करूं। क्योंकि मेरे ही उत्साह से पूर्ण प्रयत्न और कार्य व्यवहार के ऊपर स्त्री और उसके समान पृथ्वी का आश्रय है। वीर्य के परिपक्व होने पर ही जिस प्रकार कुमार पुत्र उत्पन्न होता है उसी प्रकार यह लोक राजा के पुत्र के समान पृथ्वी पर खूब हृष्ट पुष्ट रूप से उत्पन्न होता है। हे स्त्री पुरुषो! तुम दोनो उत्कृष्ट कर्मों से युक्त अपना जीवन बराबर बनाये रक्खो।

न किल्विषमत्र नाधारो अस्ति न यन्मित्रैः सममममान एति ।
अनूनं पात्रं निहितं न एतत् पक्तारं पक्वः पुनरा विशाति ॥४८॥

भा०—इस कार्य में कोई पाप नही और न कोई आधार ही है कि राजा जो अपने मित्रों के संग उनसे अधिक मान पाता हुआ आता जाता है। इसका कारण यह है कि हमारा राजा पालन करने मे समर्थ एव शक्तिशाली है कि जिसमें कोई त्रुटि नहीं है इसलिये वह अन्यों से अधिक मान पाता है। परिपक्व भात जिस प्रकार पकाने वाले के उदर के भीतर ही प्रवेश कर जाता है उसी प्रकार परिपक्व राजा भी उस पकाने वाली प्रजा मे ही प्रविष्ट होकर रहता है।

प्रियं प्रियाणां कृणवाम तमस्ते यन्तु यतमे द्विषन्ति ।
धेनुरनड्वान् वयोवय आयदेव पौरुषेयमप मृत्युं नुदन्तु ॥४९॥

भा०—हे पुरुषो! हम लोग अपने प्रिय बन्धु मित्र और माता, पिता, गुरु आदि को प्रिय लगने वाले हितकार्य ही करें। और जो कोई लोग द्वेष करते या परस्पर प्रेम नहीं करते वे सदा अन्धकार में पड़ें। दुधार गाय और गाड़ी खैंचने मे समर्थ मजबूत बैल और आते हुए नाना प्रकार के अन्न पुरुषों की असामयिक मृत्यु को दूर करें।

सम॒ग्नयो॑ विदु॒र॒न्यो अ॒न्यं य ओष॑धीः सच॑ते॒ यश्च॒ सिन्धू॑न् ।
याव॑न्तो दे॒वा दि॒व्या॒३॒॑तप॑न्ति॒ हिर॑ण्यं॒ ज्योति॒ः पच॑तो बभूव ५० (१७)

भा०—अग्नि के समान ज्ञान से प्रकाशमान विद्वान् एक दूसरे को भली प्रकार जानें। उनमें से जो कोई ओषधियों को एकत्र करता अर्थात् वैद्य का कार्य करता है, और जो कोई सिन्धुओं, नदियों, समुद्रों के व्यापार आदि करता वे भी एक दूसरे को भली प्रकार जानें। जितने भी प्रकाशमान पिण्ड आकाश में प्रकाशित होते हैं उनके समान ही जो विद्वान् ज्ञान में प्रकाशित होते हैं उनको और अपने वीर्य को परिपक्व करने हारे तपस्वी ब्रह्मचारी का तेज सुवर्ण के समान सुन्दर उज्वल हो जाता है।

ए॒षा त्व॒चां पुरु॑षे॒ सं ब॑भूवान॑ग्नाः सर्वे॑ प॒शवो॒ ये अ॒न्ये ।
क्ष॒त्रेणा॒त्मान॒ं परि॑ धापयाथोऽमो॒तं वासो॒ मुख॑मोद॒नस्य॑ ॥ ५१ ॥

भा०—समस्त त्वचाओं में से यह बिना लोम की त्वचा इस मनुष्य पर ही लगी है। और जो अन्य पशु हैं वे सब नंगे न रह कर बालों से ढके हैं। इसलिये हे स्त्री पुरुषो! गृहस्थ लोगो! तुम भी अपने देह को क्षति होने से बचाने वाले घर के बुने वस्त्र से ढांका करो। और घर में बुने वस्त्र द्वारा ही रसोई के भात आदि के मुख को ढाका करो।

यद॒क्षेषु॑ वदा॒ यत् समि॑त्यां॒ यद्वा॒ वदा॒ अनृ॑तं वित्तका॒म्या ।
स॒मा॒नं तन्तु॑म॒भि सं॒वसा॑नौ॒ तस्मि॒न्त्सर्वं॒ शम॑लं सादयाथः ॥५२॥

भा०—द्यूत क्रीडा के अवसरों पर जो झूठ बोलते हो, सभा में जो असत्य बोलते हो और जो असत्य धन की चाह से बोलते हो, हे स्त्री पुरुषो! तुम उस समस्त पाप को उस उस पेशे पर ही लगाते हो। वस्तुतः वह तुम्हारा अपना ही दोष है। तुम दोनों नाप से नापे वस्त्रों को पहना करो।

व॒र्षं व॑नु॒ष्वापि॑ गच्छ दे॒वांस्त्व॒चो धू॒मं पर्युत्पा॑तयासि ।
वि॒श्वव्य॑चा घृ॒तपृ॑ष्ठो भवि॒ष्यन्त्सयो॑निर्लो॒कमुप॑ या॒ह्येत॑म् ॥५३॥

भा०—हे राजन् ! वस्त्र से ही तू वर्षा पर विजय प्राप्त कर अर्थात् वस्त्र का क्षत्र बनाले । और विद्वानो और राजाओ के पास सुन्दर वस्त्र पहन कर जा । धूम जिस प्रकार अग्नि के ऊपर उठा करता है इसी का. वस्त्रो को झण्डे के रूप में ऊपर उडा, फरफरा । तू सर्वत्र प्रसिद्ध होकर तेजस्वी होने की इच्छा करता हुआ अपने उच्चस्थान इस राष्ट्र के जाजन सहित इस उत्तम राष्ट्र को प्राप्त कर ।

अर्वं ... बहुधा वि चक्रे यथा विद आत्मन्नन्यवर्णाम् ।
अ ...जैत् कृष्णा रुशती पुनानो या लोहिनी तां ते अग्नौ जुहोमि ॥५४

भा०—जब अपने में राजा अपने पद से विपरीत पोशाक को देखता है तब वह उत्तम राष्ट्र को प्राप्त करने वाला राजा बहुत प्रकार से अपने वस्त्र भूषा को विविध प्रकार से बनाता है । उजली पोशाक को पहन कर मैली को दूर फेंक देता है, जो लाल पोशाक है उसको मैं पुरोहित अग्नि मे आहुति देता हूं अर्थात् लाल पोशाक अग्नि-रूप राजा को प्रदान करता हूं ।

प्राच्यै त्वा दिशेऽग्नयेऽधिपतयेऽसिताय रक्षित्र आदित्यायेषुमते
एतं परि दद्मस्तं नो गोपायतास्माकमैतोः ।
दिष्टं नो अत्र जरसे नि नेषज्जरा मृत्यवे परि णो ददात्वथ
पक्वेन सह सं भवेम ॥ ५५ ॥

भा०—प्राची दिशा के समान प्रकाश से युक्त तुझे, अग्नि के समान दुष्ट शत्रु के सन्तापकारी अधिपति स्वरूप तुझे, स्वयं बन्धन रहित और रक्षा करनेहारे तुझे और सूर्य के समान चारों दिशाओं मे प्रखर किरणों के समान अपने तीक्ष्ण बाणों से चतुर्दिगन्त विजयी तुझे, हम यह राष्ट्र प्रदान करते हैं । हमारे इस धरोहर की आप लोग रक्षा करो । और हमारी क्रियाओं मे आकर शामिल हुआ करो । इस राष्ट्र मे हमारे निश्चित प्रारब्ध जीवन को तू वृद्ध अवस्था तक नियम से पहुचा । वृद्ध

अवस्था ही हमें मृत्यु को सौंप दे। और उसके पश्चात् हम परिपक्व प्रज्ञ-ज्ञान के साथ पुनः अगले जीवन में उत्पन्न हों।

दक्षिणायै त्वा दिश इन्द्रायाधिपतये तिरश्चिराजये रक्षित्रे यमायेषुमते। एतं० । ० ॥ ५६ ॥

भा०—दक्षिण दिशा के समान बल-शाली, ऐश्वर्यवान् स्वामी, तिर्यग् जन्तुओं की नाना पंक्तियों से सुशोभित पशुपतिस्वरूप सर्व-रक्षक, और सर्व नियामक मृत्यु के समान सर्व प्रेरक या बाणधारी तुझको हम यह राष्ट्र सौंपते हैं। इत्यादि पूर्ववत्।

प्रतीच्यै त्वा दिशे वरुणायाधिपतये पृदाकवे रक्षित्रेऽन्नायेषुमते। एतं ० । ० ॥ ५७ ॥

भा०—पश्चिम दिशा के समान सबको अपने में अस्त करने वाले, सबसे श्रेष्ठ सब पापियों और पापों के निवारक वरुणरूप अधिपति सेनाओं को अपनी आज्ञा में चलाने वाले रक्षक और अन्न, भोग और प्राण के समान सबके प्रेरक तुझको हम यह राष्ट्र सौंपते हैं इत्यादि पूर्ववत्।

उदीच्यै त्वा दिशे सोमायाधिपतये स्वजाय रक्षित्रेऽशन्या इषुमत्यै। एतं० । ० ॥ ५८ ॥

भा०—उत्तर दिशा के समान उन्नत, विशाल, शान्तिदायक चन्द्र और सोमलता के समान शान्तिदायक स्वामी, स्वतः उत्पन्न स्वयम्भू स्वयं अपने अमित सामर्थ्य से बने सबके रक्षक, विद्युत् के समान इषु बल से सम्पन्न तुझको, हम यह राष्ट्र सौंपते हैं। इत्यादि पूर्ववत्।

ध्रुवायै त्वा दिशे विष्णवेऽधिपतये कल्माषग्रीवाय रक्षित्र ओषधीभ्य इषुमतीभ्यः। एतं० । ० ॥ ५९ ॥

भा०—पृथिवी और उसकी तरफ़ की स्थिर रहने वाली दिशा के समान अचल, सर्वव्यापक अधिपति, हरे, लाल, नीले, श्वेत आदि नाना

वर्ण के ओषधि वृक्ष वनस्पतियों की नाना मालाओ को मानो अपने गले मे धारण करने वाले रक्षक और ओषधियां जिस प्रकार रोगों और रोग जन्तुओं को अपने वीर्य से दूर करती हैं उसी प्रकार सब बाधाओ को दूर करने हारे तुझको हम अपना राष्ट्र सौंपते हैं । इत्यादि पूर्ववत् ।

ऊर्ध्वायै त्वा दिशे बृहस्पतयेऽधिपतये श्वित्राय रक्षित्रे वर्षायेषुमते एतं परि दद्मस्तं नो गोपायतास्माकमैतोः । दिष्टं नो अत्र जरसे नि नेषज्जरा मृत्यवे परि णो ददात्वथ पक्वेन सह सं भवेम ६० (१८)

भा०—ऊर्ध्व दिशा के समान अति उन्नत, महान् लोको के स्वामी अधिपति, अति श्वेत परिशुद्ध स्वरूप सर्व पापरहित रक्षक और वर्षण के समान समस्त कामनाओ के पूरक और सबके प्रेरक तुझको हम राष्ट्र सौंपते हैं । इत्यादि पूर्ववत् ।

इति तृतीयोऽनुवाकः ।

[तत्रैकं सूक्तम्, षष्टिश्च ऋचः]

[४] 'वशा' शक्ति

कश्यप ऋषिः । मन्त्रोक्ता वशा देवता । वशा सूक्तम् । १–६, ८–१९, २१–३१, ३३–४१, ४३–५३ अनुष्टुभः । ७ भुरिक् । २० विराट् । ३२ उष्णिग्, बृहतीगर्भा । ४२ बृहतीगर्भा । त्रिपञ्चाशदृचं सूक्तम् ॥

ददामीत्येव ब्रूयादनु चैनामभुत्सत ।
वशां ब्रह्मभ्यो याचद्भ्यस्तत् प्रजावदपत्यवत् ॥ १ ॥

भा०—'वशा' को मांगने-हारे ब्रह्मज्ञान से सम्पन्न विद्वानों को देता हूं ऐसा ही कहे । और वे उसके बाद इस वशा को पहिचान लें, उसका ज्ञान कर लें । 'वशा' का स्वरूप इस सूक्त के अन्त मे दर्शाया गया है ।

प्रजया स वि क्रीणीते पशुभिश्चोप दस्यति ।
य आर्षेयेभ्यो याचद्भ्यो देवानां गां न दित्सति ॥ २ ॥

भा०—जो पुरुष मांगने वाले ऋषियों के पुत्रों और शिष्यों के देवों के योग्य गौ को नहीं प्रदान करना चाहता वह अपनी प्रजाको बेच खाता है, और पशुओं से रहित होकर विनष्ट हो जाता है।

कूटयास्य सं शीर्यन्ते श्लोणया काटमर्दति ।
वण्डया दह्यन्ते गृहाः काणया दीयते स्वम् ॥ ३ ॥

भा०—कूट नीति वाली 'वशा' से पुरुष के सब घर और घरबार के लोग चकनाचूर हो जाते है। लंगडी लूली गौ देने वाला स्वय गढे में गिरता है। कटी फटी, अंगहीन गौ से घर जल जाते है। चक्षुहीन 'गौ' अर्थात् निरुक्त व्याकरणादि व्याख्या के विना वेदवाणी के उपदेश देने से उसका अपना ही धन नष्ट हो जाता है।

विलोहितो अधिष्ठानाच्छक्नो विन्दति गोपतिम् ।
तथा वशायाः संविद्यं दुरदभ्ना ह्युच्यसे ॥ ४ ॥

भा०—इस वशा के मल के स्थान, गुदा से विलोहित नाम का ज्वर गौ के स्वामी को पकड लेता है। और उसी प्रकार 'वशा' के साथ रहने वाले को भी 'विलोहित' नामक ज्वर पकड लेता है। क्योंकि हे वशे! तू कठिनता से दबाई जाने वाली कही जाती है।

पदोरस्या अधिष्ठानाद् विक्लिन्दुर्नाम विन्दति ।
अनामनात् सं शीर्यन्ते या मुखेनोपजिघ्रति ॥ ५ ॥

भा०—इस वशा के पैरों के स्थान से 'छाजन' नामक रोग गौ के स्वामी को हो जाता है। और वह गाय जिन अन्य गौओं को मुख से सूंघ लेती हैं वे सब विना जाने ही विनाश को प्राप्त हो जाती है।

यो अस्याः कर्णावास्कुनोत्या स देवेषु वृश्चते ।
लक्ष्म कुर्व इति मन्यते कनीयः कृणुते स्वम ॥ ६ ॥

भा०—जो इस वशा के दोनों कानों को पीड़ित करता है वह विद्वानों के ऊपर प्रहार करता है। और जो वशा के कानों पर निशान

सलाख या चाकू कैंची से उसका कान काट कर या दागकर केवल यह समझता है कि मैं केवल उस गाय को पहचानने के लिये यह चिह्न-मात्र करता हूं तो वह भी अपने धन को स्वल्प कर लेता है, कम कर लेता है।

यदस्याः कस्मै चिद् भोगाय बालान् कश्चित् प्रकृन्तति ।
ततः किशोरा म्रियन्ते वत्सांश्च घातुको वृकः ॥ ७ ॥

भा०—और यदि कोई आदमी किसी अपने भोग-सिद्धि के लिये इस वशा के बालों को काट लेता है तो फिर उसके कच्ची उमर के बालक मारे जाते हैं और भेड़िया जिस प्रकार बछड़ो को मार डालता है उसी प्रकार जीवन का नाशक मृत्यु या चोर डाकू उसके बच्चों को मार डाला करता है।

यदस्या गोपतौ सत्या लोम ध्वाङ्क्षो अजीहिडत् ।
ततः कुमारा म्रियन्ते यक्ष्मो विन्दत्यनामनात् ॥ ८ ॥

भा०—और यदि इसके गोपालक स्वामी के अधीन रहते हुए कौवा उसके लोमों को नोच लेता है तो भी इस गोपति के कुमार बालक मर जाते हैं और उसको स्वयं विना जाने ही, अकस्मात् राजयक्ष्मा रोग पकड़ लेता है।

यदस्याः पल्पूलनं शकृद् दासी समस्यति ।
ततोऽपरूपं जायते तस्मादव्येष्यदेनसः ॥ ९ ॥

भा०—यदि इस 'वशा' के मूत्र और गोबर को नौकरानी एकत्र मिला दे या इधर उधर फेंक दे तो उस पाप से न छूटकर गौ का स्वामी अप रूप का हो जाता है।

जायमानाभि जायते देवान्त्सब्राह्मणान् वशा ।
तस्माद् ब्रह्मभ्यो देया तदाहुः स्वस्य गोपनम् ॥ १० ॥ (१६)

भा०—'वशा' उत्पन्न होती हुई ही ब्राह्मणों सहित देवों को लक्ष्य करके उत्पन्न होती है। इसलिये वह ब्रह्म के ज्ञानी ब्राह्मणों को दान

कर देनी चाहिये, उसके दान कर देने को ही अपने व अपने धन की रक्षा करना कहते हैं।

य एनां वनिमायन्ति तेषां देवकृता वशा।
ब्रह्मज्येयं तदब्रुवन् य एनां निप्रियायते ॥ ११ ॥

भा०—जो ब्राह्मण लोग इसको मांगने के लिये गऊ के स्वामी के पास आते हैं वह वशा उनके लिये ही ईश्वर ने बनाई है। जो गऊ का स्वामी उसको अपना ही प्रिय धन बना कर रख लेता है उसके ऐसे कर्म को विद्वान् लोग ब्राह्मणों के प्रति अत्याचार ही बतलाते हैं।

य आर्षेयेभ्यो याचद्भ्यो देवानां गां न दित्सति।
आ स देवेषु वृश्चते ब्राह्मणानां च मन्यवे ॥ १२ ॥

भा०—जो गऊ का स्वामी याचना करने हारे ऋषियों के पुत्रों और शिष्यों के निमित विद्वानों की इस गऊ को प्रदान करना नहीं चाहता वह देवताओं पर आघात करता है, और ब्राह्मणों के कोप का पात्र होता है।

यो अस्य स्याद् वशाभोगो अन्यामिच्छेत तर्हि सः।
हिंस्ते अदत्ता पुरुषं याचितां च न दित्सति ॥ १३ ॥

भा०—जो इस गौ के स्वामी का उस 'वशा' द्वारा कोई भोग या निज स्वार्थ प्रयोजन सिद्ध होता है तो उसके लिये वह और दूसरी गौ को प्राप्त करे, क्योंकि 'वशा' यदि दान न की जाय तो उस पुरुष को या गऊ के मालिक को मार देती है और उसको भी मार देती है जो मांगी गई 'वशा' को भी नहीं देना चाहता है।

यथा शेवधिर्निहितो ब्राह्मणानां तथा वशा।
तामेतदच्छायन्ति यस्मिन् कस्मिंश्च जायते ॥ १४ ॥

भा०—जिस प्रकार ब्राह्मणों का कोई खजाना धरोहर रखा है, इसी प्रकार गौ के स्वामी के पास वह 'वशा' उनकी धरोहर है। और

वह जि न किसी विरले पुरुष के पास भी पैदा हो जाती है [उसको इस कारण से ही लेने के लिये आ जाते हैं।

स्वमेतदच्छायान्ति यद् वशां ब्राह्मणा अभि।
यथैनानन्यस्मिन् जिनीयादेवास्या निरोधनम् ॥ १५ ॥

भा०—यदि ब्राह्मण लोग वशा को लेने के लिये आते हैं तो यह तो वे अपना ही धन प्राप्त करने के लिये आते है। इस वशा को अपने यहां ही रोक रखना एक प्रकार से ऐसा है कि जिस प्रकार इन ब्राह्मणों को उनके धन के अतिरिक्त दूसरे पदार्थ के लिये टाल दें या निषेध कर दें।

चरेदेवा त्रैहायणादविज्ञातगदा सती।
वशां च विद्यान्नारद ब्राह्मणास्तर्ह्येष्याः ॥ १६ ॥

भा०—तीन वर्ष तक तो वह 'वशा' अपने बांझपन के रोग के विना जनाये स्वामी के पास विचरती ही है। हे विद्वन्! जब वह वशा को जान ले तब गौ के स्वामी को चाहिये कि वह दान देने के लिये ब्राह्मणों को खोज ले।

य एनामवशामाह देवानां निहितं निधिम्।
उभौ तस्मै भवाशर्वौ परिक्रम्येषुमस्यतः ॥ १७ ॥

भा०—जो देवों के धरोहर रक्खे खजाने रूप इस 'वशा' को 'अवशा' कहता है उसे भव और शर्व दोनों घेर कर उस पर बाण फेंकते हैं।

यो अस्या ऊधो न वेदाथो अस्या स्तनानुत।
उभयेनैवास्मै दुहे दातुं चेदशकद् वशाम् ॥ १८ ॥

भा०—जो गौ का स्वामी उसके थान को और इसके स्तनों को भी नहीं जानता, यदि वह दान करने में समर्थ है तो वह थान और स्तन दोनों से अपने स्वामी को दुग्ध प्रदान करती है।

दुरदभ्नैनमा शये याचितां च न दित्सति ।
नास्मै कामाः समृध्यन्ते यामदत्त्वा चिकीर्षति ॥ १९ ॥

भा०—वह 'वशा' उस स्वामी के पास कठिनता से वश मे आने वाली होकर रहती है जो इनको मागे जाने पर भी नहीं देना चाहता। उसकी कामनाएं और मनोरथ सफल नहीं होते जिस वशा को दान न करके उसको अपने यहां पाले रखना चाहता है।

देवा वशामयाचन् मुखं कृत्वा ब्राह्मणम् ।
तेषां सर्वेषामदद्धेडं न्येति मानुषः ॥ २० ॥ (२०)

भा०—देवगण ब्राह्मण को अपना मुख, प्रमुख, अगुआ ,बना कर वशा की याचना करते हैं। वशा का दान न करता हुआ मनुष्य उन सबके क्रोध और अनादर का पात्र होता है।

हेडं पशूनां न्येति ब्राह्मणेभ्योऽददद् वशाम् ।
देवानां निहितं भागं मर्त्यश्चेन्निप्रियायते ॥ २१ ॥

भा०—देवों के धरोहर रक्खे भाग को यदि मनुष्य अपने काम में लाता है या दवा लेता है तो वह ब्राह्मणों को उस वशा का दान न करके ही पशुओं के भी क्रोध को प्राप्त करता है।

यदन्ये शतं याचेयुर्ब्राह्मणा गोपतिं वशाम् ।
अथैनां देवा अब्रुवन्नेवं ह विदुषो वशा ॥ २२ ॥

भा०—यदि गोपति के पास सौ ब्राह्मण जाकर वशा की याचना करते हैं तब इस वशा को लक्ष्य करके देवगणों ने कहा है कि इस इस प्रकार के विद्वान् को ही यह 'वशा' प्राप्त हो।

य एवं विदुषेऽदत्वाथान्येभ्यो ददद् वशाम् ।
दुर्गा तस्मा अधिष्ठाने पृथिवी सहदेवता ॥ २३ ॥

भा०—जो स्वामी इस प्रकार के उत्तम विद्वान को वशा का दान न करके औरों को वशा का दान कर देता है, तो उसके लिये रहने के स्थान में देवताओं समेत पृथिवी दुःखप्रद हो जाती है।

देवा व॒शामया॑चन् यस्मि॑न्नग्रे॒ प्रजा॑यत ।
तामे॒तां वि॑द्यान्नार॑दः स॒ह दे॒वैरु॒दा॑जत ॥ २४ ॥

भा०—जिस पुरुष के पास प्रथम यह वशा उत्पन्न हुई देवों ने उससे ही 'वशा' को मांगा। पुरुषों का हितकारी विद्वान् तो यही जाने कि उसने उस वशा को देवों के साथ ही हांक कर कर दिया था।

अ॒न॒प॒त्यमल्प॑पशुं व॒शा कृ॑णोति॒ पुरु॑षम् ।
ब्रा॒ह्म॒णैश्च॒ याचि॑तामथैनां नि॒प्रि॒या॒यते॑ ॥ २५ ॥

भा०—जो पुरुष इस वशा को ब्राह्मणों के मांग लेने पर भी अपना धन बनाये रखता है उस पुरुष को वशा सन्तान रहित और थोड़ी पशु सम्पत्ति वाला कर देती है।

अ॒ग्नीषोमा॑भ्यां कामा॑य मि॒त्राय॒ वरु॑णाय च ।
तेभ्यो॑ याचन्ति ब्राह्म॒णास्तेष्वा वृ॑श्च॒तेऽद॑दत् ॥ २६ ॥

भा०—अग्नि और सोम, मित्र और वरुण के प्रयोजन के लिये उन स्वामियों से ब्राह्मण लोग वशा की याचना किया करते हैं। जो पुरुष उनको उस वशा का दान नहीं करता वह उन पर आघात करता है।

याव॑दस्या॒ गोप॑ति॒र्नोप॑शृ॒णुयादृचः॑ स्व॒यम् ।
चरे॑दस्य॒ ताव॒द् गोषु॒ नास्य॑ श्रु॒त्वा गृ॒हे व॑सेत् ॥ २७ ॥

भा०—जब तक इस 'वशा' का स्वामी अपने आप ऋचाओं को नहीं सुन लेता है तब तक वह वशा उसकी गौओं में ही चरा करे। ऋचाएं सुन लेने पर वह वशा इस गोपति के घर में न रहे।

यो अ॑स्या ऋच॑ उप॒श्रुत्याथ॒ गोष्वची॑चरत् ।
आयु॑श्च॒ तस्य॒ भूतिं॑ च दे॒वा वृ॑श्चन्ति हीडि॒ताः ॥ २८ ॥

भा०—जो इस वशा की ऋचाएं, वेदमन्त्र सुन कर उसके बाद भी इस वशा को गौओं में ही चराया करता है, उसकी आयु और धन सम्पति को क्रोधित हुए विद्वान् पुरुष नाश कर डालते हैं।

दुरदभ्नैनमा शये याचितां च न दित्सति ।
नास्मै कामाः समृध्यन्ते यामदत्त्वा चिकीर्षति ॥ १९ ॥

भा०—वह 'वशा' उस स्वामी के पास कठिनता से वश में आने वाली होकर रहती है जो इनको मांगे जाने पर भी नहीं देना चाहता । उसकी कामनाएं और मनोरथ सफल नहीं होते जिस वशा को दान न करके उसको अपने यहां पाले रखना चाहता है ।

देवा वशामयाचन् मुखं कृत्वा ब्राह्मणम् ।
तेषां सर्वेषामददद्धेडं न्येति मानुषः ॥ २० ॥ (२०)

भा०—देवगण ब्राह्मण को अपना मुख, प्रमुख, अगुआ बना कर वशा की याचना करते हैं । वशा का दान न करता हुआ मनुष्य उन सबके क्रोध और अनादर का पात्र होता है ।

हेडं पशूनां न्येति ब्राह्मणेभ्योऽददद् वशाम् ।
देवानां निहितं भागं मर्त्यश्चेन्निप्रियायते ॥ २१ ॥

भा०—देवों के धरोहर रक्खे भाग को यदि मनुष्य अपने काम में लाता है या दबा लेता है तो वह ब्राह्मणों को उस वशा का दान न करके ही पशुओं के भी क्रोध को प्राप्त करता है ।

यदन्ये शतं याचेयुर्ब्राह्मणा गोपतिं वशाम् ।
अथैनां देवा अब्रुवन्नेवं ह विदुषो वशा ॥ २२ ॥

देवा वशामयाचन् यस्मिन्नग्रे अजायत ।
तामेतां विद्यान्नारदः सह देवैरुदाजत ॥ २४ ॥

भा०—जिस पुरुष के पास प्रथम यह वशा उत्पन्न हुई देवो ने उससे ही 'वशा' को मांगा । पुरुषो का हितकारी विद्वान् तो यही जाने कि उसने उस वशा को देवों के साथ ही हांक कर कर दिया था ।

अनपत्यमल्पपशुं वशा कृणोति पुरुषम् ।
ब्राह्मणैश्च याचितामथैनां निप्रियायते ॥ २५ ॥

भा०—जो पुरुष इस वशा को ब्राह्मणो के मांग लेने पर भी अपना धन बनाये रखता है उस पुरुष को वशा सन्तान रहित और थोड़ी पशु सम्पत्ति वाला कर देती है ।

अग्नीषोमाभ्यां कामाय मित्राय वरुणाय च ।
तेभ्यो याचन्ति ब्राह्मणास्तेष्वा वृश्चतेऽददत् ॥ २६ ॥

भा०—अग्नि और सोम, मित्र और वरुण के प्रयोजन के लिये उन स्वामियों से ब्राह्मण लोग वशा की याचना किया करते हैं । जो पुरुष उनको उस वशा का दान नहीं करता वह उन पर आघात करता है ।

यावदस्या गोपतिर्नोपशृणुयादृचः स्वयम् ।
चरेदस्य तावद् गोषु नास्य श्रुत्वा गृहे वसेत् ॥ २७ ॥

भा०—जब तक इस 'वशा' का स्वामी अपने आप ऋचाओं को नहीं सुन लेता है तब तक वह वशा उसकी गौओं मे ही चरा करे । ऋचाए सुन लेने पर वह वशा इस गोपति के घर में न रहे ।

यो अस्या ऋच उपश्रुत्याथ गोष्वचीचरत् ।
आयुश्च तस्य भूतिं च देवा वृश्चन्ति हीडिताः ॥ २८ ॥

भा०—जो इस वशा की ऋचाएं, वेदमन्त्र सुन कर उसके बाद भी इस वशा को गौओं में ही चराया करता है, उसकी आयु और धन सम्पति को क्रोधित हुए विद्वान् पुरुष नाश कर डालते हैं ।

वशा चरन्ती बहुधा देवानां निहितो निधिः ।
आविष्कृणुष्व रूपाणि यदा स्थाम जिघांसति ॥ २९ ॥

भा०—वशा नाना प्रकार से चरती हुई भी देवों की धरोहर, खज़ाना ही है । जब वह वशा अपने रहने के स्थान को मारती, तोड़ती है तभी वह नाना रूपों, स्वभावों को प्रकट करती है ।

आविरात्मानं कृणुते यदा स्थाम जिघांसति ।
अथो ह ब्रह्मभ्यो वशा याच्ञ्याय कृणुते मनः ॥३०॥ (२१)

भा०—जब अपने रहने के स्थान को सींगों और लातों से तोड़ती फोड़ती है और अपने स्वरूप को प्रकट कर देती है तभी निश्चय से वह ब्राह्मणों द्वारा की गई याचना के लिये अपना चित्त करती है, विचारती है।

मनसा सं कल्पयति तद् देवाँ अपि गच्छति ।
ततो ह ब्रह्माणो वशामुपप्रयन्ति याचितुम् ॥ ३१ ॥

भा०—जब वह अपने मन में संकल्प कर लेती है तब वह विद्वानों को भी प्राप्त हो जाती है । उसके बाद ब्राह्मण लोग उस वशा को मांगने के लिये भी आ जाते हैं ।

स्वधाकारेण पितृभ्यो यज्ञेन देवताभ्यः ।
दानेन राजन्यो वशाया मातुर्हेडं न गच्छति ॥ ३२ ॥

भा०—स्वधा रूप अन्न प्रदान करने से पितृ लोगों के, यज्ञ से देवताओं के, दान कर देने से राजा वशा रूप माता के क्रोध का पात्र

को प्रदान कर दी जाय तो इसको भी विद्वान् लोग उस वशा का अप्रदान ही कहते हैं ।

यथाज्यं प्रगृहीतमालुम्पेत् स्रुचो अग्नये ।
एवा ह ब्रह्मभ्यो वशामग्नय आ वृश्चतेऽददत् ॥ ३४ ॥

भा०—जिस प्रकार स्रुवा से अग्नि के निमित्त लिये हुए घृत को अग्नि में न डालकर वापिस ले ले इस प्रकार वह अग्नि के प्रति अपराध करता है, उसी प्रकार विद्वान् ब्रह्मज्ञानियो को वशा का दान न करता हुआ ब्रह्मज्ञानियों के प्रति अपराध करता है ।

पुरोडाशवत्सा सुदुघा लोकेऽस्मा उप तिष्ठति ।
सास्मै सर्वान् कामान् वशा प्रददुषे दुहे ॥ ३५ ॥

भा०—'पुरोडाश' अर्थात् अन्न को बछडा बना कर उत्तम रीति से बहुत फल देने वाली 'वशा' लोक में इस राजा के लिये आ उपस्थित होती है । वह 'वशा' इस अपने दान करने वाले के समस्त कामना करने योग्य फलों को उत्पन्न करती और सब मनोरथ पूर्ण करती है ।

सर्वान् कामान् यमराज्ये वशा प्रददुषे दुहे ।
अथाहुर्नारकं लोकं निरुन्धानस्य याचिताम् ॥ ३६ ॥

भा०—नियन्ता राजा के राज्य में 'वशा' अपने को उत्तम पात्र में प्रदान करने हारे के लिये समस्त मनोऽभिलषित फलों को उत्पन्न करती है । और याचना करने पर भी भोगी गई उस वशा की याचना के प्रति दान न देकर रोक रखने वाले के लिये विद्वान् पुरुष 'नारक' निकृष्ट पुरुषो से पूर्ण लोक ही उसके योग्य बतलाते हैं ।

प्रवीयमाना चरति क्रुद्धा गोपतये वशा ।
वेहतं मा मन्यमानो मृत्योः पाशेषु बध्यताम् ॥ ३७ ॥

भा०—प्रजा उत्पन्न करने का कर्म करती हुई, 'वशा' स्वामी राजा के प्रति बड़ी क्रुद्ध होकर विचरती है और कहती है कि मुझको वन्ध्या मानता हुआ पुरुष मृत्यु के पाशों से बांधा जाय ।

यो वेहतं मन्यमानोऽमा च पचते वशाम् ।
अप्यस्य पुत्रान् पौत्रांश्च याचयते बृहस्पतिः ॥ ३८ ॥

भा०—जो वशा को गर्भोपघातिनी गाय सा मानता हुआ अपने घर पर ही वशा को पका देता, उसका भोग करता है, उसके बेटा, पोतों तक को भी वेदवाणी का पालक भीख मंगवाता है ।

महदेषाव तपति चरन्ती गोषु गौरपि ।
अथो ह गोपतये वशाददुषे विषं दुहे ॥ ३९ ॥

भा०—गौओं में गौ होकर विचरती हुई वह वशा बड़ी पीड़ा अनुभव करती है और प्रदान न करने हारे राजा को वह विष दुहा करती है ।

प्रियं पशूनां भवति यद् ब्रह्मभ्यः प्रदीयते ।
अथो वशायास्तत् प्रियं यद् देवत्रा हविः स्यात् ॥४०॥(२२)

भा०—यदि ब्रह्म के ज्ञानी ब्राह्मणों को वशा प्रदान करदी जाती है तो पशुओं का भी भला ही होता है । और वशा को भी यह प्रिय लगता है कि वह देवों के दान योग्य पदार्थ हो जाय ।

या वशा उदकल्पयन् देवा यज्ञादुदेत्य ।
तासां विलिप्त्यं भीमामुदाकुरुत नारदः ॥ ४१ ॥

भा०—देवों ने यज्ञ से ऊपर आकर जिन 'वशाओं' का स्वयं स्वीकार किया, उनमें से भी उग्र 'विलिप्ति' को विद्वान् पुरुष और भी

कति नु वशा नारद यास्त्वं वेत्थ मनुष्यजाः ।
तास्त्वा पृच्छामि विद्वांसं कस्या नाश्नीयादब्राह्मणः ॥४३॥

भा०—हे नर सब को उपदेश देने वाले ! भला बतलाओ कितनी ऐसी 'वशा' हैं जिनको तू जानता है कि ये मनुष्य से उत्पन्न हैं। उनको तुझ विद्वान् से पूछता हूं और बतला उनमें से किसका ब्राह्मण से अतिरिक्त लोग भोग न करें।

विलिप्त्या बृहस्पते या च सूतवशा वशा ।
तस्या नाश्नीयादब्राह्मणो य आशंसेत भूत्याम् ॥ ४४ ॥

भा०—हे वेदज्ञ ! 'विलिप्ति' और जो 'सूतवशा' वशा को उत्पन्न करने वाली और वशा, इन तीनों का वह ब्राह्मण से अतिरिक्त पुरुष भोग न करे जो समृद्धि की आशा करे।

नमस्ते अस्तु नारदानुष्ठु विदुषे वशा ।
कतमासां भीमतमा यामदत्वा पराभवेत् ॥ ४५ ॥

भा०—हे नरोपदेशक ! तुझे नमस्कार हो । और तत्काल ही वशा को जान लेने वाले विद्वान् को 'वशा' प्राप्त होनी चाहिये। अच्छा, अब यह कहो कि इन उपरोक्त विलिप्ति, सूतवशा और वशा इन तीनों में से कौनसी सब से अधिक भयप्रद है जिसे बिना दिये स्वामी को प्राप्त होता है।

विलिप्ती या बृहस्पतेऽथो सूतवशा वशा ।
तस्या नाश्नीयादब्राह्मणो य आशंसेत भूत्याम् ॥ ४६ ॥

भा०—हे वेदज्ञ ! जो विलिप्ती और सूतवशा और वशा है इत्यादि व्याख्या देखो [मन्त्र स० ४४]

त्रीणि वै वशाजातानि विलिप्ती सूतवशा वशा ।
ताः प्र यच्छेद् ब्रह्मभ्यः सोऽनाव्रस्कः प्रजापतौ ॥ ४७ ॥

भा०—तीन ही वशा के प्रभेद हैं 'विलिप्ती' 'सूतवशा' और

'वशा'। उन तीनों को जो ब्राह्मणों को प्रदान करता है वह प्रजापति के प्रति कोई अपराध नहीं करता।

एतद् वो ब्राह्मणाः हविरिति मन्वीत याचितः।
वशां चेदेनं याचेयुर्या भीमाददुषो गृहे ॥ ४८ ॥

भा०—दान न करने हारे के घर में जो बड़ी भयानक है ऐसी वशा को उस स्वामी के पास जाकर यदि ब्राह्मणगण याचना करते हैं तो मांगने पर स्वामी ऐसा ही जाने और कहे हे ब्राह्मणो! यह तुम्हें 'हवि' अर्थात् दान देने योग्य पदार्थ है।

देवा वशां पर्यवदन् न नोऽदादिति हीडिताः।
एताभिर्ऋग्भिर्भेदं तस्माद् वै स पराभवत् ॥ ४९ ॥

भा०—हमें स्वामी इस वशा को प्रदान नहीं करता इस कारण से क्रुद्ध हुए देवगण इन ऋचाओं से भेद तोड़ फोड़ की मन्त्रणा करते हैं। इसलिये निश्चय से वह अदाता स्वामी पराजय को प्राप्त होता है।

उतैनां भेदो नाददाद् वशामिन्द्रेण याचितः।
तस्मात् तं देवा आगसोऽवृश्चन्नहमुत्तरे ॥ ५० ॥

भा०—और इस वशा को लक्ष्य करके इन्द्र द्वारा याचना किया गया 'भेद' भी वशा को न प्रदान कर इस कारण उस अदाता पुरुष को अपराध के कारण युद्ध में मार काट डालते हैं।

भा०—जो लोग गौ के स्वामी को दूर एकान्त मे ले जाकर बाद मे उससे कहते हैं कि तू वशा का दान मत कर, वे अपनी मूर्खता से ही रुद्र के फेंके हुए बाण के शिकार हो जाते हैं ।

यदि॑ हु॒तां यद्यहु॑ताम॒मा च॒ पच॑ते व॒शाम् ।
दे॒वान्त्सब्रा॑ह्मणानृ॒त्वा जि॒ह्मो लो॒कान्निर्ऋ॑च्छति ॥५३॥ (२६)

भा०—यदि दान दी हो, दान न दी हो तो भी यदि गोपति 'वशा' को अपने ही घर में पकाता, उसे निजी भोग मे लाता है, वह ब्राह्मण सहित देवो के प्रति अपराध करके कुटिलाचारी होकर इस लोक से कष्ट पाकर निकलता है । इस सूक्त मे वशा पद द्वारा "पृथिवी" रूपी गौ का ग्रहण करना चाहिये । मन्त्र २३ में वशा को पृथिवी कहा है । इसका शासन प्रथम राजा के हाथ मे हो (मन्त्र ३२ मे राजन्यः) । इस पृथिवी के शासन से ही राजा की उत्पत्ति हुई है । इसीलिये वशा राजा की माता है (मन्त्र ३२) । परन्तु राजा को चाहिये कि वह पृथिवी का शासन सदा ब्राह्मणों के हाथो सौंप दे । मन्त्रों मे पशु शब्द सामान्य प्रजा का वाची है (मन्त्र ४०) । वशा के तीन भेद कहे हैं । विलिप्ती, सूतवशा और वशा । पृथिवी के शासन का उद्देश्य यदि "निर्लिप्तता" है, भोगों मे लेप का न होना है तो उस उद्देश्य के कारण पृथिवी को "विलिप्ती" कहेंगे । पृथिवी का शासन यदि पृथिवी वासी प्रजाजनो के वश मे है तो उसे "वशा" कहेंगे, चाहे इस शासन का उद्देश्य भोगो मे लिप्तता ही हो । जिस भूभाग मे अभी अभी स्वतन्त्र शासन 'सूत' अर्थात् प्रसूत हुआ है, उत्पन्न हुआ है, उसे 'सूतवशा' कहेंगे । इन तीनो प्रकारो मे राजन्य अर्थात् राजा शासन का मुखिया है, परन्तु इन मे शासन भार ब्राह्मण कोटि के व्यक्तियो पर ही होना चाहिये, यह इस वशासूक्त का भावार्थ है । अन्यथा पृथिवी में विद्रोह उत्पन्न होकर राज्यव्यवस्था का नाश हो जाता है ।

इति चतुर्थोऽनुवाकः ।

[लोक ६४, [illegible]]

'वशा' । उन तीनों को जो ब्राह्मणों को प्रदान करता है वह प्रजापति के प्रति कोई अपराध नहीं करता ।

एतद् वो ब्राह्मणा हविरिति मन्वीत याचितः ।
वशां चेदेनं याचेयुर्या भीमाददुषो गृहे ॥ ४८ ॥

भा०—दान न करने हारे के घर में जो बड़ी भयानक है ऐसी वशा को उस स्वामी के पास जाकर यदि ब्राह्मणगण याचना करते हैं तो मांगने पर स्वामी ऐसा ही जाने और कहे हे ब्राह्मणो ! यह तुम्हें 'हवि' अर्थात् दान देने योग्य पदार्थ है ।

देवा वशां पर्यवदन् न नोऽदादिति हीडिताः ।
एताभिर्ऋग्भिर्भेदं तस्माद् वै स पराभवत् ॥ ४९ ॥

भा०—हमें स्वामी इस वशा को प्रदान नहीं करता इस कारण से क्रुद्ध हुए देवगण इन ऋचाओं से भेद तोड़-फोड़ की मन्त्रणा करते हैं । इसलिये निश्चय से वह अदाता स्वामी पराजय को प्राप्त होता है ।

उतैनां भेदो नाददाद् वशामिन्द्रेण याचितः ।
तस्मात् तं देवा आगसोऽवृश्चन्नहमुत्तरे ॥ ५० ॥

भा०—और इस वशा को लक्ष्य करके इन्द्र द्वारा याचना किया गया 'भेद' भी वशा को न प्रदान करे इस कारण उस अदाता पुरुष को अपराध के कारण युद्ध में मार काट डालते हैं ।

ये वशाया अदानाय वदन्ति परिरापिणः ।
इन्द्रस्य मन्यवे जाल्मा आ वृश्चन्ते अचित्त्या ॥ ५१ ॥

भा०—जो बुरी सलाह देने वाले लोग वशा को दान न करने के लिये कहा करते हैं वे दुष्ट पुरुष अपने अज्ञान या दुष्टचित्तता के कारण इन्द्र के मन्यु के द्वारा विनष्ट हो जाते हैं ।

ये गोपतिं पराणीयाथाहुर्मा ददा इति ।
रुद्रस्यास्तां ते हेतिं परि यन्त्यचित्त्या ॥ ५२ ॥

भा०—जो लोग गौ के स्वामी को दूर एकान्त मे ले जाकर बाद मे उससे कहते हैं कि तू वशा का दान मत कर, वे अपनी मूर्खता से ही रुद्र के फेंके हुए बाण के शिकार हो जाते हैं।

यदि॑ हु॒तां यद्यहु॑ता॒म॒मा च॒ पच॑ते व॒शाम्।
दे॒वान्त्सब्रा॑ह्म॒णानृ॒त्वा जि॒ह्मो लो॒काल्निरृ॑च्छति ॥५३॥ (२६)

भा०—यदि दान दी हो, दान न दी हो तो भी यदि गोपति 'वशा' को अपने ही घर में पकाता, उसे निजी भोग मे लाता है, वह ब्राह्मण सहित देवो के प्रति अपराध करके कुटिलाचारी होकर इस लोक से कष्ट पाकर निकलता है। इस सूक्त मे वशा पद द्वारा "पृथिवी" रूपी गौ का ग्रहण करना चाहिये। मन्त्र २३ में वशा को पृथिवी कहा है। इसका शासन प्रथम राजा के हाथ मे हो (मन्त्र ३२ मे राजन्यः)। इस पृथिवी के शासन से ही राजा की उत्पत्ति हुई है। इसीलिये वशा राजा की माता है (मन्त्र ३२)। परन्तु राजा को चाहिये कि वह पृथिवी का शासन सच्चे ब्राह्मणों के हाथो सौंप दे। मन्त्रों मे पशु शब्द सामान्य प्रजा का वाची है (मन्त्र ४०)। वशा के तीन भेद कहे हैं। विलिप्ती, सूतवशा और वशा। पृथिवी के शासन का उद्देश्य यदि "निर्लिप्तता" है, भोगो मे लेप का न होना है तो उस उद्देश्य के कारण पृथिवी को "विलिप्ती" कहेंगे। पृथिवी का शासन यदि पृथिवी वासी प्रजाजनों के वश मे है तो उसे "वशा" कहेंगे, चाहे इस शासन का उद्देश्य भोगों मे लिप्तता ही हो। जिस भूभाग मे अभी अभी स्वतन्त्र शासन 'सूत' अर्थात् प्रसूत हुआ है, उत्पन्न हुआ है, उसे 'सूतवशा' कहेंगे। इन तीनों प्रकारों मे राजन्य अर्थात् राजा शासन का मुखिया है, परन्तु इन मे शासन भार ब्राह्मण कोटि के व्यक्तियो पर ही होना चाहिये, यह इस वशासूक्त का भावार्थ है। अन्यथा पृथिवी में विद्रोह उत्पन्न होकर राजव्यवस्था का नाश हो जाता है।

इति चतुर्थोऽनुवाकः ।

[तत्रैकं सूक्तम्, ऋचश्च त्रिपञ्चाशत्]

[५] (१) ब्रह्मगवी का वर्णन।

अथर्वाचार्य ऋषिः। सप्त पर्यायसूक्तानि। ब्रह्मगवी देवता। तत्र प्रथमः पर्यायः १, ६ प्राजापत्याऽनुष्टुप्। २ भुरिक्साम्नी अनुष्टुप्। ३ चतुष्पदा स्वराड् उष्णिक् ४ आसुरी अनुष्टुप्। ५ साम्नी पङ्क्तिः। षड्‌ऋचं प्रथमं पर्यायसूक्तम्॥

श्रमे॑ण॒ तप॑सा सृ॒ष्टा ब्रह्म॑णा वि॒त्तर्ते श्रि॒ता ॥ १ ॥

भा०—ब्रह्मगवी अर्थात् ब्राह्मणों द्वारा शासित की गई पृथिवी श्रम और तप से बनती है। ब्राह्मणों द्वारा प्राप्त की गई सत्य में आश्रय पाती है।

स॒त्येनावृ॑ता श्रि॒या प्रावृ॑ता॒ यश॑सा॒ परी॑वृता ॥ २ ॥

भा०—ब्राह्मणों द्वारा प्राप्त की गई सत्य के बल से सुरक्षित होती है। श्री, शोभा और कांति से ढकी होती और वीर्य और तेज और सत् ख्याति से घिरी होती है।

स्व॒धया॒ परि॑हिता श्र॒द्धया॒ पर्यू॑ढा दी॒क्षया॑ गु॒प्ता य॒ज्ञे प्रति॑ष्ठिता लो॒को नि॒धन॑म् ॥ ३ ॥

भा०—ब्राह्मणों द्वारा प्राप्त की गई वह अमृत शक्ति से सुरक्षित, श्रद्धा से ढकी हुई दृढ संकल्प और बल से सुरक्षित रहती है। यज्ञ-भावना में स्थित रहती है तथा प्रकाश उसका धन होता है।

ब्रह्म॑ प॒द॒वा॒यं ब्रा॑ह्म॒णोऽधि॑पतिः ॥ ४ ॥

भा०—वेद उसके स्वरूप को दर्शाने वाला है और वेदज्ञ उसका स्वामी है।

ताम॒ाद॑दा॑नस्य ब्रह्मग॒वीं जि॒नतो॑ ब्राह्म॒णं क्ष॒त्रिय॑स्य ॥ ५ ॥

अप॑ क्रामति सू॒नृता॑ वी॒र्यं॑ पु॒ण्या॑ ल॒क्ष्मीः ॥ ६ ॥ (२४)

भा०—उस ब्रह्मगवी को हर लेने वाले और ब्राह्मण के प्रति बलात्कार करने वाले क्षत्रिय की शुभ सत्य वाणी, बल और पुण्य लक्ष्मी उसे छोड़कर भाग जाती है।

(२)

ऋषिर्देवता च पूर्वोक्ते । ७ साम्नी त्रिष्टुप् । ८-९ आर्च्य नुष्टुप् (८ भुरिक्) । १० उष्णिक् (७—१० एकपदा) । ११ आर्ची निचृत् पङ्क्तिः । पञ्चर्चं द्वितीय पर्यायसूक्तम् ।

ओजश्च तेजश्च सहश्च बलं च वाक् चेन्द्रियं च श्रीश्च धर्मश्च ॥ ब्रह्म च क्षत्रं च राष्ट्रं च विशश्च त्विषिश्च यशश्च वर्चश्च द्रविणं च ॥८॥ आयुश्च रूपं च नाम च कीर्तिश्च प्राणश्चापानश्च चक्षुश्च श्रोत्रं च ॥ ९ ॥ पयश्च रसश्चान्नं चान्नाद्यं चर्तं च सत्यं चेष्टं च पूर्तं च प्रजा च पशवश्च ॥ १० ॥ तानि सर्वाण्यप क्रामन्ति ब्रह्मगवीमाददानस्य जिनतो ब्राह्मणं क्षत्रियस्य ॥ ११ ॥ (२५)

भा०—ब्राह्मण पर बलात्कार करने हारे और उससे ब्रह्मगवी अर्थात् पृथिवी पर ब्राह्मण शासन को बलात् छीनने वाले क्षत्रिय के प्रभाव और तेज, दूसरे को पराजित करने का सामर्थ्य और सेनाबल, वाणी और इन्द्रियें, लक्ष्मी और धर्म, ब्राह्मबल और क्षात्रबल, राष्ट्र और वैश्य प्रजाएं, कांति और यश, वीर्य और धन, आयु और रूप, नाम और कीर्त्ति, प्राण और अपान, दर्शनशक्ति और श्रवणशक्ति, दूध और रस, अन्न और अन्न के भोग करने का सामर्थ्य, ऋत और सत्य, यज्ञ याग और कूप तडागादि धर्म के सब कार्य तथा प्रजाएं और पशु वे सब उसको छोड़ कर चले जाते हैं, नष्ट हो जाते हैं ।

(३)

ऋषिर्देवता च पूर्वोक्ते । १२ विराड्विषमा गायत्री । १३ आसुरी अनुष्टुप् । १४, २६ साम्नी उष्णिक् । १५ गायत्री । १६, १७, १९, २० प्राजापत्याऽनुष्टुप् । १८ याजुषी जगती । २१ २५ साम्नी अनुष्टुप् । २२ साम्नी बृहती । २३ याजुषी त्रिष्टुप् । २४ आसुरी गायत्री । २७ आर्ची उष्णिक् । षोडशर्चं तृतीय सूक्तम् ।

सैषा भीमा ब्रह्मगव्य१घविषा साक्षात् कृत्या कूल्बजमावृता ॥१२॥

भा०—वह यह 'ब्रह्मगवी' अर्थात् पृथिवी पर ब्राह्मण शक्ति की व्यवस्था, इस व्यवस्था के द्वेषी के लिये, हत्याकारी तीव्र विष से युक्त हो जाती है। वह ब्राह्मव्यवस्था के द्वेषी के लिये साक्षात् हिंसा का घातक प्रयोग सिद्ध हो जाता है जो कि पृथिवी वासी जनसमुदाय से उत्पन्न पुरुषों पर आश्रित है। उल्वः = उच्यति समवैति इति उल्वः। 'कु' सम्बन्धी उल्वः कूल्वः तस्माज्जातः कूल्वजः। पृथिवीवासिसमुदायोद्गतनेतृपुरुषः। तमावृता तमावृत्य तिष्ठतीत्यर्थः। कु = पृथिवी।

सर्वाण्यस्यां घोराणि सर्वे च मृत्यवः ॥ १३ ॥

सर्वाण्यस्यां क्रूराणि सर्वे पुरुषवधाः ॥ १४ ॥

भा०—ब्राह्मी व्यवस्था के द्वेपी के लिये सब प्रकार के भयानक कर्म और सब प्रकार के मृत्युभय विद्यमान होते हैं, सब प्रकार के क्रूर कर्म और समस्त प्रकार के पुरुष घात होते हैं।

सा ब्रह्मज्यं देवपीयुं ब्रह्मगव्यादीयमाना मृत्योः पड्वीश आ द्यति ॥ १५ ॥

भा०—ब्रह्मगवी अर्थात् पृथिवी पर ब्राह्मी व्यवस्था उसे छीनी जाकर वेद और वेदज्ञों के विनाशक, विद्वान् पुरुषों के हिंसक पुरुषों को मौत के पञ्जे में या फांसे में फांसकर खण्ड खण्ड कर डालती है।

मेनिः शतवधा हि सा ब्रह्मज्यस्य क्षितिर्हि सा ॥ १६ ॥

भा०—वह 'ब्रह्मगवी' इस ब्राह्मी व्यवस्था को तोड़ने वाले के लिये सैकड़ों प्रकार से वध करने वाली वज्र रूप हो जाती है और वह ब्राह्मी व्यवस्था के घाती पुरुष का निश्चय से क्षय करने हारी होती है।

तस्माद् वै ब्राह्मणानां गौर्दुराधर्षा विजानता ॥ १७ ॥

भा०—इसलिये निश्चय से इस रहस्य को विशेष रूप से जानने वाले पुरुष द्वारा ब्राह्मणों की 'गौ' अर्थात् ब्राह्मी राजव्यवस्था कठिनता से धर्षण की जाती है।

वज्रो धावन्ती वैश्वानर उद्वीता ॥ १८ ॥

भा०—ब्राह्मी व्यवस्था के घातक के लिये, ब्रह्मगवी अर्थात् ब्राह्मी व्यवस्था ही दौडती हुई दीखती है, वह तलवार होकर या अग्नि, बिजुली रूप होकर ऊपर उठती या धधकती है।

हेतिः शफानुत्खिदन्ती महादेवो३ऽपेक्षमाणा ॥ १९ ॥

भा०—अपने (घोड़ों के) खुर ऊपर उठा उठा कर मारती हुई, और क्रूरदृष्टि से देखती हुई मानो साक्षात् महादेव के समान हो जाती है।

क्षुरपविरीक्षमाणा वाश्यमानाभि स्फूर्जति ॥ २० ॥

भा०—छुरे की धार के समान तीक्ष्ण होकर सबको देखती है, और घोर शब्द करती हुई भारी गर्जना करती है।

मृत्युर्हिङ्कृण्वत्युग्रो देवः पुच्छं पर्यस्यन्ती ॥ २१ ॥

भा०—मृत्यु रूप होकर मानो बंभारती है। काल रूप होकर मानो पूछ फटकार रही होती है। (पुच्छ = वायुः, अथर्व० ९।७।८)

सर्वज्यानिः कर्णौ वरीवर्जयन्ती राजयक्ष्मो मेहन्ती ॥ २२ ॥

भा०—ब्राह्मी व्यवस्था के घाती के लिये वह सब प्राणियों का नाश करनेहारी होकर कानों को फटकार रही होती राजयक्ष्मा का भयंकर रोग बन कर मानो वह मूत्र कर रही होती है।

मेनिर्दुह्यमाना शीर्षक्तिर्दुग्धा ॥ २३ ॥

भा०—वज्र या विद्युत् रूप होकर मानो क्षत्रिय द्वारा दुही जाती है। और क्षत्रिय द्वारा पूरी तरह से दुही जाकर वह सिर की तीव्र पीडा रूप हो जाती है।

सेदिरुपतिष्ठन्ती मिथोयोधः परामृष्टा ॥ २४ ॥

भा०—समीप आती हुई वह बल वीर्य का नाश करनेहारी होती है। जब ब्रह्मघाती द्वारा कठोर स्पर्श को प्राप्त करती है तो वह परस्पर युद्ध करने हारे सिपाही के समान भयंकर हो जाती है।

शरव्या मुखेऽपि नह्यमान ऋतिर्हन्यमाना ॥ २५ ॥

भा०—ब्रह्मघ्न द्वारा मुख के बांधे जाने पर अर्थात् प्रजा के बोलने पर प्रतिबन्ध लगा देने पर तीक्ष्ण बाण के समान प्रहार करने हारी होती है। जब वह इसे मारता है तो वह भारी पीड़ा होकर प्रकट होती है।

अघविषा निपतन्ती तमो निपतिता ॥ २६ ॥

भा०—ब्रह्मघ्न द्वारा नीचे गिरती हुई वह ब्रह्मगवी विष से पूर्ण होती है। नीचे गिरी हुई वह साक्षात् मृत्यु के अन्धकार के समान हो जाती है।

अनुगच्छन्ती प्राणानुप दासयति ब्रह्मगवी ब्रह्मज्यस्य ॥२७॥(२६)

भा०—ब्राह्मी व्यवस्था की हानि करने वाले ब्रह्मद्वेषी पुरुष के पीछे पीछे चलकर 'ब्रह्मगवी' उसके प्राणों का नाश कर डालती है।

(४)

ऋषिर्देवता च पूर्ववत्। २८ आसुरी गायत्री। २६, ३७ आसुर्यनुष्टुभौ। ३० साम्नी अनुष्टुप्। ३१ याजुषी त्रिष्टुप्। ३२ साम्नी गायत्री। ३३, ३४ साम्नी-बृहत्यौ। ३५ भुरिक् साम्नी अनुष्टुप। ३६ साम्न्युष्णिक्। ३८ प्रतिष्ठा गायत्री। एकादशर्चं चतुर्थं पर्यायसूक्तम्।

वैरं विकृत्यमाना पौत्राद्यं विभाज्यमाना ॥ २८ ॥

भा०—विविध रूपों से अंग अंग काटी जाती हुई ब्रह्मद्वेषियों के लिये साक्षात् वैर, आपस का कलह बनकर प्रकट होती है। अंग अंग काटकर आपस में बांटली जाती हुई ब्रह्मगवी अर्थात् ब्राह्मणों द्वारा शासित होने योग्य पृथिवी पुत्र, पौत्र आदि को खाजाने वाली हो जाती है।

देवहेतिर्ह्रियमाणा व्यृद्धिर्हृता ॥ २६ ॥

भा०—जब ब्रह्मद्वेषी लोग उस ब्रह्मगवी को हरण कर रहे होते हैं तब वह विद्वानों के अस्त्र के समान उसका नाश करती है। जब वे

उसका हरण कर चुकते हैं तब वह उनके सम्पत्ति के नाश का कारण होती है।

पाप्माधिधीयमाना पारुष्यमवधीयमाना ॥ ३० ॥

भा०—ब्रह्मद्वेषी पुरुष द्वारा अधिकार मे रक्खी हुई ब्रह्मगवी उसके लिये तो पाप के समान है, जो उसे भविष्यत् मे कष्ट का कारण होती है। उससे तिरस्कार को प्राप्त होती हुई ब्रह्मगवी उसके ऊपर कठोर दण्ड के रूप मे उसको आर्थिक, शरीरिक और वाचिक कठोर दण्ड का कारण होती है

विषं प्रयस्यन्ती तक्मा प्रयस्ता ॥ ३१ ॥

भा०—ब्रह्मद्वेषी के द्वारा कष्ट उठाती हुई ब्रह्मगवी उसके लिये विष के समान प्राणनाशक है। अति कठिन कष्ट पाई हुई, सताई हुई वह ज्वर के समान उसके जीवन को दु.खमय बना देनेहारी होती है।

अघं पच्यमाना दुष्वप्न्यं पक्वा ॥ ३२ ॥

भा०—ब्रह्मद्वेषी द्वारा ब्रह्मगवी सताई जाती हुई उसके लिये भयंकर पाप के समान अप्रतिकार अपराध है। और सताई हुई वह बुरे भयकारी स्वप्न के समान रात्रि में भी उसे सुख से नींद न लेने देनेहारी त्रास-कारिणी होती है।

मूलबर्हणी पर्याक्रियमाणा क्षितिः पर्याकृता ॥ ३३ ॥

भा०—ब्रह्मद्वेषी द्वारा ब्रह्मगवी भिन्न भिन्न आकारों में विकृत की जाती हुई उसके मूल का नाश करने वाली होती है और पूर्ण रूप से विकृत करदी गई उसके लिये विनाशरूप है।

असंज्ञा गन्धेन शुगुद्ध्रियमाणाशीविष उद्धृता ॥ ३४ ॥

भा०—ब्रह्मद्वेषी द्वारा सताई गई ब्रह्मगवी उठते हुए गन्ध से उसको हतचेतन और बेहोश करने वाली होती है। उद्धार की जाती हुई उसके लिये शोकरूप है। उधार की हुई ही दाढ़ों में जहर धारने वाले सर्प के समान उसके लिये प्राणहर है।

अभूतिरुपह्रियमाणा पराभूतिरुपहृता ॥ ३५ ॥

भा०—उपहार रूप में दान की जाती हुई ब्रह्मगवी ब्रह्मद्वेषी के लिये समस्त सम्पत्ति को विनाश कर, विपत्ति को लाने वाली है और दान दे दी गई 'ब्रह्मगवी' उसको पराजय करने वाली है।

शर्वः क्रुद्धः पिश्यमाना शिमिदा पिशिता ॥ ३६ ॥

भा०—जब घिसी जा रही हो तो वह साक्षात् प्रलयकारी रुद्र के समान है। जब वह घिस दी गई हो तब वह उसके समस्त सुखों की नाशक, भारी महामारी के समान है।

अवर्तिरश्यमाना निर्ऋतिरशिता ॥ ३७ ॥

भा०—'ब्रह्मगवी' हड़प की जाती हुई ब्रह्मद्वेषी के लिये उसकी सत्ता मिटाने वाली है। और हड़प ली गई वह पाप देवता या मृत्यु के समान भयंकर है।

अशिता लोकाच्छिनत्ति ब्रह्मगवी ब्रह्मज्यमस्माच्चामुष्माच्च ॥ ३८ ॥

भा०—हड़प ली गई 'ब्रह्मगवी' ब्राह्मी व्यवस्था के नाशकारी पुरुष को इस और उस, ऐहिक और पारमार्थिक लोक से उखाड़ फेंकती है।

(५)

ऋषिर्देवता च पूर्वोक्ते। ३९ साम्नी पंक्तिः। ४० याजुषी अनुष्टुप्। ४१, ४६ भुरिक् साम्नी अनुष्टुप्। ४२ आसुरी बृहती। ४३ साम्नी बृहती। ४४ पिपीलिकामध्याऽनुष्टुप्। ४५ आर्ची बृहती। अष्टर्चं पञ्चमं पर्यायसूक्तम्।

तस्या आहननं कृत्या मेनिराशसनं वलग ऊबध्यम् ॥ ३९ ॥

भा०—उस ब्रह्मगवी का मारना घातकारी गुप्त प्रयोग के समान है। उसका खण्ड खण्ड करना घोर वज्र के समान है। उसके भीतर के अन्नादि का नाश करना गुप्त हत्या के प्रयोग के समान है।

अस्वगता परिह्णुता ॥ ४० ॥

भा०—अपने अधिकार से च्युत कर दी गई 'ब्रह्मगवी' अपने गृह और धन संपत्ति से हाथ धो लेना है।

अग्निः क्रव्याद् भूत्वा ब्रह्मगवी ब्रह्मज्यं प्रविश्यात्ति ॥ ४१ ॥

भा०—ब्रह्मगवी ब्रह्मघ्न पुरुष में श्मशानाग्नि के समान घातक होकर प्रविष्ट होती है।

सर्वास्याङ्गा पर्वा मूलानि वृश्चति ॥ ४२ ॥

भा०—इस ब्रह्मद्वेषी के समस्त अंगो और पोरुओ और मूल भी काट देती है।

छिनत्त्यस्य पितृबन्धु परा भावयति मातृबन्धु ॥ ४३ ॥

भा०—इस ब्रह्मघ्न के मां बाप और उनके बन्धुओं को विनाश इकर डालती है और माता और उसके सम्बन्ध के बन्धुओ को भी उससे जुदा करके विनाश कर देती है।

विवाहां ज्ञातीन्त्सर्वानपि क्षापयति ब्रह्मगवी ब्रह्मज्यस्य क्षत्रियेणापुनर्दीयमाना ॥ ४४ ॥

भा०—'ब्रह्मगवी' क्षत्रिय अर्थात् राजा द्वारा यदि फिर भी लौटाई न जाय अर्थात् पृथिवी का शासन यदि ब्राह्मणों के हाथो न सौंप दिया जाय तो वह राष्ट्र के समस्त विवाह सम्बन्धों और समस्त जाति सम्बन्धो का भी विनाश कर डालती है।

अवास्तुमेनमस्वगमप्रजसं करोत्यपरापरणो भवति क्षीयते ॥४५॥
य एवं विदुषो ब्राह्मणस्य क्षत्रियो गामादत्ते ॥ ४६ ॥ (२८)

भा०—इस प्रकार विद्वान् ब्राह्मण की गौ अर्थात् पृथिवी शासन पर अधिकार को जो क्षत्रिय छीन लेता है, वह ब्रह्मगवी उसको मकान रहित, घरवार रहित और प्रजारहित कर डालती है। और वह दूसरे किसी अपने पालन करनेवाले सहायक से भी रहित हो निस्सहाय हो जाता है और नाश को प्राप्त हो जाता, उजड़ जाता है।

(६)

ऋषिर्देवते च पूर्वोक्ते । ४७, ४६, ५१–५३, ५७–५६, ६१ प्राजापत्यानुष्टुभः । ४८ आर्षी अनुष्टुप् । ५० साम्नी बृहती । ५४, ५५ प्राजापत्या उष्णिक् । ५६ आसुरी गायत्री । ६० गायत्री । पञ्चदशर्चं षष्ठं पर्यायसूक्तम् ।

क्षिप्रं वै तस्याहनने गृध्राः कुर्वत ऐलवम् ॥ ४७ ॥

भा०—ऐसे दुष्ट राजा के मारे जाने पर गीध बहुत शीघ्र ही बड़ा कोलाहल करते हैं ।

क्षिप्रं वै तस्यादहनं परि नृत्यन्ति केशिनीराघ्नाना पाणिनोरसि कुर्वाणाः पापमैलवम् ॥ ४८ ॥

भा०—और शीघ्र ही उस राजा की जलती चिता के चारों ओर औरतें बाल खोल खोल कर उसके मरने का विलाप करती हुई, हाथों से छातियों पर दुहत्थड मार कर रोती चीखती हुई, पापसूचक या घोर आर्तनाद करती हुई विकृत नाच करती है ।

क्षिप्रं वै तस्य वास्तुषु वृकाः कुर्वत ऐलवम् ॥ ४९ ॥

भा०—उस राजा के महलों में शीघ्र ही चोर, उचक्के और सियार भेड़िये चीख पुकार मचाया करते हैं ।

क्षिप्रं वै तस्य पृच्छन्ति यत् तदासी३दिदं नु ता३दिति ॥ ५० ॥

भा०—और शीघ्र ही लोग उसके बारे में आश्चर्य से ऐसे प्रश्न करते हैं कि ओह ! इसका तो वह अवर्णनीय वैभव था, बस वह सब यहीं खण्डहर होकर ढेर हुआ पड़ा है ! ! !

छिन्ध्या च्छिन्धि प्र च्छिन्ध्यपि क्षापय क्षापय ॥ ५१ ॥

आददानमाङ्गिरसि ब्रह्मज्यमुप दासय ॥ ५२ ॥

भा०—हे आङ्गिरसि = ब्राह्मण विद्वान् द्वारा शासित की जाने वाली ! दुष्ट राजा को काट डाल, सब ओर से काट डाल, अच्छी प्रकार काट डाल । उजाड डाल, उजाड डाल । ब्राह्मणों के छीनने वाले और नाश करने हारे को विनाश कर डाल ।

वैश्वदेवी ह्यु॒च्यसे॑ कृ॒त्या कूल्ब॑जमावृ॑ता ॥ ५३ ॥

भा०—हे आङ्गिरसि ब्रह्मगवी ! तू निश्चय से वैश्वदेवी अर्थात् सभी दिव्य व्यक्तियों द्वारा शासित की जाने वाली कहाती है। तू पृथिवी वासी जनसमुदाय से उत्पन्न नेताओं द्वारा घिरी हुई कृति शक्तिरूप है।

ओ॒षन्ती॑ स॒मोष॑न्ती॒ ब्रह्म॑णो॒ वज्रः॑ ॥ ५४ ॥

भा०—हे आङ्गिरसि ! तू दहन और सन्ताप देती हुई और खूब जलाती हुई ब्राह्मण की तलवार है।

क्षु॒रप॑वि॒र्मृ॒त्युर्भू॒त्वा वि धा॑व॒ त्वम् ॥ ५५ ॥

भा०—हे आङ्गिरसि ! ब्रह्मगवि ! छुरे के तीक्ष्ण धार वाली होकर, ब्रह्मद्वेषी के लिये मृत्यु होकर, तू दौड, चढ़ाई कर।

आ द॑त्से जिन॒तां वर्च॑ इ॒ष्टं पू॒र्तं चा॒शिषः॑ ॥ ५६ ॥

भा०—हे ब्रह्मगवि ! तू अत्याचारियो के तेज, यज्ञ-याग के फल और कूप, तडाग, धर्मशाला आदि परोपकार के कार्यों के फल और उनकी समस्त आशाओं और कामनाओं को छीन लेती है।

आ॒दाय॑ जी॒तं जी॒ताय॑ लो॒के॒३ऽमुष्मि॒न् प्र य॑च्छसि ॥५७॥

भा०—हानिकारी राजा को पकड कर तू मृत्यु के बाद के दूसरे परलोक में भी उसे हानिकारक पुरुष के हाथों सौंप देती है।

अघ्न्ये॑ प॒द॒वीर्भ॑व ब्राह्म॒णस्या॒भिश॑स्त्या ॥ ५८ ॥

भा०—हे कभी न हत्या के योग्य ब्रह्मगवि ! ब्राह्मण के विरुद्ध होने वाले द्रोह में तू उसकी प्रतिष्ठा, मार्गदर्शक बन कर रह।

मे॒निः श॑र॒व्या॒भव॒ाघाद॒घवि॑षा भव ॥ ५९ ॥

भा०—हे ब्रह्मगवि ! तू वज्ररूप, वाणरूप हो। तू सब अत्याचारों को खा जाने वाली और स्वयं पापी के लिये अप्रतीकार्य विष रूप हो।

अघ्न्ये॒ प्र शिरो॑ जहि ब्रह्म॒ज्यस्य॑ कृ॒ताग॑सो देवपी॒योर॑रा॒धसः॑ ६०

भा०—हे न हत्या के योग्य ब्रह्मगवि ! तू ब्रह्मघाती, अपराधकारी, विद्वानों के हिंसक और अनुदार राजा के शिर को कुचल डाल।

त्वया प्रमूर्णं मृदितमग्निर्दहतु दुश्चितम् ॥ ६१ ॥ (२९)

भा०—हे ब्रह्मगवि ! तुझ द्वारा मारे गये, चकनाचूर किये गये, दुष्ट बुद्धि वाले राजा को अग्नि जला दे ।

(७)

ऋषिर्देवता च पूर्वोक्ते । ६२–६४, ६६, ६८–७० प्राजापत्यानुष्टुभ । ६५ गायत्री । ६७ प्राजापत्या गायत्री । ७१ आसुरी पङ्क्तिः । ७२ प्राजापत्या त्रिष्टुप् । ७३ आसुरा उष्णिक् । द्वादशर्चं सप्तम पर्याय सूक्तम ।

वृश्च प्र वृश्च सं वृश्च दह प्र दह सं दह ॥ ६२ ॥
ब्रह्मज्यं देव्यघ्न्य आ मूलादनुसंदह ॥ ६३ ॥

भा०—हे दिव्य स्वभाव वाली और कभी न मारे जाने योग्य ब्रह्मगवी ! तू ब्राह्मण की हानि करने हारे राजा को काट और अच्छी तरह से काट और खूब अच्छी तरह से काट । जला, अच्छी तरह से जला और खूब अच्छी तरह से जला डाल । उसको तो जड तक फूंक डाल ।

यथायाद् यमसादनात् पापलोकान् परावतः ॥ ६४ ॥
एवा त्वं देव्यघ्न्ये ब्रह्मज्यस्य कृतागसो देवपीयोरराधसः ६५
वज्रेण शतपर्वणा तीक्ष्णेन क्षुरभृष्टिना ॥ ६६ ॥
प्र स्कन्धान् प्र शिरो जहि ॥ ६७ ॥

भा०—हे अघ्न्ये ब्रह्मगवि ! जिस तरह से भी वह स्वेच्छाचारी राजा नियमों के स्थान रूप इस पृथिवी से परे पाप के फलस्वरूप घोर लोकों को चला जावे इस प्रकार तू पाप-कारी, विद्वानों के शत्रु, अनुदार, ब्रह्मघाती राजा के सिर और कन्धों को, सौ पर्वों वाले क्षुर की धार से सम्पन्न तेज वज्र से खूब काट डाल ।

लोमान्यस्य सं छिन्धि त्वचमस्य वि वेष्टय ॥ ६८ ॥
मांसान्यस्य शातय स्नावान्यस्य सं वृह ॥ ६९ ॥

अस्थीन्यस्य पीडय मज्जानमस्य निर्जहि ॥ ७० ॥

सर्वास्याङ्गा पर्वाणि वि श्रथय ॥ ७१ ॥

भा०—इस स्वेच्छाकारी राजा के लोम लोम काट डाल । इसके चमड़े को उधेड़ डाल । इसके मांस के लोथड़ों को काट डाल । इसकी नसों को कचर डाल । इसकी हड्डियों को तोड़ डाल । इसकी चर्बी को सर्वथा नाश कर डाल । इस के सब पोरू पोरू और अङ्ग अङ्ग बिलकुल जुदा जुदा कर डाल ।

अग्निरेनं क्रव्यात् पृथिव्या नुदतामुदोषतु

वायुरन्तरिक्षान्महतो वरिम्णः ॥ ७२ ॥

सूर्य एनं दिवः प्र णुदतां न्योषतु ॥ ७३ ॥ (३०)

भा०—इस स्वेच्छाकारी राजा को श्मशान अग्नि पृथिवी से निकाल बाहर करे और जला डाले । और वायु इस बड़े भारी अन्तरिक्ष से भी परे करे । सूर्य इसको द्यौलोक से भी परे निकाल दे, और जलावे, उसे संतप्त करे ।

इति पञ्चमोऽनुवाकः ।

[तत्रैकं सूक्तम्, ऋचश्च त्रिसप्ततिः]

इति द्वादशं काण्डं समाप्तम् ।

द्वादशे पञ्च सूक्तानि पर्यायाः सप्त पञ्चमे ।

पञ्चानुवाकाश्च ऋचश्चतुरूर्ध्वशतत्रयम् ॥

इति प्रतिष्ठितविद्यालङ्कार–मीमांसातीर्थविरुदोपशोभित–श्रीमत्पण्डितजयदेवशर्मणा विरचितेऽथर्वणो ब्रह्मवेदस्यालोकभाष्ये द्वादशं काण्डं समाप्तम् ।

॥ ओ३म् ॥

अथ त्रयोदशं काण्डम् ।

[१] 'रोहित' रूप से परमात्मा और राजा का वर्णन ।

ब्रह्मा ऋषिः । रोहित आदित्यो देवता । अध्यात्मं सूक्तम् । ३ मरुतः । २८, ३१ अग्निः । ३१ बहुदेवता । ३–५, ९, १२ जगत्यः । १५ अतिजागतगर्भा जगती । ८ भुरिक् । १६, १७ पञ्चपदा ककुम्मती जगती । १३ अतिशाक्वरगर्भातिजगती । १४ त्रिपदा पुरः परशाक्वरा विपरीतपादलक्ष्मा पङ्क्तिः । १८, १९ पञ्चपदा ककुम्मत्यतिजगत्यौ । १८ परशाक्वरा भुरिक् । १९ परातिजगती । २१ आर्षी निचृद् गायत्री । २२, २३, २७ प्रकृताः । २६ विराट् परोष्णिक् । २८–३०, ३२, ३६–४०, ४५–५८ अनुष्टुभः । ५२–५५ पथ्यापङ्क्तिः । ५५ ककुम्मती बृहतीगर्भा । ५७ ककुम्मती । ३१ पञ्चपदा ककुम्मती शाक्वरगर्भा जगती । ३५ उपरिष्टाद् बृहती । ३६ निचृन्महाबृहती । ३७ परशाक्वरा विराट् अतिजगती । ४२ विराड् जगती । ४३ विराड् महाबृहती । ४४ परोष्णिक् । ५९, ६० गायत्र्यौ । १, २, ६, ७, १०, ११, २०, २४, २५, ३२–३४, ३८–४३, ४२–५४, ५६, ५८ त्रिष्टुभः । षष्ट्यृचं सूक्तम् ।

उदेहि वाजिन् यो अप्स्वन्तरिदं राष्ट्रं प्र विश सूनृतावत् ।
यो रोहितो विश्वमिदं जजान स त्वा राष्ट्राय सुभृतं बिभर्तु ॥१॥

भा०—हे अश्ववन्, वीर्यवन् राजन्! तू उदय को प्राप्त हो । जो प्रजाओं के बीच में विद्यमान है वह तू उत्तम शुभ वाणी और व्यवस्था से युक्त इस राष्ट्र में प्रवेश कर । जो लाल रंग की उज्ज्वल पोशाक से सजा हुआ इस समस्त राष्ट्र का निर्माण करता है वह बड़ा व्यवस्थापक राष्ट्र

के हित के लिये उत्तमता से भरण पालन करने में समर्थ जो तू है उसका पालन पोषण करे ।

अध्यात्म में—हे आत्मन् ! तू उदय को प्राप्त हो। शुभ सत्य वाणी से युक्त और प्रकाशमान् इस शरीर राज्य में प्रवेश कर । जो समस्त संसार का बीज वपन करने और उत्पन्न करने वाला, रजोभाव से युक्त उत्पादक परमात्मा, मूल प्रकृति के परमाणुओं में से इस समस्त संसार को उत्पन्न करता है वह शरीर राज्य के लिये उसे धारण करने वाला जो तू है उसकी पालना करे ।

उद्वाज॒ आ ग॑न् यो अ॒प्स्व॑न्तर्वि॒श आ रो॑ह॒ त्वद्यो॑नयो॒ याः ।
सोमं॒ दधा॑नो॒ऽप ओष॑धी॒र्गाश्चतु॑ष्पदो द्वि॒पद॒ आ वे॑शये॒ह ॥ २ ॥

भा०—जो प्रजाओं के भीतर वीर्यवान् या क्षात्ररूप होकर अभ्युदय को प्राप्त है वह तू हे वीर्यवन् राजन् ! उन वैश्य प्रजाओं के ऊपर आरूढ़ होकर शासन कर जो प्रजाएं कि तेरा आश्रय होकर तुझे उत्पन्न करने हारी हैं। तू सर्वप्रेरक बल या राष्ट्र या ऐश्वर्य को धारण करता हुआ इस राष्ट्र में उत्तम जलों, ओषधियों, गौओं, चौपायों और मनुष्यों को भी लाकर बसा ।

अध्यात्म में—हे आत्मन् ! तू शक्तिस्वरूप होकर प्राप्त हो । जो कर्मशील इन्द्रियों के भीतर विराजमान तू इन अन्तर्विष्ट प्राणों के भी ऊपर अधिष्ठातारूप से रह, जो ये सब प्राण कि तेरे आश्रय हैं । तू शक्ति को धारण करता हुआ ओषधियों, गौ आदि पशुओं और मनुष्य को इस संसार में बसा ।

यू॒यमु॒ग्रा म॑रुतः पृश्निमातर॒ इन्द्रे॑ण यु॒जा प्र मृ॑णीत॒ शत्रू॑न् ।
आ वो॒ रोहि॑तः शृणवत् सुदानवस्त्रिष॒प्तासो॑ मरुतः स्वादुसंमुदः ३

पूर्वार्धः अथर्व० ५ । २१ । ११ प्र० द्वि० ॥

भा०—हे भारी मार मारने वाले सैनिको ! आप लोग पृथिवी को अपनी माता स्वीकार करते हुए, राजा की सहायता द्वारा शत्रुओं का

विनाश करो। लाल पोशाक पहने तेजस्वी राजा आप लोगों के विषय सुने कि आप लोग जो कि उत्तम दानशील इक्कीसों प्रकार के मरुद्गण वे उत्तम भोगों में आनन्द लाभ कर रहे हैं।

अध्यात्म में—हे प्राणगण या मुक्त जीवगण ! आप परमात्मा रू माता से उत्पन्न हो। इन्द्र रूप आत्मा के साथ उसके वीर्य से का क्रोध आदि शत्रुओं का नाश करो। वह सर्वोपरि विराजमान परमात्म आपको कल्याण-दानकारी तीर्णतम मोक्ष प्रदेश में सर्पण करने हारे ए परमानन्द रस में आमोद करने हारे तुमको जाने।

रुहो॑ रुरोह॒ रोहि॑त॒ आ रु॑रोह॒ गर्भो॒ जनी॑नां ज॒नुषा॑मु॒पस्थ॑म्।
ताभिः॒ संर॑ब्धम॒न्व॑विन्द॒न् षडु॒र्वीर्गा॒तुं प्र॒पश्य॑न्नि॒ह रा॒ष्ट्रमाहाः॑ ॥४॥

भा०—उदय को प्राप्त होता हुआ राजा उच्च उच्च स्थानों और अधिकारों को प्राप्त करता है। राज्य-शक्ति को अपने हाथ में ग्रहण करने में समर्थ राजा प्राणियों या प्रजाजनों के बीच उच्चतम स्थान को प्राप्त करता है। उन प्रजाओं के प्रयत्नों से बनाये गये राष्ट्र को उनकी अनु-कूलता में ही प्राप्त करता हुआ, छहों विशाल दिशाओं में अपने गमन मार्ग को देखता हुआ, समस्त राष्ट्र को अपने वश में कर लेता है।

अध्यात्म पक्ष में—सर्वोत्पादक परमात्मा आरोहणशील सब जीवों के ऊपर विराजमान है। माताओं के गर्भ के समान वह समस्त प्राणियों के भीतर विराजमान है। उन समस्त प्राणियों द्वारा जाना जाकर ही वह समस्त छहों दिशाओं में व्यापक दिखाई देता है। वह ज्ञान-मार्ग का दर्शन कराता हुआ इस ब्रह्माण्ड में व्याप्त है।

आ ते॑ रा॒ष्ट्रमि॒ह रोहि॑तो॒ऽहार्षी॒द् व्या॑स्थ॒न्मृधो॒ अभ॑यं ते अभूत्।
तस्मै॑ ते द्यावापृथि॒वी रे॒वती॑भिः॒ कामं॑ दुहाथामि॒ह शक्व॑रीभिः ॥५॥

भा०—हे प्रजाजन तेरे राष्ट्र को सर्वोपरि आरूढ सामर्थ्य राजा इस पृथ्वी पर स्वीकार करता है। वह शत्रुओं को नाना प्रकार से मार

करता है। तब तेरे लिये अभय हो जाता है। उस तेरे लिये द्यौ और पृथिवी अपनी धनादि सम्पन्न अति शक्तिशाली शक्तियों या प्रजाओं के साथ इस राष्ट्र मे यथेच्छ मनोरथों को पूर्ण करें।

रोहितो द्यावापृथिवी जजान तत्र तन्तुं परमेष्ठी ततान।
तत्र शिश्रियेऽज एकपादोऽदृंहद् द्यावापृथिवी बलेन ॥ ६ ॥

भा०—सब के उत्पादक परमात्मा ने आकाश और पृथिवी को उत्पन्न किया है। वहां उन दोनो मे प्रजापति परमात्मा ने विस्तारशील प्रकृति को या वायुरूप सूत्र को फैलाया है, प्रकट किया है, उस पर अजन्मा एकमात्र सर्वाश्रय परमात्मा ही स्वयं उसमे आश्रय रूप से वर्तमान रहा। उसने अपने विक्षोभकारी बल से आकाश और पृथिवी को दृढ़ता से स्थापित कर दिया।

रोहितो द्यावापृथिवी अदृंहत् तेन स्वस्तभितं तेन नाकः।
तेनान्तरिक्षं विमिता रजांसि तेन देवा अमृतमन्वविन्दन् ॥ ७ ॥

भा०—उस सर्वोत्पादक परमेश्वर ने द्यौ और पृथिवी को दृढ़ता से स्थिर किया। उसने ही तेजोमय पिण्ड और उसने ही सुखमय लोक थाम रक्खे हैं। और उसी ने वायुमय स्थान और ये समस्त तारे आदि लोक नाना प्रकार के बनाये हैं। उसके अनुग्रह से आत्मदर्शन करनेहारे विद्वान् लोग अविनाशी अक्षय रूप का प्राप्त करते हैं।

वि रोहितो अमृशद् विश्वरूपं समाकुर्वाणः प्ररुहो रुहश्च।
दिवं रूढ्वा महता महिम्ना सं ते राष्ट्रमनक्तु पयसा घृतेन ॥८॥

भा०—हे राजन्! वह सर्वोत्पादक परमात्मा उत्कृष्ट प्रदेशों और उनके उत्पन्न करने के सामर्थ्यों को एकत्र करता हुआ इस विश्व के स्वरूप को नाना प्रकार से बनाता है। और बडे भारी सामर्थ्य से द्यौलोक के भी ऊपर अधिष्ठाता रूप से आरूढ होकर तेरे राष्ट्र को अन्न आदि पुष्टिकारक पदार्थों और तेज से भली प्रकार प्रकाशित करे।

यास्ते रुहः प्ररुहो यास्त आरुहो याभिरापृणासि दिवमन्तरिक्षम्।
तासां ब्रह्मणा पयसा वावृधानो विशि राष्ट्रे जागृहि रोहितस्य ॥९॥

भा०—हे परमात्मन् ! जो तेरी उत्पादक शक्तियां, विशेष बल और प्रत्यक्ष वृत्तियां हैं जिनसे तू द्यौ और अन्तरिक्ष लोकों को पूर रहा है, उन महाशक्तियों के महान् बल से स्वयं सब से बड़ा होकर, तेरे सामर्थ्य से उत्पन्न होने वाले जीव के इस चराचर जगत् मे तू सदा सावधान रहता, उनके कृतकर्मों के फलों की व्यवस्था करता है ।

यास्ते विशस्तपसः संबभूवुर्वत्सं गायत्रीमनु ता इहागुः ।
तास्त्वा विशन्तु मनसा शिवेन संमाता वत्सो अभ्येतु रोहितः ॥ १० ॥ (१)

भा०—हे परमात्मन् ! जो तेरी तुझ में प्रविष्ट प्रजाएं, सत्य ज्ञान से विशेष रूप से सामर्थ्यवान् या उत्पन्न हैं और सब में निवास करने हारे तुझे और प्राणों का त्राण करने हारी तेरी ही शक्ति के पीछे पीछे वे प्रजाएं इस लोक में गमन करती हैं, वे शुभ चित्त से तुझ में ही प्रवेश कर जायं । और तू समस्त विश्व का एकमात्र बनाने हारा, सबमें बसने हारा, सर्वोत्पादक एवं तेजस्वी उनको साक्षात् दर्शन दे ।

राजपक्ष में—हे राजन् ! जो तेरी प्रजाएं तप से सम्पन्न हों और जो गायत्री मन्त्र के विचार द्वारा हृदय में बसे परमात्मा का साक्षात् करती हैं, वे शुभ चित्त से तेरे पास आवें और तू बछड़ा जिस प्रकार माता के पास जाता है उसी प्रकार जो तुझको राजा बनाने वाले हैं, उनके प्रति तू भी जाया कर ।

ऊर्ध्वो रोहितो अधि नाके अस्थाद् विश्वा रूपाणि जनयन् युवा कविः ।
तिग्मेनाग्निर्ज्योतिषा वि भाति तृतीये चक्रे रजसि प्रियाणि ॥११॥

भा०—सर्वोत्पादक परमात्मा सबसे ऊपर विराजमान सुखमय मोक्ष में विद्यमान है । वह सदा युवा, क्रान्त-दर्शी, समस्त प्रकार के

रोचमान पदार्थों को उत्पन्न करता हुआ, प्रकाशस्वरूप अग्नि के समान तीक्ष्ण ज्योति से विविध रूपों से प्रकाशमान होता है। और वही अति अधिक तीर्णतम, सबसे ऊपर के लोकों में भी अति मनोहर पदार्थों को उत्पन्न करता है।

सहस्रशृङ्गो वृषभो जातवेदा घृताहुतः सोमपृष्ठः सुवीरः।
मा मा हासीन्नाथितो नेत् त्वा जहानि गोपोषं च मे वीरपोषं च धेहि ॥ १२ ॥

भा०—वेदों का उत्पादक, समस्त काम्य सुखों का वर्षण करने वाला, सूर्य के समान सहस्रों शृङ्गरूप किरणों से युक्त, घृत की आहुति से प्रदीप्त अग्नि के समान प्रकाशमान, जल को जिस प्रकार सूर्य अपनी किरणों से खेंचता है उसी प्रकार आनन्द को अपने भीतर धारण करने वाला, उत्तम वीर्यवान्, सर्वैश्वर्यवान् परमेश्वर मेरा परित्याग न करे। और हे परमात्मन्! तुझको भी मैं कभी न छोडूं। और तू मुझे गौ आदि पशुओं की सम्पत्ति और वीर-पुत्रों और वीर-पुरुषों की सम्पत्ति प्रदान कर।

रोहितो यज्ञस्य जनिता मुखं च रोहिताय वाचा श्रोत्रेण मनसा जुहोमि
रोहितं देवा यन्ति सुमनस्यमाना स मा रोहैः सामित्यै रोहयतु १३

भा०—सर्वोत्पादक परमात्मा यज्ञ का उत्पादक और मुख अर्थात् उसको प्रारम्भ करने हारा है। उसे मैं वाणी से और कानों से और मन से अपने भीतर धारण करता हूं। दिव्य प्रकाश और ज्ञान से युक्त विद्वान् पुरुष प्रसन्न चित्त होकर उस सर्वोत्पादक परमात्मा के ही शरण में प्राप्त होते हैं। वह नाना जन्मों द्वारा मुझे अपने साथ मिला लेने के लिये उन्नत पद पर चढ़ावे। इसी प्रकार राजा राष्ट्र-यज्ञ का प्रमुख है। उसे हम स्वीकार करें। वह हमें :समिति, सभा के सदस्य प्रदान करे। हमें प्रतिनिधि आदि होने का अधिकार दे।

रोहितो यज्ञं व्यदधाद् विश्वकर्मणे तस्मात् तेजांस्युप मेमान्यागुः।
वोचेयं ते नाभिं भुवनस्याधि मज्मनि ॥ १४ ॥

भा०—सर्वोत्पादक परमात्मा इस विश्व को रचने के लिये समस्त पञ्चभूतों के ससर्ग के कार्यों को नाना प्रकार से करता है। उस परमेश्वर से ही मुझे तेजस्वी पदार्थ और मानसिक तेजोमय ज्ञान प्राप्त होते हैं। हे परमात्मन् ! मैं समस्त संसार के प्रवर्तक बल के भी ऊपर अधिष्ठाता रूप से तेरे ही समस्त संसार को व्यवस्था में बांधने वाले महान् सामर्थ्य को बतलाता हूं।

आ त्वा रुरोह बृहत्युऽत पङ्क्तिरा ककुब् वर्चसा जातवेदः।
आ त्वा रुरोहोष्णिहाक्षरो वषट्कार आ त्वा रुरोह रोहितो रेतसा सह ॥ १५ ॥

भा०—हे ज्ञानमय परमेश्वर ! बृहती छन्द, पंक्ति छन्द, और ककुप्छन्द, तेरे तेज की अधिकता के कारण तेरे ही आश्रय है। उष्णिक् छन्द के अक्षर तुझ पर आश्रित हैं। वैदिक प्राणी भी तेरे ही आश्रय पर है। सर्वोत्पादक और सब बीजमय उत्पादक सामर्थ्य से युक्त सूर्य भी तेरे पर ही आश्रित है।

अयं वस्ते गर्भं पृथिव्या दिवं वस्तेऽयमन्तरिक्षम्।
अयं ब्रध्नस्य विष्टपि स्वर्लोकान् व्यानशे ॥ १६ ॥

भा०—यह परमात्मा पृथिवी के भीतरी भाग को भी आच्छादित करता, उसमें भी व्यापक है, द्यौलोक को भी आच्छादित करता, उसमें भी व्यापक है, और अन्तरिक्ष लोक को भी आच्छादित करता अर्थात् उस में भी व्यापक है। यह सूर्य के विशेष परितप्त भाग में भी व्यापक है। वह आकाश के समस्त लोकों में नाना प्रकार से व्यापक है।

वाचस्पते पृथिवी नः स्योना स्योना योनिस्तल्पा नः सुशेवा।
इहैव प्राणः सख्ये नो अस्तु तं त्वा परमेष्ठिन् पर्यग्निरायुषा वर्चसा दधातु ॥ १७ ॥

भा०—हे वाणी के स्वामी परमेश्वर! हमारे लिये यह पृथिवी सुखकारिणी हो और हमारे लिये हमारा निवासस्थान सुखकारी हो। हमारे सोने के विस्तर भी सुखपूर्वक सेवन करने योग्य हों। हमारा प्राण इस देह मे हमारे साथ मित्र भाव में रहे। हे प्रजापते! उस तुझको अग्नि के समान तेजस्वी ज्ञानी पुरुष, अपने दीर्घ आयु और तेज और बल से अपने में धारण करे।

वाच॑स्पत ऋ॒तवः॒ पञ्च॒ ये नौ॑ वैश्वकर्म॒णाः परि॒ ये सं॑बभू॒वुः।
इ॒हैव प्रा॒णः स॒ख्ये नो॑ अस्तु॒ तं त्वा॑ परमेष्ठि॒न् परि॒ रोहि॑त॒
आयु॑षा॒ वर्च॑सा दधातु ॥ १८ ॥

भा०—हे वाणी के स्वामी परमात्मन्! जो हमारे शरीरो का परिपाक करने हारे या पाच ऋतुएं भी वर्ष मे ऋतुओ के समान शरीर में पाच ज्ञानेन्द्रियें हमारे समस्त कर्मों और क्रियाओं को करने हारे होकर उत्पन्न होते है, वे पाचो इन्द्रियें और प्राण इस देह मे ही हमारे साथ मित्र भाव मे रहे। हे प्रजापते! उस तुझको उच्च गति को प्राप्त ज्ञानी पुरुष, सूर्य के समान आयु और तेज से धारण करे।

वाच॑स्पते सौमन॒सं मन॑श्च गो॒ष्ठे नो॒ गा ज॒नय॒ योनि॑षु प्र॒जाः।
इ॒हैव प्रा॒णः स॒ख्ये नो॑ अस्तु॒ तं त्वा॑ परमेष्ठि॒न् पर्य॒हमायु॑षा॒
वर्च॑सा दधामि ॥ १९ ॥

भा०—हे परमेश्वर! राजन्! हमारे मन मे शुभ संकल्प और हमारी गो-शालाओं मे गौवें और स्त्रियो और गृहो मे प्रजाएं और इस देह मे भी हमारे मित्रभाव मे हमारा प्राण रहे। हे प्रजापते! मैं उस तुझ को अपने तेज और दीर्घ जीवन से अपने मे धारण करता हूं।

परि॑ त्वा धात् सवि॒ता दे॒वो अ॒ग्निर्वर्च॑सा मि॒त्रावरु॑णाव॒भि त्वा॑।
सर्वा॒ अरा॑तीरव॒क्राम॒न्नेहीदं रा॒ष्ट्रम॑करः सू॒नृता॑वत् ॥२०॥ (२)

भा०—हे राजन्! सबका उत्पादक परमेश्वर तेरी सब ओर से रक्षा करे। अग्नि के समान तेजस्वी पुरुष अपने तेज से तेरी रक्षा करे।

स्नेहीजन और शत्रु वारक सेनापति दोनों तेरी रक्षा करें। और तू समस्त शत्रु सेनाओं को अपने नीचे पददलित करता हुआ राष्ट्र को उत्तम ज्ञान और सत्यव्यवहार और सद्व्यवस्था से युक्त बना।

यं त्वा पृषती रथे प्रष्टिर्वहति रोहित।
शुभा यासि रिणन्नपः ॥ २१ ॥

ऋ० ८ । ० । २८ ॥

भा०—हे उच्च पदारूढ ! तेजस्विन् ! लाल पोशाक से सुसज्जित राजन् ! जिस तुझको रथ में लगी चित्र विचित्र वर्ण की घोड़ी ले जाती है, वह तू प्रजाओं को परे हटाता हुआ अति सुन्दर रूप से राष्ट्र में गमन करता है।

अध्यात्म में—हे उच्च गतिप्राप्त जीव ! रमण साधन इस देह में रसों का स्पर्श करने वाली व्यापक चितिशक्ति तुझे ऊर्ध्व मार्ग में ले जाती है, तब तू कर्म बन्धनों को पार करके कल्याण मार्ग में गमन करता है।

अनुव्रता रोहिणी रोहितस्य सूरिः सुवर्णा बृहती सुवर्चाः।
तया वाजान् विश्वरूपां जयेम तया विश्वाः पृतना अभि ष्याम २२

भा०—उन्नतिशील प्रकृति या प्रजा उन्नतिशील या सर्वोत्पादक परमेश्वर या राजा की आज्ञा के अनुकूल चलने हारी हो। वह ईश्वर या राजा विद्वान् है। उत्तम तेजस्वी है। प्रकृति और प्रजा भी सदा वृद्धिशील या महान् है। उससे हम नाना प्रकार के सामर्थ्यों और धनों को प्राप्त करें और उसके बल पर ही समस्त शत्रु सेनाओं पर विजय करें। अर्थात् प्रकृति के वशीकरण से समस्त शत्रुओं पर विजय करें।

इदं सदो रोहिणि रोहितस्यासौ पन्थाः पृषती येन याति।
तां गन्धर्वाः कश्यपा उन्नयन्ति तां रक्षन्ति कवयोऽप्रमादम् ॥२३॥

भा०—प्रकृति परमेश्वर का निवासस्थान है। और उसका रथ

यह मार्ग है जिस मार्ग से व्यापक प्रकृति गति करती है। उस प्रकृति का वेदवाणी के धारण करने वाले ज्ञानी लोग ज्ञान करते हैं। और उसकी क्रान्तदर्शी विद्वान् लोग प्रमाद रहित होकर रक्षा करते हैं।

सूर्यस्याश्वा हरयः केतमन्तः सदा वहन्त्यमृताः सुखं रथम्।
घृतपावा रोहितो भ्राजमानो दिवं देवः पृषतीमा विवेश ॥ २४ ॥

भा०—जिस प्रकार सूर्य के शीघ्रगामी किरण ज्ञान कराने वाले प्रकाश से युक्त होकर अमृत स्वरूप होकर नित्य सूर्य के पिण्ड को सुखपूर्वक धारण करते हैं और जिस प्रकार सूर्य के समान तेजस्वी राजा के झण्डों से सुशोभित घोड़े रथको सुखपूर्वक ढोते हैं, उसी प्रकार सबके प्रकाशक सूर्य रूप परमात्मा के ज्ञान साधनों से युक्त 'हरि' अर्थात् अज्ञानहारी जीव सदा अमर रह कर सुखपूर्वक अपना देह धारण करते हैं। और प्रकाशमान सर्वोत्पादक परमेश्वर स्वयं प्रकाश और ज्ञान का पालक होकर उस चित्रवर्णा, प्रकृति के भीतर प्रवेश करता है।

राजा के पक्ष में—पृषती समृद्ध प्रजा है। शेष स्पष्ट है।

यो रोहितो वृषभस्तिग्मशृङ्गः पर्यग्निं परि सूर्यं बभूव।
यो विष्टभ्नाति पृथिवीं दिवं च तस्माद् देवा अधि सृष्टीः सृजन्ते ॥ २५ ॥

भा०—जो सर्वोत्पादक, सबसे बलशाली और सब कामनाओं का वर्षक, सूर्य के समान तीक्ष्ण किरणों से युक्त अथवा पापियों को तीखे साधनों से पीड़ित करने वाला, अग्नि से भी ऊपर और सूर्य के भी ऊपर विद्यमान है और जो पृथिवी को और द्यौलोक को भी नाना प्रकार से थामे हुए है, उस परमेश्वर के आश्रय से ही समस्त देवगण, पांचों भूत, तन्मात्राएं आदि नाना सृष्टियों को उत्पन्न करते हैं। उसी प्रकार राजा सर्वश्रेष्ठ, तीक्ष्ण बल वाला, सूर्य के समान तेजस्वी होकर सर्व प्राणियों के ऊपर विराजता है।

रोहितो दिवमारुहन्महतः पर्यर्णवात् ।
सर्वा रुरोह रोहितो रुहः ॥ २६ ॥

भा०—प्रकाशवान् जीव मुक्त आत्मा भवसागर से ऊपर मोक्ष स्थान को प्राप्त करता है । और वह अति तेजस्वी होकर सब उच्च भूमियों, प्रतिष्ठाओं और लोकों को प्राप्त करता है ।

वि मिमीष्व पयस्वतीं घृताचीं देवानां धेनुरनपस्पृगेषा ।
इन्द्रः सोमं पिबतु क्षेमो अस्त्वग्निः प्र स्तौतु वि मृधो नुदस्व ॥२७॥

भा०—हे ज्ञानवन्! तू ऋत से पूर्ण, तेज से युक्त, ऋतम्भरा, विशोका, ज्योतिष्मती प्रज्ञा को विशेष रूप से ज्ञान कर प्राप्त कर । यह प्रज्ञा अभ्यासियों की सदा उनके साथ रहने वाली कामधेनु के समान है । विभूति सम्पन्न आत्मा वीर्य शक्ति का पान करे । कल्याण हो । प्रकाशमान योगी पुरुष उस दशा में उत्तम रीति से प्रभु की स्तुति करे । और इस प्रकार तू चित्त के भीतरी शत्रुओं को विविध उपायों से दूर कर ।

समिद्धो अग्निः समिधानो घृतवृद्धो घृताहुतः ।
अभीषाड् विश्वाषाडग्निः सपत्नान् हन्तु ये मम ॥ २८ ॥

भा०—ब्रह्ममय अग्नि इस आत्मा में अब खूब अच्छी तरह प्रदीप्त हो गया है और वह घृत से बढ़ी हुई और घृत की आहुति से प्रदीप्त अग्नि के समान सदा अच्छी प्रकार जलता ही रहे । वही सर्वत्र सब पदार्थों को विजय प्राप्त करने वाला, समस्त विश्व का विजय करने वाला परमेश्वर मेरे काम आदि शत्रुओं को मारे, नाश कर ।

हन्त्वेनान् प्र दहत्वरिर्यो नः पृतन्याति ।
क्रव्यादाग्निना वयं सपत्नान् प्र दहामसि ॥ २९ ॥

भा०—अग्नि के स्वभाव का तेजस्वी पुरुष उन शत्रुओं को मारे और जो शत्रु सेना लेकर हमारा विनाश करता है उसका यह प्राणों

अग्नि अच्छी प्रकार भस्म करे। कच्चा मांस खाने वाले शवाग्नि के समान अति क्रूर स्वभाव के पुरुष द्वारा हम शत्रुओं को जला दिया करें, भस्म कर दिया करें, उनका मूलोच्छेद कर दें।

अवाचीनानवं जहीन्द्र वज्रेण बाहुमान्।
अधा सपत्नान् मामकानग्नेस्तेजोभिरादिषि ॥ ३० ॥ (३)

भा०—हे राजन्! और हे आत्मन्! तू ज्ञानरूप वज्र से बाहुवाला होकर अपने नीचे दबे हुए अन्तःशत्रु कामादि वर्ग को और भी नीचे पटक कर विनाश कर। और मैं अपने अन्त.शत्रुओं को ज्ञानस्वरूप परमेश्वर के तेजो द्वारा अपने वश करता हूं।

अग्ने सपत्नानधरान् पादयास्मद् व्यथया सजातमुत्पिपानं बृहस्पते
इन्द्राग्नी मित्रावरुणावधरे पद्यन्तामप्रतिमन्यूयमानाः ॥ ३१ ॥

भा०—हे ज्ञानमय प्रभो! तू हमारे अन्तःशत्रुओं को नीचे गिरा दे। और हमारे समान बलवाले और हमसे ऊंचे होते हुए इन अन्तःशत्रुओं को हे महान् लोकों के स्वामिन्! तू पीड़ित कर। हे इन्द्र और हे अग्ने! हे मित्र और वरुण! वे शत्रु लोग हमारे प्रति निष्फल क्रोध वाले होकर नीचे गिरें।

उद्यस्त्वं देव सूर्य सपत्नानवं मे जहि।
अवैनानश्मना जहि ते यन्त्वधमं तमः ॥ ३२ ॥

भा०—हे प्रकाशमान् राजन्! हे सूर्य के समान प्रचण्ड तापवान्! तू उदित होता हुआ मेरे शत्रुओं को विनाश कर। और इनको पत्थर के समान अभेद्य वज्र से दण्डित कर। वे नीचे के गहरे अन्धकार को प्राप्त हों।

वत्सो विराजो वृषभो मतीनामा रुरोह शुक्रपृष्ठोऽन्तरिक्षम्।
घृतेनार्कमभ्यर्चन्ति वत्सं ब्रह्म सन्तं ब्रह्मणा वर्धयन्ति ॥ ३३ ॥

भा०—समस्त ब्रह्माण्ड को आच्छादित करने वाला और सब स्तुतियों और ज्ञानों को वहन करने वाला या ज्ञानवान् पुरुषों में से

सबसे श्रेष्ठ वह तेजःस्वरूप होकर अन्तरिक्ष में भी व्यापक है। विद्वान् लोग अर्चा करने योग्य व्यापक परमेश्वर की उपासना या ज्ञानद्वारा स्तुति वन्दना करते हैं। ब्रह्मस्वरूप उस परमेश्वर की वेद द्वारा महिमा का गान करते हैं।

दिवं च रोह पृथिवीं च रोह राष्ट्रं च रोह द्रविणं च रोह।
प्रजां च रोहामृतं च रोह रोहितेन तन्वं सं स्पृशस्व ॥ ३४ ॥

भा०—हे मनुष्य ! तू प्रकाशमय स्थान मोक्ष को प्राप्त हो। साधनसम्पन्न होकर इस पृथिवी लोक को प्राप्त कर, अपने वश कर। राष्ट्र को प्राप्त कर। धन सम्पत्ति को भी प्राप्त कर। प्रजा को प्राप्त कर। शत वर्ष के दीर्घ जीवन या अन्न को प्राप्त कर। और जीवन की समाप्ति पर अपनी आत्मा को सर्वोत्पादक या प्रकाशमान परमात्मा के साथ अच्छी प्रकार जोड़ दे।

ये देवा राष्ट्रभृतोऽभितो यन्ति सूर्यम्।
तैष्टे रोहितः संविदानो राष्ट्रं दधातु सुमनस्यमानः ॥३५॥

भा०—जो विद्वान् लोग राष्ट्र या तेज को धारण करने वाले हैं और सूर्य के चारों ओर ग्रहों के समान सर्वप्रेरक राजा के चारों ओर गति करते हैं, हे पुरुष ! उनसे सत्-मन्त्रणा करता हुआ उच्च पदारूढ़ राजा शुभ संकल्प होकर तेरे राष्ट्र का पोषण करे।

उत् त्वा यज्ञा ब्रह्मपूता वहन्त्यध्वगतो हरयस्त्वा वहन्ति।
तिरः समुद्रमति रोचसेऽर्णवम् ॥ ३६ ॥

भा०—हे परमेश्वर ! तुझे वेदमन्त्रों से पवित्र यज्ञ धारण करते हैं, तेरा गौरव दर्शाते हैं। हरण करने वाले घोड़े, जिस प्रकार मार्ग में रथ को ढो ले जाते हैं, उसी प्रकार मोक्ष मार्ग पर विचरण करने वाले मुक्त जीवगण तुझे अपने हृदय में धारण करते हैं। जीवात्मन ! तू समस्त आनन्दों के सागर परमात्मा को प्राप्त करके इस संसार सागर को पार करके अति प्रकाशित होता है।

राजा के पक्ष में—हरयः = विद्वान् या अश्व । यज्ञ = राष्ट्र ।

रोहिते द्यावापृथिवी अधि श्रिते वसुजिति गोजिति संधनाजिति ।
सहस्रं यस्य जनिमानि सप्त च वोचेयं ते नाभिं भुवनस्याधि मज्मनि ॥ ३७ ॥

भा०—समस्त प्राणियों और उनके बसने के लोको को अपने वश करने हारे इन्द्रियों, प्राणो, समस्त सूर्य लोकों को अपने वश करने वाले और समस्त उत्तम विभूति और ऐश्वर्यों को वश करने वाले, सर्वोत्पादक परमेश्वर मे द्यौ और पृथिवी लोक आश्रित हैं । जो कि सहस्रों लोकों और सात प्राणो से युक्त देह मे प्रकट हो रहा है । मैं तो समस्त संसार के बलों मे तेरे ही बल को मुख्य कहता हूँ ।

राजा के पक्ष मे—द्यावापृथिवी—नरनारी और राजा प्रजा ।

यशा यासि प्रदिशो दिशश्च यशाः पशूनामुत चर्षणीनाम् ।
यशाः पृथिव्या अदित्या उपस्थेऽहं भूयासं सवितेव चारुः ॥ ३८ ॥

भा०—हे ईश्वर ! हे राजन् ! यशस्वी होकर तू मुख्य दिशाओं और उपदिशाओं में भी प्रयाण करता है । पशुओं और मनुष्यों के बीच में भी तू ही सबसे अधिक यशस्वी है । अखण्ड पृथिवी की गोद में मैं भी यशस्वी होकर सूर्य के समान प्रकाशमान, उत्तम होकर रहूं ।

अमुत्र सन्निह वेत्थेतः संस्तानि पश्यसि ।
इतः पश्यन्ति रोचनं दिवि सूर्यं विपश्चितम् ॥ ३९ ॥

भा०—हे प्रभो ! आप दूर रहकर यहा की सब कुछ बातें जानते हो और यहा रह कर भी उन दूर के कार्यों को देखते हो । द्यौलोक में सूर्य के समान प्रकाशमान, एव समस्त कामो को जानने वाले आपको, प्रकाशमान रूप मे, इस लोक के तत्वदर्शी साक्षात् दर्शन करते हैं ।

देवो देवान् मर्चयस्यन्तश्चरस्यर्णवे ।
समानमग्निमिन्धते तं विदुः कवयः परे ॥ ४० ॥ (४)

भा०—हे प्रभो ! तू प्रकाशमान एवं सब जगत् का खिलाडी होकर, समस्त दिव्य पदार्थों को चला रहा है और स्वयं इस महान् आकाश को भी व्याप्त है । क्रान्तदर्शी लोग उसके समान तेजःस्वरूप अग्नि को यज्ञों से प्रदीप्त करते हैं । और दूसरे क्रान्तदर्शी लोग उसी का साक्षात् ज्ञान करते हैं ।

राजा के पक्ष में—देव = राजा । देवान् = शासकों को । अर्णवे = राष्ट्र में । अग्नि = अग्रणी नेता ।

अवः परेण पर एनावरेण पदा वत्सं बिभ्रती गौरुदस्थात् ।
सा कद्रीची कं स्विदर्धं परागात् क्व स्वित् सूते नहि यूथे अस्मिन् ॥४१

अथर्व० ९ । ९ । १७ ॥

भा०—गौ जिस प्रकार अपने चरण से बछड़े को धारण करती हुई उसको अपना रसपान कराती है, उसी प्रकार परम पद मोक्ष से या दूर से दूर लोक से समीप से समीपतम स्थान तक और इस समीपतम स्थान से अति दूर प्रदेश तक व्यापक, बसनेहारे संसार या समस्त जीव लोक को अपने ज्ञान या व्यापक सामर्थ्य से धारण करती हुई वह परमेश्वरी शक्तिरूप कामधेनु खड़ी है । वह परम शक्ति किस प्रकार की है ? किस महान् समृद्ध परम पुरुष में आश्रित है ? और वह किस आश्रय पर सृष्टि को उत्पन्न करती है ? वह परमेश्वरी शक्तिरूप कामधेनु इस सामान्य गोयूथ अर्थात् विकाररूप महदादि में से नहीं है ।

एकपदी द्विपदी सा चतुष्पद्यष्टापदी नवपदी बभूवुषी ।
सहस्राक्षरा भुवनस्य पङ्क्तिस्तस्याः समुद्रा अधि वि क्षरन्ति ॥४२॥

भा०—वह एक चरण वाली अर्थात् एक रूप, एक मात्र है । और वह दो पदों वाली है अर्थात् चेतन और अचेतन, निरुक्त अनिरुक्त, सत् असत् या व्यक्त अव्यक्त ये दो स्वरूप उसके दो पद हैं । वह चार पद, धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष वाली अथवा चतुष्पद ब्रह्मरूप है । वही आठ

पदों वाली चार वर्ण, चार आश्रमों से सम्पन्न अथवा भूमि, आपः आदि आठ प्रकृतियों से युक्त है। और वह नव प्राणरूप रहती हुई समस्त संसार के लिये हजारों अक्षय शक्तियों को देने वाली है। वही सृष्टि की परिपाक क्रिया करने हारी है। उससे ही ये बड़े बड़े रससागर समुद्र भी वह रहे हैं।

आरोहन् द्यामुमृतः प्राव मे वचः ।
उत् त्वा यज्ञा ब्रह्मपूता वहन्त्यध्वगतो हरयस्त्वा वहन्ति ॥ ४३ ॥

भा०—हे परमात्मन्! तू प्रकाशमय मोक्षलोक को प्राप्त करता हुआ सदा अमृत स्वरूप मेरी प्रार्थना रूप वाणी को उत्तम रीति से पूर्ण कर। तुझको वेद मन्त्रों से पवित्र समस्त यज्ञ उत्कृष्ट रूप से धारण करते हैं। अथवा ब्रह्मध्यान से पवित्र आत्मागण तुझे प्राप्त करते हैं। और मोक्ष मार्ग में जाने वाले मुक्त जीव भी तुझे प्राप्त करते हैं।

वेद तत् ते अमर्त्य यत् त आक्रमणं दिवि ।
यत् ते सुधस्थं परमे व्योमन् ॥ ४४ ॥

भा०—हे मरण धर्म से रहित आत्मन्! उस अपने स्वरूप को तू जान, जिससे तेरा तेजोमय मोक्षलोक में गमन हो। और उसको भी जान जो तेरे सदा साथ रहने वाला परम-आत्मा विशेष रक्षा करनेहारे मोक्ष रूप में विद्यमान है।

सूर्यो द्यां सूर्यः पृथिवीं सूर्य आपोऽति पश्यति ।
सूर्यो भूतस्यैकं चक्षुरा रुरोह दिवं महीम् ॥ ४५ ॥

भा०—वह महान् सूर्य सम तेजस्वी परमेश्वर द्यौलोक को, वही पृथिवी को और वही प्रकृति के सूक्ष्म परमाणुओं को भी सूक्ष्मरूप से उनमें व्याप्त होकर उनको देख रहा है। इस उत्पन्न जगत् का एकमात्र द्रष्टा भी वही परमेश्वर है। वह विशाल द्यौलोक में व्याप्त है।

रोहित का महान् यज्ञ।

उर्वीरासन् परिधयो वेदिर्भूमिरकल्पत ।
तत्रैतावग्नी आधत्त हिमं घ्रंसं च रोहितः ॥ ४६ ॥

भा०—विशाल बड़ी बड़ी दिशाएं पृथ्वीरूप वेदि के परकोट हैं और यह भूमि वेदि बन गई। उस भूमिरूप वेदि मे इन दो प्रकार के अग्नियों को सर्वोत्पादक परमेश्वर स्थापित करता है, इनमें से एक शीत-काल है और दूसरा ग्रीष्मकाल है।

हिमं घ्रंसं चाधाय यूपान् कृत्वा पर्वतान् ।
वर्षाज्यावग्नी ईजाते रोहितस्य स्वर्विदः ॥४७॥

भा०—योगीजन शीतकाल और ग्रीष्मकाल इन दोनों अग्नियों को आधान करके और पर्वतों को 'यूप' नामक स्तम्भरूप मान कर, दोनों अग्नियों में वर्षा को घृत मान प्राप्त कर, सुखमय और सर्वोत्पादक प्रभु का भजन करते हैं।

स्वर्विदो रोहितस्य ब्रह्मणाग्निः समिध्यते ।
तस्माद् घ्रंसस्तस्माद्धिमस्तस्माद् यज्ञोऽजायत ॥ ४८ ॥

भा०—सुखमय और सर्वोत्पादक परमेश्वर के दिये वेद के ज्ञान के द्वारा यह महान् अग्नि प्रदीप्त किया जाता है। उसमे ही यह ग्रीष्म और उससे ही शीत और उससे ही यह महान् संवत्सर रूप यज्ञ उत्पन्न हुआ करता है।

ब्रह्मणाग्नी वावृधानौ ब्रह्मवृद्धौ ब्रह्माहुतौ ।
ब्रह्मेद्धावग्नी ईजाते रोहितस्य स्वर्विदः ॥ ४९ ॥

भा०—वेद से निरन्तर वृद्धि को प्राप्त होते हुए पूर्वोक्त 'हिम' और 'घ्रंस' ब्रह्म वेद ज्ञान मे परिपुष्ट और ब्रह्म, वेदज्ञ विद्वान् द्वारा आहुति दिये गये ब्रह्म द्वारा अति दीप्त अग्नियों के समान स्वः = प्रकाशस्वरूप

आत्मा को प्राप्त करने वाले मोक्षपद पर आरूढ आदित्य समान योगी के भी योग यज्ञ को सम्पादन करते हैं ।

सत्ये अन्यः समाहितोऽप्स्वन्यः समिध्यते ।
ब्रह्मेद्धावग्नी ईजाते रोहितस्य स्वर्विदः ॥ ५० ॥ (५)

भा०—प्राण और अपान, इनमें से एक सत्यज्ञान प्राप्त करता, दूसरा कर्मेन्द्रियों से युक्त रहता है । वे दोनों इस देह में ब्रह्म सुख तक पहुंचने वाले योगी के लिये ब्रह्माग्नि से दीप्त होकर यज्ञ संपादन करते हैं ।

यं वातः परि शुम्भति यं वेन्द्रो ब्रह्मणस्पतिः ।
ब्रह्मेद्धावग्नी ईजाते रोहितस्य स्वर्विदः ॥ ५१ ॥

भा०—जिस प्राण को वायु अलंकृत करता है और जिस अपान को वेद, अन्न और प्राण का पालक इन्द्र अर्थात् जीवात्मा सुशोभित करता है, वे दोनों हिम और 'घ्रंस', वेद द्वारा प्रज्वलित अग्नियों के समान स्वयं प्रदीप्त होकर, प्रकाशस्वरूप ब्रह्म को प्राप्त होने वाले मोक्ष पद में आरूढ योगी के देह में यज्ञ का संपादन करते हैं ।

वेदिं भूमिं कल्पयित्वा दिवं कृत्वा दक्षिणाम् ।
घ्रंसं तदग्निं कृत्वा चकार विश्वमात्मन्वद् वर्षेणाज्येन रोहितः ॥५२

भा०—भूमि को वेदि बनाकर और द्यौलोक को 'दक्षिणा' करके और 'घ्रंस' को अग्नि बनाकर सर्वोत्पादक परमात्मा वर्षारूप 'आज्य' से समस्त विश्व को अपनी चेतना शक्ति से युक्त करता है ।

वर्षमाज्यं घ्रंसो अग्निर्वेदिर्भूमिरकल्पत ।
तत्रैतान् पर्वतानग्निर्गीर्भिरूर्ध्वाँ अकल्पयत् ॥ ५३ ॥

भा०—इस महान् यज्ञ में वर्षा घृत के समान है । ग्रीष्म का सूर्य ही अग्नि के समान है । और भूमि को वेदि बनाया गया है । और उस विश्वमय विराट् यज्ञ में इन पर्वतों को अग्निरूप परमेश्वर ने अपनी

उद्गिरण करने वाली शक्तियों से ऊँचा बनाया है। पृथ्वी की भीतरी अग्नि ज्वालामुखी रूप से फूट फूट कर भूतल को विषम करती है। पृथ्वी के स्तर टूट २ कर पर्वत और खोहें बनती हैं।

गीर्भिरूर्ध्वान् कल्पयित्वा रोहितो भूमिमब्रवीत्।
त्वयीदं सर्वं जायतां यद् भूतं यच्च भाव्यम् ॥ ५४ ॥

भा०—अपनी उद्गिरण करने वाली शक्तियों से उच्च प्रदेशों को रचकर सर्वोत्पादक परमात्मा भूमि के प्रति कहता है कि जो उत्पन्न हुए और जो उत्पन्न होने योग्य पदार्थ हैं यह सर्व तुझ में ही उत्पन्न हों।

स यज्ञः प्रथमो भूतो भव्यो अजायत।
तस्माद्ध जज्ञ इदं सर्वं यत् किं चेदं विरोचते रोहितेन ऋषिणाभृतम् ॥ ५५ ॥

भा०—वह महान् यज्ञ सबसे प्रथम, सब से श्रेष्ठ, महान् संसार रूप में उत्पन्न और निरन्तर होने वाला सम्पन्न हुआ। उस महान् यज्ञ से यह समस्त संसार उत्पन्न हुआ जो कि यह नाना प्रकार से दे रहा है, और जिसको सर्वोत्पादक ऋषि अर्थात् क्रान्तद्रष्टा अन्तर्यामी परमेश्वर धारण कर रहा है।

यश्च गां पदा स्फुरति प्रत्यङ् सूर्यं च मेहति।
तस्य वृश्चामि ते मूलं न च्छायां करवोऽपरम् ॥ ५६ ॥

भा०—जो पुरुष वाणी को या मातृभूमि को चरण से ठुकराता, उसका अपमान करता है और सूर्य सम तेजस्वी गुरु के सामने मूत्र करता है ऐसे पुरुष के कुसंस्कार के मूल को मैं विनाश करता हूं, जिसमे उसके बाद इस प्रकार की अपमानजनक क्रिया न कर पावे।

यो माभिच्छायमत्येषि मां चाग्निं चान्तरा।
तस्य वृश्चामि ते मूलं न च्छायां करवोऽपरम् ॥ ५७ ॥

भा०—हे पुरुष ! जो तू मुझ गुरु को अपनी छाया मुझ पर फेंकता हुआ मेरा अतिक्रमण करे और यदि मुझ अग्निमय आचार्य को अन्तरित

करके गुज़रे, ऐसे तेरे कुसंस्कार के मूल को काट डालूं, जिससे तू फिर ऐसी अपमानजनक क्रिया न करे।

यो अद्य देव सूर्य त्वां च मां चान्तरायति ।
दुष्वप्न्यं तस्मिञ्छमलं दुरितानि च मृज्महे ॥ ५८ ॥

भा०—हे परमेश्वर, राजन्, गुरो ! हे सूर्य के समान प्रकाशक ! जो आज तेरे और मेरे बीच में आ जाय उसमे स्थित कुवासना, बुरी पापवासना और दुष्ट संकल्पों को हम धो डालें।

मा प्र गाम पथो वयं मा यज्ञादिन्द्र सोमिनः ।
मान्त स्थुर्नो अरातयः ॥ ५६ ॥ ऋ० १०।५७।१ ॥

भा०—हम लोग सत् मार्ग से कभी विचलित न हों। हे परमेश्वर ! परमानन्दरूप वाले परमेश्वर की उपासना से हम कभी च्युत न हों। और भीतर हमारे काम क्रोध आदि शत्रु लोग हम पर कभी आक्रमण न करें।

यो यज्ञस्य प्रसाधनस्तन्तुर्देवेष्वाततः ।
तमाहुतमशीमहि ॥ ६० ॥ (६)

ऋ० १० । ५७ । २ ॥

भा०—जो इस पूर्वोक्त महान् विश्वमय यज्ञ का संचालन करने-हारा, तन्तु के समान सबको बांधने हारा होकर, समस्त प्राणों और समस्त लोकों और दिव्य पदार्थों में फैला हुआ है, उस अति आदर योग्य, पूजनीय आनन्दमय प्रभु को हम प्राप्त करें, उसका दिये का भोग करें या आनन्द-रसरूप उस को अपनी आत्मा में आहुति करके उसका भोग करें।

इति प्रथमोऽनुवाकः ।

[तत्र सूक्तमेकं, षष्टिश्च ऋचः ।]

[२] रोहित परमेश्वर और ज्ञानी ।

ब्रह्मा ऋषिः । अध्यात्म रोहितादित्यो देवता । १, १२—१५, ३६—४१ अनुष्टुभः । २—३, ८, ४३ जगत्यः । १० आस्तारपङ्क्तिः । ११ बृहतीगर्भा । १६—२४ आर्षी गायत्री । २५ ककुम्मती आस्तारपङ्क्तिः । २६ पुरोद्व्यतिजागता भुरिक् जगती । २७ विराड् जगती । २९ बार्हतगर्भाऽनुष्टुप् । ३० पञ्चपदा उष्णिग्गर्भाऽतिजगती । ३४ आर्षी पङ्क्ति । ३७ पञ्चपदा विराड्गर्भा जगती । ४४, ४५ जगत्यौ [४४ चतुष्पदा पुरःशाक्वरा भुरिक । ४५ अतिजागतगर्भा] । षट्चत्वारिंशदृच सूक्तम् ।

उद॑स्य के॒तवो॑ दि॒वि शु॒क्रा भ्राज॑न्त ईरते ।
आ॒दि॒त्यस्य॑ नृ॒चक्ष॑सो म॒हिव्र॑तस्य मी॒ढुषः॑ ॥ १ ॥

भा०—समस्त संसार में जीवन-सेचन करने हारे, जगत् के सर्जन, पालन, संहार आदि कार्यों के करने वाले, सूर्य के समान सबको अपने वश मे कर लेने वाले, सर्व मनुष्यों के कर्मों और कर्मफलों के द्रष्टा इस परमात्मा के, कान्ति सम्पन्न और दीप्तिमान् ज्ञापक किरणों के समान प्रज्ञानयुक्त चिह्न उदित होते और साक्षात् होते है ।

दि॒शां प्र॒ज्ञाना॑ स्व॒रय॑न्तम॒र्चिषा॑ सुप॒क्षमा॒शुं प॒तय॑न्तमर्ण॒वे ।
स्त॒वाम॒ सूर्यं॒ भुव॑नस्य गो॒पां यो र॒श्मिभि॒र्दिश॑ आ॒भाति॒ सर्वाः॑ ॥२॥

भा०—दिशाओं को जिस प्रकार सूर्य अपने तेज से प्रकाशित करता है उसी प्रकार अपनी ज्ञानज्योति से योगियों की ऋतम्भरा प्रज्ञाओं को प्रकाशित करते हुए, शोभन रीति से सबके आश्रय-दाता और ज्ञान-सागर में सर्वव्यापक, एवं योगियो को ज्ञान कराते हुए, उत्पन्न संसार के परि-पालक प्रभु की हम स्तुति करते हैं, जो किरणों के समान व्यापक शक्तियों से समस्त दिशाओं को प्रकाशित करता है ।

यत् प्राङ् प्र॒त्यङ् स्व॒धया॒ यासि॒ शीभं॒ नाना॑रूपे॒ अह॑नी॒ कर्षि॑ मा॒यया॑ ।
तदा॑दित्य॒ महि॒ तत् ते॒ महि॒ श्रवो॒ यदे॑को॒ विश्वं॒ परि॒ भूम॒ जाय॑से ॥३॥

भा०—हे परमात्मन् ! जो तू पहले के समयों में और पीछे के

समयों में भी अपनी धारणा शक्ति से अति शीघ्रता से व्यापता है और अपनी दिव्य ज्ञानशक्ति से नाना प्रकार के दिन और रात बनाता है यह तेरी महिमा है। हे सबके आदानकारक परमात्मन्! यह भी तेरी महान् कीर्ति है कि तू अकेला ही समस्त संसार के ऊपर सामर्थ्यवान् होकर विराजता है।

विपश्चितं तरणिं भ्राजमानं वहन्ति यं हरितः सप्त बह्वीः ।
स्रुताद् यमत्त्रिर्दिवमुन्निनाय तं त्वा पश्यन्ति परियान्तमाजिम् ४

भा०—हरण करने वाली सात प्राण वृत्तियां जिस आत्मा को वहन या धारण करती हैं और जिसको सर्व जगत् को अपने में लीन करने हारा परमात्मा गतिशील संसार से हटाकर मोक्ष में ले जाता है, ज्ञान और कर्म के संचय करने-हारे, संसार को पार करने वाले, अति तेजस्वी, प्राप्त करने योग्य परमब्रह्म के प्रति गमन करने वाले उस तुझ को लोग चाव भरी दृष्टि से देखते हैं।

मा त्वा दभन् परियान्तमाजिं स्वस्ति दुर्गाँ अति याहि शीभम् ।
दिवं च सूर्य पृथिवीं च देवीमहोरात्रे विमिमानो यदेषि ॥ ५ ॥

भा०—हे आत्मन्! चरम सीमा अर्थात् मोक्षपद तक पहुंचते हुए तुझको काम क्रोध आदि मानसशत्रु न मारें। तू कठिन कठिन अवसरों, प्रलोभनों को भी अतिशीघ्र पार कर। तेरा मोक्षमार्ग में सदा कल्याण हो। जब कि तू दिन रात्रि को नाना प्रकार से बिताता हुआ, हे योगिन्! द्यौलोक के समान प्रकाशमान और पृथिवी लोक के समान सर्वाश्रय परमात्मा के पास पहुंचता है।

स्वस्ति ते सूर्य चरसे रथाय येनोभावन्तौ परियासि सद्यः ।
यं ते वहन्ति हरितो वहिष्ठाः शतमश्वा यदि वा सप्त बह्वीः ॥६॥

भा०—हे सूर्य के समान देदीप्यमान आत्मन्! तेरे रमणकारी स्वरूप के लिये 'स्वस्ति' है, जिससे तू दोनों सीमाओं अर्थात् विद्या और

अविद्या को पा, परा और अपरा को शीघ्र ही प्राप्त होता है और तेरे जिस स्वरूप को, वहन करने हारी, सौ व्यापनशील हृदयगत नाड़ियां और सात मुख्य प्राण, धारण करते हैं।

सुखं सूर्य रथमंशुमन्तं स्योनं सुवह्निमधि तिष्ठ वाजिनम्।
यं ते वहन्ति हरितो वहिष्ठाः शतमश्वा यदि वा सप्त बह्वीः ॥७॥

भा०—हे सूर्य के समान तेजस्विन् आत्मन्! तू सु = उत्तम, ख = ज्ञानेन्द्रिय और प्राणेन्द्रिय के मार्गों से युक्त, मनोरश्मियों अर्थात् मन की लगाम से सम्पन्न, सुखकारी, सुख से एक स्थान से स्थानान्तर में वहन करने वाले, बल से सम्पन्न उस रथ रूप भौतिक और अभौतिक सूक्ष्म शरीर पर अधिष्ठाता रूप से विराजमान हो। तेरे जिस देहरथ को वहन करने में समर्थ गति-शील प्राण और शत नाड़ियां, अथवा अति बलवती सात प्राणवृत्तियां धारण करती हैं।

सप्त सूर्यो हरितो यातवे रथे हिरण्यत्वचसो बृहतीरयुक्त।
अमोचि शुक्रो रजसः परस्ताद् विधूय देवस्तमो दिवमारुहत् ॥८॥

भा०—सूर्य के समान तेजस्वी आत्मा हित रमणीय त्वचा वाली, महा शक्तिशाली तथा हरण-शील सात प्राण-शक्तियों को अपनी जीवन यात्रा के लिये अपने रमण साधन देह में जोतता है और वही रजो गुण से परे होकर और शुचि होकर मुक्त हो जाता है और वही तमोगुण को दूर करके प्रकाशस्वरूप परमेश्वर को प्राप्त होता है।

उत् केतुना बृहता देव आगन्नपावृक् तमोऽभि ज्योतिरश्रैत्।
दिव्यः सुपर्णः स वीरो व्यख्यददितेः पुत्रो भुवनानि विश्वा ॥९॥

भा०—प्रकाशमान आत्मा बड़े भारी प्रज्ञान से ऊपर उठता है और वह तामस आवरणों से सर्वथा मुक्त होकर परमेश्वरीय प्रकाश को धारण करता है। वह प्रकाशवान् आत्मा उस महान् अखण्ड परमेश्वरी शक्ति का पुत्र होकर उसके अनुग्रह से अनुगृहीत होकर, दिव्य शक्ति से

युक्त और उत्तम प्रज्ञान से सम्पन्न होकर समस्त लोगों को ज्ञान के प्रकाश से विविध प्रकार से प्रकाशित करता है।

उद्यन् रश्मीना तनुषे विश्वा रूपाणि पुष्यसि ।
उभा समुद्रौ क्रतुना वि भासि सर्वांल्लोकान् परिभूर्भ्राजमानः १०(७

भा०—हे आत्मन्! तू उदित होता हुआ सूर्य के समान ही रश्मियों को चारों ओर फेंकता है, तथा ज्ञान और कर्म के सामर्थ्य से अति प्रदीप्त होकर, लोकों में अपनी किरणों द्वारा व्यापक सूर्य के समान कामचारी होकर दोनों समुद्रों, इह और अमुक दोनों लोकों को अपने ज्ञान के प्रकाश से प्रकाशित करता है।

पूर्वापरं चरतो माययैतौ शिशू क्रीडन्तौ परि यातोऽर्णवम् ।
विश्वान्यो भुवना विचष्टे हैरण्यैरन्यं हरितो वहन्ति ॥ ११ ॥

अथर्व० ७ । ८१ । १ ॥ १४ । १ । २३ ॥

भा०—खेलते हुए दो बालकों के समान परमात्मा और आत्मा दोनों अलौकिक बुद्धि से संसार समुद्र में गति करते हैं। उन दोनों में से एक समस्त लोकों को साक्षीरूप से देखता है, दूसरे को अभिरमणीय इन्द्रिय आदि से गम्य भोग्य विषयों द्वारा हरणशील प्राणगण धारण करते हैं।

दिवि त्वात्रिरधारयत् सूर्या मासाय कर्तवे ।
स एषि सुधृतस्तपन् विश्वा भूतावचाकशत् ॥ १२ ॥

भा०—हे आत्मन्! सर्वव्यापक एवं प्रलयकाल में सबको अपने भीतर ले लेने वाला परमात्मा, तुझ को, उत्तम कर्म या तपस्या के करने के लिये, प्रकाशमान मोक्षलोक में स्थापित करता है। वह उत्तम रीति से स्थिर होकर, तेज से परितप्त होकर, समस्त प्राणियों के प्रति प्रकाशित होता है।

उभावन्तौ समर्पसि वत्सः संमातराविव ।
नन्वे३तदितः पुरा ब्रह्म देवा अमी विदुः ॥ १३ ॥

भा०—बच्चा जिस प्रकार माता पिता दोनों के प्रति समान भाव से प्रेम में आकर्षित होकर जाता है उसी प्रकार हे मुमुक्षु आत्मन्! तू परा और अपरा विद्या की दोनों सीमाओं के मध्य में समन्वय भाव से प्राप्त होता है। निश्चय से इस समन्वय मार्ग से पूर्वकाल के पारंगत विद्वानों ने इस ब्रह्म को जाना है।

यत् समुद्रमनु श्रितं तत् सिषासति सूर्यः ।
अध्वास्य विततो महान् पूर्वश्चापरश्च यः ॥ १४ ॥

भा०—सूर्य के समान तेज से युक्त आत्मा, उस परमरस को प्राप्त करना चाहता है, जो आनन्दरस के सागर परमेश्वर में विद्यमान है। इस तक पहुंचने के लिये जो पहले चला आया है और जो आगे भी चलना है वह महा मार्ग उसके समक्ष विस्तृत है।

तं समाप्नोति जूतिभिस्ततो नाप चिकित्सति ।
तेनामृतस्य भक्षं देवानां नाव रुन्धते ॥ १५ ॥

भा०—वह योगी अपने ही ज्ञान के अति वेगों से उस सुदूरवर्ती परब्रह्म मार्ग को प्राप्त कर लेता है, तब वह उसे त्याग कर फिर कुमार्ग या संशय या भ्रम में नहीं जाता। इसी कारण लोग विद्वान् लोगों के निमित्त अन्न के भोग को नहीं रोकते।

उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः ।
दृशे विश्वाय सूर्यम् ॥ १६ ॥

भा०—ज्ञानवान् पुरुष उस सर्वज्ञ परमेश्वर को हृदय रूपी उत्तम लोक में प्राप्त करते हैं, और समस्त संसार के प्रेरक परमात्मा का साक्षात् दर्शन करने का यत्न करते हैं।

अप त्ये तायवो यथा नक्षत्रा यन्त्यक्तुभिः ।
सूराय विश्वचक्षसे ॥ १७ ॥

भा०—समस्त विश्व को देखने वाले सूर्य के तीव्र प्रकाश से जिस प्रकार नक्षत्रगण अपनी दीप्तियों या अन्धकारमय रात्रियों सहित दिन में विलुप्त हो जाते हैं, उसी प्रकार सर्वद्रष्टा सूर्य के समान योगी के प्रबल प्रभाव से वे नाना प्रकार के चोर स्वभाव अज्ञान अन्धकार के गहरे पर्दे में छिपकर विषयवासना रूप से आत्मा को छलने लुभाने वाले भोग और वञ्चनाकारी लोग भी दूर भाग जाते हैं।

अदृश्रमस्य केतवो वि रश्मयो जनाँ अनु ।
भ्राजन्तो अग्नयो यथा ॥ १८ ॥

भा०—इस परमात्मा के ज्ञान कराने-हारे विद्वान् पुरुष, सूर्य की किरणों के समान सर्व साधारण जनों के हित के लिये, उनमें नाना प्रकार से दिखाई देते हैं। वे तो इस लोक में, साक्षात् जिस प्रकार चम-चमाते प्रकाशमान अग्नियां हों उसी प्रकार तपस्वी, तेजस्वी होकर रहते हैं।

तरणिर्विश्वदर्शतो ज्योतिष्कृदसि सूर्य ।
विश्वमा भासि रोचन ॥ १९ ॥

ऋ० १ । ५० । ४ ॥

भा०—हे प्रकाशस्वरूप, सर्वप्रकाशक आत्मन्! परमात्मन्! तू सबको तराने हारा, सूर्य के समान सबको दर्शाने वाला, एवं सब संसार के लिये परम दर्शनीय है। और हे सर्वोत्पादक तू ही समस्त सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र आदि ज्योतियों का रचने-हारा है। तू सचमुच विश्व को प्रकाशित करता है।

प्रत्यङ् देवानां विशः प्रत्यङ्ङुदेषि मानुषीः ।
प्रत्यङ् विश्वं स्वर्दृशे ॥ २० ॥ (८)

ऋ० १ । ५० । ५ ॥

भा०—हे आत्मन्! तू दिव्यगुणों वाली प्रजाओं और मननशील

प्रजाओं में साक्षात् होकर उदित होता है । सुख का साक्षात् दर्शन कराने के लिये समस्त विश्व के प्रति तुम अपना साक्षात् दर्शन देते हो ।

येना पावक चक्षसा भुरण्यन्तं जनाँ अनु ।
त्वं वरुण पश्यसि ॥ २१ ॥ ऋ० १ । ५० । ६ ॥

भा०—हे परमपावन परमात्मन् ! हे सर्वश्रेष्ठ एवं सबसे वरण करने योग्य ! तू जिस दया की दृष्टि से प्रजा के भरण-पोषण करने वाले पुरुष को देखता है, उसी से हमें भी देख ।

वि द्यामेषि रजस्पृथ्वहर्मिमानो अक्तुभिः ।
पश्यन् जन्मानि सूर्य ॥ २२ ॥ ऋ० १ । ५० । ७ ॥

भा०—हे जीवात्मन् ! तू अपनी ज्योतिर्मय ज्ञानसाधन इन्द्रियों से विस्तृत लोकों का ज्ञान करता हुआ और नाना जन्मों को देखता हुआ, उस प्रकाशमान ब्रह्म को विशेष रूप से प्राप्त होता है ।

सप्त त्वा हरितो रथे वहन्ति देव सूर्य ।
शोचिष्केशं विचक्षणम् ॥ २३ ॥

भा०—हे सूर्य के समान तेजस्विन् आत्मन् ! प्रकाशमय स्वरूप से युक्त और विज्ञानवान् आत्मा रूप तुझको, सात हरण-शील प्राण धारण करते हैं ।

अयुक्त सप्त शुन्ध्युवः सूरो रथस्य नप्त्यः ।
ताभिर्याति स्वयुक्तिभिः ॥ २४ ॥ ऋ० १ । ५० । ९ ॥

भा०—ज्ञानवान् आत्मा, रमणसाधन इस देहरूप 'रथ' के साथ सम्बद्ध सात शुद्ध प्राणों को, योग मार्ग में नियुक्त या समाहित करता है, और उन प्राणों से ही अपने योग के आठों उपायों से परम पद तक पहुंचता है ।

रोहितो दिवमारुहत् तपसा तपस्वी ।
स योनिमैति स उ जायते पुनः स देवानामधिपतिर्बभूव ॥२५॥

भा०—तेजस्वी सूर्य के समान आत्मा, तप से तपस्वी होकर, प्रकाशमान परमेश्वर या मोक्ष को प्राप्त होता है। वही पुनः मनुष्य आदि योनि को प्राप्त होता है। वह ही पुनः पुनः जन्म धारण करता है। वह ही प्राण विषयों में क्रीडा करने वाले प्राणो का स्वामी होता है।

यो विश्वचर्षणिरुत विश्वतोमुखो यो विश्वतस्पाणिरुत विश्वतस्पृथः।
सं बाहुभ्यां भरति सं पतत्रैर्द्यावापृथिवी जनयन् देव एकः ॥२६॥

भा०—जो परमात्मा समस्त जगत् का द्रष्टा और सब ओर के मुखो वाला है। जिसके सर्वत्र हाथ हैं और जो सर्वत्र व्याप्त है वह अकेला देव द्यौ और पृथिवी इन दोनों में विद्यमान समस्त चराचर संसार को कारणों द्वारा भली प्रकार उत्पन्न करता हुआ, अपने हाथो से मानो भली प्रकार भरण पोषण करता है।

एकपाद् द्विपदो भूयो वि चक्रमे द्विपात् त्रिपादमभ्येति पश्चात्।
द्विपाद्ध षट्पदो भूयो वि चक्रमे त एकपदस्तन्वं समासते ॥२७॥

भा०—एक चरण वाला दो चरण वाले से अधिक गति करता है और दो चरण वाला या तीन चरण वाले को पीछे से आकर भी पकड़ लेता है। दो चरण वाला 'षट्पद' से भी अधिक वेग से चलता है। वे सब एक चरण वाले के शरीर के आश्रय पर ही विराजते हैं।

वायुरेकपात् तस्य आकाशं पादः। गो० पू० २। ८॥ आदित्यस्त्रिपात् तस्येमे लोकाः पादाः। गो० पू० २। ८॥ चन्द्रमा द्विपात् तस्य पूर्वपक्षाऽपरपक्षौ पादौ। गो० पू० २। ८॥ द्विपाद्वा अयं पुरुषः। श० २। ३। ४। १२॥ अग्निः षट्पादस्तस्य पृथिव्यन्तरिक्षं द्यौः, एष ओषधिवनस्पतय इमानि भूतानि पादाः। गो० पू० २। ९॥ अर्थात् वायु चन्द्र से भी शीघ्रगामी है, और चन्द्र सूर्य को राशि संक्रमण में पीछे से जा पकडता है। और वह द्विपात् पुरुष समस्त अग्नि को अपने वश करता है। ये सब 'एकपात्' परमात्मा के बल पर आश्रित है।

अतन्द्रो यास्यन् हरितो यदास्थाद् द्वे रूपे कृणुते रोचमानः ।
केतुमानुद्यन्त्सहमानो रजांसि विश्वा आदित्य प्रवतो वि भासि॥२८

भा०—हे आदित्य के समान तेजस्वी योगी ! तू प्रजा के रजोविकारों को अपने तपोबल से दूर करता हुआ, उनसे ऊपर उठता हुआ, ज्ञानवान् होकर, दूर २ भी प्रकाशित होता है । योगी आलस्य रहित होकर मोक्ष मार्ग में गति करने की इच्छा करता हुआ, जब अपने हरणशील प्राणों को वश करता है, तब अति प्रकाशमान होता हुआ दो रूपों को प्रकट करता है । दो रूप = सम्प्रज्ञात और असम्प्रज्ञात, निर्बीज और सबीज समाधि ।

बण्महाँ असि सूर्य बडादित्य महाँ असि ।
महांस्ते महतो महिमा त्वमादित्य महाँ असि ॥ २९ ॥

भा०—निश्चय से, हे सूर्य के तुल्य तेजस्विन् आत्मन् ! तू महान् है । हे आदित्य के समान आत्मन् ! सचमुच तू महान् है । तुझ महान् की बड़ी महिमा है । तू हे सूर्य के समान प्रकाशक परमेश्वर ! सब से बड़ा है।

रोचसे दिवि रोचसे अन्तरिक्षे पतङ्ग पृथिव्यां रोचसे रोचसे अप्स्वन्तः । उभा समुद्रौ रुच्या व्यापिथ देवो देवासि महिषः स्वर्जित् ॥ ३० ॥

भा०—हे ज्ञान-ऐश्वर्य को प्राप्त आत्मन् ! तू सूर्य के समान आकाश में या ज्ञानमय मोक्षपद में प्रकाशित होता है । अन्तरिक्ष में सूर्य के समान तू अन्त:करण में प्रकाशित होता है । इस पृथिवी पर प्रकाशित होता है । प्रकृति के सूक्ष्म परमाणुओं और प्रजाओं के भीतर भी तू शोभा देता है । और तू अपनी कान्ति से दोनों लोकों को व्याप्त होता है । और हे प्रकाशमान ! तू ही उपास्य देव सबसे महान और ज्ञान और प्रकाशमय लोकों को अपने वश करने हारा है ।

अर्वाङ् परस्तात् प्रयतो व्यध्व आशुर्विपश्चित् पतयन् पतङ्गः ।
विष्णुर्विचित्तः शवसाधितिष्ठन् प्र केतुना सहते विश्वमेजत्॥३१

भा०—योगसिद्ध विभूति को प्राप्त होनेहारा योगी आत्मा नीचे या समीप डरे या भागे, दूर परे, और विशेष मार्ग के बीच मे भी, जितेन्द्रिय होकर, कार्य करने मे शीघ्रकारी ज्ञानसम्पन्न मेधावी होकर, ऐश्वर्यवान् होता हुआ या ब्रह्म मार्ग मे जाता हुआ, अपने ही अन्तरात्मा में प्रविष्ट होकर, विशेष रूप से संज्ञानवान्, सम्यग्दर्शी होकर, अपने सामर्थ्य से सब पर वश करता हुआ, अपने ज्ञानतेज से समस्त गतिमान् ससार को अपने वश करता है।

चित्रश्चिकित्वान् महिषः सुपर्ण आ रोचयन् रोदसी अन्तरिक्षम्।
अहोरात्रे परि सूर्यं वसाने प्रास्य विश्वा तिरतो वीर्याणि ॥३२॥

भा०—समस्त संसार का संचय करने हारा, ज्ञानी, महान्, उत्तम पालन शक्ति से युक्त परमात्मा द्यौ, पृथिवी और अन्तरिक्ष को प्रकाशित करता है। सूर्य को आश्रय करके रहने वाले दिन और रात भी इस परमेश्वर के समस्त वीर्यों को बतलाते हैं।

तिग्मो विभ्राजन् तन्वं शिशानोऽरंगमासः प्रवतो रराणः।
ज्योतिष्मान् पक्षी महिषो वयोधा विश्वा आस्थात् प्रदिशः कल्पमानः ॥ ३३ ॥

भा०—अति तीक्ष्ण, विशेष रूप से देदीप्यमान, अपने आपको तपस्या से अति तीक्ष्ण करता हुआ, अत्यन्त गति करने वाले प्राणों के कारण शीघ्रता से रमण करता हुआ, ब्रह्ममय ज्योति से युक्त होकर, दमन शक्ति से युक्त होकर, महान् आत्मा, बल और प्राण को धारण करने में समर्थ होकर, समस्त दिशाओं को सूर्य के समान स्वय समस्त ज्ञान साधन इन्द्रियों को विरचता एवं सामर्थ्यवान् करता हुआ, स्थित रूप से विराजमान रहता है।

चित्रं देवानां केतुरनीकं ज्योतिष्मान् प्रदिशः सूर्य उद्यन्।
दिवाकरोऽति द्युम्नैस्तमांसि विश्वातारीद् दुरितानि शुक्रः ॥३४॥

भा०—विषयग्राही इन्द्रियों को ज्ञान प्रदान करने वाला, विचित्र, बलस्वरूप, ज्ञानज्योति और योग तेज से सम्पन्न, विशोका, ज्योतिष्मती प्रज्ञा से सम्पन्न योगी, सूर्य के समान अतितेजस्वी होकर उदित होता है। वह योगी समस्त तामस कार्यों को अपने ज्ञानमय प्रकाशों से दिन के समान श्वेत करता है, अर्थात् कृष्ण कर्मों को शुक्लकर्मों मे बदल देता है। तब वह स्वयं दीप्तिमान् तेजस्वी शुक्लकर्मा योगी होकर समस्त पाप-कर्मों को तर जाता है।

चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः।
आप्राद् द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च ॥३५॥

भा०—विद्वानों के लिये अति अद्भुत, बलस्वरूप, सबको स्नेह करने वाला, सर्वश्रेष्ठ, ज्ञानी पुरुष की आंखरूप वह परमात्मा, जंगम और स्थावर का अन्तर्यामी होकर द्यौ, पृथिवी और आन्तरिक्ष को पूर्ण व्याप्त कर रहा है।

उच्चा पतन्तमरुणं सुपर्णं मध्ये दिवस्तरणिं भ्राजमानम्।
पश्याम त्वा सवितारं यमाहुरजस्रं ज्योतिर्यदविन्ददत्रिः ॥३६॥

भा०—ऊँचे पद को प्राप्त हुए, ज्योतिर्मय, उत्तम ज्ञान सम्पन्न, द्यौलोक के बीच मे सूर्य के समान, अति देदीप्यमान, सर्व दुःखतारक, सर्व प्रेरक सर्वोत्पादक तुझ परमेश्वर को, अविनाशी ज्योति के रूप में हम साक्षात् करें, जिसको कि अपनी दुर्वासनाओं का नाश कर देने वाला योगी प्राप्त करता है।

दिवस्पृष्ठे धावमानं सुपर्णमदित्याः पुत्रं नाथकाम उप यामि भीतः।
स नः सूर्य प्र तिर दीर्घमायुर्मा रिषाम सुमतौ ते स्याम ॥ ३७ ॥

भा०—आकाश के उपरि देश में गति करते हुए सूर्य के समान देदीप्यमान, उत्तम ज्ञान और पालना से युक्त, अखण्ड ब्रह्म के उपासक आत्मा की, शरण मे मैं जाता हूँ, जो मैं कि ऐश्वर्य प्राप्त करने की इच्छा

करता हूं और मृत्यु से भयभीत हूं। हे तेजस्विन् आत्मन्! वह तू हमें दीर्घ आयु प्रदान कर, हम तेरी उत्तम बुद्धि या ज्ञानोपदेश के अधीन रहें और कभी पीड़ित न हों।

सहस्राह्ण्यं वियतावस्य पक्षौ हरेर्हंसस्य पततः स्वर्गम्।
स देवान्त्सर्वानुरस्युपदद्य संपश्यन् याति भुवनानि विश्वा ॥३८॥

भा०—हजारों दिनों या युगों से विस्तृत आकाश में मानो उड़ते हुए सूर्य के समान गतिशील परमात्मा के रात और दिन रूपी दो पंख विशेष रूप से फैले हुए हैं। वह परमात्मा समस्त देवों को अपने छाती पर, धारण करके समस्त लोकों को देखता हुआ विचरण करता है।

रोहितः कालो अभवद् रोहितोऽग्रे प्रजापतिः।
रोहितो यज्ञानां मुखं रोहितः स्वराभरत् ॥ ३९ ॥

भा०—सर्वोत्पादक वह परम-आत्मा ही काल स्वरूप है। सृष्टि के पूर्व वही सर्वोत्पादक परमेश्वर प्रजा का पालक था। रोहित ही यज्ञों का मुख था। उसी रोहित ने समस्त आनन्दधाम को भरपूर कर रक्खा है।

रोहितो लोको अभवद् रोहितोऽत्यतपद् दिवम्।
रोहितो रश्मिभिर्भूमिं समुद्रमनु सं चरत् ॥ ४० ॥ (१०)

भा०—सर्वोत्पादक परमात्मा से ही इस दृश्यमाण जगत् का विकास हुआ है। वह सर्वोत्पादक ही सूर्य को अति तीव्रता से तपाता है। वही सूर्य के समान अपनी शक्तिमय रश्मियों से भूमि और समुद्र पर भी विचरता है, नाना प्रकार से प्रकट होता है।

सर्वा दिशः समचरद् रोहितोऽधिपतिर्दिवः।
दिवं समुद्रमाद् भूमिं सर्वं भूतं वि रक्षति ॥ ४१ ॥

भा०—सूर्य का भी स्वामी परमेश्वर समस्त दिशाओं में व्यापक है। आकाश, समुद्र और भूमि को भी व्याप कर वही समस्त उत्पन्न प्राणिसंसार की विविध प्रकार से रक्षा करता है।

आरोहन् छुक्रो बृहतीरतन्द्रो द्वे रूपे कृणुते रोचमानः ।
चित्रश्चिकित्वान् महिषो वातमाया यावतो लोकानभि यद् विभाति ॥ ४२ ॥

भा०—तेजस्वी शुक्ल योगी प्राणों पर आरूढ होकर उन पर वश करता हुआ, आलस्य रहित होकर, निद्रावृत्ति पर भी वश करके, अति तेजस्वी होकर, दो रूपों अर्थात् सम्प्रज्ञात और असम्प्रज्ञात को प्रकट करता है । वह अद्भुतरूप, ज्ञानी, महान् आत्मा प्राण के बल पर गति करता हुआ, जितने भी लोक हैं उन सब लोकों मे विशेषरूप से प्रकाशित होता है । वहां विचरता है ।

अभ्य१न्यदेति पर्यन्यदस्यतेऽहोरात्राभ्यां महिषः कल्पमानः ।
सूर्यं वयं रजसि क्षियन्तं गातुविदं हवामहे नाधमानाः ॥४३॥

भा०—शक्तिशाली परमेश्वर दिन और रात्रि के समान जगत् के सर्ग और प्रलय दोनों स्थितियों में से जब एक पर आरूढ होता है तो दूसरे को दूर करता है । इस प्रकार हम उपासना करते हुए उपासक लोग रजोगुण में निवास करते हुए सबके प्रकाशक और समस्त ज्ञान और यज्ञ या संसार को अपने भीतर ले लेने हारे परमेश्वर की स्तुति करते हैं ।

पृथिवीप्रो महिषो नाधमानस्य गातुरदब्धचक्षुः परि विश्वं बभूव ।
विश्वं संपश्यन्त्सुविदत्रो यजत्र इदं शृणोतु यदहं ब्रवीमि ॥४४॥

भा०—वह महान् परमात्मा समस्त पृथिवी को नाना भोग्य पदार्थों से पूर्ण करने वाला तथा स्तुतिकर्त्ता उपासक के लिये जाने योग्य मार्ग के समान है और अविनाशी चक्षु के समान है, वह इस विश्व में व्यापक है । वह परमेश्वर विश्व को भली प्रकार देखता हुआ, उत्तम ज्ञान वाला और दानशील और उपासना करने योग्य है । वह जो कुछ मैं कहूं उसको सुने ।

पर्यस्य महिमा पृथिवीं समुद्रं ज्योतिषा विभ्राजन् परि द्यामन्तरिक्षम् ।
सर्वं संपश्यन्त्सुविदत्रो यजत्र इदं शृणोतु यदहं ब्रवीमि ॥ ४५ ॥

भा०—इस परमात्मा की महिमा पृथिवी और समुद्र दोनों पर व्याप्त है । वह परम तेज से द्यौ और अन्तरिक्ष दोनों में व्यापक है ।

अबोध्यग्निः समिधा जनानां प्रति धेनुमिवायतीमुषासम् ।
यह्वा इव प्र वयामुज्जिहानाः प्र भानवः सिस्रते नाकमच्छ ॥ ४६ (११) ॥

भा०—जब जनो का अग्निरूप आत्मा सम्यक् ज्ञान से प्रबुद्ध होता है तब जिस प्रकार बछड़ा गाय के प्रति जाता है उसी प्रकार उनका आत्मा प्राप्त होती हुई विशोका ज्योतिष्मती प्रज्ञा की तरफ बढ़ता है । जिस प्रकार पक्षीगण शाखा पर जाते हैं उसी प्रकार कान्तिमान्, मुक्त योगी सुखमय परमात्मा की ओर गति करते और उसी का अवलम्ब लेते हैं ।

इति द्वितीयोऽनुवाकः ।

[तत्रैकं सूक्तम्, षट्चत्वारिंशदृचः ।]

[२] रोहित, आत्मा, ज्ञानवान् राजा और परमात्मा का वर्णन ।

ब्रह्मा ऋषिः । अध्यात्मम् । रोहित आदित्यो देवता । १ चतुरवसानाष्टपदा आकृतिः । २–४ त्र्यवसाना षट्पदा [२, ३ अष्टिः । ३ भुरिक् । ४ अतिशाक्वरगर्भा धृतिः] ५–७ चतुरवसानाः सप्तपदा [५, ६ शक्वरातिशाक्वरगर्भा प्रकृतिः । ७ अनुष्टुप्गर्भातिधृतिः] । ८ त्र्यवसाना षट्पदा अत्यष्टिः । ९–१९ चतुरवसाना [९–१२, १५, १७ सप्तपदा भुरिग् अतिधृतिः । १५ निचृत् । १७ कृतिः । १३, १४, १६, १८, १९ अष्टपदा । १३, १४ विकृतिः । १६, १८, १९ आकृतिः १९ भुरिक्] । २०, २२ त्र्यवसाना षट्पदा अत्यष्टिः । २१, २३–२५ चतुरवसाना अष्टपदा । [२१ सप्तपदाकृतिः । २४ आकृतिः । २३, २५ विकृतिः] ।

षड्विंशत्यृचं सूक्तम् ।

य इमे द्यावापृथिवी जजान यो द्रापिं कृत्वा भुवनानि वस्ते।
यस्मिन् क्षियन्ति प्रदिशः षडुर्वीर्याः पतङ्गो अनु विचाकशीति।
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति।
उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च पाशान्॥ १॥

भा०—जो इन आकाश और पृथिवी को उत्पन्न करता है और समस्त लोकों को अपना वस्त्र या चोला बनाकर उनमें निवास करता है। अथवा जो अपने आपको समस्त लोकों का वस्त्र बनाकर समस्त भुवनों को आच्छादित करता है, जिसमें ये छः विशाल दिशाएं निवास करती हैं, जिनमें नित्य गतिशील सूर्य उस परमात्मा की शक्ति से अनुप्राणित होकर विशेष रूप से प्रकाशित होता है। जो पुरुष इस प्रकार के ब्रह्मवेत्ता ब्राह्मण का विनाश करता है यह अपराध उस क्रुद्ध हुए परमेश्वर के प्रति ही है। हे तेजस्विन् राजन्! तू ब्रह्मघाती को कंपा दे, नाश कर दे, और उस पर पाश डाल कर बांध ले।

यस्माद् वाता ऋतुथा पवन्ते यस्मात् समुद्रा अधि विक्षरन्ति।
तस्य देवस्य०।०॥ २॥

भा०—जिस परमेश्वर के बल से वायुएं ऋतुओं के अनुकूल बहा करती हैं और जिस मूल से या जिसके आश्रय पर समुद्र और नदियों के प्रवाह विविध दिशाओं में प्रवाहित होते हैं। उस० इत्यादि पूर्ववत्।

यो मारयति प्राणयति यस्मात् प्राणन्ति भुवनानि विश्वा।
तस्य०।०॥ ३॥

भा०—जो परमेश्वर सबको मारता है और प्राण देता है और जिस आदि कारण से समस्त उत्पन्न होने वाले लोक और प्राणी प्राण धारण करते हैं, उस० इत्यादि पूर्ववत्।

यः प्राणेन द्यावापृथिवी तर्पयत्यपानेन समुद्रस्य जठरं यः पिपर्ति।
तस्य०।०॥ ४॥

भा०—जो परमेश्वर प्राण शक्ति से आकाश और पृथिवी को और देह मे मस्तक से चरण तक को तृप्त करता और जो 'अपान' शक्ति से समुद्र के भीतरी भाग का एवं देह मे मल मूत्रादि त्यागने वाले द्वारों या मध्य भाग को पालन पोषण करता है, उस० इत्यादि पूर्ववत् ।

यस्मिन् विराट् परमेष्ठी प्रजापतिरग्निर्वैश्वानरः सह पङ्क्त्या श्रितः।
यः परस्य प्राणं परमस्य तेज आददे। तस्यं० । ० ॥ ५ ॥

भा०—जिस सर्वाश्रय परमात्मा मे पृथिवी, जल, वायु, अग्नि, समस्त प्राणियो मे व्यापक आत्मा अपनी पांचो ज्ञानेन्द्रियो के विषयो सहित आश्रित है और जो दूरस्थ भुवन के प्राण को और सर्वोच्च सूर्य के भी तेज को स्वयं धारण करता है उस० इत्यादि पूर्ववत् ।

इयं पृथिवी विराट् । गौ० उ० ६ । २ ॥ आपो वै प्रजापतिः परमेष्ठी ता हि परमे स्थाने तिष्ठन्ति । श० ८ । २ । ३ । १३ ॥ परमाद्वा एतद् स्थानाद् वर्षति यद् दिवस्तत् परमेष्ठी नाम । श०११।१।१६॥ एतद् वै प्रजापतेः प्रत्यक्ष रूपं यद् वायुः । कौ० १९ । २ ॥ स एष वायुः प्रजापति. रैष्टुभेऽन्तरिक्षे समन्तं पर्यक्तः । श० ८ । ३ । ४ । १५ ॥

यस्मिन् षड्डुर्वीः पञ्च दिशो अधि श्रिताश्चतस्र आपो यज्ञस्य त्रयोऽक्षराः । यो अन्तरा रोदसी क्रुद्धश्चक्षुषैक्षत । तस्यं० । ० ॥६॥

भा०—जिसमे छहो विशाल दिशाएं और चार जलभरे समुद्र, तथा देवोपासना के निदर्शक तीन अ, उ, म् अथवा अविनाशी वेद आश्रय लिये हुए हैं । और जो आकाश और भूमि के बीच मे दुष्टों के प्रति सदा कोपकारी होकर अपने प्रकाशमान सूर्य के रूप चक्षु से मानो निरन्तर देखा करता है । उस० इत्यादि पूर्ववत् ।

यो अन्नादो अन्नपतिर्बभूव ब्रह्मणस्पतिरुत यः ।
भूतो भविष्यद् भुवनस्य यस्पतिः । तस्यं० । ० ॥ ७ ॥

भा०—जो स्वयं परमेश्वर समस्त विश्व को अपना अन्न बनाकर

खाजाता है और स्वयं अन्नमय समस्त लोकों का स्वामी है और जो महान् ब्रह्माण्ड वा वेद का स्वामी है। जो स्वयं भूत और भविष्यत् रूप होकर इस उत्पन्न होने हारे वर्तमान जगत् का भी स्वामी है। उस० इत्यादि पूर्ववत्।

अहोरात्रैर्विमितं त्रिंशदङ्गं त्रयोदशं मासं यो निर्मिमीते।
तस्य० । ० ॥ ८ ॥

भा०—दिन और रातों से विशेष रूप से मपे हुए, तीस दिनों से बने १३ वें मास को भी जो पूरी तरह से बना देता है वह व्यवस्थापक परमेश्वर है। उस० इत्यादि पूर्ववत्।

कृष्णं नियानं हरयः सुपर्णा अपो वसाना दिवमुत् पतन्ति।
त आववृत्रन्त्सदनादृतस्य। तस्य० । ० ॥ ९ ॥

भा०—सात्विक ज्ञान से युक्त, अति उज्वल रूप मुक्तात्मा जन, सूर्य की किरणों के समान ज्ञानरूप जलों को धारण करते हुए, सूर्य के समान आकर्षणकारी सबके परम गन्तव्य परमेश्वर और प्रकाशमय मोक्षलोक की तरफ़ ऊर्ध्व गति करते हैं। और पुनः मोक्ष काल के उपरान्त सत्य के आश्रय स्थान से जुदा होकर इस लोक में लौट आते हैं। उस० इत्यादि पूर्ववत्।

यत् ते चन्द्रं कश्यप रोचनावद् यत् संहितं पुष्कलं चित्रभानु।
यस्मिन्त्सूर्या आर्पिताः सप्त साकम्। तस्य० । ० ॥१०॥ (१२)

भा०—हे सर्वद्रष्टा परमेश्वर! जो तेरा सर्व आह्लादकारी, दीप्तियुक्त, पुष्टिकारी, एकत्र संचित, प्रकाशमय रूप है, जिसमें सूर्य के समान तेजस्वी सात भुवन और प्राण भी एक साथ ही आश्रित हैं। उस० इत्यादि पूर्ववत्।

बृहदेनमनु वस्ते पुरस्ताद् रथन्तरं प्रति गृह्णाति पश्चात्।
ज्योतिर्वसाने सदमप्रमादम्। तस्य० ॥ ११ ॥

भा०—इसको आगे से महान् आकाश आच्छादित करता है और पीछे से पृथिवी सम्भाले रहती है। दोनों उस ज्योतिःस्वरूप परमात्मा को घन के समान धारण या आच्छादित करते हुए सुदृढ़ या जगमगाते मकान के समान बने हैं। उस० इत्यादि पूर्ववत्।

'द्यौर्वै बृहत्'। श० ९ । १ । २ । ३७ ॥ रथन्तरं हि इयं पृथिवी। श० १ । ७ । २ । १७ ॥ अध्यात्म में—प्राणो बृहत्। ता० ७ । ६ । १४ । १७ ॥ मनो वै बृहत्। ऐ० ४ । २८ ॥ वाग् वै रथन्तरम्। ता० ७ । ६ । १७ ॥ अपानो रथन्तरम्। ता० ७ । ६ । १४ । १७ ॥ यथा वै पुत्रो ज्येष्ठ एवं वै बृहत् प्रजापतेः। ता० ७ । ६ । ६ ॥

बृहदन्यतः पृक्ष आसीद् रथंतरमन्यतः सबले सुध्रीची।
यद् रोहितमजनयन्त देवाः। तस्यं०। ० ॥ १२ ॥

भा०—उस आत्मा का एक तरफ का बाजू यह द्यौ या प्राण है और दूसरी ओर का बाजू पृथिवी और अपान है। वे दोनों बल से युक्त और सदा साथ रहने वाले हैं। जब आत्मा को पञ्चभूत आदि और उनके घने सूक्ष्म इन्द्रियगण और राजा को प्रजा के विद्वान् गण प्रकट रूप से उत्पन्न करते हैं।

स वरुणः सायमग्निर्भवति स मित्रो भवति प्रातरुद्यन्।
स सविता भूत्वान्तरिक्षेण याति स इन्द्रो भूत्वा तपति मध्यतो दिवम्। तस्यं०। ० ॥ १३ ॥

भा०—वह सर्वश्रेष्ठ, सबके वरण करने योग्य, सबका धारक परमेश्वर ही अन्धकार आजाने के अवसर पर अग्नि के समान प्रकाशक होता है। वह प्रातःकाल के अवसर पर उदित होते हुए सूर्य के समान सब का परम स्नेही सर्वोपकारक होता है। सूर्य जिस प्रकार अन्तरिक्ष से गमन करता है उसी प्रकार यह भी सबका प्रेरक होकर अन्तरिक्ष भाग, भीतरी अन्तःकरण द्वारा सर्वत्र व्यापक रहता है। वही सर्वैश्वर्य-

वान होकर आकाश के बीच सूर्य के समान प्रतप्त होता है। उस० इत्यादि पूर्ववत् ।

सहस्राह्ण्यं वियतावस्य पक्षौ हरेर्हंसस्य पततः स्वर्गम् ।
स देवान्त्सर्वानुरस्युपदद्य संपश्यन् याति भुवनानि विश्वा ।
तस्य० । ० ॥ १४ ॥

भा०—व्याख्या देखो अथर्व० १०८। १८॥ और १३। २।३८॥ में ॥

अयं स देवा अप्स्व१न्तः सहस्रमूलः पुरुशाको अत्त्रिः ।
य इदं विश्वं भुवनं जजान । तस्य० । ० ॥ १५ ॥

भा०—जो इस समस्त ससार लोक को उत्पन्न करता है, वह देव यह है जो समस्त प्रजाओं, लोकों और प्रकृति के मूल परमाणुओं के भीतर व्यापक और सहस्रों ब्रह्माण्डों या समस्त जगत् का मूल आधार या मूल कारण, महान् शक्तिशाली और जगत् को प्रलयकाल में स्वय लीन कर लेने वाला है ।

शुक्रं वहन्ति हरयो रघुष्यदो देवं दिवि वर्चसा भ्राजमानम् ।
यस्योर्ध्वा दिवं तन्व१स्तपन्त्यर्वाङ् सुवर्णैः पटरैर्वि भाति ।
तस्य० । ० ॥ १६ ॥

भा०—आकाश में तेज से देदीप्यमान, उस सर्व प्रकाशक ज्योतिर्मय परमेश्वर को, अति वेगवान् किरणों के समान गतिशील लोक या मुमुक्षुजन, अपने मे धारण करते या प्राप्त करते हैं। और जिसके बनाये ऊपर विद्यमान ज्योतिर्मय सहस्रों लोक आकाश को प्रकाशित करते हैं और जो नीचे के प्रदेश मे भी उत्तमवर्ण के तेजोमय सूर्यों से विविध प्रकार से शोभा देता है। उस० इत्यादि पूर्ववत ।

येनादित्यान् हरितः संवहन्ति येन यज्ञेन बहवो यन्ति प्रजानन्तः
यदेकं ज्योतिर्बहुधा विभाति । तस्य० ॥ १७ ॥

भा०—जिसके बल से प्रेरित होकर हरणशील वेगवती शक्तियां

सूर्यों को निरन्तर चला रही हैं, जिस उपास्य-देव के संग से बहुत से मुक्त जीव उत्कृष्ट ज्ञान से सम्पन्न होकर मोक्षधाम को प्राप्त होते हैं। जो एकमात्र ज्योति होकर स्वयं नानारूपों से प्रकाशित होता है उस० इत्यादि पूर्ववत्।

सप्त युञ्जन्ति रथमेकचक्रमेको अश्वो वहति सप्तनामा।
त्रिनाभि चक्रमजरमनर्वं यत्रेमा विश्वा भुवनाधि तस्थुः।
तस्यं० ॥ १८ ॥

भा०—सात शीर्षगत प्राण एक कर्त्ता से युक्त रथ को उनमें जुतकर वहन करते हैं। और एक उन सबका भोक्ता सातों का नाम धारण करके उनको धारण करता है। सत्व, रजः, तमः इन तीनो में बंधा हुआ, तीन नाभियो से युक्त कर्त्ता वह आत्मा, कभी न जीर्ण होने वाला, बिना घोडे के चलनेहारे चक्र के समान स्वय भी दूसरे किसी अन्य प्रेरक की सहायता न लेता हुआ, स्वय चेतन विद्यमान है। जिसमे ये इन्द्रिय आदिगण स्थिर हैं। उस० इत्यादि पूर्ववत्। अथवा एकमात्र कर्त्ता और रमण करने योग्य आत्मा में सात चक्षु आदि प्राण जब योग देते हैं, संयुक्त हो या समाहित होकर रहते हैं, तब वह एक ही भोक्ता सातों का नाम धारण करके स्वय उनको धारण करता है।

अष्टधा युक्तो वहति वह्निरुग्रः पिता देवानां जनिता मतीनाम्।
ऋतस्य तन्तुं मनसा मिमानः सर्वा दिशः पवते मातरिश्वा।
तस्यं० ॥ १९ ॥

भा०—समस्त दिव्यगुण धारण करने वाले महत् आदि का पालक और उत्पादक, मननशील समस्त चेतन प्राणियों या स्तुतियों, वेदवाणियों का उत्पादक, उनको प्रादुर्भाव करने वाला, अति भयंकर, महान् बलशाली, सबको वहन करनेहारा परमात्मा, आठ रूपो से विविध प्रकार से संयुक्त होकर समस्त संसार को धारण कर रहा है। सर्गमय यज्ञ के

सूत्र को अपने संकल्प से ही निर्माण करता हुआ सबकी धारक प्रकृति में भी व्यापक परमेश्वर समस्त दिशाओं में व्याप्त है।

सम्यञ्चं तन्तुं प्रदिशोऽनु सर्वा अन्तर्गायत्र्याममृतस्य गर्भे।
तस्यं० । ० ॥ २० ॥

भा०—सर्वव्यापक, उस विस्तृत, परम सूक्ष्म सूत्र के आश्रय पर ही समस्त दिशाएं आश्रित हैं। वे उस प्राणरक्षक के भीतर और परम मोक्षमय देव के गर्भ में विद्यमान हैं।

निम्रुचस्तिस्रो व्युषो ह तिस्रस्त्रीणि रजांसि दिवो अङ्ग तिस्रः।
विद्मा ते अग्ने त्रेधा जनित्रं त्रेधा देवानां जनिमानि विद्म।
तस्यं० । ० ॥ २१ ॥

भा०—तीन अस्त काल हैं। तीन उषाकाल है। तीन रजस् हैं। हे जिज्ञासो! तीन आकाश हैं। हे ज्ञानस्वरूप परमेश्वर! तेरे तीन प्रकार के प्रकट होने के स्वरूप को हम जानें। और इसी प्रकार समस्त देवों के तीन तीन प्रकार के प्रादुर्भाव होने के रूपों को भी जानें। उस० इत्यादि पूर्ववत्।

'रजांसि'—इमे वै लोकाः रजांसि। श० ६।३।१।१८॥ द्यौर्वै तृतीयं रजः। श० ६।७।४।५॥ तिस्रः दिवः, अग्निविद्युत्सूर्याः। अहर्व्युष्टिः। तै० ३।८।१६।४॥ रात्रिर्व्युष्टिः। श० १३।२।१।६॥ अध्यात्म-आधिदैविक—आधिभौतिकभेदेन तिस्रो व्युषाः, तिस्रो निम्रुचः।

वि य और्णोत् पृथिवीं जायमान आ समुद्रमदधादन्तरिक्षे।
तस्यं० । ० ॥ २२ ॥

भा०—जो सृष्टिरूप से अपनी शक्ति को प्रकट करता हुआ पृथिवी को विविध आवरणों से आच्छादित करता है। वह इस पृथिवी के चारों ओर समुद्र को स्थापित करता है। समुद्र सहित पृथिवी को अन्तरिक्ष में स्थापित करता है। उस० इत्यादि पूर्ववत्।

त्वमग्ने क्रतुभिः केतुभिर्हितोऽर्कः समिद्ध उदरोचथा दिवि।
किमभ्यार्चन्मरुतः पृश्निमातरो यद् रोहितमजनयन्त देवाः।
तस्यं० । ० ॥ २३ ॥

भा०—अपने ज्ञापक किरणों से धारित सूर्य के समान अतिदीप्त तेजोमय, सबके अर्चनायोग्य होकर हे ज्ञानमय ! प्रकाशस्वरूप ! तू अपने ज्ञान करानेहारे कर्मों से महान् आकाश में सूर्यवत् सर्वोपरि चमकता है। जब दिव्यशक्तियां आत्मा को प्रकट करती है तब समस्त अंगों को रसों से सेचने वाले प्राणगण उसकी किस प्रकार अर्चना करते हैं, उसकी आज्ञा किस प्रकार पालते हैं उस० इत्यादि पूर्ववत्।

य आत्मदा बलदा यस्य विश्वं उपासते प्रशिषं यस्य देवाः।
योऽस्येशे द्विपदो यश्चतुष्पदः। तस्यं० ॥ २४ ॥

भा०—प्रथम तीन चरणों की व्याख्या देखो, अथर्व० ४ । २ । १ ॥ उस० इत्यादि पूर्ववत्।

एकपाद् द्विपदो भूयो वि चक्रमे द्विपात् त्रिपादमभ्येति पश्चात्।
चतुष्पाच्चक्रे द्विपदामभिस्वरे संपश्यन् पंक्तिमुपतिष्ठमानः।
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति।
उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य मुञ्च पाशान् ॥ २५ ॥
ऋ० १० । ११७ । ८ ॥

भा०—प्रथम दो चरणों की व्याख्या देखो अथर्व० १३ । २ । २७ (प्र० द्वि०) ॥ और चार पैरों वाला दो पैर वालों के शासन में पंक्ति को देखता हुआ और उसकी सेवा में उपस्थित होकर कार्य करता है। अध्यात्म में—अन्तःकरणचतुष्टय, 'द्विपद' मनुष्यों के कर्मज्ञानमय आत्मा के शासन में रहकर, पांचों ज्ञानेन्द्रियों को वश करता है। अथवा चतुष्पात् ब्रह्म मनुष्यों के प्रकाशमय हृदय में कर्मों के परिणतफल को व्यक्तरूप से देखता हुआ स्वयं उसको प्राप्त होता है। उस० इत्यादि पूर्ववत्।

कृष्णायाः पुत्रो अर्जुनो रात्र्यां वत्सोऽजायत ।
स ह द्यामधि रोहति रुहो रुरोह रोहितः ॥ २६ ॥ (१४)

भा०—कृष्णा का पुत्र श्वेत होता है, अर्थात् रात्रि का पुत्र दिन या सूर्य उत्पन्न होता है । वह आकाश मे ऊपर चढ़ता है । वैसे दीप्तिमान् मुक्त जीव समस्त उत्तम लोकों को प्राप्त करता है । इसी प्रकार राजा भी लाल वस्त्रों को धारण करता हुआ कृषियोग्य पृथ्वी का पुत्र होकर समस्त उच्च पदों को प्राप्त करता है ।

अध्यात्म मे—सबको आकर्पण करने वाली परमशक्ति परमेश्वरी का पुत्र ही 'अर्जुन' यह जीव है । वह मोक्षपद को प्राप्त होता है, वह समस्त लोकों को प्राप्त होता है ।

इति तृतीयोऽनुवाक ।

[तत्रैक सूक्तम्, पड्विंशतिर्ऋचः]

[४ (१)] रोहित, परमेश्वर का वर्णन ।

ब्रह्मा ऋषिः । अध्यात्म रोहितादित्यो देवता । त्रिष्टुप् छन्दः । पट्पर्याया । मन्त्रोक्ता देवता । १—११ प्राजापत्यानुष्टुभः । १२ विराड्गायत्री । १३ आसुरी उष्णिक् । त्रयोदशर्चं प्रथम पर्यायसूक्तम् ।

स एति सविता स्वर्दिवस्पृष्ठेऽवचाकशत् ॥ १ ॥

भा०—वह सूर्य के समान ज्योतिष्मान् परम सुखमय मोक्षलोक मे व्याप्त है । आकाश के उच्चतम भाग मे सूर्य के समान वह मोक्षधाम मे प्रकाशित है ।

रश्मिभिर्नभ आभृतं महेन्द्र एत्यावृतः ॥ २ ॥

भा०—सूर्य की किरणों से अन्तरिक्ष भाग जिस प्रकार पूर्ण हो जाता है उसी प्रकार परम आत्मा की ज्योतियो से अप्रकाशमान समस्त जड जगत् पूर्णरूप मे जगमगाता है । और वह महान ऐश्वर्यवान प्रकाश से विभूतिमान् होकर समस्त लोकों मे आवृत है ।

स धाता स विधर्ता स वायुर्नभ उच्छ्रितम्। ०॥ ३॥

भा०—वह सब का पालक पोषक, वह सबको विशेषरूप से धारण करने वाला या विविध प्रकारो से धारण करने वाला है। वह सर्व-व्यापक, सबका प्रेरक, सूत्रात्मा, प्राणो का प्राण 'वायु' है। वही सब को एक सूत्र मे बांधने वाला 'नभ' है। वही सबसे अधिक ऊंचा है। वही सब लोकों मे महाराज होकर प्रकट होता है।

सोऽर्यमा स वरुणः स रुद्रः स महादेवः। ०॥ ४॥

भा०—वह सर्वश्रेष्ठ स्वामी, समस्त गतिमान् पदार्थों का नियन्ता, न्यायकारी अर्यमा है। वह सर्वश्रेष्ठ, सर्ववरणीय, सबका वारक वरुण है। वह स्वय सबके कष्टों पर आंसू बहाने वाला, करुणामय, दुष्टों को रुलाने वाला, सर्वोपदेशक सर्वव्यापक 'रुद्र' है। वह महान् उपास्यदेव, 'देवों का भी देव' है।

सो अग्निः स उ सूर्यः स उ एव महायमः। ०॥ ५॥

भा०—वह सबों का अग्रणी तेजोमय ज्ञानवान् 'अग्नि' है। वह ही सब का प्रेरक, उत्पादक, प्रकाशक है। वह ही महान् नियन्ता 'महायम' है।

तं वत्सा उप तिष्ठन्त्येकशीर्षाणो युता दश। ०॥ ६॥

भा०—उस आत्मा के समीप दश प्राण एक शिरो भाग मे विद्यमान होकर उसके अधीन रहते हैं।

पश्चात् प्राञ्च आ तन्वन्ति यदुदेति वि भासति। ०॥ ७॥

भा०—वे दशो प्राण पीछे से आगे को फैलते हैं, भीतर से बाहर को आते हैं। जब वह आदित्यमय प्राणात्मा उदित होता है तब वह विविध रूपो मे प्रकाशित होता है।

तस्यैष मारुतो गणः स एति शिक्याकृतः॥ ८॥

भा०—इस आत्मा का यह मरुत् सम्बन्धी प्राणगण है। वह

प्राणगण और देवगण मानो इस मूर्धा में और उस महान् परमात्मा में ऐसा प्रतीत होता है जैसे कि एक छिक्के में धरा हो ।

रश्मिभिर्नभ आभृतं महेन्द्र एत्यावृतः ॥ ९ ॥

भा०—व्याख्या देखो इसी सूक्त की २ य ऋचा ।

तस्येमे नव कोशा विष्टम्भा नवधा हिताः ॥ १० ॥

भा०—उस आत्मा के ये साक्षात् नव कोश हैं । वे ही नव प्रकार के विविधरूप से उसके स्तम्भन करने वाले, रोकने वाले, बन्धनरूप में स्थित हैं ।

स प्रजाभ्यो वि पश्यति यच्च प्राणति यच्च न ॥ ११ ॥

भा०—वह जो प्राण लेता है और जो प्राण नहीं लेता उन समस्त प्रजाओं को विशेषरूप से देखता है । या समस्त प्रजाओं के हित के लिये उन पर निरीक्षण करता है ।

तमिदं निगतं सहः स एष एक एकवृदेक एव ॥ १२ ॥

भा०—उसको ही यह समस्त शक्ति पूर्णरूप से प्राप्त है । वह यह एक ही है । एकमात्र स्वयं समर्थ और ऐश्वर्य में एक अद्वितीय ही है ।

एते अस्मिन् देवा एकवृतो भवन्ति ॥ १३ ॥ (१२)

भा०—ये समस्त देव, दिव्य पदार्थ और विद्वान्गण उस परमेश्वर में ही आश्रित होकर रहते हैं ।

(२) अद्वितीय परमेश्वर का वर्णन ।

ब्रह्म ऋषिः । १४ भुरिक् साम्नी त्रिष्टुप् । १५ आसुरी पङ्क्तिः । १६, १९ प्राजापत्याऽनुष्टुप् । १७, १८ आसुरी गायत्री । अष्टर्चं द्वितीय पर्यायसूक्तम् ।

कीर्तिश्च यशश्चाम्भश्च नभश्च ब्राह्मणवर्चसं चान्नं चान्नाद्यं च ॥१४॥

य एतं देवमेकवृतं वेद ॥१५॥

भा०—वही परमेश्वर कीर्ति और यश और व्यापक सृष्टि का आदि मूलकारण जल और महान् आकाश या बल, ब्रह्मतेज, अन्न और

अन्नादि पदार्थों का भोग सामर्थ्य है ये सब वस्तुएँ उस विद्वान् को प्राप्त होती हैं जो कि उस उपास्यदेव परमेश्वर को एक रूप से सदा वर्तमान, अखण्ड, एक रसरूप मे जानता है ।

न द्वितीयो न तृतीयश्चतुर्थो नाप्युच्यते । ० ॥ १६ ॥
न पञ्चमो न षष्ठः सप्तमो नाप्युच्यते । ० ॥ १७ ॥
नाष्टमो न नवमो दशमो नाप्युच्यते । ० ॥ १८ ॥

भा०—वह परमेश्वर न दूसरा है, न तीसरा और चौथा भी नहीं कहा जाता । न पांचवां है, न छठा, सातवा भी नहीं कहा जाता । न आठवा है, न नवा और दशवा भी नही कहा जाता । प्रत्युत वह सब से प्रथम, सर्वश्रेष्ठ, सबसे अद्वितीय और सबसे मुख्य है ।

स सर्वस्मै वि पश्यति यच्च प्राणति यच्च न । ० ॥ १९ ॥
तमिदं निगतं सहः स एष एक एकवृदेक एव । ० ॥ २० ॥
सर्वे अस्मिन् देवा एकवृतो भवन्ति । ० ॥ २१ ॥ (१६)

भा०—जो प्राण लेता है और जो प्राण नहीं लेता उस सब चराचर पदार्थ को वह विशेषरूप से देखता है । उसमे यह समस्त जगत् आश्रित है । वह परमात्मा शक्तिस्वरूप, सबका संचालक, प्रवर्तक है । वह एक ही है । वह एकरस, अखण्ड, चेतनस्वरूप है । वह एक ही अद्वितीय है । उस सर्व शक्तिमान् परमात्मा मे समस्त लोक एकमात्र आश्रित हो कर उसी मे लीन होकर रहते हैं ।

(३) परमेश्वर का वर्णन ।

२२ भुरिक् प्राजापत्या त्रिष्टुप् । २३ आर्ची गायत्री । २५ एकपदा आसुरी गायत्री । २६ आर्ची अनुष्टुप् । २७, २८ प्राजापत्याऽनुष्टुप् । सप्तर्चं तृतीयं पर्यायसूक्तम् ।

ब्रह्म च तपश्च कीर्तिश्च यशश्चाम्भश्च नभश्च ब्राह्मणवर्चसं चान्नं चान्नाद्यं च ॥ २२ ॥

भूतं च भव्यं च श्रद्धा च रुचिश्च स्वर्गश्च स्वधा च ॥ २३ ॥
य एतं देवमेकवृतं वेद ॥ २४ ॥

भा०—जो इस देव को एकमात्र, अखण्ड, एकरस, चेतनरूप से वर्तमान जान लेता है उसको साक्षात् वेद, तप, कीर्त्ति, यश, व्यापक-शक्ति, बल, प्रबन्धशक्ति, ब्राह्मणों का ब्रह्मतेज, अन्न और अन्न आदि का भोग सामर्थ्य, इसी प्रकार भूतकाल, भविष्यत्, सत्य धारणा, रुचि, सुखमय लोक और मोक्षपद भी प्राप्त होता है।

स एव मृत्युः सोऽमृतं सोऽभ्वं १ स रक्षः ॥ २५ ॥
स रुद्रो वसुवनिर्वसुदेये नमोवाके वषट्कारोऽनु संहितः॥२६

भा०—वह परमात्मा ही सब प्राणियों के प्राणों को देह से जुदा करने वाला 'मृत्यु' है। वही परमेश्वर 'अमृत' प्राणप्रद है। वह कभी न पैदा होने वाला या महान् स्तुति योग्य है। वही सब का रक्षक है। वह 'रुद्र' है। वह समस्त वास करने हारे जीवों और लोकों का एकमात्र भजन करने योग्य और आजीविका देने वाला है। साक्षात् 'अग्नि' रूप है। वही यज्ञ मे दान करने योग्य आहुति में और 'नम.' वचन पूर्वक करने योग्य ईश्वरप्रार्थना स्तुति आदि ब्रह्मयज्ञ में भी और स्वाहा वषट् वौषट आदि शब्दों द्वारा जिन यज्ञों मे आहुतियां दी जाती हैं उन यज्ञों मे निरन्तर स्मरण किया जाता है।

तस्येमे सर्वे यातव उप प्रशिषमासते ॥ २७ ॥
तस्यामू सर्वा नक्षत्रा वशे चन्द्रमसा सह ॥ २८ ॥ (१७)

भा०—उसके शासन को सब गतिमान सूर्य, ग्रह आदि पिण्ड और समस्त जंगम प्राणी भी मानते हैं। उनके वश मे चन्द्रमा सहित ये समस्त नक्षत्रगण भी हैं।

(४) परमेश्वर का वर्णन ।

२६, ३३, ३६, ४०, ४५ भासुरीगायत्री । ३०, ३२, ३५, ३६, ४२ प्राजापत्यानुष्टुभः । ३१ विराड् गायत्री । ३४, ३७, ३८ साम्न्युष्णिह. । ४२ साम्नीबृहती । ४३ आर्षी गायत्री । ४४ साम्न्यनुष्टुप् । सप्तदशर्चं चतुर्थं पर्यायसूक्तम् ।

स वा अह्नोऽजायत तस्मादहरजायत ॥ २६ ॥

भा०—वह परमेश्वर दिन की घटनाओं से प्रकट होता है, क्योंकि इससे ही दिन उत्पन्न होता है ।

स वै रात्र्या अजायत तस्माद् रात्रिरजायत ॥ ३० ॥

भा०—वह परमेश्वर रात्रि से जाना जाता है क्योंकि उस परमेश्वर से ही रात्रि भी उत्पन्न होती है ।

स वा अन्तरिक्षादजायत तस्मादन्तरिक्षमजायत ॥ ३१ ॥

भा०—अन्तरिक्ष से परमेश्वर की सत्ता प्रतीत होती है क्योंकि उस परमेश्वर से ही अन्तरिक्ष उत्पन्न होता है ।

स वै वायोरजायत तस्माद् वायुरजायत ॥ ३२ ॥

भा०—वह परमेश्वरी शक्ति वायु से प्रादुर्भूत या प्रकट होती है । क्योंकि वह वायु उस परमेश्वर से उत्पन्न होता है ।

स वै दिवोऽजायत तस्माद् द्यौरध्यजायत ॥ ३३ ॥

भा०—निश्चय से द्यौलोक महान् आकाश से वह प्रकट होता है, क्योंकि उससे वह महान् आकाश उत्पन्न होता है ।

स वै दिग्भ्योजायत तस्माद् दिशोऽजायन्त ॥ ३४ ॥

भा०—उस परमेश्वर की सत्ता दिशाओं से प्रकट होती है क्योंकि उस परमेश्वर से दिशाएं उत्पन्न होती हैं ।

स वै भूमेरजायत तस्माद् भूमिरजायत ॥ ३५ ॥

भा०—वह भूमि से प्रकट होता है, क्योंकि उससे वह भूमि उत्पन्न होती है ।

स वा अग्नेरजायत तस्मादग्निरजायत ॥ ३६ ॥

भा०—वह परमेश्वर अग्नि की महान् शक्ति से स्वयं प्रकट होता है क्योंकि अग्नि उसी से उत्पन्न होता है।

स वा अद्भ्योऽजायत तस्मादापोऽजायन्त ॥ ३७ ॥

भा०—वह परमेश्वर जलों से प्रकट होता है क्योंकि वे जल उस परमेश्वर से उत्पन्न होते हैं।

स वा ऋग्भ्योऽजायत तस्मादृचोऽजायन्त ॥ ३८ ॥

भा०—वह परमेश्वर ऋचाओं से प्रकट होता है क्योंकि ये ऋचाएं उससे ही उत्पन्न होती हैं।

स वै यज्ञादजायत तस्माद् यज्ञोऽजायत ॥ ३९ ॥

भा०—वह यज्ञ से प्रकट होता है क्योंकि उससे यज्ञ उत्पन्न होता है।

स यज्ञस्तस्य यज्ञः स यज्ञस्य शिरस्कृतम् ॥ ४० ॥

भा०—वह परमेश्वर स्वयं यज्ञस्वरूप, साक्षात् प्रजापति है। उसका स्वरूप ही यज्ञ है। वह परमेश्वर 'ओ३म्' रूप से यज्ञ का शिरोभाग बना हुआ है।

स स्तनयति स वि द्योतते स उ अश्मानमस्यति ॥ ४१ ॥

भा०—वही परमेश्वर मेघ होकर गर्जता है, वह विद्युत्‌रूप से चमकता है। और वह ही ऊपर से ओला बरसाता है।

पापाय वा भद्राय वा पुरुषायासुराय वा ॥ ४२ ॥

यद्वा कृणोष्योषधीर्यद्वा वर्षसि भद्रया यद्वा जन्यमवीवृधः ॥४३॥

तावांस्ते मघवन् महिमोपो ते तन्वः शतम् ॥ ४४ ॥

उपो ते बध्वे बद्धानि यदि वासि न्यर्बुदम् ॥ ४५ ॥

भा०—पापी पुरुष के सुख के लिये तथा कल्याणकारी सज्जन पुरुष के लिये या केवल प्राणादि में रमण करने वाले भोगी विलासी पुरुष या बलवान् पुरुष के लिये, तू जो कुछ भी अन्नादि ओषधियों को

उत्पन्न करता है और जो भी तू वर्षाता है और जो भी तू उत्पन्न होने वाले प्राणियों की वृद्धि करता है, हे सर्वैश्वर्य के स्वामी परमेश्वर ! उतना सब तेरा ही महान् ऐश्वर्य है, तेरी ही महिमा है। और ये सब भी तेरे ही सैकड़ों स्वरूप हैं। ये सब भी तेरे ही बन्धन में करोड़ों सूर्य बंधे हैं। या यों कहें कि स्वयं खरबों संख्या में तू ही है।

[५] परमेश्वर का वर्णन।

४६ आसुरी गायत्री। ४७ यवमध्या गायत्री। ४८ साम्नी उष्णिक्। ४९ निचृत्-साम्नी बृहती। ५० प्राजापत्यानुष्टुप्। ५१ विराट् गायत्री। षड्चात्मकं पञ्चमं पर्यायसूक्तम्।

भूयानिन्द्रो॑ नमुराद् भूया॑निन्द्रासि मृत्युभ्यः॑ ॥ ४६ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवान् परमात्मा ! तू अमर रहने वाले पदार्थों से भी अधिक ऐश्वर्यवान् है। हे परमेश्वर ! तू सब विनाशी पदार्थों से भी बड़ा और अधिक शक्तिशाली है।

भूयानरा॑त्याः शच्या॒ पति॒स्त्वमि॑न्द्रासि वि॒भूः प्र॒भूरिति॒ त्वोपा॑-स्महे व॒यम् ॥ ४७ ॥

भा०—हे परमेश्वर ! तू हमारे दुश्मनों से भी अधिक बलशाली, अधिक ऐश्वर्यवान् है। समस्त शक्ति का स्वामी तू स्वयं है। 'विभू' अर्थात् नाना सामर्थ्यों से सम्पन्न और 'प्रभु' अर्थात् उत्तम सामर्थ्यवान् इन नामों से हम तेरी उपासना करते हैं।

नमस्ते अस्तु पश्यत॒ पश्य॑ मा पश्यत ॥ ४८ ॥

भा०—हे दर्शनीय अथवा सर्वद्रष्टः ! तुझे हमारा नमस्कार हो। हे सर्वद्रष्टः ! मुझ अपने उपासक को दया दृष्टि से देखिये।

अ॒न्नाद्ये॑न॒ यश॑सा तेज॑सा ब्राह्मणवर्च॒सेन॑ ॥ ४९ ॥

भा०—और दया करके आप मुझे अन्न आदि के भोग सामर्थ्य, वीर्य, तेज और वेद के विद्वानों के बल से बढ़ाइये।

अम्भो अमो महः सह इति त्वोपास्महे वयम् । ० । ० ॥५०॥

भा—हे परमात्मन् ! हम आपकी, सर्वव्यापक शान्त जल के समान सर्वप्राणप्रद, ज्ञानस्वरूप, तेजस्वरूप, परमपूजनीय, सर्ववशयिता इन गुणों से उपासना करते हैं।

अम्भो अरुणं रजतं रजः सह इति त्वोपास्महे वयम् ।०।०॥५१॥(१९)

भा०—हे परमात्मन् ! हम जल के समान सब प्राणों के उत्पादक, प्रकाशस्वरूप, चित्त के अनुरञ्जक, आनन्दस्वरूप, समस्त लोकों और ऐश्वर्य विभूतियों से सम्पन्न, सबके वश करनेहारे, परम बलस्वरूप इन गुणों और रूपों से तेरी उपासना करते हैं।

(६)

५२, ५३ प्राजापत्यानुष्टुभौ । ५४ आर्षी गायत्री, शेषास्त्रिष्टुभः । पञ्चर्चं षष्ठं पर्यायसूक्तम् ।

उरुः पृथुः सुभूर्भुव इति त्वोपास्महे वयम् । ० । ० ॥ ५२ ॥

भा०—हे परमात्मन् ! हम लोग, सर्वाच्छादक, सर्वव्यापक, उत्तम शक्तिरूप में समस्त पदार्थों मे वर्तमान, अन्तरिक्ष के समान व्यापक वा सब का उत्पादक, इत्यादि नामों, गुणों और रूपों से तेरी उपासना करते हैं।

प्रथो वरो व्यचो लोक इति त्वोपास्महे वयम् । ० । ० ॥ ५३ ॥

भा०—हे परमात्मन् ! हम तुझ को सब से अधिक विस्तृत, सबसे वरणीय, सर्वश्रेष्ठ, सब मे व्यापक, सबका द्रष्टा, इन नामों, गुणों और रूपों से तेरी उपासना करते हैं।

भवद्वसुरिदद्वसुः संयद्वसुरायद्वसुरिति त्वोपास्महे वयम् ।०।० ।५४॥

भा०—हे परमेश्वर ! हम आपको, समस्त उत्पन्न होने हारे चर अचर पदार्थों में बसने हारे, परम ऐश्वर्यवान्, सूर्यादि पदार्थों में भी

वास करने हारे, समस्त ऐश्वर्य को एकत्र एक काल में धारण करने वाले और समस्त लोकों को वश करने हारे केन्द्रस्थ महा सूर्यों के भी भीतर शक्ति रूप से बसने वाले, इन नामों, गुणों और रूपों से भी तेरी उपासना करते हैं।

नमस्ते अस्तु पश्यत पश्य मा पश्यत ॥ ५५ ॥
अन्नाद्येन यशसा तेजसा ब्राह्मणवर्चसेन ॥५६॥ (२०)

भा०—व्याख्या देखो गत पञ्चम पर्याय सूक्त के ४८, ४९ मन्त्र ॥

इति चतुर्थोऽनुवाकः ।

[तत्र पर्यायाः षट् सूक्तमेकं षट् पञ्चाशदृचः स्मृताः]

इति त्रयोदशं काण्डं समाप्तम् ।

चतुर्भिरनुवाकैश्च सूक्तैश्चापि चतुर्मितैः ।
अष्टाशीतिशतेनर्ग्भिः पूर्यतेऽसौ त्रयोदशः ॥

इति प्रतिष्ठितविद्यालंकार-मीमांसातीर्थविरुदोपशोभित-श्रीमत्पण्डितजयदेवशर्मणा विरचितेऽथर्ववेदस्यालोकभाष्ये त्रयोदशं काण्डं समाप्तम् ।

॥ ओ३म् ॥

अथ चतुर्दशं काण्डम् ।

[१] गृहाश्रम प्रवेश और विवाह-प्रकरण ।

सावित्री सूर्या ऋषिका । आत्मा देवता [१—५ सोमस्तुति.] । ६ विवाह । २२ सोमार्कौ । २४ चन्द्रमाः । २५ विवाहमन्त्राशिष । २५, २७ वधूवास संस्पर्श-मोचनम् । १—१३, १६—१८, २२, २६—२८, ३०, ३४, ३५, ४१—४४, ५१, ५२, ५५, ५८, ५६, ६२—६४ अनुष्टुभ । १४ विराट प्रस्तारपंक्ति । १५ आस्तारपंक्तिः । १६, २०, २३, २४, ३१—३३, ३७, ३६, ४०, ४५, ४७, ४६, ५०, ५३, ५६, ५७, ५८, ५६, ६१ त्रिष्टुभः (२३, ३१, ४५ बृहतीगर्भाः) । २१, ४६, ५४, ६४ जगत्यः । (५४, ६४ भुरिक् त्रिष्टुभौ) । २६, ५५ पुरस्ताद्बृहत्यौ । ३४ प्रस्तारपंक्ति । ३८ पुरोबृहती त्रिपदा परोष्णिक् । [४८ पथ्यापंक्तिः] । ६० पराऽनुष्टुप । चतुःषष्टृच सूक्तम ।

सत्येनोत्तभिता भूमिः सूर्येणोत्तभिता द्यौः ।
ऋतेनादित्यास्तिष्ठन्ति दिवि सोमो अधि श्रितः ॥ १ ॥

भा०—सत्य ने भूमि को उठा रक्खा है । सूर्य ने आकाशस्थ पिण्डों को उठा रक्खा है । तप तेज के बल से ऋतुगण स्थिर रहते हैं । प्रकाशमान सूर्य के आश्रय पर चन्द्र आश्रित है । और प्रकाशमान सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष में वीर्य आश्रित है ।

सोमेनादित्या बलिनः सोमेन पृथिवी मही ।
अथो नक्षत्राणामेषामुपस्थे सोम आहितः ॥ २ ॥

भा०—आदित्य ब्रह्मचारीगण वीर्य के बल से बलवान रहते हैं । वीर्य के बल पर ही यह भूमितुल्य स्त्री भी पूज्य बड़ी शक्तिशालिनी

है । और इन नक्षत्रों के समीप बीच मे चन्द्र के समान अपने स्थान से च्युत न होने वाले दृढ़ तपस्वियों के बीच भी वीर्य ही स्थित होता है ।

सोमं मन्यते पपिवान् यत् संपिंषन्त्योषधिम् ।
सोमं य ब्रह्माणो विदुर्न तस्याश्नोति पार्थिवः ॥ ३ ॥

भा०—सोमपान करने वाला पुरुष उसको ही सोम समझ लेता है जिसे लोग ओषधि रूप मे पीसा करते हैं । परन्तु जिस वेदज्ञान को वेदज्ञ पुरुष सोम रूप से जानते हैं उसको पृथिवीवासी पुरुष या राजा भी भोग नहीं करता ।

'वेदाना दुग्ध भृग्वङ्गिरस. सोमपानं मन्यन्ते । सोमात्मको एयं वेद । तदप्येतद् ऋचोक्तं सोमं मन्यते पपिवान्० । इति गो० ब्रा० पू० २ । ९ ॥

यत् त्वा सोम प्र पिबन्ति तत आ प्यायसे पुनः ।
वायुः सोमस्य रक्षिता समानां मास आकृतिः ॥ ४ ॥

भा०—हे सोम ! जब तुझे लोग भरपूर होकर पी लेते या भोग लेते है तिस पर भी तू फिर बढ़कर समृद्ध हो जाता है । प्राण वायु, अन्तरिक्षस्थ जल और देह गत वीर्य का रक्षक है । जैसे वर्षों का मास ही बनाने वाला होता है ।

आच्छद्विधानैर्गुपितो बार्हतैः सोम रक्षितः ।
ग्राव्णामिच्छृण्वन् तिष्ठसि न ते अश्नाति पार्थिवः ॥ ५ ॥

भा०—हे वीर्यवान् पुरुष ! आत्मन् ! तू चारों तरफ के प्रकोट, आवरणों की रचनाओ से राजा के समान सुरक्षित है और बडे बड़े शक्तिशाली पुरुषों द्वारा रक्षा किया गया है । उपदेष्टा लोगो के उपदेशों और व्याख्यानों को ही सुनता हुआ तू विराजमान है । राजा भी तेरा भोग नहीं करता ।

चित्तिरा उपबर्हणं चक्षुरा अभ्यञ्जनम् ।
द्यौर्भूमिः कोश आसीद् यदयात् सूर्या पतिम् ॥ ६ ॥

भा०—जब सूर्य की कान्ति के समान चित्त को प्रेरणा करने वाली, *स्वयंवरा नवयुवति कन्या पति को प्राप्त होती है,* उस समय चित्त का संकल्प ही सेज पर सिर टेकने के लिये लगे सिरहाने के समान सुखदायी होता है। और चक्षु में उत्पन्न प्रेम का राग ही गात्र के ऊपर लगाने के लिये सुगन्ध तैलादि के समान शान्तिदायक होता है। आकाश और भूमि ये दोनों खजाने बन जाते हैं।

रैभ्यासीदनुदेयी नाराशंसी न्योचनी।
सूर्याया भद्रमिद् वासो गाथयैति परिष्कृता ॥ ७ ॥

भा०—कन्या की रेभी नामक ऋचा विदाई के समय का दहेज हो और उत्तम नर नारियों की इतिहास-कथा गृह प्रवेश के समय पहनने योग्य ओढ़नी या आभूषण हो और सूर्या के समान कान्तिमती कन्या का वस्त्र ही अति कल्याणकारी, सुखकारी और सुन्दर हो इस प्रकार वह गाथा, श्लोक, मन्त्रपाठ आदि से सुशोभित होकर वधू पति के घर आवे।

स्तोमा आसन् प्रतिधयः कुरीरं छन्द ओपशः।
सूर्याया अश्विना वराग्निरासीत् पुरोगवः ॥ ८ ॥

भा०—वेद के स्तुतिपाठ उस कन्या के प्रतिपालक हों। और कन्या की अभिलाषा मैथुन करने और पति के समीप शयन करने की हो। इसके बाद रात दिन के समान सदा परस्पर साथ रहने वाले वे दोनों एक दूसरे को वरण करने वा चाहने वाले हों। और उसके इस कार्य में अग्नि और उसके समान ज्ञान प्रकाश से युक्त आचार्य ही उसका पुरोहित या साक्षी हो। यहां महर्षि दयानन्दकृत संस्कारविधि में विवाह संस्कार के योग्य काल का निर्णय देखने योग्य है।

"जब कन्या रजस्वला होकर शुद्ध हो जाय तब जिस दिन गर्भाधान की रात्रि निश्चित की हो उसमें विवाह करने के लिये प्रथम ही मत्र

सामग्री जोड रखनी चाहिये ।" इति दयानन्द संस्कारविधि १४ संस्क० पृ० १४२-४३ ॥

कुरीरम्—क्रियते तत् कुरीरः—मैथुन वा । इति दयानन्द उणादि-भाष्ये । उणा० ४ । ३३ ॥ ओपशः—आङ् उपपूर्वात् शेतेरसुन् । ओपशः सहशयनम् ।

सोमो॑ वधूयुर॑भवद॒श्विना॑स्तामु॒भा व॒रा ।
सू॒र्यां यत् पत्ये॒ शंस॑न्तीं॒ मन॑सा सवि॒ताद॑दात् ॥ ९ ॥

भा०—जब वीर्यवान् पुरुष वधू की कामना से युक्त होवे । तब स्त्री और पुरुष दोनो परस्पर एक दूसरे का वरण करने वाले होवें । और जब दोनो की अभिलाषा पूरी तरह से हो तब पति की अभिलाषा करने वाली कन्या को उसका उत्पादक पिता अपने मनः-सकल्प द्वारा दान करे, पति के हाथ सौंप दे ।

मनो॑ अस्या॒ अन॑ आसी॒द् द्यौरा॑सीदु॒त च्छ॒दिः ।
शु॒क्राव॑न॒ड्वाहा॑वास्तां॒ यदया॑त् सू॒र्या पति॑म् ॥ १० ॥

भा०—जब कन्या पति के पास जावे तब इस कन्या का पति के पास जाने के लिये मन अर्थात् चित्त या सकल्प ही रथ हो और आकाश या वाणी ही उस पूर्वोक्त सकल्पमय मनोरथ की ऊपर की छत के समान आवरण हो । उस मनोरथरूप रथ को ढोने वाले बैलों के स्थान पर दोनो स्त्री पुरुष के शुक्र और रज हों । या वे दोनों स्वयं ही शुद्ध चित्त, कान्तिमान होकर उस गृहस्थ रथ के उठाने वाले हों ।

ऋ॒क्सा॒माभ्या॑म॒भिहि॑तौ॒ गावौ॑ ते सा॒मना॑ वैताम् ।
श्रोत्रे॑ ते च॒क्रे आ॑स्तां दि॒वि पन्था॑श्चराच॒रः ॥ ११ ॥

भा०—ऋग्वेद और सामवेद दोनो से बँधे हुए तेरे मनोरथ, रथ के पूर्वोक्त दोनो बैलो के समान चलें । हे कन्ये ! दोनो कान तेरे मनोरथ

रथ के दो चक्र रहे। तेरे उस मनोरथ-रथ का समस्त चराचर संसार मार्ग है।

शुची ते चक्रे यात्या व्यानो अक्ष आहतः।
अनो मनस्मयं सूर्यारोहत् प्रयती पतिम् ॥ १२ ॥

भा०— हे कन्ये! तेरे अपने पति के गृह जाते हुए कान्तिमान् पूर्वोक्त दो चक्र हों और धुरारूप से व्यान वायु जो हृदय की नाड़ियों में विविध प्रकार से गति करता है वह लगा हो। अपने पति के पास जाती हुई सूर्य की उषा के समान शुद्ध कान्ति से युक्त कन्या सकल्प से बने मानस-रथ पर चढ़े।

सूर्याया वहतुः प्रागात् सविता यमवासृजत्।
मघासु हन्यते गावः फल्गुनीषु व्युह्यते ॥ १३ ॥

भा०—सूर्यवत् उत्पादक पिता जिस वहन योग्य पदार्थ को प्रदान या विदा करता है वही कन्या का वहन करने वाला आगे जाये। मघा नक्षत्रों के योग में सूर्य की किरणें भी मारी जाती है, मन्द हो जाती हैं, इस कारण फल्गुनी नक्षत्रों के योग में विवाह किया जाता है।

यदश्विना पृच्छमानावयातं त्रिचक्रेण वहतुं सूर्यायाः।
क्वैकं चक्रं वामासीत् क्व देष्ट्राय तस्थथुः ॥ १४ ॥

भा०—हे दिन रात्रि के समान सदा एक दूसरे के पीछे चलने हारे विवाहित वर वधुओ! उषा के समान कान्तिमती कन्या के वहन करने योग्य रथ को लेकर, तीन चक्रों वाले रथ पर सवार होकर, जब अपना मार्ग पूछते हुए जाओ तो हे स्त्री पुरुषो! तुम्हारा एक चक्र कहां होता है और उपदेष्टा के ज्ञानोपदेश के श्रवण करने के लिये तुम दोनों किस स्थान पर खड़े हुआ करते हो। पूर्व मनोमय शकट के श्रोत्र दो चक्र बतलाये हैं। तीसरे चक्र का निर्देश नहीं होने से उसी की यहां जिज्ञासा है। वह तृतीय चक्र बुद्धि है। [देखो मन्त्र १६]

यदयातं शुभस्पती वरेयं सूर्यामुप ।
विश्वे देवा अनु तद् वामजानन् पुत्रः पितरमवृणीत पूषा ॥१५॥

भा०—हे शोभा के मालिक वर वधुओ ! तुम दोनो जब कन्या के वरण कार्य के अवसर पर, विवाह संस्कार के अवसर पर आते हो, तब समस्त विद्वान् पुरुष तुम दोनो वर वधू के विषय मे भली प्रकार जान लें और तुम दोनो को विवाह कर लेने का अनुमति दें । और तब हृष्ट पुष्ट पुत्र अपने उत्पादक माता पिता को प्राप्त करे ।

अर्थात् योग्य वयस् पर विवाह होने पर दोनो के हृष्ट पुष्ट पुत्र उत्पन्न होते हैं ।

द्वे ते चक्रे सूर्ये ब्रह्माणं ऋतुथा विदुः ।
अथैकं चक्रं यद् गुहा तदद्धातय इद् विदुः ॥ १६ ॥

भा०—हे सौभाग्यवति कन्ये ! तेरे मनरूप रथ के श्रोत्र या कान-रूप दोनो चक्रों को ब्रह्म के जानने वाले वेदज्ञ विद्वान् ऋतुकाल के अवसर पर भली प्रकार जानते हैं । और एक चक्र जो गुहा मे हृदय के भीतर छिपा चित्त या बुद्धि है उसको विद्वान् लोग ही जानते हैं । कन्या की अभिलाषा वर-प्राप्ति की होती है, वह अपने कानों से योग्य वरो की कथा श्रवण करती है और चित्त से योग्य वर को गुणती है । दोनों कान और चित्त ये तीन चक्र है जिनसे वह मनोरथ रूप रथपर चढ़ कर पति को प्राप्त करती है ।

अर्यमणं यजामहे सुबन्धुं पतिवेदनम् ।
उर्वारुकमिव बन्धनात् प्रेतो मुञ्चामि नामुतः १७ ॥

भा०—हम कन्या पक्ष के लोग सर्वश्रेष्ठ, न्यायकारी, पति को प्राप्त कराने वाले, उत्तम बन्धुस्वरूप परमेश्वर की पूजा करते हैं । खरबूजा जिस प्रकार अपना बेल से टूटकर आपसे आप अलग हो जाता है उसी प्रकार मैं कार्यकर्त्ता इस पितृगृह से इस कन्या को पृथक करता हूं, उस पतिबन्धन से कभी पृथक् न करूं, बल्कि उसके साथ जोड़ता हूं ।

प्रेतो मुञ्चामि नामुतः सुबद्धाममुतस्करम् ।
यथेयमिन्द्र मीढ्वः सुपुत्रा सुभगासति ॥ १८ ॥

भा०—मैं कन्या का पिता इस पितृकुल से सर्वथा इस कन्या को पृथक् करता हूं। इसके पति सम्बन्ध से इसको कभी अलग न करूं। प्रत्युत पति के साथ इसको खूब अच्छी प्रकार ग्रन्थिबद्ध करता हूं। जिससे हे परमेश्वर ! यह उत्तम सौभाग्यवाली कन्या वीर्य सेचन में समर्थ पति के साथ रहकर उत्तम पुत्रों वाली हो ।

प्र त्वा मुञ्चामि वरुणस्य पाशाद् येन त्वाबध्नात् सविता सशेवाः ।
ऋतस्य योनौ सुकृतस्य लोके स्योनं ते अस्तु सहसंभलायै ॥१९॥

भा०—हे कन्ये ! तुझको मैं पति, सर्वश्रेष्ठ परमेश्वर या तेरे पिता के उस बन्धन से छुड़ाता हूं जिस बन्धन से तुझे उत्तम रीति से सेवा करने योग्य परमेश्वर ने या तेरे पिता ने बांधा था। हे कन्ये ! परम सत्य ज्ञान और यज्ञ के स्थान और पुण्य और सत्याचरण के लोक इस गृहस्थाश्रम में पति के साथ सदा सुमधुर भाषण करने वाली तुझको सुख प्राप्त हो।

भगस्त्वेतो नयतु हस्तगृह्याश्विना त्वा प्र वहतां रथेन ।
गृहान् गच्छ गृहपत्नी यथासो वशिनी त्वं विदथमा वदासि २०॥(२)

भा०—हे कन्ये ! तुझको ऐश्वर्यवान् सौभाग्यशील वर इस पितृगृह से हाथ से पकड कर, पाणिग्रहण करके ले जावे। अश्व पर आरूढ वर और उसका भाई दोनों तुझको रथ पर बैठाकर ले जायें। हे कन्ये ! तू गृहपत्नी होकर घर को जा जिसमें तू गृहस्वामिनी हो। सबको वश करने हारी, सबकी हृदयहारिणी तू ज्ञानसे भरे वचन कहा कर।

इह प्रियं प्रजायै ते समृध्यतामस्मिन् गृहे गार्हपत्याय जागृहि ।
एना पत्या तन्वं सं स्पृशस्वाथ जिर्विर्विदथमा वदासि ॥ २१ ॥

भा०—हे पुत्री ! तेरी सन्तान के लिये प्रिय लगने वाले पदार्थ अच्छी प्रकार अधिक मात्रा में प्राप्त हों। इस घर में गृहपति के कार्य,

गार्हपत्य अग्नि की सेवा और गृहस्थकार्य के लिये तू सदा जाग, सावधान रह। और इस पति के संग अपने शरीर को स्पर्श करा, आलिङ्गन कर। और उसके बाद अधिक उमर की बूढ़ी होकर ज्ञानोपदेश किया कर।

इहैव स्तं मा वि यौष्टं विश्वमायुर्व्यश्नुतम्।
क्रीडन्तौ पुत्रैर्नप्तृभिर्मोदमानौ स्वस्तकौ ॥ २२ ॥

भा०—हे वरवधू! तुम दोनो इस गृहस्थ आश्रम मे रहो। कभी वियुक्त न हुआ करो। पुत्रो, नातियो से खेलते हुए आनन्द प्रसन्न रहते हुए उत्तम गृह से सम्पन्न होकर, अपनी पूर्ण आयु का विशेष रूप से या विविध प्रकार से भोग करो।

पूर्वापरं चरतो माययैतौ शिशू क्रीडन्तौ परि यातोर्णवम्।
विश्वान्यो भुवना विचष्ट ऋतूँरन्यो विदधज्जायसे नवः ॥२३॥

भा०—ये दोनों एकत्र शयन करने हारे पति पत्नी एक दूसरे के आगे और पीछे, पतिपत्नी भाव से परस्पर की प्रेमलीला या सद्बुद्धि से विचरण करते हैं और नाना प्रकार से क्रीडा विहार करते हुए संसार-सागर के पार जाते हैं। उन दोनो मे एक सूर्य के समान समस्त लोकों को विविध रूप से देखता है। और दूसरा चन्द्रमा के समान स्त्री ऋतु वाले को धारण करती हुई सदा नवीन शरीर वाली, सुन्दर रूप हो जाती है।

नवोनवो भवति जायमानोऽह्नां केतुरुषसामेत्यग्रम्।
भागं देवेभ्यो वि दधास्यायन् प्र चन्द्रमस्तिरसे दीर्घमायुः ॥२४॥

भा०—हे सूर्य के समान तेजस्वी पति! तू दिनो का प्रज्ञापक ज्ञाता होकर, पुत्र रूप से उत्पन्न होता हुआ, उषाओं के प्रारम्भ मे सूर्य के समान नये नये रूप में प्रकट होता है। और तू अतिथि आदि देव के समान पूज्य पुरुषों के लिये अन्न आदि सेवन योग्य पदार्थ विविध प्रकार

से प्रदान करता है और सबको प्राप्त होकर हे चन्द्र के समान आह्लादकारिन् व पत्नि! तू सबको दीर्घ जीवन प्रदान करती है।

पतिर्जायां प्रविशति गर्भो भूत्वा स मातरम्।
तस्या पुनर्नवो भूत्वा दशमे मासि जायते।
तज्जाया जाया भवति यदस्या जायते पुनः॥ ऐ० ७। १३॥

परा देहि शामुल्यं ब्रह्मभ्यो वि भजा वसु।
कृत्यैषा पद्वती भूत्वा जाया विशते पतिम्॥ २५॥

भा०—हे नवविवाहित पुरुष! तू शमन करने योग्य मानस दुर्भाव या मलिनता को दूर करदे। और विद्वान् ब्राह्मणों को धन का विविध रूपों में दान किया कर। यह स्त्री साक्षात् चरणों वाली सेना के समान हिंसाकारिणी होकर पति के गृह में प्रवेश करती है।

नीललोहितं भवति कृत्यासक्तिर्व्यज्यते।
एधन्ते अस्या ज्ञातयः पतिर्बन्धेषु बध्यते॥ २६॥

भा०—हे पति नीला पीला भी लाल हो जाता है जब कि कृतिशक्ति रूप जो पत्नी है उसका प्रेम स्पष्ट हो जाता है। तब उस कन्या के बन्धु बान्धव भी बढ़ते हैं और पति प्रेम के बन्धनों में बंधता है।

अश्लीला तनूर्भवति रुशती पापयामुया।
पतिर्यद् वध्वो३ वाससः स्वमङ्गमभ्यूर्णुते॥ २७॥

भा०—यदि वधू के वस्त्र से पति अपना शरीर आच्छादित करे तो इस पाप या बुरे काम से सुन्दर शोभायुक्त शरीर भी गन्दा, मलिन, शोभा रहित हो जाता है। पति कभी स्त्री के तन के कपड़े न पहना करे।

आशसनं विशसनमथो अधिविकर्त्तनम।
सूर्यायाः पश्य रूपाणि तानि ब्रह्मोत शुम्भति॥ २८॥

भा०—पुत्र प्रसव करने में समर्थ युवति के रूपों को देख।

उसने रजस्वला होने के समय अङ्गों का कटना, फटना और चिरना आदि होता है। उन सब दोषों और मलिनता के कार्यों को वेदज्ञानी विद्वान् ही संस्कार द्वारा शुद्ध करता है।

तृष्टमेतत् कटुकमपाष्ठवद् विषवन्नैतदत्तवे।
सूर्यां यो ब्रह्मा वेद स इद् वाधूयमर्हति ॥ २९ ॥

भा०—इस दशा में स्त्री का शरीर उष्णता का रोग उत्पन्न करता है, देह पर चिरमिराहट की फुन्सियां आदि विषम कष्ट उत्पन्न करता है, घृणित वस्तु के समान और विष से युक्त होता है। उस समय स्त्री का शरीर भोग करने के योग्य नहीं होता। जो वेदवेत्ता विद्वान् इस प्रकार सन्तानोत्पन्न करने में समर्थ कन्या के लक्षण जानता है वह ही वधू सम्बन्ध अर्थात् विवाह का अधिकारी होता है।

स इत् तत् स्योनं हरति ब्रह्मा वासः सुमङ्गलम्।
प्रायश्चित्तिं यो अध्येति येन जाया न रिष्यति ॥ ३० ॥ (३)

भा०—वह वेदवेत्ता ही उस शुभ मङ्गलमय दहेज को सुखपूर्वक ले सकता है जो प्रायश्चित्तीय विधि को जानता है जिससे कि पत्नी का नाश न हो।

युवं भगं सं भरतं समृद्धमृतं वदन्तावृतोद्येषु।
ब्रह्मणस्पते पतिमस्यै रोचय चारु संभलो वदतु वाचमेताम् ॥३१॥

भा०—हे स्त्री पुरुषो! तुम दोनों अपने सत्य भाषण के व्यवहारों में सदा सत्य का भाषण करते हुए खूब समृद्ध ऐश्वर्य को भली प्रकार प्राप्त करो। हे वेद के परिपालक विद्वन्! इस कन्या के पति के प्रति रुचि उत्पन्न करो, ऐसा उपदेश कर जिससे वह अपने पति को अधिक स्नेह से चाहे। और उत्तम मधुर भाषण करने वाला विद्वान् इस स्नेह भरी वाणी को भली प्रकार कहे।

इहेदसाथ न परो गमाथेमं गावः प्रजया वर्धयाथ।
शुभं यतीरुस्रियाः सोमवर्चसो विश्वे देवाः क्रन्निह वो मनांसि ॥३२॥

भा०—हे गौवों या गमन करने योग्य स्त्रियो ! तुम यहा ही पतिगृह मे रहो । तुम दूर देश में मत जाओ, इस अपने पालक को उत्तम सन्तान से बढ़ाओ । हे गौओ या उत्तम आचारवाली स्त्रियो ! आप लोग सुन्दरता से इधर उधर विचरती हुई सौम्य होकर रहो । समस्त विद्वान्, श्रेष्ठ पुरुष तुम्हारे चित्तो को यहां ही लगाये रक्खें ।

इमं गावः प्रजया सं विशाथायं देवानां न मिनाति भागम् ।
अस्मै वः पूषा मरुतश्च सर्वे अस्मै वो धाता सविता सुवाति ॥३३॥

भा०—हे गौओ ! या गमन योग्य स्त्रियो ! इस नवगृहस्थ को प्रजा से प्राप्त होओ । यह गृहस्थ पूज्य विद्वानों और अतिथियों के भाग को नहीं मारता, लोप नहीं करता । तुमको पुष्ट करने वाला और समस्त वैश्यगण या विद्वान् पुरुष इस गृहपति के निमित्त तुझे देते हैं । और तुम्हारा पालक और उत्पादक पिता और परमेश्वर भी तुमको इसके हाथों तुम्हे सौंपता है ।

अनृक्षरा ऋजवः सन्तु पन्थानो येभिः सखायो यन्ति नो वरेयम् ।
सं भगेन समर्यम्णा सं धाता सृजतु वर्चसा ॥ ३४ ॥

भा०—जिन मार्गों से हमारे मित्रगण कन्यावरण के उत्सव के लिये जावें वे मार्ग कांटों से रहित और सूधे हों । ऐश्वर्यसम्पन्न धनाढ्य पुरुषों और श्रेष्ठ राजा के साथ मिलकर मार्ग बनाने वाला शिल्पी उन मार्गों को आकाश से अच्छी प्रकार युक्त करे ।

यच्च वर्चो अक्षेषु सुरायां च यदाहितम् ।
यद् गोष्वश्विना वर्चस्तेनेमां वर्चसावतम् ॥ ३५ ॥

भा०—जो तेज या बल राष्ट्र के अध्यक्षों मे या प्रेमियों की आंखों में है, और जो बल चित्त को हरने वाली सुन्दर स्त्री या जलधारा मे भरा है और जो तेज, धन, समृद्धि और पुष्टिकारक घी दूध आदि सुस्वादु पदार्थों या गाओं मे विद्यमान है उन सब नाना प्रकार के

चित्ताकर्षक तेजो से हे स्त्री पुरुषो ! तुम सब इस सौभाग्यवती नववधू को सुशोभित करो ।

येन॑ म॒हान॒घ्न्या ज॒घन॒मश्वि॑ना॒ येन॑ वा॒ सुरा॑ ।
येना॒क्षा अ॒भ्यषि॑च्यन्त॒ तेने॒मां वर्च॑सावतम् ॥ ३६ ॥

भा०—जिस तेज से बड़ी 'नग्ना' अर्थात् मूर्खा स्त्री का भी जघन सींचा गया है और जिस तेज से जलधारा सींची गई है और जिस तेज से इन्द्रियें सींची गई हैं, उस तेज से इस स्त्री को हे स्त्री पुरुषो या कन्या और वर के माता पिताओ ! तुम भी सुशोभित करो । अर्थात् मैथुन शक्ति, शीतलता और ज्ञान के तेज से इसे युक्त करो । नग्नी = न+ग्ना (वाणी)+ई ।

यो अ॑नि॒ध्मो दी॒दय॑द॒प्स्व॒१न्तर्यं विप्रा॑स॒ ईड॑ते अध्व॒रेषु॑ ।
अ॒पां नपा॒न्मधु॑मतीर॒पो दा॒ याभि॒रिन्द्रो॑ वावृ॒धे वी॒र्या॑वान् ॥३७॥

भा०—जो परमेश्वर विना ईंधन के जलों में विद्यमान विद्युत् के समान समस्त प्रजाओ मे प्रकाशित होता है, जिसकी यज्ञो में मेधावी पुरुष उपासना करते है, वह प्रजाओ का परिपालक परमेश्वर मधुर जीवन और आनन्दरस से परिपूर्ण प्रजाएं, सत्कर्म और सद् बुद्धियां प्रदान करे जिनसे वीर्यवान् पुरुष बढ़ता है ।

इ॒दम॒हं रुश॑न्तं ग्रा॒भं त॑नू॒दूषि॒मपो॑हामि ।
यो भ॒द्रो रो॑च॒नस्तमुद॑चामि ॥ ३८ ॥

भा०—यह मैं नाश करने वाले, शरीर को दुषित करने वाले और शरीर को जकड़ने वाले रोग को शरीर से दूर करता हूं और जो सुखकारी सुन्दर वर्ण है उसको ऊपर धारण करता हूं ।

वर वधू के उबटन आदि से शरीर के मल को दूर करें और उत्तम शरीर वर्ण करने वाले पदार्थों का उपभोग करें ।

आ॒स्यै ब्रा॑ह्म॒णाः स्न॒प॑नीर्हर॒न्त्ववी॑रघ्नी॒रुद॑ज॒न्त्वापः॑ ।
अ॒र्य॒म्णो अ॒ग्निं पर्ये॑तु पूष॒न् प्रती॑क्षन्ते॒ श्वशु॑रो दे॒वर॑श्च ॥ ३९ ॥

भा०—वेद के जानने हारे विद्वान् पुरुष इस कन्या को नहलाने के योग्य जलों को लावें और वे ही वीर्य और सन्तान को नाश न करने वाले जलों और उत्तम उपदेशों और कर्मों को प्राप्त करावें। कन्या स्नानादि करके परमेश्वर की प्रतिनिधि अग्नि की प्रदक्षिणा करे और वर तथा कन्या का भावी ससुर और पति का छोटा भाई और अन्य सम्बन्धी उसको प्रत्यक्ष देखा करें।

शं ते हिर॑ण्यं॒ शमु॑ स॒न्त्वाप॒: शं मे॒थिर्भ॑वतु॒ शं यु॒गस्य॒ तर्द्म॑ ।
शं त॒ आप॑: श॒तप॑वित्रा भवन्तु॒ शमु॒ पत्या॑ त॒न्वं१॒ सं स्पृ॑शस्व ४०॥(४)

भा०—हे नववधु! तुझे यह सुवर्णादि का आभरण सुखकारी हो। जल भी तुझे सुखकारक हो। परस्पर का संग लाभ भी तुझे सुखकारक हो। और तुम युगल हुए जोड़े का तृणादि का बना आसन भी सुखकारी हो। हे वधु! सैकड़ों प्रकार से पवित्र करने वाले जल और स्वच्छ जलों के समान पवित्र आप्तजन तुझे कल्याणकारी हों। और तू सुखपूर्वक ही अपने पति के शरीर के साथ अपने शरीर का स्पर्श करा।

खे रथ॑स्य॒ खेऽन॑स॒: खे यु॒गस्य॑ शतक्रतो ।
अ॒पा॒लामि॑न्द्र॒ त्रिष्पू॒त्वाकृ॑णो॒: सूर्य॑त्वचम् ॥ ४१ ॥

भा०—हे सैकड़ों कर्म करनेहारे परमात्मन्! हे शतप्रज्ञ आचार्य! तू रमण करने योग्य शरीर की इन्द्रियों में और प्राणमय जीवन के अवकाश भाग, जीवन काल में और परस्पर मिलकर जोड़ा बने युगल, पति पत्नी के गृह में, अबला कन्या को मन, वाणी और कर्म तीनों प्रकार से पवित्र करके सूर्य के समान कान्ति वाली कर।

आ॒शास॑ाना सौमन॒सं प्र॒जां सौभा॑ग्यं र॒यिम् ।
पत्यु॒रनु॑व्रता भू॒त्वा सं न॑ह्यस्वा॒मृता॑य॒ कम् ॥ ४२ ॥

भा०—उत्तम चित्त, उत्तम सन्तान, उत्तम सौभाग्य और धन समृद्धि की आशा करती हुई हे वधू! तू अपने पति के अनुकूल वर्तने-

हारी होकर, अमृत अर्थात् पूर्ण १०० वर्षों की आयु प्राप्त करने के लिये अपने को कटिबद्ध कर।

यथा सिन्धुर्नदीनां साम्राज्यं सषुवे वृषा।
एवा त्वं सम्राज्ञ्येधि पत्युरस्तं परेत्य॥ ४३॥

भा०—नदियों के बीच में जिस प्रकार समुद्र सब से बड़ा होने के कारण उन पर शासन करता है, उसी प्रकार वीर्यसेचन में समर्थ युवक पति, हे स्त्री! तेरे लिये एक साम्राज्य बनाता है, जिसका वह स्वयं महाराजा है। हे वधू! उसी प्रकार तू पति के घर पहुंच कर महाराणी बन कर रह।

सम्राज्ञ्येधि श्वशुरेषु सम्राज्ञ्युत देवृषु।
ननान्दुः सम्राज्ञ्येधि सम्राज्ञ्युत श्वश्र्वाः॥ ४४॥

भा०—हे वधू! तू श्वशुरों में महाराणी होकर रह। और देवरों के बीच में भी महाराणी बनकर रह। ननद के समक्ष भी तू महाराणी के समान आदरयुक्त होकर रह। और सास की दृष्टि में भी महाराणी बनकर रह।

या अकृन्तन्नवयन् याश्च तत्निरे या देवीरन्ताँ अभितोऽददन्त।
तास्त्वा जरसे सं व्ययन्त्वायुष्मतीदं परि धत्स्व वासः॥ ४५॥

भा०—हे दीर्घ आयु वाली! जिन साड़ियों को घर की उत्तम देवियों ने स्वयं काता, स्वयं बुना और जिनको ताना और जिनके दोनों तरफ के अंचरों को गांठ देकर बनाया, वे साड़ियां व वस्त्र तुझको वृद्धावस्था तक आच्छादित करें। हे आयुष्मति! यह वस्त्र पहन ले।

जीवं रुदन्ति वि नयन्त्यध्वरं दीर्घामनु प्रसितिं दीध्युर्नरः।
वामं पितृभ्यो य इदं समीरिरे मयः पतिभ्यो जनये परिष्वजे॥४६॥

भा०—विदाई के अवसर पर लोग अपने प्रेमी जीव के लिये रोया करते हैं। इसी कारण वे पवित्र यज्ञ-कर्म को व्यर्थ कर देते हैं। नेता

लोग लम्बे दीर्घकाल के लिये भविष्य के फांसे को विचारा करते हैं। वास्तव में लोग माता पिताओं के लिये इस विवाहरूप सुन्दर कार्य को रचते हैं। वे पतियों के लिये अपनी स्त्री के आलिंगन का सुख उत्पन्न करते हैं। ऐसे अवसर पर अपने सम्बन्धियों की विदाई के लिये नहीं रोना चाहिये।

स्योनं ध्रुवं प्रजायै धारयामि तेऽश्मानं देव्याः पृथिव्या उपस्थे।
तमा तिष्ठानुमाद्या सुवर्चा दीर्घं त आयुः सविता कृणोतु ॥४७॥

भा०—हे वधु ! देवी पृथिवी की गोद में तेरी उत्तम प्रजा के लिये सुखकारक, स्थिर शिलाखण्ड को स्थापित करता हूं। उस शिला पर पैर रख कर तू खड़ी हो, तू प्रसन्न हो, उत्तम तेज वाली हो। सर्वोत्पादक परमेश्वर तेरी आयु को दीर्घ करे।

येनाग्निरस्या भूम्या हस्तं जग्राह दक्षिणम्।
तेन गृह्णामि ते हस्तं मा व्यथिष्ठा मया सह प्रजया च धनेन च ॥४८

भा०—हे वधु ! जिस प्रयोजन से राजा इस पृथिवी का दायां हाथ स्वयं ग्रहण करता है, उसी प्रयोजन से मैं पति तेरे दायें हाथ का ग्रहण करता हूं। हे वधु ! तू दुःखित मत हो। मेरे साथ प्रजा और धन से तू समृद्ध हो।

देवस्ते सविता हस्तं गृह्णातु सोमो राजा सुप्रजसं कृणोतु।
अग्निः सुभगां जातवेदाः पत्ये पत्नीं जरदष्टिं कृणोतु ॥ ४९ ॥

भा०—हे वधु ! वीर्यदान करने में समर्थ, सन्तानों का उत्पादक वर तेरे हाथ को ग्रहण करे और उत्पादक, देदीप्यमान, कान्तिमान, तेजस्वी पुरुष तुझे उत्तम प्रजा से युक्त करे। प्रज्ञावान, ज्ञानप्रकाशक, आचार्य पति के लिये पत्नी को सौभाग्यवती और वृद्धावस्था तक जीवन निर्वाह करने में समर्थ करे।

गृह्णामि ते सौभगत्वाय हस्तं मया पत्या जरदष्टिर्यथासः ।
भगो अर्यमा सविता पुरंधिर्मह्यं त्वादुर्गार्हपत्याय देवाः ॥५०॥(५)

भा०—हे वधु ! मैं वर तेरे हाथ को सौभाग्य की वृद्धि के लिये ग्रहण करता हूं । जिससे तू मुझ पति के साथ जरावस्था तक जीवित रहे । ऐश्वर्यवान्, न्यायकारी, सर्वोत्पादक परमेश्वर और तुम्हारा पिता और ये स्त्रियें और ये विद्वान्‌गण तुझको गृहस्थ के कार्य के लिये मुझे सौंपते हैं ।

भगस्ते हस्तमग्रहीत् सविता हस्तमग्रहीत् ।
पत्नी त्वमसि धर्मणाहं गृहपतिस्तव ॥ ५१ ॥

भा०—हे वधु ! तेरे हाथ को ऐश्वर्यसम्पन्न युवा ग्रहण करता है । प्रजा के उत्पादन करने में समर्थ पुरुष तेरे हाथ को ग्रहण करता है । तू धर्म से गृहपत्नी है और मैं धर्म से तेरा गृहस्वामी हूं ।

ममेयमस्तु पोष्या मह्यं त्वादाद् बृहस्पतिः ।
मया पत्या प्रजावति सं जीव शरदः शतम् ॥ ५२ ॥

भा०—मेरी यह वधू पोषण करने योग्य हो । हे वधू ! तुझको वेद के विद्वान् आचार्य और समस्त संसार के स्वामी परमेश्वर ने मेरे हाथ सौंपा है । हे उत्तम प्रजा उत्पन्न करने में समर्थ भाविनी प्रजापति ! तू मुझ पति के साथ सौ वर्ष तक भली प्रकार जीवन धारण कर ।

त्वष्टा वासो व्यदधाच्छुभे कं बृहस्पतेः प्रशिषा कवीनाम् ।
तेनेमां नारीं सविता भगश्च सूर्यामिव परि धत्तां प्रजया ॥ ५३ ॥

भा०—महान् ब्रह्माण्ड और वेद के परिपालक परमेश्वर और आचार्य और अन्य क्रान्तदर्शी, दीर्घदर्शी विद्वानों की आज्ञा से शिल्पी ने शोभा के लिये ही वस्त्र और निवासगृह भी बनाये हैं, इसलिये सर्वोत्पादक और ऐश्वर्यवान् प्रभु इस स्त्री को अपनी जगद्-उत्पादनकारिणी शक्ति के समान प्रजा से युक्त करे ।

इन्द्राग्नी द्यावापृथिवी मातरिश्वा मित्रावरुणा भगो अश्विनोभा।
बृहस्पतिर्मरुतो ब्रह्म सोम इमां नारीं प्रजया वर्धयन्तु ॥ ५४ ॥

भा०—मेघ और विद्युत्, द्यौ और पृथिवी, आकाश मे व्यापक वायु, प्राण और अपान, ऐश्वर्यशील सूर्य, दिन और रात्रि अथवा नर नारी, वेदों का स्वामी परमेश्वर, विद्वान् प्रजाएं, वेदज्ञान, उत्पादक यह सोम नामक पति ये सब इस स्त्री को प्रजा सहित बढ़ती दें।

बृहस्पतिः प्रथमः सूर्यायाः शीर्षे केशाँ अकल्पयत्।
तेनेमामश्विना नारीं पत्ये सं शोभयामसि ॥ ५५ ॥

भा०—ब्रह्माण्ड के स्वामी परमेश्वर ने प्रथम ही पुत्र प्रसव करने मे समर्थ स्त्री-जाति के शिर पर केशों को बनाया है। उस कारण ही हे स्त्री पुरुषो! इस स्त्री को पति के चित्ताकर्षण के लिये हम भली प्रकार सुशोभित करें।

इदं तद्रूपं यदवस्त योषा जायां जिज्ञासे मनसा चरन्तीम्।
तामन्वर्तिष्ये सखिभिर्नवग्वैः क इमान् विद्वान् वि चचर्त पाशान् ॥ ५६

भा०—यह वह बाह्य सुन्दर रूप है जिसको नवयुवती प्रायः धारण किया ही करती है। परन्तु मैं सच्चे मन से सत् आचरण करती हुई अपनी पत्नी को ठीक ठीक प्रकार से जान लेना चाहता हूं। मैं नवागत मित्रों सहित उसका अनुगमन करूंगा, उसके पीछे पीछे जाऊंगा। इन प्रेम के पाशों को कौन जानता हुआ, ज्ञानी पुरुष काट सकता है।

अहं वि ष्यामि मयि रूपमस्या वेददित् पश्यन् मनसः कुलायम्।
न स्तेयमद्मि मनसोदमुच्ये स्वयं श्रथ्नानो वरुणस्य पाशान् ॥ ५७ ॥

भा०—मैं इसके रूप को देख कर और मैं अपने में, इसके चित्त के विश्रामार्थ, बने घोंसले के समान आश्रयस्थान जानता हुआ ही इसके सम्बन्ध मे विविध प्रकार से विचार करता हूं कि मैं कभी चुराकर न खाऊं। मैं अपने आप राजा के समान व्यवस्था बन्धनों को अपने

ऊपर बांधता हुआ अपने चित्त से उसे मुक्त करता हूं, स्वतन्त्र करता हूं।

प्रत्वा मुञ्चामि वरुणस्य पाशाद् येन त्वाबध्नात् सविता सुशेवाः।
उरुं लोकं सुगमत्र पन्थां कृणोमि तुभ्यं सहपत्न्यै वधु ॥ ५८ ॥

भा०—हे प्रियतमे वधु! तुझको उत्पादक प्रभु के उस पाश से भली प्रकार मुक्त करूं, जिससे उत्तम सेवा करने योग्य सुखप्रदाता उत्पादक प्रभु या पिता तुझे पितृऋण रूप बधन से बांधता है। इस विशाल लोक को और इस लोक में विस्तृत जीवन मार्ग को, मैं तुझ सहधर्म-चारिणी के लिये सुख से जाने योग्य करता हूं।

उद्यच्छध्वमप रक्षो हनाथेमां नारीं सुकृते दधात।
धाता विपश्चित् पतिमस्यै विवेद भगो राजा पुर एतु प्रजानन् ॥५९॥

भा०—हे वीर पुरुषो! अपने शस्त्रों को उठाओ। और दुष्ट पुरुष को मार भगाओ। इस नारी को पुण्य पुरुष के हाथ प्रदान करो। बुद्धिमान् पिता इसके योग्य पति को जाने, प्राप्त करे। ऐश्वर्यवान् चित्त को अनुरंजन करने में समर्थ ज्ञानी पुरुष कन्या का पाणिग्रहण करने के लिये आगे आवे।

भगस्ततक्ष चतुरः पादान् भगस्ततक्ष चत्वार्युष्पलानि।
त्वष्टा पिपेश मध्यतोऽनु वर्ध्रान्त्सा नो अस्तु सुमङ्गली ॥ ६० ॥

भा०—ऐश्वर्यवान् पुरुष इस पलंग के चारों पैरों को गढ़ता या गढ़वाता है और ऐश्वर्यवान् पुरुष ही चार पायों पर लगने वाले दण्डों को बनवाता है। शिल्पी पुरुष बीच की रस्सियों को सुन्दर सुन्दर बनाता है। वह नववधू शुभ मङ्गल वस्त्र धारण करती हुई हमारे सौभाग्य के लिये हो।

सुकिंशुकं वहतुं विश्वरूपं हिरण्यवर्णं सुवृतं सुचक्रम्।
आ रोह सूर्ये अमृतस्य लोकं स्योनं पतिभ्यो वहतुं कृणु त्वम् ॥६१॥

भा०—हे कन्ये! उत्तम उत्तम बनावटी तोते आदि पक्षियों को

आकृति से सुसज्जित, नाना प्रकार के सुवर्ण के रंग के सुनहरे, सुन्दर बने हुए, उत्तम चक्रों से युक्त रथ पर चढ़। और पतियों और देवरों के लिये तू इस रथ को अमृत के लोक के समान सुखकारी बना।

अभ्रातृघ्नीं वरुणापशुघ्नीं बृहस्पते।
इन्द्रापतिघ्नीं पुत्रिणीमास्मभ्यं सवितर्वह ॥ ६२ ॥

भा०—हे परमेश्वर! हे विश्वपते! हे इन्द्र! हे जगत् उत्पादक! हमारे लिये इस वधू को भ्राता का नाश न करने वाली, पशुओं का नाश न करने वाली और पति का नाश न करने वाली, पुत्र सतान वाली बनाकर हमें प्राप्त करा।

मा हिंसिष्टं कुमार्यं स्थूणे देवकृते पथि।
शालाया देव्या द्वारं स्योनं कृण्मो वधूपथम् ॥ ६३ ॥

भा०—हे स्त्री पुरुषो! कन्या को परमेश्वर के बनाये इस स्थिर जीवन मार्ग में चलाकर उसकी हिंसा से उसे बचाओ। हम लोग दिव्य-गुण से युक्त शाला के द्वार को और नववधू के मार्ग को सदा सुखकारी शान्तिमय बनाया करें।

ब्रह्मापरं युज्यतां ब्रह्म पूर्वं ब्रह्मान्ततो मध्यतो ब्रह्म सर्वतः।
अनाव्याधां देवपुरां प्रपद्य शिवा स्योना पतिलोके वि राज ॥ ६४ ॥ (६)

भा०—पश्चात् भी वेदविहित कर्म हुआ करें। पहले भी वैदिक कर्म या वेदपाठ हो। अन्त में भी वेदपाठ हो। बीच में और सब समय में वेदपाठ हो। पीडा हिंसा आदि कष्टों से रहित श्रेष्ठ पुरुषों की नगरी को प्राप्त होकर पतिगृह में कल्याणकारिणी और सबको सुखकारिणी होकर मानपूर्वक निवास कर।

इति प्रथमोऽनुवाकः।

[तत्रैकं सूक्तम्, चतुःषष्टिश्च ऋचः]

[२] पति पत्नी के कर्त्तव्यों का वर्णन ।

सावित्री सूर्या ऋषिका । सूर्यः स्वयमात्मतया देवता । [१० यक्ष्मनाशनः । ११ दम्पत्योः पारपन्थिनाशनः]। ५, ६, १२, ३१, ३७, ३६, ४० जगत्यः । [३० ३६ भुरिक् त्रिष्टुभौ]। ६ त्र्यवसाना षट्पदा विराड् अत्यष्टिः । १३, १४, १७–१६, २४, ३६, ३८, ४१, ४२, ४६, ६१, ७०, ७४, ७५ त्रिष्टुभ । १५, ५१ भुरिजो । २० पुरस्ताद् बृहती । २३, २४, २५, ३२, ३३ पुरोबृहती । २६ त्रिपदा विराड नामगायत्री । ३३ विराड आस्तारपंक्ति । ३५ पुरोबृहती त्रिष्टुप् । ४३ त्रिष्टुब्गर्भा पंक्ति । ४४ प्रस्तारपंक्तिः । ४७ पथ्याबृहती । ४८ सतः पंक्ति । ५० उपरिष्टाद् बृहती निचृत् । ५२ विराट् । पुरोष्णिक । ५६, ६०, ६२ पथ्यापंक्ति । ६८ पुरोष्णिक् । ६६ त्र्यवसानाषट्पदा अतिशक्वरी । ७१ बृहती । १–४, ७–११, १६, २१, २२, २७–३०, ३४, ४५, ४६, ५३–५८, ६३–६७, ७२, ७३ अनुष्टुभः । पञ्चसप्तत्यृच सूक्तम् ।

तुभ्यमग्रे पर्यवहन्त्सूर्यां वहतुना सह ।
स नः पतिभ्यो जायां दा अग्ने प्रजया सह ॥ १ ॥

भा०—हे ज्ञानवान् परमेश्वर और आचार्य ! तेरे समक्ष हम युवक लोग दहेज और रथ के सहित वरणीय सावित्री कन्या को परिणय करते हैं। वह तू हम रक्षकों को पत्नी प्रदान कर और सन्तति प्रदान कर ।

पुनः पत्नीमग्निरदादायुषा सह वर्चसा ।
दीर्घायुरस्या यः पतिर्जीवाति शरदः शतम् ॥ २ ॥

भा०—कन्या के पिता के देने के उपरान्त पुरोहित और परमेश्वर आयु और तेज सहित कन्या को प्रदान करता है। इसका जो पति है वह दीर्घ आयु वाला होकर सौ बरसों तक जीवे ।

सोमस्य जाया प्रथमं गन्धर्वस्तेऽपरः पतिः ।
तृतीयो अग्निष्टे पतिस्तुरीयस्ते मनुष्यजाः ॥ ३ ॥

भा०—पहले स्त्री सोम की होती है। हे जाये ! तेरा दूसरा पति गन्धर्व है। और तेरा तीसरा पति अग्नि है। और मनुष्यों से उत्पन्न पति चौथे नम्बर पर है।

महर्षि दयानन्द के मत में—स्त्री का प्रथम पति 'सोम', दूसरा नियोगज गन्धर्व, तीसरा नियोगज 'अग्नि' और शेष सब चौथे से लेकर ११वें तक नियुक्त पति 'मनुष्य' नाम से कहाते हैं [सत्यार्थ समु० ४]

सोमो ददद् गन्धर्वाय गन्धर्वो ददद्ग्नये।
र॒यिं च॑ पु॒त्रांश्चा॑दाद॒ग्निर्मह्य॒मथो॑ इ॒माम् ॥ ४ ॥

भा०—सोम कन्या को गन्धर्व के हाथ प्रदान करता है। गन्धर्व उसे अग्नि के हाथ प्रदान करता है। फिर अग्नि सम्पत्ति और पुत्रों को प्रदान करता हुआ इस कन्या को मुझ पति के प्रति प्रदान करता है।

आ वा॑मगन्त्सुम॒तिर्वा॑जिनीवसू॒ न्य॑श्विना हृ॒त्सु कामा॑ अरंसत।
अभू॑तं गो॒पा मि॑थु॒ना शु॑भस्पती प्रि॒या अ॑र्य॒म्णो दुर्याँ॑ अशीमहि ॥ ५ ॥

भा०—उत्तम मति तुम दोनों पति पत्नी को प्राप्त हो। हे पति पत्नी! आप दोनों वीर्यशक्ति को धन के समान सञ्चय कर अपने शरीर की सुन्दरता की रक्षा करते हुए, अपनी इन्द्रियों की रक्षा करते हुए, परस्पर संयुक्त जोड़ा होकर गृहस्थ धर्म से रहो। और हम सब लोग श्रेष्ठ राजा और परमेश्वर के प्रिय होकर गृहों के सुखों का भोग करें।

सा म॑न्दसा॒ना मन॑सा शि॒वेन॑ र॒यिं धे॑हि॒ सर्व॑वीरं वच॒स्य॑म्।
सु॒गं ती॒र्थं सु॑प्रपा॒णं शु॑भस्पती स्था॒णुं प॑थि॒ष्ठाम॑प दुर्म॒तिं ह॑तम् ॥ ६ ॥

भा०—वह स्त्री कल्याण से पूर्ण चित्त से स्तुति और गुणानुवाद करती हुई प्रशंसनीय समस्त पुत्रों से युक्त बल और धन को धारण करे। हे शोभा युक्त पदार्थों के स्वामी स्त्री पुरुषो! आप दोनों सुख से विहार करने योग्य जलाशय और सुख से जलपान करने योग्य घाट बनवाओ। और मार्ग में खड़े वृक्षों को लगवाओ और दुष्ट बुद्धि को दूर करो।

या ओषधयो या नद्यो॒ यानि॒ क्षेत्रा॑णि॒ या वना॑ ।
तास्त्वा॑ वधु प्र॒जाव॑ती॒ पत्ये॑ रक्षन्तु र॒क्षसः॑ ॥ ७ ॥

भा०—जितनी ओषधियां हैं, जो नदियां हैं, जितने क्षेत्र हैं, जितने वन हैं वे सब हे वधु ! पति के हित के लिये प्रजा से युक्त तुझको विघ्नकारी कारणों से रक्षा करें ।

एमं पन्था॑मरुक्षाम सु॒गं स्व॑स्ति॒वाह॑नम् ।
यस्मि॑न् वी॒रो न रिष्य॑त्य॒न्येषां॒ विन्द॑ते॒ वसु॑ ॥ ८ ॥

भा०—हम लोग उस मार्ग पर चलें जो सुख से चलने योग्य है और जिससे कल्याण मिले । जिस मे चलती हुई हमारी सन्तान कभी क्लेश नहीं पाती तथा औरों के सद्गुणों को प्राप्त करती है ।

इ॒दं सु मे॑ नरः शृणुत॒ यया॒शिषा॒ दंप॑ती वा॒मम॑श्नु॒तः ।
ये ग॑न्धर्वा अ॑प्स॒रस॑श्च दे॒वीरे॒षु वा॑नस्पत्ये॒षु ये॑ऽधि॑ त॒स्थुः ।
स्यो॒नास्ते॑ अ॒स्यै व॒ध्वै॑ भ॑वन्तु मा हिं॑सिषुर्वह॒तुमु॒ह्यमा॑नम् ॥९॥

भा०—हे नेता पुरुषो ! मेरा यह प्रार्थना वचन भली प्रकार सुनो । जिस आशीर्वाद या आशा से वर वधू रमणीय धन का सुखपूर्वक भोग करते हैं, जो वाणी को धारण करने हारे पुरुष और उत्तम ज्ञानपूर्ण स्त्रियां इन वनस्पतियो से पूर्ण जंगलो में वानप्रस्थी रूप से रहते हैं वे इस नववधू के लिये सुखकारी हों, वे दहेज ली जाती हुई वधू को सदुपदेश देकर उसे अपनी हिंसा से बचावें ।

ये व॒ध्वश्च॒न्द्रं व॑ह॒तुं यक्ष्मा॒ यन्ति॒ जना॒ँ अनु॑ ।
पुन॒स्तान् य॒ज्ञिया॑ दे॒वा नय॑न्तु॒ यत॒ आग॑ताः ॥ १० ॥ (७)

भा०—जो पूजा करने योग्य अतिथि लोग सर्वसाधारण मनुष्यो के साथ साथ नववधू के आह्लादकारी रथ या दहेज को देखने के लिये आवें उनको विदाई कृत्य के करने वाले विद्वान् ब्राह्मण या रक्षक

लोग फिर आदर सत्कार से उसी स्थान पर पहुंचा दें जहां से वे पधारे हों ।

यज्ञ = 'जञ्ज' = विवाह की बारात 'यज्ञियाः देवः' = बारात के रक्षक लोग।

मा विदन् परिपन्थिनो य आसीदन्ति दंपती ।
सुगेन दुर्गमतीतामप द्रान्त्वरातयः ॥ ११ ॥

भा०—जो मार्ग के चोर लुटेरे लोग समीप आफटकें वे वरवधू को जान भी न पावें । वर-वधू दोनो उत्तम मार्ग से दुर्गम वन पर्वत के प्रदेश को पार कर जायं और शत्रु लोग दूर भाग जायं ।

सं काशयामि वहतुं ब्रह्मणा गृहैरघोरेण चक्षुषा मित्रियेण ।
पर्याणद्धं विश्वरूपं यदस्ति स्योनं पतिभ्यः सविता तत् कृणोतु॥१

भा०—मैं वधू का रथ और दहेज, घर के पुरुषों को, सौम्य और स्नेह से भरी चक्षु से दिखलाऊं । जो नाना प्रकार के आभूषणादि पदार्थ चारों तरफ़ सुसम्बद्ध रूप में बधा या पहना हुआ है उसको सर्वोत्पादक परमेश्वर पति और अन्य रक्षकों के लिये सुखकारी करे ।

शिवा नारीयमस्तमागन्निमं धाता लोकमस्यै दिदेश ।
तामर्यमा भगो अश्विनोभा प्रजापतिः प्रजया वर्धयन्तु ॥१३॥

भा०—नारी कल्याणकारिणी होकर इस गृह को आवे । धारण पोषणकर्त्ता परमेश्वर इस वधू के लिये इस गृहस्थ लोक को नियत करता है । न्यायकारी राजा और ऐश्वर्यवान् पुरुष और दोनो स्त्री पुरुष लोग और प्रजा का पालक परमेश्वर उस वधू को उत्तम प्रजा से बढ़ावें ।

आत्मन्वत्युर्वरा नारीयमागन् तस्यां नरो वपत बीजमस्याम् ।
सा वः प्रजां जनयद् वक्षणाभ्यो बिभ्रती दुग्धमृषभस्य रेतः ॥१४

भा०—आत्मिकशक्ति वाली, पुत्रोत्पादन करने में उपजाऊ भूमि-स्वरूप यह स्त्री प्राप्त हो । हे पुरुषो ! तुम लोग इसमें बीज बोओ । वह तुम्हारे लिये वीर्यवान श्रेष्ठ पुरुष के निषिक्त वीर्य को धारण करती हुई कोखों से प्रजा को उत्पन्न करे ।

प्रति तिष्ठ विराडसि विष्णुरिवेह सरस्वति ।
सिनीवालि प्र जायतां भगस्य सुमतावसत् ॥ १५ ॥

भा०—हे ज्ञानसम्पन्न स्त्री ! तू प्रतिष्ठा को प्राप्त हो, तू विशेष रूप से शोभा देने वाली पृथिवी के समान है। और हे पुरुष ! इस स्त्री के प्रति तू भी विष्णु अर्थात् व्यापक सूर्य के समान है। हे सिनीवालि ! सुख से तेरी सन्तान उत्पन्न हो और तू ऐश्वर्यवान् पति की शुभ मति या आज्ञा में रह।

योषा वै सिनीवाली ॥ श० ६ । ५ । १ । १० ॥ योषा वै सरस्वती वृषा पूषा ॥ श० २ । ५ । १ । ११ ॥

उद् व ऊर्मिः शम्या हन्त्वापो योक्त्राणि मुञ्चत ।
मादुष्कृतौ व्येनसावघ्न्यावशुनमारताम् ॥ १६ ॥

भा०—हे शान्त गुणों से युक्त, शमदम से सम्पन्न आप्त पुरुषो ! आप लोगों का ऊपर उठने का उत्साह ऊपर को बढ़े। आप लोग निन्दित कार्यों को छुडाओ। हे स्त्री पुरुष ! तुम दोनों दुष्ट कर्मों से रहित, पाप से रहित और कभी भी मारने या दण्ड देने योग्य न होकर दुःखदायी क्लेश को कभी प्राप्त न होओ।

अघोरचक्षुरपतिघ्नी स्योना शग्मा सुशेवा सुयमा गृहेभ्यः ।
वीरसूर्देवृकामा सं त्वयैधिषीमहि सुमनस्यमाना ॥ १७ ॥

भा०—हे नववधू ! तू गृहवासियों के लिये क्रूर चक्षु से रहित, पति का नाश न करनेहारी, सुखदायिनी, उत्तम सुख करनेहारी, उत्तम रूप से नियम व्यवस्था में रहने और गृहको उत्तम नियम व्यवस्था में रखनेहारी, वीर बालकों को उत्पन्न करने वाली, देवरों के प्रति भी शुभ-कामना चाहने वाली और उत्तम चित्त वाली हो। तुझ द्वारा हम लोग समृद्धि को प्राप्त हों।

अदेवृघ्न्यपतिघ्नीहैधि शिवा पशुभ्यः सुयमा सुवर्चाः ।
प्रजावती वीरसूर्देवृकामा स्योनेममग्निं गार्हपत्यं सपर्य ॥ १८ ॥

भा०—हे नववधु ! तू देवर और पति का विनाश न करनेहारी होकर इस घर में आ । और पशुओं को उत्तम रीति से दमन करनेवाली, उत्तम तेजस्विनी और सुखकारी, प्रजा से युक्त, वीर बालकों को प्रसव करनेवाली, देवरों के प्रति भी शुभ कामना करने वाली होकर अपने गृहस्थ के नेता पति की गार्हपत्याग्नि के समान पूजा किया कर ।

उत्तिष्ठेतः किमिच्छन्तीदमागा अहं त्वेडे अभिभूः स्वाद् गृहात् ।
शून्यैषी निर्ऋते याजगन्थोत्तिष्ठाराते प्र पत मेह रंस्थाः ॥ १९ ॥

भा०—हे अलक्ष्मि ! तू उठ जा । बतला क्या चाहती हुई तू इस घर में आयी है । मैं सामर्थ्यवान् पुरुष अपने घर से तुझे बाहर करता हूं । हे पापरूपे ! जो तू गृह को सूना करना चाहती हुई आई है तो हे आदानशीले ! उठ, तू परे भाग, यहा मौज मत कर, यहा मत रह ।

यदा गार्हपत्यमसपर्यैत् पूर्वमग्निं वधूरियम् ।
अधा सरस्वत्यै नारि पितृभ्यश्च नमस्कुरु ॥ २० ॥ (८)

भा०—जब यह नववधू गार्हपत्य अग्नि की सेवा कर चुके तदनन्तर वह वेदवाणी का पाठ करे और घरके पालक पिता आदि को नमस्कार किया करे । अर्थात् नववधू अग्निहोत्र के पश्चात वेदका स्वाध्याय और वृद्धों को नमस्कार किया करे ।

शर्म वर्मैतदा हरास्यै नार्या उपस्तरे ।
सिनीवालि प्र जायतां भगस्य सुमतावसत् ॥ २१ ॥

भा०—हे वर ! तू इस स्त्री के लिये सुखदायक और कष्टनिवारक सब पदार्थ विस्तार पर ओढने बिछाने आदि के लिये उपस्थित कर । हे वधु ! तू उत्तम रीति से पुत्र उत्पन्न कर और ऐश्वर्यशील पति की उत्तम मति के अधीन रह ।

यं बल्बजं न्यस्यथ चर्म चोपस्तृणीथन ।
तदा रोहतु सुप्रजा या कन्याविन्दते पतिम् ॥ २२ ॥

भा०—जिस बल्बज नामक घास को नीचे बिछाती हो और उसके ऊपर चर्म भी बिछा देती हो, उस पर जो कन्या पति को वरती है वह उत्तम प्रजा वाली होकर विराजे ।

उप स्तृणीहि बल्बजमधि चर्मणि रोहिते ।
तत्रोपविश्य सुप्रजा इममग्निं सपर्यतु ॥ २३ ॥

भा०—हे पति ! तू दर्भ घास के आसन को लाल चर्म पर बिछा दे । उस पर उत्तम सन्तान से युक्त पत्नी बैठकर इस गार्हपत्य अग्नि और परमेश्वर की उपासना और अग्निहोत्र करे ।

आ रोह चर्मोप सीदाग्निमेष देवो हन्ति रक्षांसि सर्वा ।
इह प्रजां जनय पत्ये अस्मै सुज्यैष्ठ्यो भवत् पुत्रस्त एषः ॥ २४ ॥

भा०—हे सुभगे ! चर्म पर चढ़ और परमेश्वर की उपासना कर । यह उपास्यदेव समस्त विघ्नकारियों का विनाश करता है । इस गृह में इस पति के लिये प्रजा उत्पन्न कर । यह तेरा पुत्र उत्तम श्रेष्ठ गुणों से सम्पन्न हो ।

वि तिष्ठन्तां मातुरस्या उपस्थान्नानारूपाः पशवो जायमानाः ।
सुमङ्गल्युप सीदेममग्निं संपत्नी प्रति भूषेह देवान् ॥ २५ ॥

भा०—जिस प्रकार इस माता पृथ्वी की गोद से नाना प्रकार के जीव उत्पन्न होते हैं उसी प्रकार इस वधू रूप माता के गर्भ से भी नाना सन्ततियां उत्पन्न होकर नाना जीवन-पथों पर प्रस्थान करें । हे नववधु ! तू उत्तम मङ्गलयुक्त होकर इस गार्हपत्य अग्नि, तत्प्रतिनिधिरूप पति एवं परमेश्वर की उपासना कर, सेवा कर और उत्तम गृहपत्नी होकर इस गृह में विद्वान् अतिथियों की सेवा कर ।

सुमङ्गली प्रतरणी गृहाणां सुशेवा पत्ये श्वशुराय शंभूः ।
स्योना श्वश्र्वै प्र गृहान् विशेमान् ॥ २६ ॥

भा०—उत्तम मङ्गलमय चिह्नों से युक्त और गृह के जनों को दुःख से पार लगाने वाली, पति की उत्तम रूप से सेवा करने हारी, श्वशुर को कल्याण और सुख देने वाली, सास को सुखी करनेहारी होकर इन गृह-जनों के बीच मे प्रवेश कर ।

स्योना भव श्वशुरेभ्यः स्योना पत्ये गृहेभ्यः ।
स्योनास्यै सर्वस्यै विशे स्योना पुष्टायैषां भव ॥ २७ ॥

भा०—हे नववधु ! श्वसुरों के लिये सुखकारिणी हो, पति के अन्य गृहजनों के लिये सुखकारिणी हो, इस समस्त प्रजा के लिये सुखकारिणी हो । और इन सबकी पुष्टि समृद्धि के लिये हो ।

सुमङ्गलीरियं वधूरिमां समेत पश्यत ।
सौभाग्यमस्यै दत्त्वा दौर्भाग्यैर्विपरेतन ॥ २८ ॥

या दुर्हार्दो युवतयो याश्चेह जरतीरपि ।
वर्चो न्वस्यै सं दत्ताथास्तं विपरेतन ॥ २९ ॥

भा०—हे भद्र पुरुषो ! यह शुभ मङ्गलमयी नववधू है । आओ इसको देखो । और इसको उत्तम सौभाग्य वा आशीर्वाद प्रदान करके अपने अपने घरों को पधारो । जो जवान स्त्रियां दुष्ट हृदयवाली हैं वे अपनी दौर्भाग्यमयी भावनाओं सहित वापिस लौट जावें । और जो इस स्थान पर वृद्ध स्त्रियां हैं वे इसको तेज प्रदान करें और अनन्तर अपने अपने घर को लौट जावें ।

रुक्मप्रस्तरणं वह्यं विश्वा रूपाणि बिभ्रतम् ।
आरोहत् सूर्या सावित्री बृहते सौभगाय कम् ॥३०॥ (६)

भा०—प्रजा उत्पन्न करने में समर्थ, सूर्य के समान कान्तिमती कन्या, बड़े भारी सौभाग्य के लिये सुनहरे बिछौने से सजे नाना सुन्दर

रूपों को धारण करने वाले इधर उधर हिला सकने के योग्य सेज पर सवार हो।

आ रो॑ह॒ तल्पं॑ सुमन॒स्यमा॑ने॒ह प्र॒जां ज॑नय॒ पत्ये॑ अ॒स्मै।
इ॒न्द्रा॒णीव॑ सु॒बुधा॒ बुध्य॑माना॒ ज्योति॑रग्रा उ॒षसः॒ प्रति॑ जागरासि ३१

भा०—हे नववधु! तू शुभ चित्तवाली होकर सेज पर चढ़। इस पति के लिये प्रजा को उत्पन्न कर। तू परमेश्वर की परम शक्ति के समान है। तू उत्तम ज्ञान सम्पन्न होकर, ताराओं वाली उषाओं में ही सचेत होकर प्रतिदिन जागा कर। प्रातः सूर्य उगने से पूर्व नक्षत्रों के होते होते पत्नी को जागना चाहिये।

दे॒वा अग्रे॒ न्य॑पद्यन्त॒ पत्नीः॒ सम॑स्पृशन्त त॒न्व॑स्त॒नूभिः॑।
सू॒र्येव॑ नारि वि॒श्वरू॑पा महि॒त्वा प्र॒जाव॑ती॒ पत्या॒ सं भ॑वे॒ह ॥३२॥

भा०—पूर्वकाल में विद्वान् लोग अपनी पत्नियों के साथ एक सेज पर सोते रहे हैं और अपने शरीरों को अपनी स्त्रियों के शरीरों के साथ स्पर्श करते कराते रहे हैं। हे स्त्रि! तू परमेश्वर की उत्पादक शक्ति के समान ही अपनी महिमा से नाना सामर्थ्यवती होकर, प्रजा से सम्पन्न होकर, इस गृहस्थ लोक में पति के साथ मिलकर सन्तान उत्पन्न किया कर।

उत्ति॑ष्ठे॒तो वि॑श्वावसो॒ नम॑सेडामहे त्वा।
जा॒मिमि॑च्छ पितृ॒षदं॒ न्य॑क्तां॒ स ते॑ भा॒गो ज॒नुषा॒ तस्य॑ विद्धि ॥३३॥

भा०—हे समस्त प्रकार के धनों के स्वामिन् वर! तू यहां से उठ। तेरी नमस्कार द्वारा हम पूजा करते हैं। पिता के घर में रहने वाली, अति सुशोभित सुस्नाता, अलंकारादि से सुशोभित कन्या या वधू को तू प्राप्त कर, उसकी कामना कर। वह तेरा भाग है, उत्पत्ति धर्म से उसको प्राप्त कर।

अ॒प्स॒रसः॑ सध॒मादं॑ मदन्ति हवि॒र्धान॑मन्त॒रा सूर्यं॑ च।
तास्ते॑ ज॒नित्र॑म॒भि ताः परे॑हि॒ नम॑स्ते गन्धर्व॒र्तुना॑ कृणोमि ॥३४॥

भा०—हविर्धान अर्थात् पृथ्वी और सूर्य के बीच में स्त्रियां आनन्द उत्सव में मिलकर हर्ष प्रकट करें। हे गन्धर्व पुरुष! वे तेरी जाया हैं, तू उनके समक्ष जा। हे गन्धर्व! युवा पुरुष! कन्या के ऋतुकाल के अवसर पर तेरा विशेष भोजन नियत करता हूं, जिससे तेरी शक्ति बनी रहे।

गन्धर्व = द्वितीय नियुक्त पति (दया०)। नियोग में स्त्रियां नाना भी हो सकती हैं, इसलिये स्त्रियों के लिए बहुवचन का प्रयोग किया है।

नमो गन्धर्वस्य नमसे नमो भामाय चक्षुषे च कृण्मः।
विश्वावसो ब्रह्मणा ते नमोऽभि जाया अप्सरसः परेहि ॥ ३५ ॥

भा०—युवा पुरुष के बल वीर्य के लिये हम विशेष अन्न नियत करें। और उसके तेज तथा दृष्टिशक्ति के लिये हम विशेष भोजन नियत करते हैं। हे नाना धनों के स्वामिन्! तेरा हम वेदोक्त विधि द्वारा विशेष भोजन नियत करते हैं। तू सन्तानोत्पादक स्त्रियों के पास जा।

राया वयं सुमनसः स्यामोदितो गन्धर्वमावीवृताम्।
अगन्त्स देवः परमं सधस्थमगन्म यत्र प्रतिरन्त आयुः ॥ ३६ ॥

भा०—हम लोग धन-सम्पन्न होकर भी एक दूसरे के प्रति शुभ चित्त वाले होकर प्रेम से रहें। और इस गृहस्थाश्रम से हम उत्कृष्ट पुरुष को उत्पन्न करें। वह दिव्य पुरुष परम स्थान गृहाश्रम में प्राप्त होता है जहां हम भी दीर्घ जीवन प्राप्त करते हुए प्राप्त हो चुके हैं।

सं पितरावृत्विये सृजेथां माता पिता च रेतसो भवाथः।
मर्य इव योषामधिरोहयैनां प्रजां कृण्वाथामिह पुष्यतं रयिम् ॥ ३७

भा०—हे माता और पिताओ! ऋतुकाल के अवसर पर तुम परस्पर संगत हुआ करो, परस्पर मिला करो। तुम माता पिता ही अपने वीर्य से पुत्ररूप में उत्पन्न हुआ करते हो। हे पुरुष! तुम अपनी पत्नी को, मर्द के समान, अपने सेज पर चढ़ा। हे स्त्री पुरुषो! इस गृहस्थ लोक में प्रजा को उत्पन्न करो और वीर्य को पुष्ट करो।

तां पूषं छिवतमामेरयस्व यस्यां बीजं मनुष्या३ वपन्ति ।
या न ऊरू उशती विश्रयाति यस्यामुशन्तः प्रहरेम शेपः ॥३८॥

भा०—हे पोषक पते ! तू उस प्रियतमा अति कल्याणकारिणी स्त्री को प्राप्त कर, जिसमें मनुष्य अपना बीज बोते हैं । जो स्त्री कामना करती हुई हमारे लिये अपनी दोनो जंघाएं खोल देती है और जिसमें हम कामना करते हुए प्रजनन अंग को प्रवेश करते हैं ।

आ रोहोरुमुप धत्स्व हस्तं परि ष्वजस्व जायां सुमनस्यमानः ।
प्रजां कृण्वाथामिह मोदमानौ दीर्घं वामायुः सविता कृणोतु ॥३९॥

भा०—हे पुरुष ! अपनी पत्नी की जंघा पर चढ़ । अपने हाथ को उसके सिरहाने के समान लगा दे । और शुभ चित्त वाला होकर अपनी स्त्री को आलिंगन कर । हे स्त्री पुरुषो ! गृहस्थ में परस्पर प्रसन्न रहते हुए तुम दोनो उत्तम सन्तानोत्पत्ति करो । सब संसार का उत्पन्न करने वाला परमेश्वर तुम दोनों की दीर्घ आयु करे ।

आ वां प्रजां जनयतु प्रजापतिरहोरात्राभ्यां समनक्त्वर्यमा ।
अदुर्मङ्गली पतिलोकमा विशेमं शं नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे ॥ ४० ॥

भा०—प्रजाओं का परिपालक परमेश्वर तुम दोनो की प्रजा को उत्पन्न कर, न्यायकारी प्रभु तुमको दिन और रात एक दूसरे के साथ सदा परस्पर मिलाय रक्खे । हे वधू ! तू दुःखदायी स्वरूप न होकर इस पतिगृह में प्रविष्ट हो और हमारे दो पैर के मनुष्यों और पशुओं के लिये सदा कल्याणकारिणी, शान्तिदायिनी हो ।

देवैर्दत्तं मनुना साकमेतद् वाधूयं वासो वध्वश्च वस्त्रम् ।
यो ब्रह्मणे चिकितुषे ददाति स इद् रक्षांसि तल्पानि हन्ति ॥४१॥

भा०—दिव्य पुरुषों ने मनस्वी पुरोहित के साथ मिलकर वधू को देने योग्य जो जो पदार्थ नियत किये हैं उस दहेज को जो कन्या का

पिता वेदज्ञ विद्वान् के प्रति कन्या समेत देता है वह तल्प अर्थात सेज के ऊपर होने वाले राक्षसी भावों को नाश कर देता है। अर्थात् ऐसे उच्चकोटि के विवाह में गृहस्थ धर्म मे राक्षसी भावों का प्रवेश नहीं होने पाता।

यं मे॑ द॒त्तो ब्र॑ह्मभा॒गं व॑धूयो॒र्वाधू॑यं॒ वासो॑ व॒ध्वश्च॒ वस्त्र॑म्।
यु॒वं ब्र॒ह्मणे॑ऽनु॒मन्य॑मानौ॒ बृह॑स्पते सा॒कमिन्द्र॑श्च द॒त्तम् ॥ ४२ ॥

भा०—हे वेदवाणी के स्वामी पुरोहित! और ऐश्वर्यवान् कन्या पिता! तुम दोनों वधू की कामना करने हारे वर को कन्यावरण करने के समय का वस्त्र और उसी समय का वधू का वस्त्र, इन दोनों को जिस मुझ वेदवेत्ता के प्रति प्रदान करते हो, यह एक प्रकार से तुम दोनों परस्पर अनुमति करते हुए ही वेदज्ञ वर को प्रदान करते हो, क्योंकि ऐसा दहेज वेदज्ञ का ही भाग है।

स्यो॒नाद्योने॒रधि॒ बुध्य॑मानौ हसामु॒दौ मह॑सा॒ मोद॑मानौ।
सु॒गू सु॑पु॒त्रौ सु॑गृ॒हौ त॑राथो जी॒वावु॒षसो॑ वि॒भा॒तीः ॥ ४३ ॥

भा०—सुखकारी सेज या शयनस्थान से जागकर उठते हुए, परस्पर हंसीविनोद युक्त होकर और तेज और बल से परस्पर आनन्दविनोद करते हुए, उत्तम इन्द्रियों या गौओं से सम्पन्न और उत्तम पुत्रों से युक्त और उत्तम गृह से सम्पन्न होकर, दोनों जीव अर्थात् वरवधू सुख से जीवन बिताते हुए, विविधरूप से प्रकाशमान उषाओं, दिनों को व्यतीत करें।

नव॑ं॒ वसा॑नः सुर॒भिः सु॒वासा॑ उ॒दागां॑ जी॒व उ॒षसो॑ वि॒भा॒तीः।
आ॒ण्डात् प॑त॒त्रीवा॑मुक्षि॒ विश्व॑स्मा॒देन॑स॒स्परि॑ ॥ ४४ ॥

भा०—मैं गृह का स्वामी नये वस्त्र पहन कर, सुगन्धित पदार्थों से युक्त, उत्तम वस्त्रों से सुशोभित होकर, सुख से जीवन धारण करता हुआ, विशेषरूप से प्रकाश वाली उषाओं में प्रतिदिन उठा करूं। और

पक्षी अण्डे से जिस प्रकार मुक्त हो जाता है उसी प्रकार मैं समस्त पाप से मुक्त हो जाऊं।

शुम्भनी द्यावापृथिवी अन्तिसुम्ने महिव्रते।
आपः सप्त सुस्रुवुर्देवीस्ता नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥ ४५ ॥

भा०—सुहावने द्यौ और पृथिवी के समान रक्षक और आश्रयभूत माता पिता समीप रहकर सदा सुख देने हारे, बड़े बड़े कार्य करने वाले हैं। सातों प्रकार की ज्ञानदर्शन कराने वाली ज्ञानधाराएं सदा बहें। वे सब हमें पाप से मुक्त करें।

सूर्यायै देवेभ्यो मित्राय वरुणाय च।
ये भूतस्य प्रचेतसस्तेभ्य इदमकरं नमः ॥४६॥

भा०—संसार को उत्पन्न करनेहारी जगदम्बा शक्ति को, माता पिता आदि देवों को, मित्रों को और श्रेष्ठ पुरुषों को और जो विश्व के उत्कृष्ट ज्ञान करानेहारे जो गुरु हैं उन सब को यह नमस्कार करता हूं।

य ऋते चिदभिश्रिषः पुरा जत्रुभ्य आतृदः।
संधाता संधिं मघवा पुरूवसुर्निष्कर्ता विहुतं पुनः ॥ ४७ ॥

भा०—जो विना चिपकने के पदार्थों के और विना जोड़ने के पदार्थों के और गर्दन की पसली की हड्डियों में छेद किये विना ही सब संधियों को जोड़ता है और कुटिल अंगों को भी फिर ठीक कर देता है, वह इन्द्रियों में बसनेहारे आत्मा के समान समस्त लोकों में बसनेहारा परमात्मा ही है।

अपास्मत् तम उच्छतु नीलं पिशङ्गमुत लोहितं यत्।
निर्दहनी या पृषातक्यस्मिन् तां स्थाणावध्या सृजामि ॥ ४८ ॥

भा०—नीली, पीली और जो लाल रंग की प्रकृति से उत्पन्न पाप हैं वह हम से दूर हो। जलानेहारी और स्पर्श से दुःख देने वाली जो अविद्या इस संसार में है उसको परमज्ञ में सुपुर्द कर दूं। अर्थात् अविद्या के दुष्प्रभावों को मन्त्र के आश्रय से दूर करूं।

यावतीः कृत्या उपवासने यावन्तो राज्ञो वरुणस्य पाशाः ।
व्यृद्धयो या असमृद्धयो या अस्मिन् ता स्थाणावधि सादयामि ॥४९

भा०—जितने हिंसाकारी प्रयोग और हानिकारक क्रियाएं वरवधू के रहन-सहन में हैं और जितने राजा वरुण अर्थात् परमात्मा के पाश हैं और जितनी दरिद्रताएं और जो दुरवस्थाएं इस संसार में हैं उनको परमात्मा के आश्रय में छोड़ता हूं ।

या मे प्रियतमा तनूः सा मे बिभाय वाससः ।
तस्याग्रे त्वं वनस्पते नीविं कृणुष्व मा वयं रिषाम ॥५०॥ (११)

भा०—जो मेरी अति प्रिय देह है वह मेरी देह सरदी गरमी से भय खाती है । इसलिये हे वन-पालक ! पहले उस वस्त्र के साधन को तू तय्यार कर ताकि हम कभी पीडित न हों ।

ये अन्ता यावतीः सिचो य ओतवो ये च तन्तवः ।
वासो यत् पत्नीभिरुतं तन्नः स्योनमुप स्पृशात् ॥ ५१ ॥

भा०—जो वस्त्र की झालरें हैं, और जितनी किनारियां हैं, जो बाने और जो ताने के सूत हैं और जो वस्त्र गृहदेवियों ने बुना है, वह हमें सुखपूर्वक शरीर को छुए ।

उशतीः कन्यला इमाः पितृलोकात् पतिं यतीः ।
अव दीक्षामसृक्षत स्वाहा ॥ ५२ ॥

भा०—पति की कामना करती हुई ये कन्याएं पिता के घर से पति के पास जाती हुई दृढ व्रत को धारण करती हैं । यहां मन्त्र में उत्तम शिक्षा है या यह एक यज्ञाहुति का कार्य है ।

बृहस्पतिनावसृष्टां विश्वे देवा अधारयन् ।
वर्चो गोषु प्रविष्टं यत् तेनेमां सं सृजामसि ॥ ५३ ॥

भा०—परमेश्वर की रची हुई दीक्षा को समस्त विद्वानगण धारण करते हैं । अतः दीक्षा के कारण ही जो तेज वेदवाणियों में विद्यमान है इस कन्या को उसी तेज से हम युक्त करते हैं ।

बृहस्पतिना० । तेजो गोषु प्रविष्टं यत् तेने० ॥ ५४ ॥

बृहस्पतिना० । भगो गोषु प्रविष्टो यस्तेने० ॥ ५५ ॥

बृहस्पतिना० । यशो गोषु प्रविष्टं यत् तेने० ॥ ५६ ॥

बृहस्पतिना० । पयो गोषु प्रविष्टं यत् तेने० ॥ ५७ ॥

बृहस्पतिनावसृष्टां विश्वे देवा अधारयन् ।
रसो गोषु प्रविष्टो यस्तेनेमां सं सृजामसि ॥ ५८ ॥

भा०—(बृहस्पतिना० इत्यादि) सब पूर्ववत् । वेदवाणियों में जो तेज प्रविष्ट है, जो ऐश्वर्य है, जो यश है, जो सार है, जो रस है, उन सब पदार्थों से हम इस कन्या को भी संयुक्त करते हैं ।

यदीमे केशिनो जना गृहे ते समनर्तिषु रोदेन कृण्वन्तोऽघम् ।
अग्निष्ट्वा तस्मादेनसः सविता च प्र मुञ्चताम् ॥ ५९ ॥

भा०—हे गृहस्थ पुरुष ! जब ये लम्बे केशों वाली स्त्रियां तेरे घर में अपने रोने चिल्लाने से हत्या आदि पापफलों को सूचित करती हुईं बिलखें तो उस बुरे कार्य या पाप से तुझे ज्ञानी पुरुष और उत्पादक परमेश्वर सदा भली प्रकार बचावें ।

यदीयं दुहिता तव विकेश्यरुदद् गृहे रोदेन कृण्वत्य घम् ।
अग्निष्ट्वा ॥ ६० ॥ (१२)

भा०—यदि यह तेरी दूर देश में विवाह के निमित्त देने योग्य कन्या बाल खोल खोल कर घर में अपने रोने से दुःखदायी दृश्य उपस्थित करती हुई रोवे तो अग्नि = आचार्य और सविता = परमेश्वर या तुम्हारे पिता तुम्हें इस बुरे दृश्य से मुक्त करें ।

यज्जामयो यद्युवतयो गृहे ते समनर्तिषू रोदेन कृण्वतीरघम् ।
अग्निष्ट्वा० ॥ ६१ ॥

भा०—यदि बहनें या कन्याएं, यदि युवती स्त्रियां, अपने रोने

चिल्लाने के सहित उत्पात मचाती हुई हाथ पैर फेंके तो इस बुरे कार्य से आचार्य और पिता तुम्हें मुक्त करें।

यत् ते प्रजायां पशुषु यद्वा गृहेषु निष्ठितमघकृद्भिरघं कृतम्।
अग्निष्ट्वा तस्मादेनसः सविता च प्र मुञ्चताम् ॥ ६२ ॥

भा०—हे गृहपते! जो तेरी प्रजा में और जो तेरे पशुओं और गृहों में, उपद्रवकारियों से किया गया उपद्रव उठ खड़ा हो, ज्ञानी आचार्य और पिता और परमेश्वर उस पापरूप उपद्रव से तुझे मुक्त करे।

इयं नार्युप ब्रूते पूल्यान्यावपन्तिका।
दीर्घायुरस्तु मे पतिर्जीवाति शरदः शतम् ॥ ६३ ॥

भा०—यह स्त्री फुलियों या खीलों की अग्नि में आहुति करती हुई परमात्मा से प्रार्थना करती है कि मेरा पति दीर्घ आयु वाला हो और वह सौ बरस तक जीवे।

इहेमाविन्द्र सं नुद चक्रवाकेव दंपती।
प्रजयैनौ स्वस्तकौ विश्वमायुर्व्यश्नुताम् ॥ ६४ ॥

भा०—हे परमेश्वर! इन दोनों चकवा चकवी के समान परस्पर प्रेम से बंधे पतिपत्नीभाव से मिले हुए जोड़े को प्रेरणा कर कि वे दोनों उत्तम घर में रहते हुए अपनी प्रजा सहित पूर्ण आयु को प्राप्त करें।

यदासन्द्यामुपधाने यद् वोपवासने कृतम्।
विवाहे कृत्यां यां चक्रुरास्नाने तां नि दध्मसि ॥ ६५ ॥

भा०—जो कुरसी या खाट पर, जो सिरहाने और जो वस्त्रों पर और विवाह के समय जो झाड़ झाड़ का गन्द फैल जाता है उसको हम स्नान अर्थात् धोने-पोछने द्वारा दूर करते हैं।

यद् दुष्कृतं यच्छमलं विवाहे वहतौ च यत्।
तत् संभलस्य कम्बले मृज्महे दुरितं वयम् ॥ ६६ ॥

भा०—मधुर-भाषी वर के विवाह के अवसर पर और दहेज में या रथ में, जो गन्द और मल हो जाता है उस बुरे कार्य को हम जल द्वारा शुद्ध करें।

संभले मलं सादयित्वा कम्बले दुरितं वयम्।
अभूम यज्ञियाः शुद्धाः प्र ण आयूंषि तारिषत् ॥ ६७ ॥

भा०—वर के नाना कृत्यों में जो मल हो जाता है उसे जल में डाल कर हम यज्ञ के अधिकारी हो जाते है और शुद्ध हो जाते हैं, इस प्रकार हमारी आयु बढे।

कृत्रिमः कण्टकः शतदन् य एषः।
अपास्याः केश्यं मलमप शीर्षण्यं लिखात् ॥ ६८ ॥

भा०—जो यह सैकडो दांतों वाला कृत्रिम कण्टक अर्थात् कंघा है वह इस वधू के सिर के और केशो के मल को बाहर निकाल कर दूर करे।

अङ्गादङ्गाद् वयमस्या अप यक्ष्मं नि दध्मसि।
तन्मा प्रापत् पृथिवीं मोत देवान् दिवं मा प्रापदुर्वन्तरिक्षम्।
अपो मा प्रापन्मलमेतदग्ने यमं मा प्रापत् पितॄंश्च सर्वान् ॥ ६९ ॥

भा०—हम लोग इस वधू के एक एक अङ्ग से रोग को दूर करें। यह रोग पृथिवी को न प्राप्त हो, वायु आदि पदार्थों को प्राप्त न हो, विशाल अन्तरिक्ष और द्यौ को भी प्राप्त न हो। हे अग्ने! यह रोगमल जलों में न प्राप्त हो, पतिपत्नी के जोडे को न प्राप्त हो और माता पिता आदि को भी प्राप्त न हो। रोग और रोगमल अग्नि द्वारा दूर किये जा सकते हैं।

सं त्वा नह्यामि पयसा पृथिव्याः सं त्वा नह्यामि पयसौषधीनाम्।
सं त्वा नह्यामि प्रजया धनेन सा संनद्धा सनुहि वाजमेमम् ॥ ७० (१२)

भा०—हे पत्नी! तुझको मैं पृथिवी के पुष्टिकारक पदार्थों से भली प्रकार बांधता हूं। और ओषधियों के पुष्टिकारक रस से भली प्रकार

बांधता हूं। तुझे प्रजा और धन के बल से बांधता हूं। वह तू उत्तम रीति से मेरे संग बद्ध होकर इस वीर्य को धारण कर, पुत्र उत्पन्न कर।

अमोऽहमस्मि सा त्वं सामाहमस्म्यृक्त्वं द्यौरहं पृथिवी त्वम्।
ताविह सं भवाव प्रजामा जनयावहै ॥ ७१ ॥

भा०—हे वधु! 'मैं पति मुख्य प्राण हूं और तू वाक् है। मैं सामवेद या गायन और तू ऋग्वेद की ऋचा या गानपद है। मैं द्यौः हूं तू पृथिवी है। वे दोनों हम एकत्र हों और प्रजा को उत्पन्न करें।

जनियन्ति नावग्रवः पुत्रियन्ति सुदानवः।
अरिष्टासू सचेवहि बृहते वाजसातये ॥ ७२ ॥

भा०—अविवाहित पुरुष हम दोनों के समान ही प्रथम स्त्री की इच्छा करते हैं। और उत्तम दानशील, वीर्यदान में समर्थ या धनाढ्य पुरुष पुत्रों की कामना करते हैं। हम दोनों प्राणों को सुरक्षित रूप से रखते हुए बड़े भारी बलवीर्य के लिये परस्पर मिलकर रहें।

ये पितरो वधूदर्शा इमं वहतुमागमन्।
ते अस्यै वध्वै संपत्न्यै प्रजावच्छर्म यच्छन्तु ॥ ७३ ॥

भा०—जो गुरु, माता, पिता, वृद्ध पालकजन वधू को देखने के निमित्त इस विवाह में पधारे हैं वे मेरी पत्नी को प्रजा सहित सुख प्राप्त करने का आशीर्वाद प्रदान करें।

येदं पूर्वागन् रशनायमाना प्रजामस्यै द्रविणं चेह दत्त्वा।
तां वहन्त्वगतस्यानु पन्थां विराडियं सुप्रजा अत्यजैषीत् ॥ ७४ ॥

भा०—जो यह शृंखला के समान एक के बाद दूसरी वंश-परम्परा हम से पूर्व आती चली आ रही है वह इस वधू को प्रजा और धन देकर, उसको भविष्यत् के मार्ग पर ले जाय। और यह विशेषरूप से

शोभा या आनन्द देने वाली पत्नी उत्तम प्रजा से युक्त होकर सब से आगे बढ़ जाय ।

प्र बुध्यस्व सुबुधा बुध्यमाना दीर्घायुत्वाय शतशारदाय ।
गृहान् गच्छ गृहपत्नी यथासो दीर्घं त आयुः सविता कृणोतु ॥७५(१४

भा०—हे वधु ! तू उत्तम ज्ञानयुक्त, एवं सुख से शीघ्र जागने वाली होकर, प्रात. सचेत जागृत रहकर, सौ बरस के दीर्घ जीवन के लिये खूब अच्छी प्रकार जागृत रह, सचेत रह । तू घर मे प्रवेश कर जिस प्रकार तू गृह-स्वामिनी हो । सर्वोत्पादक परमात्मा तेरी आयु को लम्बा करे ।

इति द्वितीयोऽनुवाक' ।

[तत्रैक सूक्तम् , ऋचश्च पञ्चसप्तति]

॥ ओ३म् ॥

अथ पञ्चदशं काण्डम्

[१ (१)] व्रात्य प्रजापति का वर्णन ।

अध्यात्मम् । मन्त्रोक्ताः उत व्रात्यो देवता । तत्र अष्टादश पर्याया । १ साम्नीपङ्क्तिः । २ द्विपदा साम्नी बृहती । ३ एकपदा यजुर्ब्राह्मी अनुष्टुप् । ४ एकपदा विराड् गायत्री । ५ साम्नी अनुष्टुप् । ६ त्रिपदा प्राजापत्या बृहती । ७ आसुरीपङ्क्तिः । ८ त्रिपदा अनुष्टुप् । अष्टर्चं प्रथम पर्यायसूक्तम् ।

व्रात्य आसीदीयमान एव स प्रजापतिं समैरयत् ॥ १ ॥

भा०—व्रतों का एकमात्र उपास्य परमेश्वर गति करता रहता है । वही अपने को प्रजा के पालक मेघ, पर्जन्य और आत्मा के रूप में प्रकट करता है ।

स प्रजापतिः सुवर्णमात्मन्नपश्यत् तत् प्राजनयत् ॥ २ ॥

भा०—वह प्रजापति अपनी आत्मा में तेजोमयरूप को स्वयं देखता है । वह संसार को उत्पन्न करता है ।

तदेकमभवत् तल्ललाममभवत् तन्महदभवत् तज्ज्येष्ठमभवत् ।
तद् ब्रह्माभवत् तत् तपोऽभवत् तत् सत्यमभवत् तेन प्राजायत ॥३॥

भा०—वह एक था । वह सबसे सुन्दर था । वह सबसे महान् था । वह ज्येष्ठ था । वह ब्रह्म था । वह तप था । वह सत्य था उस परमेश्वर के सामर्थ्य से यह सुन्दर संसार से उत्पन्न हुआ ।

सोऽवर्धत स महानभवत् स महादेवोऽभवत् ॥ ४ ॥

भा०—वह और भी बढ़ा । वह 'महान्' हुआ । इसीलिये वह 'महादेव' है ।

स देवानामीशां पर्यैत् स ईशानोऽभवत् ॥ ५ ॥

भा०—वह ऐश्वर्यशील अग्नि, वायु, जल आदि महान् शक्तियों पर भी शासक है। अतः वह 'ईशान' है।

स एकव्रात्योऽभवत् स धनुरादत्त तदेवेन्द्रधनुः ॥ ६ ॥

भा०—वह एकमात्र समस्त व्रतो का आश्रय है। वह धनुष् को थामता है। वह ही इन्द्र का धनुष् है। (जो कि वर्षाकाल मे बादलो पर दृष्टिगोचर होता है)।

नीलमस्योदरं लोहितं पृष्ठम् ॥ ७ ॥

भा०—उस धनुष् का उदर अर्थात् भीतर का भाग नीला और पीठ का बाहरी भाग लाल है।

नीलेनैवाप्रियं भ्रातृव्यं प्रोर्णोति लोहितेन द्विषन्तं विध्यतीति ब्रह्मवादिनो वदन्ति ॥ ८ ॥

भा०—वेद के उपदेष्टा इस प्रकार उपदेश करते है कि वह परमेश्वर अपने धनुष् के नीले भाग से ही अप्रिय शत्रु को आच्छादित करता है और लाल भाग से द्वेष करने हारे को वेधता है। ईश्वर के सत्व रजः-तमोमय त्रिगुणात्मक प्रकृतिरूपी धनुष् के तामस भाग से वह अप्रिय क्रूर पुरुष को आवृत करता और क्रोधात्मक राजस भाग से द्वेषी को पीड़ित करता है।

(२) व्रात्य प्रजापति का वर्णन।

स उदतिष्ठत् स प्राचीं दिशमनु व्यचलत् ॥ १ ॥ तं बृहच्च रथन्तरं चादित्याश्च विश्वे च देवा अनुव्यचलन् ॥ २ ॥ बृहते च वै स रथन्तराय चादित्येभ्यश्च विश्वेभ्यश्च देवेभ्य आ वृश्चते य एवं विद्वांसं व्रात्यमुपवदति ॥ ३ ॥ बृहतश्च वै स रथन्तरस्य चादित्यानां च विश्वेषां च देवानां प्रियं धाम भवति तस्य प्राच्यां दिशि ॥४॥ श्रद्धा पुंश्चली मित्रो मागधो विज्ञानं वासोऽहरुष्णीषं रात्री केशा हरितौ प्रवर्तौ कल्मलिर्मणिः ॥५॥ भूतं च भविष्यच्च परिष्कन्दौ मनो विपथम् ॥ ६ ॥ मातरिश्वा च पवमानश्च विपथवाहौ वातः सारथी रेष्मा प्रतोदः ॥ ७ ॥ कीर्तिश्च यशश्च पुरःसरावैनं कीर्तिर्गच्छत्या यशो गच्छति य एवं वेद ॥ ८ ॥

भा०—वह व्रात्य उठा । वह प्राची दिशा को चला ॥ १ ॥ उसके पीछे पीछे बृहत् और रथन्तर, आदित्य और विश्वदेव चले ॥ २ ॥ जो पुरुष इस प्रकार के विद्वान् व्रात्य की निन्दा करता है वह बृहत् और रथन्तर, आदित्य और विश्वेदेवों के प्रति अपराध करता है ॥ ३ ॥

उस व्रात्य का स्वरूप क्या है ? उसके प्राची दिशा में श्रद्धा नारी के समान है । सूर्य स्तुतिपाठक के समान है । विज्ञान वस्त्र के समान है । दिन पगड़ी के समान है । रात्रि केशवत् है । उज्ज्वल सूर्य और चन्द्र दो कुण्डल हैं । तारे देह पर मणियें हैं । भूत और भविष्यत आगे पीछे चलने वाले दो पैदल सिपाही हैं । मन उसका नाना मार्गों में चलने वाला रथ है ॥ ६ ॥ मातरिश्वा और पवमान दोनों उसके रथ के घोड़े हैं । वात सारथि है । ववण्डर उसका हण्टर है । ॥ ७ ॥ कीर्ति और यश उसके आगे चलने वाले हरकारे हैं । जो व्रात्य के इस प्रकार के स्वरूप का साक्षात् कर लेता है उसको कीर्ति प्राप्त होती है और यश प्राप्त होता है ।

स उदतिष्ठत् स दक्षिणां दिशमनु व्यचलत् ॥ ९ ॥ तं यज्ञायज्ञियं च वामदेव्यं च यज्ञश्च यजमानश्च पशवश्चानुव्यचलन् ॥ १० ॥ यज्ञायज्ञियाय च वै स वामदेव्याय च यज्ञाय च यजमानाय च पशुभ्यश्चा वृश्चते य एवं विद्वांसं व्रात्यमुपवदति ॥११॥ यज्ञायज्ञियस्य च वै स वामदेव्यस्य च यज्ञस्य च यजमानस्य च पशूनां च प्रियं धाम भवति तस्य दक्षिणायां दिशि ॥१२॥ उषाः पुंश्चली मन्त्रो मागधो विज्ञानं० मणिः ॥ १३ ॥ अमावास्या च पौर्णमासी च परिष्कन्दौ मनो० । ० ॥ १४ ॥

भा०—व्रात्य का द्वितीय स्वरूप। वह व्रात्य उठ खड़ा हुआ। वह दक्षिण दिशा की ओर चला ॥ ९ ॥ उसके पीछे यज्ञायज्ञिय, वामदेव्य, यज्ञ, यजमान और पशु भी चले ॥ १० ॥ जो ऐसे विद्वान् व्रात्य की निन्दा करता है वह यज्ञायज्ञिय, वामदेव्य, यज्ञ, यजमान और पशुओं के प्रति अपराधी होता है। और जो उस प्रकार व्रात्य का स्वरूप जान लेता है वह यज्ञायज्ञिय, वामदेव्य, यज्ञ, यजमान और पशुओं का भी प्रिय आश्रय हो जाता है। दक्षिण दिशा में उसकी उषा नारी के समान है। वेदमन्त्र स्तुतिपाठ के समान, विज्ञान वस्त्र के समान, दिन पगड़ी, रात्रि केश, सूर्य चन्द्र दोनों कुण्डल और तारे मणियां हैं। ५ ॥ १२ ॥ अमावास्या और पौर्णमासी दोनों हरकारे हैं। मन रथ है। (मातरिश्वा च० इत्यादि) पूर्ववत् ऋचा सं० ६–८ की व्याख्या देखो ॥ १४ ॥

स उदतिष्ठत् स प्रतीचीं दिशमनु व्यचलत् ॥ १५ ॥ तं वैरूपं च वैराजं चापश्च वरुणश्च राजानुव्यचलन् ॥ १६ ॥ वैरूपाय च वै स वैराजाय चाद्भ्यश्च वरुणाय च राज्ञ आ वृश्चते य एवं विद्वांसं व्रात्यमुपवदति ॥ १७ ॥ वैरूपस्य च वै स वैराजस्य चापां च वरुणस्य च राज्ञः प्रियं धाम भवति तस्य प्रतीच्यां

दिशि ॥ १८ ॥ इरा पुंश्चली हसो मागधो विज्ञानं०।० मणिः ॥१९॥ अहश्च रात्री च परिस्कन्दौ मनो० । ० २० ॥

भा०—व्रात्य का तृतीय स्वरूप । वह व्रात्य उठा । वह प्रतीची अर्थात् पश्चिम दिशा की ओर चला ॥ १६ ॥ उसके पीछे पीछे वैरूप, वैराज, आपः और राजा वरुण चले । जो ऐसे विद्वान् की निन्दा करता है वह वैरूप, वैराज, आपः और राजा वरुण का अपमान करता है और जो उसको जान लेता है वह वैरूप, वैराज, आपः और राजा वरुण का प्रिय आश्रय हो जाता है । उसकी पश्चिम दिशा में अन्न नारी है, आनन्द प्रमोद, स्तुतिपाठक, विज्ञान वस्त्र, दिन पगडी, रात्रि केश इत्यादि पूर्ववत् । दिन और रात्रि दो हरकारे, मन रथ है, इत्यादि पूर्ववत् ।

स उदतिष्ठत् स उदीचीं दिशमनु व्यचलत् ॥२१॥ तं श्यैतं च नौधसं च सप्तर्षयश्च सोमश्च राजानुव्यचलन् ॥२२॥ श्यैताय च वै स नौधसाय च सप्तर्षिभ्यश्च सोमाय च राज्ञ आ वृश्चते य एवं विद्वांसं व्रात्यमुपवदति ॥२३॥ श्यैतस्य च वै स नौधसस्य च सप्तर्षीणां च सोमस्य च राज्ञः प्रियं धाम भवति तस्योदीच्यां दिशि ॥२४॥ विद्युत् पुंश्चली स्तनयित्नुर्मागधो विज्ञानं वासोऽहरुष्णीषं रात्री केशा हरितौ प्रवर्तौ कल्मलिर्मणिः ॥ २५ ॥ श्रुतं च विश्रुतं च परिष्कन्दौ मनो विपथम् ॥ २६ ॥ मातरिश्वा च पवमानश्च विपथवाहौ वातः सारथी रेष्मा प्रतोदः ॥२७॥ कीर्तिश्च यशश्च पुरःसरावैनं कीर्तिर्गच्छत्या यशो गच्छति य एवं वेद ॥२८॥

भा०—वह व्रात्य उठा । वह उत्तर दिशा में चला ॥ २१ ॥ उसके पीछे श्वेत और नौधस, सप्तर्षिगण और सोम राजा चले ॥२२॥ ॥२३॥ जो इस प्रकार के विद्वान् की निन्दा करता है वह श्वेत, नौधस, सप्तर्षिगण और सोम राजा का अपमान करता है ॥२४॥ जो उसको जान लेता है वह श्वेत, नौधस, सप्तर्षिगण और सोम राजा का प्रियपात्र

हो जाता है। उसकी उत्तर दिशा में ॥२५॥ विद्युत् नारी है, मेघ गर्जना स्तुतिपाठक है, विज्ञान वस्त्र है इत्यादि (देखो ऋचा सं० ५)। श्रुत और विश्रुत ये दोनो हरकारे हैं, मन रथ है। पूर्ववत्, देखो व्याख्या (ऋचा सं० २७, २८) ॥ २८ ॥

व्रात्य के चारो दिशाओं के प्रस्थान के चार रूप।

दिशा	प्राची १	दक्षिणा २	प्रतीची ३	उदीची ४
अनुगन्तारः	(१) बृहत् रथन्तरम् (१) आदित्याः विश्वेदेवाः	(२) यज्ञायज्ञियं, वामदेव्यं, यजमानः, पशवः (२)	(३) वैरूपं, वैराजं (३) आपः, वरुणो राजा	(४) श्यैतं, नौधसं सप्तर्षयः सोमो राजा
पुंश्चली	श्रद्धा	उषा	इरा	विद्युत्
मागधः	मित्रः	मन्त्रः	हसः	स्तनयित्नुः
वासः	विज्ञानं	विज्ञानं	विज्ञानं	विज्ञानं
उष्णीषः	अहः	अहः	अहः	अहः
केशाः	रात्रिः	रात्रिः	रात्रिः	रात्रिः
प्रवर्तौ	हरितौ	हरितौ	हरितौ	हरितौ
मणिः	कल्मलिः	कल्मलिः	कल्मलिः	कल्मलिः
परिष्कन्दौ	भूत भविष्यत्	अमावस्या, पौर्ण०	अहः, रात्रिः	श्रुतं, विश्रुतं
विपथम्	मनः	मनः	मनः	मनः
विपथवाहौ	मातरिश्वा, पवमानः	मातरिश्वा, पवमानः	मातरिश्वा, पवमानः	मातरिश्वा, पवमानः
सारथिः	वातः	वात	वातः	वातः
प्रतोद	रेश्मा	रेश्मा	रेश्मा	रेश्मा

(३) व्रात्य के सिंहासन का वर्णन ।

अथर्वा ऋषिः । अध्यात्मम् । व्रात्यो देवता । १ पिपीलिकामध्या गायत्री । २ साम्नी उष्णिक् । ३ याजुषी जगती । ४ द्विपदा आर्ची उष्णिक् । ५ आर्ची बृहती । ६ आसुरी अनुष्टुप् । ७ साम्नी गायत्री । ८ आसुरी पङ्क्ति । ९ आसुरी जगती । १० प्राजापत्या त्रिष्टुप् । ११ विराड् गायत्री एकादशर्चं तृतीय पर्यायसूक्तम् ।

स संवत्सरमूर्ध्वोऽतिष्ठत् तं देवा अब्रुवन् व्रात्य किं नु तिष्ठसीति॥१

भा०—वह वर्ष भर खडा रहा । उसको देवों ने कहा । हे व्रात्य ! तू क्यों खडा है ।

सोऽब्रवीदासन्दीं मे सं भरन्त्विति ॥ २ ॥

भा०—वह बोला मेरे लिये बैठने की चौकी ले आओ ।

तस्मै व्रात्यायासन्दीं समभरन् ॥ ३ ॥

भा०—उस व्रात्य के लिये चौकी ले आये ।

तस्या ग्रीष्मश्च वसन्तश्च द्वौ पादावास्तां शरच्च वर्षाश्च द्वौ ॥४॥

भा०—उस चौकी के दो पाये ग्रीष्म और वसन्त थे । तथा शरत् और वर्षा ये दो पाये और थे ।

बृहच्च रथन्तरं चानूच्ये३ आस्तां यज्ञायज्ञियं च वामदेव्यं च तिरश्च्ये ॥ ५ ॥

भा०—'बृहत्' और 'रथन्तर' ये दोनों दायें बायें की लकड़ी

२—यज्ञायज्ञियं = पशवः अन्नाद्यम् । वामदेव्यं, पिता, आत्मा शान्तिः [illegible] प्राजापत्यं प्राणः, पशवः, यजमानलोकः, अमृत लोकः, स्वर्ग , [illegible] । स्वर्गो लोक ।

३—वैरूप = वाग, पशवः, दिशः । वैराज = प्रजापतिः । आप = प्राणाः । [illegible] राजा = वृत्रो राजा [illegible] । [illegible] । [illegible] ।

४—श्यैत साम = पशवः । नौधसम् = ब्रह्मवर्चसम् । मरुतः [illegible] प्राणाः । [illegible] राजा ब्रह्मचारी । बृहद् वै परोक्ष नोधसम् । रथन्तरं [illegible] ।

थे, और यज्ञायज्ञिय और 'वामदेव्य' ये दोनो तिरछे, सिर-पांयते की लकडी थे।

ऋचः प्राञ्चस्तन्तवो यजूंषि तिर्यञ्चः ॥ ६ ॥

भा०—उस पीढे के लम्बे तन्तु या निवार के पलेट ऋग्वेद के मन्त्र थे और तिरछे तन्तु या पलेट यजुर्वेद के मन्त्र थे।

वेद आस्तरणं ब्रह्मोपबर्हणम् ॥ ७ ॥

भा०—वेद उसका बिछौना था और ब्रह्मविद्या सिरहाना था।

सामासाद उद्गीथोऽपश्रयः ॥ ८ ॥

भा०—'साम' उस पीढे पर पीठ का आश्रय था। उद्गीथ उसमे 'ढ्येे' लगे थे।

तामासन्दीं व्रात्य आरोहत् ॥ ९ ॥

भा०—उस चौकी पर व्रात्य चढ़ा।

तस्य देवजनाः परिष्कन्दा आसन्त्संकल्पाः।
प्रहाय्या३ विश्वानि भूतान्युपसदः ॥ १० ॥

भा०—उसके चारों ओर खडे होने वाले अङ्गरक्षक सिपाही दिव्य शक्तियां या विद्वान् गण थे। संकल्प ही दूत या गुप्तचर थे। और समस्त प्राणी समीप बैठने वाले उपजीवी, भृत्य, दरबारी थे।

विश्वान्येवास्य भूतान्युपसदो भवन्ति य एवं वेद ॥११॥

भा०—जो व्रात्य के इस प्रकार के स्वरूप का साक्षात्कार कर लेता है उसके समीप समस्त प्राणी निर्भय होकर उसकी शरण में रहते हैं।

(४) व्रात्य प्रजापति का राजतन्त्र।

आर्ची जगती । ३ (तृ०) भौमार्ची त्रिष्टुप् । ४ (द्वि०) साम्नी त्रिष्टुप् । (द्वि०) प्राजापत्या बृहती । ५ (तृ०) ६ (तृ०) द्विपदा आर्ची पङ्क्तिः । (द्वि०) आर्ची उष्णिक् । अष्टादशर्चं चतुर्थ पर्यायसूक्तम् ।

तस्मै प्राच्या दिशः ॥१॥ वासन्तौ मासौ गोप्तारावकुर्वन् बृहच्च रथन्तरं चानुष्ठातारौ ॥ २ ॥ वासन्तावेनं मासौ प्राच्या दिशो गोपायतो बृहच्च रथन्तरं चानु तिष्ठतो य एवं वेद ॥ ३ ॥

भा०—प्राची दिशा में उस व्रात्य के लिये वसन्त ऋतु के दोनों मासों को विद्वानों ने रक्षक कल्पित किया । बृहत् और रथन्तर को अनुष्ठाता, कर्मकर भृत्य या सेवक कल्पित किया । जो पुरुष व्रात्य के इस स्वरूप को भली प्रकार साक्षात् कर लेता है उसको वसन्त के दोनों मास प्राची दिशा से रक्षा करते हैं । बृहत् और रथन्तर दोनों उसकी सेवा करते हैं ।

तस्मै दक्षिणाया दिशः ॥४॥ ग्रैष्मौ मासौ गोप्तारावकुर्वन् यज्ञायज्ञियं च वामदेव्यं चानुष्ठातारौ ॥ ५ ॥ ग्रैष्मावेनं मासौ दक्षिणाया दिशो गोपायतो यज्ञायज्ञियं च वामदेव्यं चानु तिष्ठतो य एवं वेद ॥ ६ ॥

भा०—उस व्रात्य के लिये दक्षिण दिशा से ग्रीष्म के दोनों मासों को अनुरक्षक कल्पित किया । यज्ञायज्ञिय और वामदेव्य इन दोनों को भृत्य कल्पित किया । जो इस प्रकार व्रात्य के स्वरूप को साक्षात् जान लेता है उसको ग्रीष्म के दोनों मास दक्षिण दिशा से रक्षा करते हैं, यज्ञायज्ञिय और वामदेव्य दोनों उसकी सेवा करते हैं ।

तस्मै प्रतीच्या दिशः ॥७॥ वार्षिकौ मासौ गोप्तारावकुर्वन् वैरूपं च वैराजं चानुष्ठातारौ ॥ ८ ॥ वार्षिकावेनं मासौ प्रतीच्या दिशो गोपायतो वैरूपं च वैराजं चानु तिष्ठतो य एवं वेद ॥ ९ ॥

भा०—उस व्रात्य के लिये पश्चिम दिशा से वर्षा के दो मासों को रक्षक कल्पित करते हैं। और वैरूप और वैराज को अनुष्ठाता, आज्ञापालक भृत्य कल्पित किया है। जो इस प्रकार व्रात्य के स्वरूप को साक्षात् जान लेता है उसकी पश्चिम दिशा से (वार्षिकौ मासौ गोपायतः) वर्षा काल के दोनों मास रक्षा करने हैं। वैरूप और वैराज ये दोनों भृत्य के समान उस की आज्ञानुकूल कार्य करते हैं।

तस्मा उदीच्या दिशः ॥ १० ॥ शारदौ मासौ गोप्तारावकुर्वञ्छ्यैतं च नौधसं चानुष्ठातारौ ॥ ११ ॥ शारदावेनं मासावुदीच्या दिशो गोपायतः श्यैतं च नौधसं चानु तिष्ठतो य एवं वेद ॥ १२ ॥

भा०—उत्तर दिशा से उस व्रात्य के लिये शरद् ऋतु के दोनों मासों को रक्षक बनाया। श्यैत और नौधस दोनो को उसके आज्ञापालक भृत्य कल्पित किया। जो इस प्रकार व्रात्य के स्वरूप को साक्षात् करता है उसको शरद् ऋतु के दोनों मास उत्तर दिशा से रक्षा करते हैं। श्यैत और नौधस दोनों उसकी सेवा करते हैं।

तस्मै ध्रुवाया दिशः ॥ १३ ॥ हैमनौ मासौ गोप्तारावकुर्वन् भूमिं चाग्निं चानुष्ठातारौ ॥ १४ ॥ हैमनावेनं मासौ ध्रुवाया दिशो गोपायतो भूमिश्चाग्निश्चानुतिष्ठतो य एवं वेद ॥ १५ ॥

भा०—नीचे की दिशा से उस व्रात्य के लिये हेमन्त ऋतु के दोनों मासों को रक्षक कल्पित किया। भूमि और अग्नि को उसके भृत्य कल्पित किया। जो व्रात्य के इस प्रकार के स्वरूप को साक्षात् कर लेता है उसको हेमन्त ऋतु के दोनों मास 'ध्रुवा' दिशा, अर्थात् भूमि की ओर से रक्षा करते हैं और भूमि तथा अग्नि उसके भृत्य के समान काम करते हैं।

तस्मा ऊर्ध्वाया दिशः ॥ १६ ॥ शैशिरौ मासौ गोप्तारावकुर्वन् दिवं चादित्यं चानुष्ठातारौ ॥ १७ ॥ शैशिरावेनं मासावूर्ध्वाया

दिशो गोपायतो द्यौश्चादित्यश्चानु तिष्ठतो य एवं वेद ॥ १८ ॥

भा०—ऊपर की दिशा से उस व्रात्य के लिये शिशिर ऋतु के दोनों मासों को रक्षक कल्पित किया। तथा आकाश और सूर्य को कर्मकर भृत्य कल्पित किया ॥ १७ ॥ जो व्रात्य के इस प्रकार के स्वरूप को साक्षात् करता है उसकी शिशिर काल के दोनों मास ऊपर की दिशा से रक्षा करते हैं, तथा आकाश और सूर्य उसका भृत्य के समान काम करते हैं ॥ १८ ॥

(५) व्रात्य प्रजापति का राज्यतन्त्र।

अथर्वा ऋषिः। रुद्रगणसूक्तम्। मन्त्रोक्तो रुद्रो देवता। १ प्र० त्रिपदा समविषम गायत्री। १ द्वि० त्रिपदा भुरिग् आर्ची त्रिष्टुप्। १–७ तृ० द्विपदा प्राजापत्यानुष्टुप्। २ प्र० त्रिपदा स्वराट् प्राजापत्या पङ्क्तिः। २–४ द्वि०, ६ त्रिपदा ब्राह्मी गायत्री। ३, ४, ६, प्र० त्रिपदा ककुभ। ५, ७ प्र० भुरिजौ विषमेगायत्र्यौ। ५ द्वि० निचृद् ब्राह्मी गायत्री। ७ द्वि० विराट्। षोडशर्चं पञ्चम पर्यायसूक्तम्।

तस्मै प्राच्या दिशो अन्तर्देशाद् भवमिष्वासमनुष्ठातारमकुर्वन् ॥ १ ॥ भव एनमिष्वासः प्राच्या दिशो अन्तर्देशादनुष्ठातानु तिष्ठति नैनं शर्वो न भवो नेशानः ॥ २ ॥ नास्य पशून् न समानान् हिनस्ति य एवं वेद ॥ ३ ॥

भा०—उस व्रात्य के लिये प्राची दिशा के भीतरी देश से धनुर्धारी भव को उसका कर्मचारी बनाया ॥ १ ॥ जो इसके इस रहस्य को जानता है उसको धनुर्धर जन प्राची दिशा के भीतरी देश से उसका कर्मकर होकर उसकी आज्ञानुसार कार्य करता है। न शर्व, न भव और न ईशान ही उसका विनाश करता है। और वे भव, शर्व और ईशान न इसके पशुओं को और न इसके बन्धुओं का ही विनाश करता है।

तस्मै दक्षिणाया दिशो अन्तर्देशाच्छर्वमिष्वासमनुष्ठातारमकुर्वन् ॥ ४ ॥ शर्व एनमिष्वासो दक्षिणाया दिशो अन्तर्देशादनुष्ठातानु तिष्ठति नैनं० ॥ ५ ॥

भा०—दक्षिण दिशा के भीतरी भाग से विद्वान्गण उस व्रात्य के लिये शर्व धनुर्धर को उसका भृत्य कल्पित करते हैं। जो व्रात्य के इस प्रकार के स्वरूप को जानता है शर्व धनुर्धर होकर दक्षिण दिशा के भीतरी देश से उसका भृत्य होकर उसके आज्ञानुसार कर्म करता है। और भव, शर्व और ईशान भी न उसको नाश करते हैं और न उसके मित्र का नाश करते हैं।

तस्मै प्रतीच्या दिशो अन्तर्देशात् पशुपतिमिष्वासमनुष्ठातारमकुर्वन् ॥ ६ ॥ पशुपतिरेनमिष्वासः प्रतीच्या दिशो अन्तर्देशादनु० । नास्य० ॥ ७ ॥

भा०—पश्चिम दिशा के भीतरी देश से उस व्रात्य के लिये बाण फेंकने वाले धनुर्धर पशुपति को चाकर कल्पित करते हैं। जो इस प्रकार के व्रात्य के स्वरूप को जानता है पशुपति धनुर्धर पश्चिम दिशा के भीतरी प्रदेश से भृत्य हो उसकी सेवा करता है। इत्यादि पूर्ववत्।

तस्मा उदीच्या दिशो अन्तर्देशादुग्रं देवमिष्वासमनुष्ठातारमकुर्वन् ॥८॥ उग्र एनं देव इष्वास उदीच्या दिशो अन्तर्देशादनु०। नास्य० ॥ ९ ॥

भा०—उत्तर दिशा से उग्रदेव को उसका धनुर्धर भृत्य कल्पित करते हैं। जो इस प्रकार के व्रात्य के स्वरूप को साक्षात् करता है उग्रदेव धनुर्धर उसको उत्तर दिशा के भीतरी देश से सेवा करता है। इत्यादि पूर्ववत्।

तस्मै ध्रुवाया दिशो अन्तर्देशाद् रुद्रमिष्वासमनुष्ठातारमकुर्वन् ॥१०॥ रुद्र एनमिष्वासो ध्रुवाया दिशो अन्तर्देशादनु० ॥ ११ ॥

दिशो गोपायतो नभश्चादित्यश्चानु तिष्ठतो य एवं वेद ॥ १८ ॥

भा०—ऊपर की दिशा से उस व्रात्य के लिये शिशिर ऋतु के दोनों मासों को रक्षक कल्पित किया। तथा आकाश और सूर्य को कर्मकर भृत्य कल्पित किया ॥ १७ ॥ जो व्रात्य के इस प्रकार के स्वरूप को साक्षात् करता है उसकी शिशिर काल के दोनों मास ऊपर की दिशा से रक्षा करते हैं, तथा आकाश और सूर्य उसका भृत्य के समान काम करते हैं ॥ १८ ॥

(५) व्रात्य प्रजापति का राज्यतन्त्र।

अथर्वा ऋषिः। रुद्रगणसूक्तम्। मन्त्रोक्ता रुद्रो देवता। १ प्र० त्रिपदा समविषमा गायत्री। १ द्वि० त्रिपदा भुरिग् आर्ची त्रिष्टुप्। १–७ तृ० द्विपदा प्राजापत्यानुष्टुप्। २ प्र० त्रिपदा स्वराड् प्राजापत्या पङ्क्तिः। २–८ द्वि०, ६ त्रिपदा ब्राह्मी गायत्री। ३, ४, ६, प्र० त्रिपदा ककुप्। ५, ७ प्र० भुरिजौ त्रिपदे गायत्र्यौ। ५ द्वि० निचृद् ब्राह्मी गायत्री। ७ द्वि० विराट्। षोडशर्चं पञ्चमं पर्यायसूक्तम्।

तस्मै॒ प्राच्या॑ दि॒शो अ॑न्तर्दे॒शाद् भ॒वमि॑ष्वा॒सम॑नुष्ठा॒तार॑मकुर्वन् ॥ १ ॥ भ॒व ए॑नमिष्वा॒सः प्राच्या॑ दि॒शो अ॑न्तर्दे॒शाद॑नुष्ठा॒तानु॑ तिष्ठति॒ नैनं॑ श॒र्वो न भ॒वो नेशा॑नः ॥ २ ॥ नास्य॑ प॒शून् न स॑मा॒नान् हि॑नस्ति॒ य ए॒वं वेद॑ ॥ ३ ॥

भा०—उस व्रात्य के लिये प्राची दिशा के भीतरी देश से धनुर्धारी भव को उसका कर्मचारी बनाया ॥ १ ॥ जो इसके इस रहस्य को जानता है उसको धनुर्धर जन प्राची दिशा के भीतरी देश से उसका कर्मकर होकर उसकी आज्ञानुसार कार्य करता है। न शर्व, न भव और न ईशान ही उसका विनाश करता है। और वे भव, शर्व और ईशान न इसके पशुओं को और न इसके बन्धुओं का ही विनाश करता है।

तस्मै दक्षिणाया दिशो अन्तर्देशाच्छर्वमिष्वासमनुष्ठातारमकुर्वन् ॥ ४ ॥ शर्व एनमिष्वासो दक्षिणाया दिशो अन्तर्देशादनुष्ठातानु तिष्ठति नैनं० ॥ ५ ॥

भा०—दक्षिण दिशा के भीतरी भाग से विद्वान्गण उस व्रात्य के लिये शर्व धनुर्धर को उसका भृत्य कल्पित करते हैं। जो व्रात्य के इस प्रकार के स्वरूप को जानता है शर्व धनुर्धर होकर दक्षिण दिशा के भीतरी देश से उसका भृत्य होकर उसके आज्ञानुसार कर्म करता है। और भव, शर्व और ईशान भी न उसको नाश करते हैं और न उसके मित्र का नाश करते हैं।

तस्मै प्रतीच्या दिशो अन्तर्देशात् पशुपतिमिष्वासमनुष्ठातारमकुर्वन् ॥ ६ ॥ पशुपतिरेनमिष्वासः प्रतीच्या दिशो अन्तर्देशादनु०। नास्य० ॥ ७ ॥

भा०—पश्चिम दिशा के भीतरी देश से उस व्रात्य के लिये बाण फेंकने वाले धनुर्धर पशुपति को चाकर कल्पित करते हैं। जो इस प्रकार के व्रात्य के स्वरूप को जानता है पशुपति धनुर्धर पश्चिम दिशा के भीतरी प्रदेश से भृत्य हो उसकी सेवा करता है। इत्यादि पूर्ववत्।

तस्मा उदीच्या दिशो अन्तर्देशादुग्रं देवमिष्वासमनुष्ठातारमकुर्वन् ॥८॥ उग्र एनं देव इष्वास उदीच्या दिशो अन्तर्देशादनु०। नास्य० ॥ ९ ॥

भा०—उत्तर दिशा से उग्रदेव को उसका धनुर्धर भृत्य कल्पित करते हैं। जो इस प्रकार के व्रात्य के स्वरूप को साक्षात् करता है उग्रदेव धनुर्धर उसको उत्तर दिशा के भीतरी देश से सेवा करता है। इत्यादि पूर्ववत्।

तस्मै ध्रुवाया दिशो अन्तर्देशाद् रुद्रमिष्वासमनुष्ठातारमकुर्वन् ॥१०॥ रुद्र एनमिष्वासो ध्रुवाया दिशो अन्तर्देशादनु० ॥ ११ ॥

दिशो गोपायतो द्यौश्चादित्यश्चानु तिष्ठतो य एवं वेद ॥ १८ ॥

भा०—ऊपर की दिशा से उस व्रात्य के लिये शिशिर ऋतु के दोनों मासों को रक्षक कल्पित किया। तथा आकाश और सूर्य को कर्मकर भृत्य कल्पित किया ॥ १७ ॥ जो व्रात्य के इस प्रकार के स्वरूप को साक्षात् करता है उसकी शिशिर काल के दोनों मास ऊपर की दिशा से रक्षा करते हैं, तथा आकाश और सूर्य उसका भृत्य के समान काम करते हैं ॥ १८ ॥

(५) व्रात्य प्रजापति का राज्यतन्त्र।

अथर्वा ऋषिः। रुद्रगणसूक्तम्। मन्त्रोक्तो रुद्रो देवता। १ प्र० त्रिपदा समविषम गायत्री। १ द्वि० त्रिपदा भुरिग् आर्ची त्रिष्टुप्। १–७ तृ० द्विपदा प्राजापत्यानुष्टुप्। २ प्र० त्रिपदा स्वराट् प्राजापत्या पंक्तिः। २–४ द्वि०, ६ त्रिपदा ब्राह्मी गायत्री। ३, ४, ६, प्र० त्रिपदा ककुभः। ५, ७ प्र० भुरिजौ विषमगायत्र्यौ। ५ द्वि० निचृद् ब्राह्मी गायत्री। ७ द्वि० विराट्। षोडशर्चं पञ्चम पर्यायसूक्तम्।

तस्मै॒ प्राच्या॑ दि॒शो अ॑न्तर्दे॒शाद् भ॒वमि॑ष्वा॒सम॑नुष्ठा॒तार॑मकुर्वन् ॥ १ ॥ भ॒व ए॑नमिष्वा॒सः प्राच्या॑ दि॒शो अ॑न्तर्दे॒शाद॑नुष्ठा॒तानु॑ तिष्ठति॒ नैनं॑ श॒र्वो न भ॒वो नेशा॑नः ॥ २ ॥ नास्य॑ प॒शून् न स॑मा॒नान् हि॑नस्ति॒ य ए॒वं वेद॑ ॥ ३ ॥

भा०—उस व्रात्य के लिये प्राची दिशा के भीतरी देश से धनुर्धारी भव को उसका कर्मचारी बनाया ॥ १ ॥ जो इसके इस रहस्य को जानता है उसको धनुर्धर जन प्राची दिशा के भीतरी देश से उसका कर्मकर होकर उसकी आज्ञानुसार कार्य करता है। न शर्व, न भव और न ईशान ही उसका विनाश करता है। और वे भव, शर्व और ईशान न इसके पशुओं को और न इसके बन्धुओं का ही विनाश करता है।

तस्मै दक्षिणाया दिशो अन्तर्देशाच्छर्वमिष्वासमनुष्ठातारमकुर्वन् ॥ ४ ॥ शर्व एनमिष्वासो दक्षिणाया दिशो अन्तर्देशादनुष्ठातानु तिष्ठति नैनं० ॥ ५ ॥

भा०—दक्षिण दिशा के भीतरी भाग से विद्वान्‌गण उस व्रात्य के लिये शर्व धनुर्धर को उसका भृत्य कल्पित करते हैं। जो व्रात्य के इस प्रकार के स्वरूप को जानता है शर्व धनुर्धर होकर दक्षिण दिशा के भीतरी देश से उसका भृत्य होकर उसके आज्ञानुसार कर्म करता है। और भव, शर्व और ईशान भी न उसको नाश करते हैं और न उसके मित्र का नाश करते हैं।

तस्मै प्रतीच्या दिशो अन्तर्देशात् पशुपतिमिष्वासमनुष्ठातारमकुर्वन् ॥ ६ ॥ पशुपतिरेनमिष्वासः प्रतीच्या दिशो अन्तर्देशादनु० । नास्य० ॥ ७ ॥

भा०—पश्चिम दिशा के भीतरी देश से उस व्रात्य के लिये बाण फेंकने वाले धनुर्धर पशुपति को चाकर कल्पित करते हैं। जो इस प्रकार के व्रात्य के स्वरूप को जानता है पशुपति धनुर्धर पश्चिम दिशा के भीतरी प्रदेश से भृत्य हो उसकी सेवा करता है। " इत्यादि पूर्ववत्।

तस्मा उदीच्या दिशो अन्तर्देशादुग्रं देवमिष्वासमनुष्ठातारमकुर्वन् ॥८॥ उग्र एनं देव इष्वास उदीच्या दिशो अन्तर्देशादनु० । नास्य० ॥ ९ ॥

भा०—उत्तर दिशा से उग्रदेव को उसका धनुर्धर भृत्य कल्पित करते हैं। जो इस प्रकार के व्रात्य के स्वरूप को साक्षात् करता है उग्रदेव धनुर्धर उसको उत्तर दिशा के भीतरी देश से सेवा करता है। इत्यादि पूर्ववत्।

तस्मै ध्रुवाया दिशो अन्तर्देशाद् रुद्रमिष्वासमनुष्ठातारमकुर्वन् ॥१०॥ रुद्र एनमिष्वासो ध्रुवाया दिशो अन्तर्देशादनु० ॥ ११ ॥

भा०—नीचे की दिशा के भीतरी देश से उसके लिये रुद्र धनुर्धर को उसका भृत्य कल्पित किया। जो इस प्रकार व्रात्य के स्वरूप को साक्षात् करता है रुद्र धनुर्धर ध्रुवा दिशा के भीतरी प्रदेश से उसकी सेवा करता है।...इत्यादि पूर्ववत्।

तस्मा॑ ऊर्ध्वाया॑ दि॒शो अ॑न्तर्दे॒शान्म॑हादे॒वमि॑ष्वा॒सम॑नुष्ठा॒तार॑मकुर्वन् ॥ १२ ॥ म॒हा॒दे॒व ए॑नमिष्वा॒स ऊ॒र्ध्वाया॑ दि॒शो अ॑न्तर्दे॒शादनु० । नास्य० ॥ १३ ॥

भा०—ऊपर की दिशा के भीतरी देश से उसके लिये 'महादेव' धनुर्धर को उसका भृत्य कल्पित किया। जो व्रात्य के ऐसे स्वरूप को साक्षात् जान लेता है ऊर्ध्व दिशा के भीतरी देश से महादेव धनुर्धर उसका कर्मकर होकर आज्ञा पालन करता है। . इत्यादि पूर्ववत्।

तस्मै॒ सर्वे॑भ्यो अ॑न्तर्दे॒शेभ्य॒ ईशा॑नमिष्वा॒सम॑नुष्ठा॒तार॑मकुर्वन् ॥ १४ ॥ ईशा॑न एनमिष्वा॒सः सर्वे॑भ्यो अन्तर्दे॒शेभ्यो॑ऽनुष्ठा॒तानु॑ तिष्ठति॒ नैनं॑ श॒र्वो न भ॒वो नेशा॑नः ॥१५॥ नास्य॑ प॒शून् न स॑मा॒नान् हिं॑नस्ति॒ य ए॒वं वेद॑ ॥ १६ ॥

भा०—समस्त भीतरी देशों से उसके लिये ईशान धनुर्धर को उसका भृत्य कल्पित करते हैं। समस्त अन्तर्देशों से ईशान धनुर्धर भृत्य होकर उसकी आज्ञा पालन करता है। इत्यादि पूर्ववत्।

(६) व्रात्य प्रजापति का प्रस्थान।

१ प्र०, २ प्र० आसुरी पंक्तिः। ३–६, ६ प्र० आसुरी बृहती। ८ प्र० परोष्णिक्। १ द्वि०, ६ द्वि० आर्ची पंक्ति। ७ प्र० आर्ची उष्णिक्। २ द्वि, ४० द्वि० साम्नी त्रिष्टुप्। ३ द्वि० साम्नी पंक्ति। ५ द्वि०, ८ द्वि० आर्षी त्रिष्टुप्। ७ द्वि० साम्नी अनुष्टुप्। ६ द्वि० आर्ची अनुष्टुप। १ तृ० आर्षी पंक्तिः। २ तृ०, ४ तृ० निचृद् बृहती। ३ तृ० प्राजापत्या त्रिष्टुप्। ५ तृ०, ६ तृ० विराड् जगती। ७ तृ० आर्ची बृहती। ६ तृ० विराड् बृहती। षड्विंशत्यृच षड् पर्यायसूक्तम्।

स ध्रुवां दिशमनु व्यचलत् ॥ १ ॥ तं भूमिश्चाग्निश्चौषधयश्च वनस्पतयश्च वानस्पत्याश्च वीरुधश्चानुव्यचलन् ॥ २ ॥ भूमेश्च वै सोऽग्नेश्चौषधीनां च वनस्पतीनां च वानस्पत्यानां च वीरुधां च प्रियं धाम भवति य एवं वेद ॥ ३ ॥

भा०—वह भूमि की ओर की दिशा को चला । उसके साथ साथ भूमि, अग्नि, ओषधियां, बडे वृक्ष और उनसे बनने वाले नाना पदार्थ इसके पीछे चले । जो व्रात्य के इस प्रकार के स्वरूप को साक्षात् करता है वह भूमि का, अग्नि का, ओषधियों का, वनस्पतियों का, वनस्पति के बने विकारों का प्रिय आश्रय हो जाता है ।

स ऊर्ध्वां दिशमनु व्यचलत् ॥ ४ ॥ तमृतं च सत्यं च सूर्यश्च चन्द्रश्च नक्षत्राणि चानुव्यचलन् ॥ ५ ॥ ऋतस्य च वै स सत्यस्य च सूर्यस्य च चन्द्रस्य च नक्षत्राणां च प्रियं धाम भवति य एवं वेद ॥ ६ ॥

भा०—वह ऊपर की दिशा को चला । ऋत, सत्य, सूर्य, चन्द्र और नक्षत्र उसके साथ उसके पीछे पीछे चले । जो व्रात्य का इस प्रकार का रहस्य साक्षात् करता है वह ऋत, सत्य, सूर्य, चन्द्र और नक्षत्रों का प्रिय आश्रय हो जाता है ।

स उत्तमां दिशमनु व्यचलत् ॥७॥ तमृचश्च सामानि च यजूंषि च ब्रह्म चानुव्यचलन् ॥ ८ ॥ ऋचां च स साम्नां च यजुषां च ब्रह्मणश्च प्रियं धाम भवति य एवं वेद ॥ ९ ॥

भा०—वह व्रात्य सब से अधिक ऊंची दिशा की ओर चला । उसके पीछे पीछे ऋग्वेद के मन्त्र, साम गायन, यजुर्मन्त्र और ब्रह्मवेद अर्थात् अथर्ववेद के मन्त्र चले । जो व्रात्य के इस प्रकार के स्वरूप को साक्षात् करता है वह ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद और अथर्ववेद के मन्त्रों का प्रिय आश्रय हो जाता है ।

स बृ॒ह॒तीं दिश॒मनु॒ व्य॑चलत् ॥ १० ॥ तमि॑तिहा॒सश्च॑ पुरा॒णं च॒ गाथा॑श्च नाराशं॒सीश्चा॑नु॒व्य॑चलन् ॥११॥ इ॒ति॒हा॒सस्य॑ च॒ वै स पु॑रा॒णस्य॑ च॒ गाथा॑नां च नाराशं॒सीनां॑ च प्रि॒यं धाम॑ भवति॒ य ए॒वं वेद॑ ॥ १२ ॥

भा०—वह 'बृहती' दिशा को चला। (११) उसके पीछे पीछे इतिहास, पुराण, गाथाएं और नाराशंसी भी चले। (१२) जो इस प्रकार जानता है वह निश्चय ही इतिहास पुराण अर्थात् सृष्टि विषयक पुरातन वृत्त, गाथा और नाराशंसियों का भी प्रिय आश्रय हो जाता है।

स प॑र॒मां दिश॒मनु॒ व्य॑चलत् ॥१३॥ तमा॑हव॒नीय॑श्च॒ गार्ह॑पत्यश्च दक्षिणा॒ग्निश्च॑ य॒ज्ञश्च॒ यज॑मानश्च॒ प॒शव॑श्चानु॒व्य॑चलन् ॥ १४ ॥ आ॒ह॒व॒नीय॑स्य च॒ वै स गार्ह॑पत्यस्य च दक्षिणा॒ग्नेश्च॑ य॒ज्ञस्य॑ च॒ यज॑मानस्य च प॒शूनां॑ च॑ प्रि॒यं धाम॑ भवति॒ य ए॒वं वेद॑ ॥ १५ ॥

भा०—वह परम दिशा मे चला। उसके पीछे पीछे आहवनीय, गार्हपत्य, दक्षिणाग्नि, यज्ञ, यजमान और पशु भी चले। जो व्रात्य के इस प्रकार के तत्व को जान लेता है वह आहवनीय, गार्हपत्य, दक्षिणाग्नि, यज्ञ, यजमान और पशुओं का भी प्रिय आश्रय हो जाता है।

सोऽना॑दिष्टां दिश॒मनु॒ व्य॑चलत् ॥१६॥ तमृ॒तव॑श्चार्त॒वाश्च॒ लोका॑श्च लौ॒क्याश्च॒ मासा॑श्चार्धमा॒साश्चा॑होरा॒त्रे चा॑नु॒व्य॑चलन् ।१७। ऋ॒तूनां॑ च॒ वै स आ॑र्त॒वानां॑ च॒ लोका॑नां च लौ॒क्यानां॑ च॒ मासा॑नां चार्धमासा॒नां चाहोरा॒त्रयो॑श्च प्रि॒यं धाम॑ भवति॒ य ए॒वं वेद॑ ॥१८॥

भा०—वह व्रात्य अनिर्दिष्ट दिशा को चला। उसके पीछे ऋतु, ऋतुओं के अनुकूल वायु आदि लोक, लोक मे विद्यमान नाना प्राणी, मास, अर्धमास, दिनरात ये सब चले। जो व्रात्य के इस प्रकार के

स्वरूप को साक्षात् करता है वह ऋतु, ऋतुओं के होने वाले विशेष पदार्थों, लोकों मे स्थित पदार्थों और प्राणियों, मासों, अर्धमासों, दिनों और रातों का प्रिय आश्रय हो जाता है।

सोऽनावृत्तां दिशमनु व्यचलत् ततो नावर्त्स्यन्नमन्यत॥१९॥ तं दितिश्चादितिश्चेडा चेन्द्राणी चानुव्यचलन् ॥ २० ॥ दितेश्च वै सोऽदितेश्चेडायाश्चेन्द्राण्याश्च प्रियं धाम भवति य एवं वेद॥२१

भा०—वह 'अनावृत्ता' जिधर से लौटकर फिर न आया जाय उस दिशा को चला। तब वह व्रात्य अपने को कभी न लौटने वाला ही मानने लगा। उसके पीछे दिति और अदिति, इडा और इन्द्राणी भी चले। जो व्रात्य के इस स्वरूप को साक्षात् करता है वह दिति, अदिति, इडा और इन्द्राणी का प्रिय आश्रय हो जाता है।

स दिशोनु व्यचलत् तं विराडनु व्यचलत् सर्वे च देवाः सर्वाश्च देवताः ॥२२॥ विराजश्च वै स सर्वेषां च देवानां सर्वासां च देवतानां प्रियं धाम भवति य एवं वेद ॥ २३ ॥

भा०—वह समस्त दिशाओं में चला। उसके पीछे विराट् चला और सब देव और सब देवता भी उसके पीछे चले। जो व्रात्य के इस प्रकार के स्वरूप को जान लेता है वह विराट् का, सर्व देवों और सब देवताओं का प्रिय आश्रय हो जाता है।

स सर्वानन्तर्देशाननु व्यचलत् ॥२४॥ तं प्रजापतिश्च परमेष्ठी च पिता च पितामहश्चानुव्यचलन् ॥२५॥ प्रजापतेश्च वै स परमेष्ठिनश्च पितुश्च पितामहस्य च प्रियं धाम भवति य एवं वेद॥२६

भा०—वह समस्त भीतरी देशों मे चला। उसके पीछे पीछे प्रजापति, परमेष्ठी, पिता और पितामह भी चले। जो मनुष्य प्रजापति के इस प्रकार के स्वरूप को साक्षात् करता है वह निश्चय से प्रजापति, परमेष्ठी, पिता और पितामह का प्रिय आश्रय हो जाता है।

(७) व्रात्य की समुद्र विभूति ।

अथर्वा ऋषिः । अध्यात्मम् । व्रात्यो देवता । १ त्रिपदानिचृद् गायत्री । २ एकपदा विराड् बृहती । ३ विराड् उष्णिक् । ४ एकपदा गायत्री । ५ पङ्क्तिः । पञ्चर्चं सूक्तम् ।

स म॑हि॒मा सद्रु॑र्भू॒त्वान्तं॑ पृथि॒व्या अ॑गच्छ॒त् स स॑मु॒द्रो॑ऽभवत् ॥१॥

भा०—वह 'व्रात्य' महान् अनन्त परिमाण वाला द्रवशील होकर पृथिवी के सब ओर व्याप्त हो गया । वही समुद्र हो गया ।

तं प्र॒जाप॑तिश्च परमे॒ष्ठी च॑ पि॒ता च॑ पिताम॒हश्चाप॑श्च श्र॒द्धा च॑ व॒र्षं भू॒त्वानु॒व्यवर्तयन्त ॥ २ ॥

भा०—उसके पीछे पीछे प्रजापति और परमेष्ठी, पिता और पितामह, आपः और श्रद्धा वर्षा रूप होकर रहने लगे ।

ऐन॒मापो॑ गच्छ॒त्यैनं॑ श्र॒द्धा गच्छ॒त्यैनं॑ व॒र्षं गच्छ॑ति॒ य ए॒वं वेद॑ ॥३॥

भा०—जो इसको साक्षात् जानता है उसको श्रद्धा प्राप्त होती है । उसको वर्षा प्राप्त होती है ।

तं श्र॒द्धा च॑ य॒ज्ञश्च॑ लो॒कश्चान्नं॑ चान्ना॒द्यं॑ च भू॒त्वाभि॑प॒र्याव॑र्तन्त ॥४॥

भा०—उसके चारों ओर श्रद्धा, यज्ञ, लोक, अन्न और अन्नाद्य रूप में होकर रहे ।

ऐनं॑ श्र॒द्धा गच्छ॒त्यैनं॑ य॒ज्ञो गच्छ॒त्यैनं॑ लो॒को गच्छ॒त्यैन॒मन्नं॑ गच्छ॒त्यैन॒मन्ना॒द्यं॑ गच्छ॑ति॒ य ए॒वं वेद॑ ॥ ५ ॥

भा०—जो व्रात्य के इस स्वरूप को जानता है उसको श्रद्धा प्राप्त होती है । उसको यज्ञ प्राप्त होता है । उसको लोक प्राप्त होता है । उसको अन्न प्राप्त होते हैं और उसको अन्न खाने की शक्ति भी प्राप्त होती है ।

इति प्रथमोऽनुवाकः ।

[तत्र सप्त पर्यायाः, द्वादशाधिकशतमवसानर्चः ।]

(८) व्रात्य राजा ।

अथर्वा ऋषिः । अध्यात्मम् । व्रात्यो देवता । १ साम्नी उष्णिक् । २ प्राजापत्यानुष्टुप् । ३ आर्ची पङ्क्तिः । तृचं सूक्तम् ।

सोऽरज्यत ततो राजन्योऽजायत ॥ १ ॥

भा०—वह व्रात्य सबका प्रेमपात्र हो रहा । उसके बाद, उसी कारण से वह राजान्य अर्थात् राजा हुआ ।

स विशः सबन्धूनन्नमन्नाद्यमभ्युदतिष्ठत् ॥ २ ॥

भा०—वह व्रात्य अपने बन्धुओं सहित समस्त प्रजाओं के तथा अन्न और अन्न के समान समस्त भोग्य पदार्थों या भोग सामर्थ्यों के प्रति उठा । सबका अधिष्ठाता स्वामी हो गया ।

विशां च वै स सबन्धूनां चान्नस्य चान्नाद्यस्य च प्रियं धाम भवति य एवं वेद ॥ ३ ॥

भा०—जो व्रात्य के इस प्रकार के स्वरूप को जानता है वह समस्त बन्धुओं सहित समस्त प्रजाओं का, अन्न और अन्न से उत्पन्न अन्य खाद्य पदार्थ का भी प्रिय आश्रय हो जाता है ।

(९) व्रात्य सभापति, समितिपति, सेनापति और गृहपति ।

अथर्वा ऋषिः । अध्यात्मम् । व्रात्यो देवता । १ आसुरी । २ आर्ची गायत्री, ३ आर्ची पङ्क्तिः । तृचं सूक्तम् ।

स विशोऽनु व्यचलत् ॥ १ ॥

भा०—वह व्रात्य प्रजाओं की ओर आया ।

तं सभा च समितिश्च सेना च सुरा चानुव्यचलन् ॥ २ ॥

भा०—उसके पीछे पीछे सभा, समिति, सेना और सुरा अर्थात् खजाना भी चले ।

सभायाश्च वै स समितेश्च सेनायाश्च सुरायाश्च प्रियं धाम भवति य एवं वेद ॥ ३ ॥

भा०—जो इस प्रकार के व्रात्य के राजन्य स्वरूप को जानता है वह सभा, समिति, सेना और ख़जाने का प्रिय आश्रय हो जाता है ।

(१०) व्रात्य का आदर, ब्राह्मबल और क्षात्रबल का आश्रय ।

अथर्वा ऋषिः । अध्यात्मम् । व्रात्यः ॥ १ द्विपदा साम्नी बृहती । २ त्रिपदा आर्ची पंक्तिः । ३ द्विपदा प्राजापत्या पंक्तिः । ४ त्रिपदा वर्धमाना गायत्री । ५ त्रिपदा साम्नी बृहती । ६, ८, १० द्विपदा आसुरी गायत्री । ७, ९ साम्नी उष्णिक् । ११ आसुरी बृहती । एकादशर्चं सूक्तम् ।

तद् यस्यैवं विद्वान् व्रात्यो राज्ञोऽतिथिर्गृहानागच्छेत् ॥ १ ॥
श्रेयांसमेनमात्मनो मानयेत् तथा क्षत्राय ना वृश्चते तथा राष्ट्राय ना वृश्चते ॥ २ ॥

भा०—तो जिस राजा के घरों पर इस प्रकार के व्रात्य के स्वरूप को साक्षात् करने वाला व्रात्य अतिथि होकर आवे वह इस विद्वान् आचार्य को अपने लिये अति अधिक कल्याणकारी मानकर उसका आदर करे । वैसा करने से वह क्षात्रबल या राज्य का अपराध नहीं करता । उसी प्रकार वह अपने राष्ट्र का भी अपराध नहीं करता ।

अतो वै ब्रह्म च क्षत्रं चोदतिष्ठतां ते अब्रूतां कं प्र विशावेति ॥३॥
अतो वै बृहस्पतिमेव ब्रह्म प्रा विशत्विन्द्रं क्षत्रं तथा वा इति ॥४॥
अतो वै बृहस्पतिमेव ब्रह्म प्राविशदिन्द्रं क्षत्रम् ॥ ५ ॥

भा०—उस विद्वान् प्रजापति रूप आचार्य से ही वेद और वेदज्ञ ब्राह्मण और क्षात्रबल और वीर्यवान् क्षत्रिय उत्पन्न होते हैं । वे दोनों कहते हैं । हम दोनों ब्रह्मबल और क्षात्रबल कहां प्रविष्ट होकर रहें । इस व्रात्य से उत्पन्न ब्रह्मबल, ब्रह्मज्ञान, वेद और ब्राह्मण लोग बृहस्पति परमेश्वर या महान् वेदज्ञ का आश्रय लें और क्षात्रबल, वीर्य ऐश्वर्यवान् राजा का आश्रय लें । ब्रह्म और क्षत्र दोनों को 'तथाऽस्तु' कहकर

स्वीकार करता है। निश्चय से उस मात्य आचार्य से उत्पन्न ब्रह्मबल बृहस्पति आचार्य में प्रविष्ट है और क्षात्रबल राजा के अधीन होता है।

इयं वा उ पृथिवी बृहस्पतिर्द्यौरेवेन्द्रः ॥ ६ ॥

अयं वा उ अग्निर्ब्रह्मासावादित्यः क्षत्रम् ॥ ७ ॥

भा०—यह पृथिवी ही बृहस्पति है और यह द्यौ इन्द्र है। अर्थात् बृहस्पति पृथिवी के समान सर्वाश्रय है। यह अग्नि ही ब्रह्म और यह आदित्य 'क्षत्र' है। अर्थात् ब्रह्म अग्नि के समान प्रकाशमान है और क्षत्रबल सूर्य के समान तेजस्वी है।

ऐनं ब्रह्म गच्छति ब्रह्मवर्चसी भवति ॥ ८ ॥

यः पृथिवीं बृहस्पतिमग्निं ब्रह्म वेद ॥ ९ ॥

भा०—जो पृथिवी को बृहस्पति और अग्नि को ब्रह्म जान लेता है उसको ब्रह्मबल प्राप्त होता है, वह ब्रह्मवर्चस्वी हो जाता है।

ऐनमिन्द्रियं गच्छतीन्द्रियवान् भवति ॥ १० ॥

य आदित्यं क्षत्रं दिवमिन्द्रं वेद ॥ ११ ॥

भा०—जो आदित्य को क्षत्र और द्यौ को इन्द्र जानता है, अर्थात् जो आदित्य के समान क्षात्रबल को और द्यौलोक के समान राजा को जानता है उसको इन्द्र का ऐश्वर्य प्राप्त होता है और वह इन्द्र के ऐश्वर्य से सम्पन्न हो जाता है।

(११) व्रात्यपति आचार्य का आतिथ्य और अतिथियज्ञ।

स्वरूप को जानने हारा व्रातपति, शिष्यगणों का आचार्य अतिथि होकर आवे तब—

स्वयमेनमभ्युदेत्य ब्रूयाद् व्रात्य क्वावात्सीर्व्रात्योदकं व्रात्य तर्पयन्तु व्रात्य यथा ते प्रियं तथास्तु व्रात्य यथा ते वशस्तथास्तु व्रात्य यथा ते निकामस्तथास्त्विति ॥ २ ॥

भा०—गृहपति अपने आप इसके समीप उसके सन्मुख, उठकर, आकर आदर सत्कार पूर्वक कहे कि हे 'व्रात्य'! आप कहां रहते हैं। हे व्रात्य! यह आपके लिये है। हे व्रात्य! ये मेरे गृह के जन आपको भोजन से तृप्त करें। हे व्रात्य! जिस प्रकार भी आपको प्रिय हो वैसा ही हो। हे व्रात्य! जैसी आपकी इच्छा हो वैसा ही हो। हे व्रात्य! जिस प्रकार आपकी अभिलाषा हो वैसा ही हो।

यदेनमाह व्रात्य क्वावात्सीरिति पथ एव तेन देवयानानव रुन्द्धे ॥३॥

भा०—जो अतिथि के प्रति गृहपति कहता है कि हे व्रात्य! आप कहां रहते हैं? इस प्रकार के प्रश्न से देवयान मार्गों को अपने वश करता है।

यदेनमाह व्रात्योदकमित्यप एव तेनाव रुन्द्धे ॥ ४ ॥

भा०—जब अतिथि को गृहपति कहता है कि हे व्रातपते! यह जल है, इससे वह समस्त आप्तजनों, प्राप्तव्य ज्ञानों और कर्मों, बुद्धियों और प्रजाओं को अपने अधीन करता है।

यदेनमाह व्रात्य तर्पयन्त्विति प्राणमेव तेन वर्षीयांसं कुरुते ॥५॥

भा०—जब इस अतिथि को कहा जाता है कि मेरे गृहजन आपको भोजन से तृप्त करें, इस प्रकार भोजन से तृप्त करने के कार्य से वह अपने जीवन को चिर वर्षों तक रहने वाला कर लेता है।

यदेनमाह व्रात्य यथा ते प्रियं तथास्त्विति प्रियमेव तेनाव रुन्द्धे ६

भा०—जब इस अतिथि को कहा जाता है कि जैसा आपको प्रिय हो वैसा ही हो, इससे वह गृहपति अपने प्रिय लगने वाले पदार्थों पर वश करता है।

ऐनं प्रियं गच्छति प्रियः प्रियस्य भवति य एवं वेद ॥ ७॥

भा०—जो इस प्रकार के तत्व को जानता है उसको समस्त प्रिय पदार्थ प्राप्त हो जाते हैं। अपने प्रिय लगने वाले जनको स्वयं भी वह प्रिय हो जाता है।

यदेनमाह व्रात्य यथा ते वशस्तथास्त्विति वशमेव तेनाव रुन्द्धे॥८॥

भा०—जो अतिथि को कहता है कि हे व्रात्य ! जैसी आपकी कामना है वैसा ही हो। इससे कामना योग्य सब पदार्थों को वह अपने वश करता है।

ऐनं वशो गच्छति वशी वशिनां भवति य एवं वेद ॥ ९ ॥

भा०—जो इस तत्व को इस प्रकार साक्षात् कर लेता है समस्त अभिलाषा योग्य पदार्थ उसको प्राप्त होते हैं। और वह वशी लोगों से भी सब से बढ़ कर वशी सब काम्य पदार्थों का स्वामी हो जाता है।

यदेनमाह व्रात्य यथा ते निकामस्तथास्त्विति निकाममेव तेनाव रुन्द्धे ॥ १० ॥ ऐनं निकामो गच्छति निकामे निकामस्य भवति य एवं वेद ॥ ११ ॥

भा०—जो अतिथि को कहा जाता है कि हे व्रात्य ! जो आपकी कामना है वैसा ही हो, उससे वह अपने ही कामना योग्य सब पदार्थों को प्राप्त करता है। जो इस तत्व को जानता है उसको उसका कामना-योग्य पदार्थ प्राप्त होता है और जिसको वह चाहता है वह भी उसकी इच्छा के अधीन हो जाता है।

(१२) अतिथि यज्ञ ।

१ गिरा गायत्री । २ प्राजापत्या बृहती । ३, ४ भुरिक् प्राजापत्याऽनुष्टुप् । [४ साम्नी]। ५, ६, ९ १० आसुरी गायत्री । ८ विराड् गायत्री । ७, ११ त्रिपदे प्राजापत्ये त्रिष्टुभौ । एकादशर्चं द्वादश पर्यायसूक्तम् ।

तद् यस्यैवं विद्वान् व्रात्य उद्धृतेष्वग्निष्वधिश्रितेऽग्निहोत्रेऽतिथिगृहानागच्छेत् ॥ १ ॥ स्वयमेनमभ्युदेत्य ब्रूयाद् व्रात्यातिं सृज होष्यामीति ॥ २२ ॥

भा०—सो जिसके घर पर इस प्रकार ज्ञानवान् 'व्रात्य' आचार्य अग्नियों के उद्धृत होने पर, अर्थात् गार्हपत्याग्नि से उठा कर आहवनीय में आधान किये जाने पर और अग्निहोत्र के प्रारम्भ हो जाने पर आवे तब गृहपति स्वयम् उसके लिये आदर पूर्वक उठ कर उसके समीप आकर कहे हे व्रात्य ! आज्ञा दो मैं अग्निहोत्र करूंगा ।

स चातिसृजेज्जुहुयान्न चातिसृजेन्न जुहुयात् ॥ ३ ॥

भा०—और यदि वह आज्ञा दे तो हवन करे । न आज्ञा करे तो होम न करे ।

स य एवं विदुषा व्रात्येनातिसृष्टो जुहोति ॥ ४ ॥

प्र पितृयाणं पन्थां जानाति प्र देवयानम् ॥ ५ ॥

भा०—जो इस प्रकार से विद्वान् व्रात्य से आज्ञा पाकर अग्निहोत्र करता है वह पितृयाण मार्ग को भली प्रकार जान लेता है और देवयान मार्ग के तत्व को भी जान लेता है ।

न देवेष्वा वृश्चते हुतमस्य भवति ॥ ६ ॥ पर्यस्यास्मिल्लोक आयतनं शिष्यते य एवं विदुषा व्रात्येनातिसृष्टो जुहोति ॥ ७ ॥

भा०—जो इस प्रकार विद्वान् व्रात्य से आज्ञा प्राप्त करके अग्निहोत्र करता है वह विद्वानों के प्रति कोई अपराध नहीं करता । इस लोक में इसका आश्रय या प्रतिष्ठा उसके बाद भी बनी रहती है ।

अथ य एवं विदुषा व्रात्येनानतिसृष्टो जुहोति ॥८॥ न पितृयाणं पन्थां जानाति न देवयानम् ॥ ९ ॥ आ देवेषु वृश्चते अहुतमस्य भवति ॥१०॥ नास्यास्मिंल्लोके आयतनं शिष्यते य एवं विदुषा व्रात्येनानतिसृष्टो जुहोति ॥ ११ ॥

भा०—और जो इस प्रकार के व्रात्य से विना आज्ञा प्राप्त किये ही अग्निहोत्र करता है, वह न पितृयाण के मार्ग के तत्व को जानता है और न देवयान के मार्ग को ही जानता है। वह विद्वानों के प्रति भी अपराध करता है। उसका विना आज्ञा के हवन किया हुआ न हवन किये के समान है। और जो इस प्रकार के विद्वान् से विना आज्ञा प्राप्त किये आहुति करता है उसकी इस लोक में प्रतिष्ठा भी शेष नहीं रहती।

(१३) अतिथि यज्ञ का फल।

अथर्वा ऋषि। अध्यात्मम्। व्रात्यो देवता। १ प्र० साम्नी उष्णिक्। १ द्वि० २ द्वि० प्राजापत्यानुष्टुप्। २—४ प्र० आसुरी गायत्री। २ द्वि० ४ द्वि० साम्नी बृहती। ५ प्र० त्रिपदा निचृद् गायत्री। ५ द्वि० द्विपदा विराड् गायत्री। ६ प्राजापत्या पंक्तिः। ७ आसुरी जगती। ८ सत पंक्तिः। ९ अक्षरपंक्तिः. चतुर्दशर्चं त्रयोदश पर्यायसूक्तम्।

तद् यस्यैवं विद्वान् व्रात्य एकां रात्रिमतिथिर्गृहे वसति ॥ १ ॥ ये पृथिव्यां पुण्या लोकास्तानेव तेनाव रुन्द्धे ॥ २ ॥

भा०—तो जिसके घर में इस प्रकार का विद्वान् व्रात्य एक रात्रि भर अतिथि होकर रह जाता है उससे वह गृहपति जो पृथिवी पर पुण्य लोक हैं उनको प्राप्त करता है, अपने वश करता है।

तद् यस्यैवं विद्वान् व्रात्यो द्वितीयां रात्रिमतिथिर्गृहे वसति ॥३॥ ये ऽन्तरिक्षे पुण्या लोकास्तानेव तेनाव रुन्द्धे ॥ ४ ॥

भा०—तो जिसके घर पर इस प्रकार का विद्वान् व्रात्य अतिथि

होकर दूसरी रात्रि भर भी रह जाता है तो वह गृहपति अन्तरिक्ष में जो पुण्य लोक हैं उनको अपने वश करता है ।

तद् यस्यैवं विद्वान् व्रात्यस्तृतीयां रात्रिमतिथिर्गृहे वसति ॥५॥
ये दिवि पुण्या लोकास्तानेव तेनाव रुन्द्धे ॥ ६ ॥

भा०—तो जिस घर में ऐसा विद्वान् व्रात्य तीसरी रात रह जाता है तो जो द्यौलोक में पुण्य लोक है वह गृहपति उन पर भी वश करता है ।

तद् यस्यैवं विद्वान् व्रात्यश्चतुर्थीं रात्रिमतिथिर्गृहे वसति ॥७॥
ये पुण्यानां पुण्या लोकास्तानेव तेनाव रुन्द्धे ॥ ८ ॥

भा०—जिसके घर पर इस प्रकार का विद्वान् व्रात्य चौथी रात अतिथि होकर रहता है वह जो पुण्य लोकों में से भी उत्तम पुण्य लोक हैं उनको अपने वश करता है ।

तद् यस्यैवं विद्वान् व्रात्योऽपरिमिता रात्रीरतिथिर्गृहे वसति ॥९॥
य एवापरिमिताः पुण्या लोकास्तानेव तेनाव रुन्द्धे ॥ १० ॥

भा०—जिसके घर पर इस प्रकार विद्वान् व्रात्य अनेक रात्रियें निवास करता है तो वह गृहपति जो असंख्य पुण्य लोक हैं उनको भी अपने वश कर लेता है ।

अथ यस्याव्रात्यो व्रात्यब्रुवो नामबिभ्रत्यतिथिर्गृहानागच्छेत् ॥११॥
कर्षेदेनं न चैनं कर्षेत् ॥ १२ ॥

भा०—और जिसके घर पर व्रात्य न होता हुआ भी अपने को व्रात्य बतलाता हुआ केवल नामभर धारण करने वाला अतिथि आ जाय तो फिर क्या उसका अनादर करे । नाहीं उसका भी अनादर करे । परन्तु—

अस्यै देवताया उदकं याचामीमां देवतां वासय इमामिमां देवतां परि वेवेष्मीत्येनं परि वेविष्यात् ॥१३॥ तस्यामेवास्य तद् देवतायां हुतं भवति य एवं वेद ॥ १४ ॥

भा०—इस देवता के निमित्त जल स्वीकार करने की प्रार्थना करता हूं, इस देवता को मैं अपने घर मे निवास देता हूं। इस देवता को मैं भोजन आदि परोसता हूं। इस प्रकार भावना से ही उसकी भी सेवा शुश्रूषा करे और भोजनादि दे। जो इस प्रकार का तत्व जानता है उस ही देवता के निमित्त हुवा इस गृहस्थ का वह त्याग उसे प्राप्त हो जाता है।

(१४) व्रात्य अन्नाद के नाना रूप और नाना ऐश्वर्य भोग।

अथर्वा ऋषिः। अध्यात्मम्। व्रात्यो देवता। १ प्र० त्रिपदाऽनुष्टुप्। १—१२ द्वि० त्रिपदा आसुरी गायत्री। [६—६ द्वि० भुरिक् प्राजापत्यानुष्टुप्]। २ प्र०, ५ प्र० परोष्णिक्। ३ प्र० अनुष्टुप्। ४ प्र० प्रस्तारपंक्तिः। ६ प्र० स्वराड् गायत्री। ७ प्र०, ८ प्र० आर्ची पंक्तिः। १० प्र० भुरिङ् नाम्नी गायत्री। ११ प्र० प्राजापत्या त्रिष्टुप्। चतुर्विंशत्यृच चतुर्दश पर्यायसूक्तम्।

स यत् प्राचीं दिशमनु व्यचलन्मारुतं शर्धो भूत्वानुव्यचलन्मनोऽन्नादं कृत्वा ॥ १ ॥ मनसान्नादेनान्नमत्ति य एवं वेद ॥ २ ॥

भा०—वह व्रात्य जब प्राची दिशा की ओर चला तो वह मन को अन्न का भोक्ता बनाकर, मरुत् सम्बन्धी बल स्वरूप होकर, चला। जो इस प्रकार का तत्व साक्षात् कर लेता है वह मनोरूप अन्न के भोजन-सामर्थ्य से पृथिवी के अन्नादि पदार्थ को भोग करता है।

स यद् दक्षिणां दिशमनु व्यचलदिन्द्रो भूत्वानुव्यचलद् बलमन्नादं कृत्वा ॥ ३ ॥ बलेनान्नादेनान्नमत्ति य एवं वेद ॥ ४ ॥

भा०—वह व्रात्य जब दक्षिण दिशा की ओर चला तो बल को अन्नका भोक्ता बनाकर इन्द्र, ऐश्वर्यवान्, सम्राट् होकर चला। जो व्रात्य के इस प्रकार के स्वरूप को जानता है वह बलरूप अन्न का भोक्ता होकर भोग करता है।

स यत् प्रतीचीं दिशमनु व्यचलद् वरुणो राजा भूत्वानुव्यचलदपोऽन्नादीः कृत्वा ॥५॥ अद्भिरन्नादीभिरन्नमत्ति य एवं वेद ॥६॥

भा०—वह व्रात्य जब पश्चिम दिशा की ओर चला। वह स्वयं सबके वरण करने योग्य राजा होकर समस्त आप्त प्रजाओं को राष्ट्र के भोग्य पदार्थों का भोक्ता बनाकर चला। जो इस प्रकार के व्रात्य के स्वरूप को जानता है वह स्वयं भी अन्न आदि को भोग करने वाली आप्त प्रजाओं द्वारा स्वयं अन्न का भोग करता है।

स यदुदीचीं दिशमनु व्यचलत् सोमो राजा भूत्वानुव्यचलत् सप्तर्षिभिर्हुत आहुतिमन्नादीं कृत्वा ॥७॥ आहुत्यान्नाद्यान्नमत्ति य एवं वेद ॥ ८ ॥

भा०—वह जब उदीची दिशा को चला तो सोम राजा होकर आहुति को पृथिवी के समस्त भोग्य पदार्थों का भोग करने वाली बनाकर स्वयं सप्तर्षियों द्वारा प्रदीप्त होकर चला। आहुति रूप अन्न की भोग करने वाली शक्ति से वह अन्न का भोग करता है जो व्रात्य के इस स्वरूप का साक्षात् करता है।

स यद् ध्रुवां दिशमनु व्यचलद् विष्णुर्भूत्वानुव्यचलद् विराजमन्नादीं कृत्वा ॥९॥ विराजान्नाद्यान्नमत्ति य एवं वेद ॥१०॥

भा०—वह व्रात्य जब ध्रुवा दिशा की ओर चला, स्वयं विष्णु होकर विराट् पृथ्वी को ही अन्न का भोक्ता बना कर चला। जो इस प्रकार व्रात्य के स्वरूप को जानता है वह विराड् पृथिवी रूप अन्न की भोगने वाली शक्ति से अन्न का भोग करता है।

स यत् पशूननु व्यचलद् रुद्रो भूत्वानुव्यचलदोषधीरन्नादीः कृत्वा ॥११॥ ओषधीभिरन्नादीभिरन्नमत्ति य एवं वेद ॥१२॥

भा०—वह व्रात्य जब पशुओं की ओर चला तब वह स्वयं 'रुद्र' होकर और ओषधियों को अन्न भोगने वाली बनाकर चला जो व्रात्य

जो इस प्रकार के स्वरूप को जान लेता है वह ओषधिरूप अन्न की भोक्ती शक्तियों से अन्न का भोग करता है।

स यत् पितॄननु व्यचलद् यमो राजा भूत्वानुव्यचलत् स्वधाकार-मन्नादं कृत्वा ॥१३॥ स्वधाकारेणान्नादेनान्नमत्ति य एवं वेद ॥१४॥

भा०—वह जब पालकों के प्रति चला तो वह स्वयं यम राजा होकर स्वधाकार को अन्न का भोक्ता बना कर चला। जो व्रात्य प्रजापति के इस स्वरूप को जान लेता है वह स्वधाकार रूप अन्नाद से अन्न का भोग करता है।

स यन्मनुष्याँ३ननु व्यचलदग्निर्भूत्वानुव्यऽचलत् स्वाहाकारमन्नादं कृत्वा ॥ १५ ॥ स्वाहाकारेणान्नादेनान्नमत्ति य एवं वेद ॥ १६ ॥

भा०—वह व्रात्य प्रजापति जब मनुष्यो के प्रति चला तो वह स्वयं अग्नि होकर स्वाहाकार को अन्नाद बना कर चला। स्वधाकार रूप अन्नाद से ही वह अन्न भोग करता है जो व्रात्य के इस स्वरूप को जानता है।

स यदूर्ध्वां दिशमनु व्यचलद् बृहस्पतिर्भूत्वानुव्यचलद् वषट्का-रमन्नादं कृत्वा ॥१७॥ वषट्कारेणान्नादेनान्नमत्ति य एवं वेद ॥१८॥

भा०—वह जब ऊर्ध्वदिशा को चला तब वह स्वयं बृहस्पति होकर वषट्कार को अन्नाद बनाकर चला। जो इस प्रकार के व्रात्य के स्वरूप को जानता है वह वषट्कार रूप अन्नाद से स्वयं अन्न को भोग करता है।

स यद् देवाननुव्यचलदीशानो भूत्वानुव्यचलन्मन्युमन्नादं कृत्वा १९ मन्युनान्नादेनान्नमत्ति य एवं वेद ॥ २० ॥

भा०—वह जब देवों की ओर चला, तब वह स्वयं 'ईशान' होकर और मन्यु को 'अन्नाद' बनाकर चला। जो व्रात्य के इस स्वरूप को जानता है वह मन्यु रूप अन्नाद से अन्न का भोग करता है।

स यत् प्रजा अनुव्यचलत् प्रजापतिर्भूत्वानुव्यचलत् प्राणमन्नादं कृत्वा ॥२१॥ प्राणेनान्नादेनान्नमत्ति य एवं वेद ॥ २२ ॥

भा०—वह जब प्रजाओं की ओर चला तब वह स्वयं प्रजापति होकर प्राण को अन्नाद बनाकर चला। जो इस प्रकार के व्रात्य के स्वरूप को जानता है वह प्राणरूप अन्नाद से अन्न का भोग करता है।

स यत् सर्वानन्तर्देशाननु व्यचलत् परमेष्ठी भूत्वानुव्यचलद् ब्रह्मान्नादं कृत्वा ॥२३॥ ब्रह्मणान्नादेनान्नमत्ति य एवं वेद ॥२४॥

भा०—वह जो सब उपदिशाओं के बीच के समस्त देशों में चला तो स्वयं परमेष्ठी होकर ब्रह्म को अन्नाद बनाकर चला। जो इस प्रकार व्रात्य प्रजापति के स्वरूप को जानता है वह ब्रह्म रूप अन्नाद से अन्न का भोग करता है।

(१५) व्रात्य के सात प्राणों का निरूपण।

अथर्वा ऋषिः। अध्यात्मम्। व्रात्यो देवता। १ दैवी पंक्तिः। २ आसुरी बृहती। ३, ४, ७, ८ प्राजापत्यानुष्टुप् [४, ७, ८ भुरिक्]। ५, ६ द्विपदा साम्नी बृहती। ९ विराड् गायत्री। नवर्चं पञ्चदशं पर्यायसूक्तम्।

तस्य व्रात्यस्य ॥१॥ सप्त प्राणाः सप्तापानाः सप्त व्यानाः ॥ २ ॥

भा०—उस व्रात्य के सात प्राण, सात अपान और सात व्यान हैं।

तस्य व्रात्यस्य। योऽस्य प्रथमः प्राण ऊर्ध्वो नामायं सो अग्निः ॥३॥

भा०—जिस प्रकार इस जीव का प्रथम अर्थात् मुख्य प्राण 'ऊर्ध्व' नामक है, उसी प्रकार उस व्रात्य का प्रथम प्राण यह 'अग्नि' है।

तस्य व्रात्यस्य। योऽस्य द्वितीयः प्राणः प्रौढो नामासौ स आदित्यः ॥४॥

भा०—जिस प्रकार इस जीव का द्वितीय प्राण 'प्रौढ' नाम का है उसी प्रकार व्रात्य का प्रौढ प्राण वह आदित्य है।

तस्य व्रात्यस्य योऽस्य तृतीयः प्राणोऽभ्यूढो नामासौ स चन्द्रमाः ॥५॥

भा०—जिस प्रकार इस जीव का तीसरा प्राण अभ्यूढ़ नाम का है उसी प्रकार उस व्रात्य का 'अभ्यूढ़' नामक प्राण यह चन्द्रमा है।

तस्य व्रात्यस्य। योऽस्य चतुर्थः प्राणो विभूर्नामायं स पवमानः ॥६

भा०—जिस प्रकार इस जीव का चौथा प्राण 'विभू' नाम का है उसी प्रकार उस व्रात्य का यह वायु है।

तस्य व्रात्यस्य। योऽस्य पञ्चमः प्राणो योनिर्नाम ता इमा आपः॥७

भा०—जिस प्रकार इस जीव का पांचवां प्राण 'योनि' नामक है उसी प्रकार उस व्रात्य का वह योनि नामक प्राण ये जल हैं।

तस्य व्रात्यस्य। योऽस्य षष्ठः प्राणः प्रियो नाम त इमे पशवः॥८॥

भा०—इसी प्रकार इस जीव का छठा प्राण प्रिय नामक है उसी प्रकार उस व्रात्य के 'प्रिय' नाम प्राण पशु हैं।

तस्य व्रात्यस्य। योऽस्य सप्तमः प्राणोऽपरिमितो नाम ता इमाः प्रजाः ॥ ९ ॥

भा०—जिस प्रकार इस जीव का सातवां प्राण अपरिमित नामक है, उसी प्रकार उस व्रात्य का सातवां अपरिमित नामक प्राण ये प्रजाएं हैं।

(१६) व्रात्य के सात अपानों का निरूपण।

१-३ साम्न्युष्णिहौ। २, ४, ५ प्राजापत्योष्णिहः। ६ याजुषीत्रिष्टुप्। ७ आसुरी गायत्री। सप्तर्चं षोडशं पर्यायसूक्तम्।

तस्य व्रात्यस्य। योऽस्य प्रथमोऽपानः सा पौर्णमासी ॥१॥

भा०—जिस प्रकार इस जीव का प्रथम अपान है वैसा ही उस व्रात्य का प्रथम अपान यह पौर्णमासी है।

तस्य व्रात्यस्य। योऽस्य द्वितीयोऽपानः साष्टका ॥ २ ॥

भा०—जिस प्रकार इस जीव का द्वितीय अपान है वैसे ही उस व्रात्य प्रजापति का द्वितीय अपान यह अष्टका है।

तस्य॒ व्रात्य॑स्य । योऽस्य तृ॒तीयो॑ऽपा॒नः सामा॑वा॒स्या ॥ ३ ॥

भा०—जिस प्रकार इस जीव का तीसरा अपान है, वैसे ही उस व्रात्य का तीसरा अपान वह अमावास्या है ।

तस्य॒ व्रात्य॑स्य । योऽस्य च॒तु॒र्थो॑ऽपा॒नः सा श्र॒द्धा ॥ ४ ॥

भा०—जिस प्रकार इस जीव का चतुर्थ अपान है, वैसे ही उस व्रात्य का चतुर्थ अपान वह श्रद्धा है ।

तस्य॒ व्रात्य॑स्य योऽस्य प॒ञ्च॒मोऽपा॒नः सा दी॒क्षा ॥ ५ ॥

भा०—जिस प्रकार इस जीव का पांचवां अपान है, वैसे ही उस व्रात्य का पांचवा अपान वह दीक्षा है ।

तस्य॒ व्रात्य॑स्य । यो॑ऽस्य ष॒ष्ठोऽपा॒नः स य॒ज्ञः ॥ ६ ॥

भा०—जिस प्रकार इस जीव का छठा अपान है वैसे ही उस व्रात्य का षष्ठ अपान वह यज्ञ है ।

तस्य॒ व्रात्य॑स्य । योऽस्य स॒प्त॒मोऽव्या॒नस्ता इमा दक्षि॑णाः ॥७॥

भा०—जिस प्रकार इस जीव का सातवां अपान है, उसी प्रकार उस व्रात्य का सातवा अपान ये दक्षिणाएं हैं ।

(१७) व्रात्य प्रजापति के सात व्यान ।

अथर्वा ऋषिः । अध्यात्म व्रात्यो देवता । १, ५ प्राजापत्योष्णिहौ । २ आसुर्यनुष्टुभौ । ३ याजुर्षी पङ्क्तिः । ४ साम्न्युष्णिक् । ६ याजुषीत्रिष्टुप् । ८ त्रिपदा प्रतिष्ठार्ची पङ्क्तिः । ६ द्विपदा साम्नीत्रिष्टुप् । १० साम्न्यनुष्टुप् । दशर्चं सप्तदश सूक्तम् ।

तस्य॒ व्रात्य॑स्य । योऽस्य प्र॒थ॒मो व्या॒नः सेयं भूमिः॑ ॥ १ ॥

भा०—जिस प्रकार इस जीव का प्रथम व्यान है, वैसे ही उस व्रात्य का प्रथम व्यान यह भूमि है ।

तस्य॒ व्रात्य॑स्य । योऽस्य द्वि॒तीयो॑ व्या॒नस्तद॒न्तरि॑क्षम् ॥२॥

भा०—जिस प्रकार इस जीव का दूसरा व्यान है, वैसे ही उस व्रात्य का दूसरा व्यान वह अन्तरिक्ष है ।

तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य तृतीयो व्यानः सा द्यौः ॥ ३ ॥

भा०—जिस प्रकार इस जीव का तृतीय व्यान है, वैसे ही उस व्रात्य का तृतीय व्यान 'द्यौ' है ।

तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य चतुर्थो व्यानस्तानि नक्षत्राणि ॥४॥

भा०—जिस प्रकार इस जीव का चतुर्थ व्यान है, वैसे ही उस व्रात्य का चतुर्थ व्यान वे नक्षत्र हैं ।

तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य पञ्चमो व्यानस्त ऋतवः ॥ ५ ॥

भा०—जिस प्रकार इस जीव का पांचवां व्यान है, वैसे ही उस व्रात्य का पाचवां व्यान वे ऋतु हैं ।

तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य षष्ठो व्यानस्त आर्तवा. ॥ ६ ॥

भा०—जिस प्रकार इस जीव का छठा व्यान है वैसे ही उस व्रात्य का छठा व्यान वे ऋतुओं के समूह है ।

तस्य व्रात्यस्य । योऽस्य सप्तमो व्यानः स संवत्सरः ॥७॥

भा०—भा०—जिस प्रकार इस जीव का सातवां व्यान है, वैसे ही उस व्रात्य का सातवां व्यान वह संवत्सर है ।

तस्य व्रात्यस्य । समानमर्थं परि यन्ति देवाः संवत्सरं वा एतदृतवोऽनु परियन्ति व्रात्यं च ॥ ८ ॥

भा०—जिस प्रकार संवत्सर के आश्रय में ऋतुगण रहते हैं, इसी प्रकार उस व्रात्य के विषय में भी जानना चाहिये । समस्त देव इसी एक पदार्थ अर्थात् व्रात्य का आश्रय लेकर रहते हैं ।

तस्य व्रात्यस्य । यदादित्यमभिसंविशन्त्यमावास्यां चैव तत्पौर्णमासीं च ॥ ९ ॥

भा०—जिस प्रकार किरणें सूर्य में प्रवेश करती हैं और जिस प्रकार अमावास्या में सब चन्द्र कलाएं लुप्त हो जाती हैं या सूर्य और चन्द्र एक साथ रहते हैं, और जिस प्रकार पौर्णमासी में समस्त चन्द्रकला

एकत्र हो जाती हैं, उसी प्रकार ये समस्त देवगण अर्थात् मुमुक्षु ज्ञानी लोग उस व्रात्य प्रजापति के आदित्य के समान प्रकाश ज्ञानस्वरूप में प्रवेश करते हैं।

तस्य॒ व्रात्य॑स्य। एकं॒ तदे॑षाममृत॒त्वमित्याहु॑तिरे॒व ॥ १० ॥

भा०—उस व्रात्य का वह अचिन्त्य परम स्वरूप एक है, वही इन देवों का मोक्ष स्वरूप है, इस प्रकार उन जीवों और देवों का उसमें लीन हो जाना भी आहुति ही है। वही उनका परम ब्रह्म में महान् आत्मसमर्पण है।

(१८) व्रात्य के अन्य अङ्ग प्रत्यङ्ग ।

१ दैवी पङ्क्तिः । २, ३ आर्ची बृहत्यौ । ४ आर्ची अनुष्टुप् । ५ साम्न्युष्णिक् ।
पञ्चर्चं अष्टादश पर्यायसूक्तम् ।

तस्य॒ व्रात्य॑स्य ॥१॥ यद॑स्य॒ दक्षि॑णमक्ष्यसौ स आ॑दि॒त्यो यद॑स्य स॒व्यमक्ष्य॒सौ स च॒न्द्रमाः॑ ॥ २ ॥

भा०—जिस प्रकार इस जीव की दाहिनी आंख है उसी प्रकार उस व्रात्य प्रजापति की दाहिनी आंख वह आदित्य है। जो इस जीवकी बायीं आंख है उसी प्रकार उस व्रात्य की बायी आख वह चन्द्रमा है।

यो॑ऽस्य॒ दक्षि॑णः॒ कर्णो॒ऽयं सो अ॒ग्निर्यो॑ऽस्य स॒व्यः कर्णो॒ऽयं स पव॑मानः ३

भा०—जो जीव का यह दायां कान है उसी प्रकार इस व्रात्य प्रजापति का दायां कान यह अग्नि है। जो इस जीवका बायां कान है वैसे ही उस व्रात्य का बायां कान वह वायु है।

अ॒हो॒रा॒त्रे नासि॑के॒ दिति॒श्चादि॑तिश्च शीर्षकपा॒ले सं॑वत्स॒रः शिरः॑ ॥४

भा०—उस व्रात्य के दिन और रात दोनों नासिकाओं के समान हैं। द्यौ और पृथ्वी या उत्तरायण और दक्षिणायन ये दोनों शिर के दो कपाल हैं और संवत्सर शिर है।

अतो प्रत्यङ् व्रात्यो राज्या प्राङ् नमो व्रात्याय ॥ ५ ॥

भा०—जिस प्रकार सूर्य एक दिन में चलकर पूर्व दिशा से पश्चिम में अस्त हो जाता है उसी प्रकार वह व्रात्य प्रजापति अपने अगम्य स्वरूप से प्रत्यङ् आत्मा में अदृश्य होकर रहता है। और जिस प्रकार रात्रि काल के पश्चात् सूर्य प्राची दिशा में आ जाता है उसी प्रकार रमणकारिणी शक्ति से वह उसके सन्मुख आ जाता है। ऐसे सब व्रतों अर्थात् कर्मों के स्वामी प्रजापति को हम सदा नमस्कार करते हैं।

इति द्वितीयोऽनुवाकः।

[तत्रैकादश पर्यायाः। अवसानर्चोऽष्टोत्तरशतम्]

इति पञ्चदशं काण्डं समाप्तम्।

अनुवाकद्वय पञ्चदशेऽष्टादशसूक्तकम्।

ऋचस्तत्रैव गण्यन्ते विंशतिश्च शत-द्वयम्॥

इति प्रतिष्ठितविद्यालङ्कार-मीमांसातीर्थविरुदोपशोभित-श्रीमत्पण्डितजयदेवशर्मणा विरचितेऽथर्वणो ब्रह्मवेदस्यालोकभाष्ये पञ्चदशं काण्डं समाप्तम्।

॥ ओ३म् ॥

अथ षोडशं काण्डम् ।

[१ (१)] पापशोधन, दुःखमोचन।

अथर्वा ऋषिः । प्रजापतिर्देवता । १, ३ साम्नी बृहत्यौ । २, १० याजुषीत्रिष्टुभौ । ४ आसुरी गायत्री । ५, ८ साम्नीपङ्क्त्यौ । (५ द्विपदा) ६ साम्नी अनुष्टुप् । ७ निचृद् विराट् गायत्री । ९ आसुरी पङ्क्ति । ११ साम्नी उष्णिक् । १२, १३ आर्च्यनुष्टुभौ त्रयोदशर्चं प्रथम पर्यायसूक्तम् ।

अतिसृष्टो अपां वृषभोऽतिसृष्टा अग्नयो दिव्याः ॥ १ ॥

भा०—जलों का वर्षण करने वाला सूर्य अच्छे प्रकार से रचा गया है । इसी प्रकार द्यौलोक में प्रकाशमान सहस्रों सूर्य और विद्युत् आदि रचे गये हैं ।

रुजन् परिरुजन् मृणन् प्रमृणन् ॥ २ ॥

म्रोको मनोहा खनो निर्दाह आत्मदूषिस्तनूदूषिः ॥ ३ ॥

इदं तमति सृजामि तं माभ्यवनिक्षि ॥ ४ ॥

भा०—देहको तोड़ने वाला, सब प्रकार से देहको फोड़ता हुआ, पीड़ित करता हुआ, मारता हुआ, काटता हुआ रोग भी है । वह अति संतापकारी, मनका नाशक, शरीर के रस धातुओं को खोद डालने वाला, अति अधिक दाहकारी, अपने चित्त में विकार उत्पन्न करने वाला और शरीर में दोष उत्पन्न करने वाला ये सब प्रकार के भी संताप ही हैं। इस उक्त प्रकार के सब संतापक पदार्थों को इस रीति से अपने से दूर करता हूं कि मैं उस संतापकारी पदार्थ को कभी न प्राप्त करूं ।

तेन तमभ्यतिसृजामो योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ॥ ५ ॥

भा०—उस पूर्वोक्त संतापदायक पदार्थ से उस पुरुष के प्रति उसका प्रयोग करे जो हमें द्वेष करता है और जिससे हम द्वेष करते हैं।

अयाम॒ग्र॑मि॒स स॑मु॒द्रं व॒ोऽभ्यव॑सृजामि ॥ ६ ॥

भा०—हे अग्ने ! तू जलों का अग्र, उनसे प्रथम उत्पन्न, उनका उपादान कारण है। हे अग्नियो ! रोगकारक संतापक पदार्थो ! तुमको मैं समुद्र के प्रति बहा देता हूं।

यो॒ऽ॒प्स्व१॒ग्निरति॒ तं सृ॑जामि म्रो॒कं ख॒निं त॑नू॒दूषि॑म् ॥ ७ ॥

भा०—जो जलों में अग्नि के समान संतापक पदार्थ है उसको दूर करता हूं। और प्रजाओं के बीच में विद्यमान चोर, सेंध खोदने और शरीर के नाश करने वाले संतापक-पुरुष को भी दूर करता हूं।

यो व॑ आपो॒ऽग्निरा॑वि॒वेश॒ स ए॒ष यद् वो॑ घो॒रं तदे॒तत् ॥ ८ ॥

भा०—जलों के भीतर जिस प्रकार अग्नि प्रविष्ट होकर उसे भी तप्त करता और उसको भाप बनाकर नष्ट कर देता है उसी प्रकार जो संतापकारी पुरुष तुम लोगों मे आ घुसे। यह वह है अर्थात् वह उसी जलों में प्रविष्ट अग्नि के समान है। जो पदार्थ तुम्हारे लिये अति घोर कष्टदायी है वही यह अग्नि है।

इन्द्र॑स्य व इन्द्रि॒येणा॒भि षि॑ञ्चेत् ॥ ९ ॥

भा०—हे पुरुषो ! आप लोगो मे से ऐश्वर्यवान् पुरुष का ही राजा के ऐश्वर्य, मान, प्रतिष्ठा से अभिषेक किया जाना चाहिये।

अ॒रि॒प्रा आपो॒ अप॑ रि॒प्रम॒स्मत् ॥ १० ॥

भा०—स्वच्छ जल जिस प्रकार मल रहित होते हैं उसी प्रकार आप्त पुरुष भी मल और पाप से रहित होते हैं। वे हम से भी पाप और मल दूर करें।

प्रास्मदेनो॑ वहन्तु॒ प्र दु॒ष्वप्न्यं॑ वहन्तु ॥ ११ ॥

भा०—वे आप्तपुरुष जलों के समान ही हम से पाप मल को दूर करते हैं। वे बुरे स्वप्नों के कारण को भी दूर करें।

शिवेन॑ मा चक्षु॑षा पश्यतापः शिवया॑ तन्वोप॑ स्पृशत त्वचं॑ मे ॥१२

भा०—हे जलों के समान स्वच्छ हृदय के आप्त पुरुषो ! आप लोग मुझे कल्याणकारी चक्षु से देखो। और कल्याणकारी शरीर से मेरी त्वचा को स्पर्श करो।

शिवान॒ग्नीन॑प्सुषदो॑ हवामहे॒ मयि॑ क्षत्रं वर्च॒ आ ध॑त्त देवीः ॥१३॥

भा०—हम लोग कल्याणकारी आप्त प्रजाओं के ऊपर शासक रूप में विराजमान, कल्याणकारी, अग्नि के समान प्रकाशमान अग्रणी नेताओं को आदर सत्कार से बुलाते हैं। हे दिव्य गुण वाले प्रजागणो ! आप लोग क्षात्र धर्मयुक्त बल और तेज धारण करो।

(२) शक्तिउपार्जन।

अथर्वा ऋषिः। वाग्देवता। १ आसुरी अनुष्टुप्। २ आसुरी उष्णिक्। ३ साम्नी उष्णिक्। ४ त्रिपदा साम्नी बृहती। ५ आर्ची अनुष्टुप्। निचृद् विराड गायत्री। द्वितीयं पर्यायसूक्तम्।

निर्दु॑रर्म॒ण्य ऊ॒र्जा मधु॑मती वाक् ॥ १ ॥

भा०—दुष्ट भोजन और दुष्ट प्रवृत्ति दूर हो। क्योंकि उत्तम रसवान् अन्न से वाणी भी मधु से सिक्त, ज्ञान से युक्त, मधुर होती है।

मधु॑मती स्थ मधु॑मतीं वाच॑मुदेयम् ॥ २ ॥

भा०—हे आप्त पुरुषो ! आप लोग मधु अर्थात् ज्ञान से सम्पन्न हो, मैं भी मधुर, ज्ञान से पूर्ण वाणी बोलूं।

उप॑हूतो मे गो॒पा उप॑हूतो गोपी॒थः ॥ ३ ॥

भा०—अपने रक्षक परमात्मा को आदर पूर्वक स्मरण किया जाय। और वाणी का पान और पालन करनेहारे ईश्वर को आदर से बुलाया जाय।

सु॒श्रुतौ॒ कर्णौ॑ भद्र॒श्रुतौ॒ कर्णौ॑ भ॒द्रं श्लोकं॑ श्रूयासम् ॥ ४ ॥

भा०—दोनों कान उत्तम सुनने वाले हों, दोनों कान भद्र, सुख-

कारी, कल्याणजनक शब्द का श्रवण करें। भद्र, सुखकारी, कल्याणजनक स्तुति को मैं सुना करूं।

सुश्रुतिश्च मोपश्रुतिश्च मा हासिष्टां सौपर्णं चक्षुरजस्रं ज्योतिः ॥५

भा०—उत्तम श्रवणशक्ति और सूक्ष्म श्रवणशक्ति दोनों मुझे कभी न छोड़ें। और मेरी आंख गरुड़ या बाज़ के समान हो और प्रकाश निरन्तर रहे। वे कभी मुझ से दूर न हों।

ऋषीणां प्रस्तरोसि नमोस्तु दैवाय प्रस्तराय ॥ ६ ॥

भा०—हे परमात्मन्! आप मन्त्रद्रष्टा विद्वानो के सर्वत्र विस्तार करने हारे हैं, उस देवस्वरूप समस्त जगत् के विस्तार करने हारे परमेश्वर को नमस्कार है।

(३) ऐश्वर्य-उपार्जन।

ब्रह्मा ऋषिः। आदित्यो देवता। १ आसुरी गायत्री। २, ३ आर्च्यनुष्टुभौ। ५ प्राजापत्या त्रिष्टुप्। ५ साम्नी उष्णिक्। ६ द्विपदा साम्नी त्रिष्टुप्। षडृचं तृतीयं पर्यायसूक्तम्।

मूर्धाहं रयीणां मूर्धा समानानां भूयासम् ॥ १ ॥

भा०—समस्त ऐश्वर्यों और बलों का मैं शिरोमणि बनूं। और अपने समान बल ऐश्वर्य वालों में भी सबका शिरोमणि हो जाऊं।

रुजश्च मा वेनश्च मा हासिष्टां मूर्धा च मा विधर्मा च मा हासिष्टाम् ॥ २ ॥

भा०—नाना प्रकार की कान्तियां और तेज या शत्रुओं का हिंसाकारी बल और प्रकाश ये दोनों कभी न छोड़ें। फिर और नाना प्रकार का धारक बल भी मुझे कभी परित्याग न करें।

उर्वश्च मा चमसश्च मा हासिष्टां धर्ता च मा धरुणश्च मा हासिष्टाम् ॥ ३ ॥

भा०—भोजन पकाने की हांडी और चमचा वा पात्र दोनों मुझे परित्याग न करें। धारणकर्त्ता और आश्रय ये दोनों भी मुझे न त्यागें।

विमोकश्च मार्द्रपविश्च मा हासिष्टामार्द्रदानुश्च मा मातरिश्वा च मा हासिष्टाम् ॥ ४ ॥

भा०—जल-धाराएं बरसाने वाला मेघ और जलप्रद बादल की वाणी, गर्जनशील विद्युत् मुझे परित्याग न करें। जलों को देने वाला मेघ और अन्तरिक्षगामी वायु भी मुझे न छोड़ें।

बृहस्पतिर्म आत्मा नृमणा नाम हृद्यः ॥ ५ ॥

भा०—वाणी का पालक मेरा आत्मा समस्त मनुष्यों वा प्राणों के भीतर मनन करने वाला और हृदय में विराजमान रहता है।

असंतापं मे हृदयमुर्वी गव्यूतिः समुद्रो अस्मि विधर्मणा ॥ ६ ॥

भा०—मेरा हृदय संताप रहित हो। मेरी वाणी की गति या इन्द्रियों की पहुंच विशाल हो। और मैं विशेष धारण सामर्थ्य समुद्र के समान विशाल, सर्व गुणरत्नों का आश्रय होऊं।

(४) रक्षा, शक्ति और सुख की प्रार्थना।

ब्रह्मा ऋषिः। आदित्यो देवता। १, ३ साम्न्यु ष्टुभौ। २ साम्न्युष्णिक्। ४ त्रिपदाऽनुष्टुप्। ५ आसुरी गायत्री। ६ आर्च्युष्णिक्। ७ त्रिपदा। विराडगर्भाऽनुष्टुप्। सप्तर्चं चतुर्थं पर्यायसूक्तम्।

नाभिरहं रयीणां नाभिः समानानां भूयासम् ॥ १ ॥

भा०—मैं समस्त ऐश्वर्यों की नाभि, बन्धन स्थान, केन्द्र हो जाऊं। अपने समान के पुरुषों में भी मैं सबको बांधने हारा केन्द्रवत् होकर रहूं।

स्वासदसि सूषा अमृतो मर्त्येष्वा ॥ २ ॥

भा०—हे आत्मन्! तू उत्तम स्थिति वाला और प्रभात के समान

उत्तम प्रकाशवान् या पापों का दण्ड करने वाला है, वह ही मरणधर्मा मनुष्यों में नित्य है ।

मा मां प्राणो हासीन्मो अपानोऽवहाय परा गात ॥ ३ ॥

भा०—मुझको प्राण त्याग न करे । अपान भी मुझे छोड़कर परे न जाय ।

सूर्यो माह्नः पात्वग्निः पृथिव्या वायुरन्तरिक्षाद् यमो मनुष्येभ्यः सरस्वती पार्थिवेभ्यः ॥ ४ ॥

भा०—सूर्य मुझे दिन से रक्षा करे । अग्नि पृथिवी से मेरी रक्षा करे । वायु अन्तरिक्ष से आने वाले उपद्रवों से मेरी रक्षा करे । नियन्ता राजा मेरी मनुष्यों से रक्षा करे । ज्ञान और वाणी मुझे पृथिवी के स्वामी लोगों से सुरक्षित रक्खे ।

प्राणापानौ मा मा हासिष्टं मा जने प्र मेषि ॥ ५ ॥

भा०—प्राण और अपान दोनों मुझे त्याग न करें । मैं लोगों के बीच रहता हुआ कभी न मरूं ।

स्वस्त्य१द्योषसो दोषसश्च सर्व आपः सर्वगणो अशीय ॥ ६ ॥

भा०—हे आप्त पुरुषो ! आज कल्याण हो । दिनों और रातों में मैं सर्वाङ्गपूर्ण होकर और अपने समस्त भृत्य और बन्धुजनों सहित सुख भोग करूं ।

शक्वरी स्थ पशवो मोप स्थेषुर्मित्रावरुणौ मे प्राणापानावग्निर्मे दक्षं दधातु ॥ ७ ॥

भा०—हे आप्त पुरुषो ! आप लोग शक्ति से सम्पन्न होओ । पशु लोग मेरे पास आवें । मित्र और वरुण तथा प्राण और अपान मुझे बल प्रदान करें । जाठर अग्नि मुझे बल प्रदान करें ।

इति प्रथमोऽनुवाकः ।

[तत्र सप्त पर्यायाः । द्वादशाधिकशतमन्त्राः]

भा०—भोजन पकाने की हांडी और चमचा वा पात्र दोनों मुझे परित्याग न करें। धारणकर्त्ता और आश्रय ये दोनों भी मुझे न त्यागें।

विमोकश्च मार्द्रपविश्च मा हासिष्टामार्द्रदानुश्च मा मातरिश्वा च मा हासिष्टाम् ॥ ४ ॥

भा०—जल-धाराएं बरसाने वाला मेघ और जलप्रद बादल की वाणी, गर्जनशील विद्युत् मुझे परित्याग न करें। जलों को देने वाला मेघ और अन्तरिक्षगामी वायु भी मुझे न छोड़ें।

बृहस्पतिर्म आत्मा नृमणा नाम हृद्यः ॥ ५ ॥

भा०—वाणी का पालक मेरा आत्मा समस्त मनुष्यों वा प्राणों के भीतर मनन करने वाला और हृदय में विराजमान रहता है।

असंतापं मे हृदयमुर्वी गव्यूतिः समुद्रो अस्मि विधर्मणा ॥ ६ ॥

भा०—मेरा हृदय संताप रहित हो। मेरी वाणी की गति या इन्द्रियों की पहुंच विशाल हो। और मैं विशेष धारण सामर्थ्य समुद्र के समान विशाल, सर्व गुणरत्नों का आश्रय होऊं।

(४) रक्षा, शक्ति और सुख की प्रार्थना।

ब्रह्मा ऋषिः। आदित्यो देवता। १, ३ साम्न्यु ष्णिहौ। २ साम्न्युष्णिक्। ४ त्रिपदा-ऽनुष्टुप्। ५ आसुरी गायत्री। ६ आर्च्युष्णिक्। ७ त्रिपदा विराडगर्भाऽनुष्टुप्।

सप्तर्चं चतुर्थं पर्यायसूक्तम्।

नाभिरहं रयीणां नाभिः समानानां भूयासम् ॥ १ ॥

भा०—मैं समस्त ऐश्वर्यों की नाभि, बन्धन स्थान, केन्द्र हो जाऊं। अपने समान के पुरुषों में भी मैं सबको बांधने हारा केन्द्रवत् होकर रहूं।

स्वासदसि सूषा अमृतो मर्त्येष्वा ॥ २ ॥

भा०—हे आत्मन्! तू उत्तम स्थिति वाला और प्रभात के समान

उत्तम प्रकाशवान् वा पापों का दण्ड करने वाला है, वह ही मरणधर्मा मनुष्यों में नित्य है।

मा मां प्राणो हासीन्मो अपानोऽवहाय परा गात ॥ ३ ॥

भा०—मुझको प्राण त्याग न करे। अपान भी मुझे छोड़कर परे न जाय।

सूर्यो माह्नः पात्वग्निः पृथिव्या वायुरन्तरिक्षाद् यमो मनुष्येभ्यः सरस्वती पार्थिवेभ्यः ॥ ४ ॥

भा०—सूर्य मुझे दिन से रक्षा करे। अग्नि पृथिवी से मेरी रक्षा करे। वायु अन्तरिक्ष से आने वाले उपद्रवों से मेरी रक्षा करे। नियन्ता राजा मेरी मनुष्यों से रक्षा करे। ज्ञान और वाणी मुझे पृथिवी के स्वामी लोगों से सुरक्षित रक्खे।

प्राणापानौ मा मां हासिष्टं मा जने प्र मेषि ॥ ५ ॥

भा०—प्राण और अपान दोनों मुझे त्याग न करें। मैं लोगों के बीच रहता हुआ कभी न मरूं।

स्वस्त्यद्योषसो दोषसश्च सर्व आपः सर्वगणो अशीय ॥ ६ ॥

भा०—हे आप्त पुरुषो! आज कल्याण हो। दिनों और रातों में मैं सर्वाङ्गपूर्ण होकर और अपने समस्त भृत्य और बन्धुजनों सहित सुख भोग करूं।

शक्वरी स्थ पशवो मोप स्थेषुर्मित्रावरुणौ मे प्राणापानावग्निर्मे दक्षं दधातु ॥ ७ ॥

भा०—हे आप्त पुरुषो! आप लोग शक्ति से सम्पन्न होओ। पशु लोग मेरे पास आवें। मित्र और वरुण तथा प्राण और अपान मुझे बल प्रदान करें। जाठर अग्नि मुझे बल प्रदान करें।

इति प्रथमोऽनुवाकः ।

[[illegible]]

[५] दुःस्वप्न और मृत्यु से बचने के उपाय।

यम ऋषिः । दुःस्वप्ननाशनो देवता । १—६ (प्र०) विराड्गायत्री । (५ प्र० भुरिक् । ६ प्र० स्वराड) १ प्र० ६ द्वि० प्राजापत्या गायत्री । ६ तृ० द्विपदा साम्नी बृहती । दशर्चं पञ्चमं पर्यायसूक्तम् ।

विद्म ते स्वप्नजनित्रं ग्राह्याः पुत्रोसि यमस्य करणः ॥१॥ अन्तकोसि मृत्युरसि ॥२॥ तं त्वा स्वप्न तथा सं विद्म स नः स्वप्न दुष्वप्न्यात् पाहि ॥ ३ ॥

भा०—हे स्वप्न ! हम तेरे उत्पत्ति स्थान को जानते हैं। तू अंगों को शिथिल करने वाली शक्ति का पुत्र है, उससे उत्पन्न होता है। तू बांध लेने वाले का साधन है। तू सब चेतना वृत्तियों का अन्त करने वाला है। तू मृत्यु है। हे स्वप्न ! उस तुझको हम उस प्रकार भली प्रकार से जानते हैं। वह तू हमें दुःखप्रद स्वप्न की अवस्था या मृत्यु से बचा।

विद्म ते स्वप्न जनित्रं निर्ऋत्याःपुत्रोऽसि यमस्य करणः०।०॥४॥ विद्म ते स्वप्न जनित्रमभूत्याः पुत्रोऽसि० । ० ॥५॥ विद्म ते स्वप्न जनित्रं निर्भूत्याः पुत्रोऽसि०।० ॥६॥ विद्म ते स्वप्न जनित्रं पराभूत्याः पुत्रोऽसि० । ० । ० ॥ ७ ॥ विद्म ते स्वप्न जनित्रं देवजामीनां पुत्रोऽसि यमस्य करणः ॥ ८ ॥ अन्तकोसि मृत्युरसि ॥९॥ तं त्वा स्वप्न तथा सं विद्म स नः स्वप्न दुष्वप्न्यात् पाहि॥१०

अथर्व० ६ । ४६ । २ ॥

भा०—हे स्वप्न ! [४—१०] हम तेरी उत्पत्ति का कारण जानते हैं। तू निर्ऋति, पापप्रवृत्ति का पुत्र है। तू 'अभूति', चेतना या ऐश्वर्य की सत्ता के अभाव का पुत्र है उससे उत्पन्न होता है। 'निर्भूति' चेतना की बाह्य सत्ता या अपमान से उत्पन्न होता है। इन्द्रियगत प्राणों के भीतरी विद्यमान दोषों से उत्पन्न होता है। पूर्ववत् ऋचा २, ३ के समान।

(६) अन्तिम विजय, शान्ति, शत्रुशमन ।

यम ऋषिः । दुःस्वप्ननाशनम् उषा च देवता । १—४ प्राजापत्यानुष्टुभः साम्नी-पंक्तिः । ६ निचृद् आर्ची बृहती । ७ द्विपदा साम्नी बृहती । ८ आसुरी जगती । ९ आसुरी बृहती । १० आर्ची उष्णिक् । ११ त्रिपदा यवमध्या गायत्री वार्च्य-नुष्टुप् । एकादशर्चं षष्ठं पर्यायसूक्तम् ।

अजैष्माद्यासनामाद्याभूमानागसो वयम् ॥ १ ॥

भा०—आज हमने अपनी दुर्वृत्तियों पर विजय कर लिया है । आज हमने प्राप्तव्य पदार्थ को भी प्राप्त कर लिया है । हम अब निष्पाप हो गये हैं ।

उषो यस्माद् दुष्वप्न्यादभैष्माप तदुच्छतु ॥ २ ॥

भा०—हे उषाकाल ! हम जिस बुरे स्वप्न होने से भय करते हैं वह दूर हो जाय ।

द्विषते तत् परा वह शपते तत् परा वह ।
यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तस्मा एनद् गमयामः ॥ ४ ॥

भा०—जो हम से द्वेष करे उसके लिये उस दुःस्वप्न को परे लेजा, और जो हमें बुरा भला कहे उसके लिये उस दुःस्वप्न को लेजा । जिसके साथ हम द्वेष करते हैं और जो हमारे साथ द्वेष करता है उसके प्रति इस दुःस्वप्न को हम भेजते हैं ।

उषा देवी वाचा संविदाना वाग् देव्युषसा संविदाना ॥ ५ ॥ उषस्पतिर्वाचस्पतिना संविदानो वाचस्पतिरुषस्पतिना संविदानः ॥६॥ तेऽमुष्मै परा वहन्त्वरायान् दुर्णाम्नः सदान्वाः ॥७॥

भा०—प्रकाश वाली उषा वेदवाणी से संगत हो, और ज्ञान के प्रकाश से युक्त वाणी पापदाहक उषा से संग लाभ करती हो । उषा का पालक सूर्य वाणी के स्वामी विद्वान् या परमेश्वर के साथ संगति लाभ करे, और वाणी का स्वामी विद्वान् उषा के स्वामी सूर्य के साथ संगति

लाभ करता हो। अर्थात् वे सब शत्रु को कष्ट देने के लिये ऐश्वर्यों से रहित बुरे नाम वाली सदा कष्टकारी विपत्तियों को ले जावें।

कुम्भीकां दूषीकाः पीयकान् ॥८॥ जाग्रद्दुष्वप्न्यं स्वप्नेदुष्वप्न्यम् ॥९॥ अनागमिष्यतो वरानवित्तेः संकुल्पानमुच्या द्रुहः पाशान् ॥१०॥ तदमुष्मा अग्ने देवाः परा वहन्तु वध्रिर्यथासद् विथुरो न साधुः ॥ ११ ॥

भा०—वाणी, उषा और उनके पालक लोग कुम्भीक अर्थात् बड़े के समान पेट बढ़ा देने वाली जलोदर आदि, शरीर में विष का दोष उत्पन्न करने वाली और प्राण हिंसा करने वाली व्याधियों और रोगों को और जागते समय के दुस्वप्न होने और सोते समय में दुस्वप्न होने, और भविष्यत् में कभी न आने वाले उत्तम ऐश्वर्य अर्थात् उत्तम ऐश्वर्यों के भविष्यत् में न आने के कष्टों को, द्रव्य लाभ न होने या दरिद्रता से उठे नाना सकल्पों, और कभी न छूटने वाले परस्पर के कलहों के पाशों को, हे शत्रुभयदायक! राजन्! प्रभो! विद्वान् लोग उन सब कष्टदायी बातों को उस शत्रु के पास पहुंचावें। जिससे वह शत्रुजन निर्वीर्य वध्रिया हो। व्यथा वाला हो और अपनी अभिलाषाओं को सिद्ध न कर सके।

(७) शत्रुदमन।

यम ऋषि । दुःस्वप्ननाशनम्। उषा देवता। १ पंक्तिः। २ साम्न्यनुष्टुप्। ३ आसुरी उष्णिक्। ४ प्राजापत्या गायत्री। ५ आर्च्युष्णिक्। ६, ९, ११ साम्नीबृहत्यः। ७ याजुषी गायत्री। ८ प्राजापत्या बृहती। १० साम्नी गायत्री। १२ भुरिक् प्राजापत्यानुष्टुप्। १३ आसुरी त्रिष्टुप्। त्रयोदशर्चं सप्तमं पर्यायसूक्तम्।

तेनैनं विध्याम्यभूत्यैनं विध्यामि निर्भूत्यैनं विध्यामि।
पराभूत्यैनं विध्यामि ग्राह्यैनं विध्यामि तमसैनं विध्यामि ॥ १ ॥

भा०—मैं उसी नाना प्रकार के शस्त्र से उस शत्रु को ताड़ना करूं। ऐश्वर्य के अभाव से उसको पीड़ित करूं। पराजय और तिरस्कार से

उसको पीड़ित करूं। नाना प्रकार की जकड़ से उसको पीड़ित करूं। अन्धकार और मृत्यु से पीड़ित करूं। अर्थात् शत्रु को शस्त्रास्त्र से पीड़ित करो, ऐश्वर्य उसके पास न जाने दो, उसकी धन सम्पत्ति छीन लो, पराजित और तिरस्कार करो, पकड़कर कैद कर लो, और अन्धेरे से भरे कैदखाने में उसे डाल दो।

देवानामेनं घोरैः क्रूरैः प्रैषैरभिप्रेष्यामि ॥ २ ॥

भा०—इस शत्रु को विद्वानों की भयानक और कष्टदायी आज्ञाओं द्वारा कामों में लगाऊं।

वैश्वानरस्यैनं दंष्ट्रयोरपि दधामि ॥ ३ ॥

भा०—इस शत्रु को वैश्वानर नाम का अस्त्र, महान् अग्नि या परमात्मा की दाढ़ों में धर दूं।

एवानेवाव सा गरत् ॥ ४ ॥

भा०—वह दाढ़ इस प्रकार से या अन्य प्रकार से भी शत्रु को निगल जाय।

योऽस्मान् द्वेष्टि तमात्मा द्वेष्टु यं वयं द्विष्मः स आत्मानं द्वेष्टु ॥५॥

भा०—जो हमसे द्वेष करता है उसको उसकी अपनी आत्मा द्वेष करे, और जिससे हम द्वेष करते हैं वह भी अपने ही साथ द्वेष करे। शत्रु के राज्य में भेद नीति का प्रयोग करना चाहिये।

निर्द्विषन्तं दिवो निः पृथिव्या निरन्तरिक्षाद् भजाम ॥ ६ ॥

भा०—द्वेष करने वाले को द्यौ लोक पृथिवी लोक और अन्तरिक्ष तीनों लोकों से निकाल बाहर करें।

सुयामंश्चाक्षुष ॥ ७ ॥ इदमहमामुष्यायणेऽमुष्याः पुत्रे दुष्वप्न्यं मृजे ॥ ८ ॥

भा०—हे उत्तम रीति से नियम व्यवस्था करने हारे राजन्! हे अपराधियों के अपराधों को भली प्रकार देखनेहारे! मैं न्यायाधीश, इस

इस प्रकार से अमुक गोत्र के अमुक स्त्री के पुत्र पर दुःस्वप्न मृत्यु दण्ड का प्रयोग करता हूँ ।

यद्दोऽअ॑दो अ॒भ्यग॑च्छन् यद् दो॒षा यत् पूर्वां॒ रात्रि॑म् ॥ ९ ॥
यज्जा॒ग्रद् यत् सु॒प्तो यत् दिवा॒ यन्नक्त॑म् ॥ १० ॥
यदह॑रहरभि॒गच्छा॑मि तस्मा॑देनमव॑ दये ॥ ११ ॥

भा०—जो अमुक अमुक अपराध मैं इस अपराधी का देखता हूँ । जो इस रात में और जो गई पूर्व की रात्रि में, और जो जागते हुए, जो सोते हुए, जो दिन को और जो रात्रि को और जो प्रतिदिन इसका अपराध पाता हूँ इस कारण से इस अपराधी को दण्डित करता हूँ ।

तं ज॑हि॒ तेन॑ मन्दस्व॒ तस्य॑ पृ॒ष्टीरपि॑ शृणीहि ॥ १२ ॥
स मा जी॑वी॒त् तं प्रा॒णो ज॑हातु ॥ १३ ॥

भा०—हे दण्डकर्त्तः ! उस अपराधी को दण्ड दे । और इस दण्डदान से भी तू आनन्दित रह । और अमुक अपराधी पुरुष की पसलियों को भी तोड़ डाल । वह अमुक अपराधी न जीवे । और उस अपराधी को प्राण त्याग दे ।

(८) विजयोत्तर शत्रुदमन ।

यमः । दुःस्वप्न नाशनम् । १—२७ (प्र०) एकपदा यजुर्ब्राह्मस्पत्यनुष्टुभः । १—२७ (द्वि०) निचृद् गायत्र्यः । १ तृ० प्राजापत्या गायत्री । १—२७ (च०) त्रिपदाः प्राजापत्यास्त्रिष्टुभ । १—४, ६, १०, १६, २४ आसुरीजगत्यः । ५, ७, ८, १०, ११, १३, १८ (तृ०) आसुरीत्रिष्टुभः । ६, १२, १४, १६, २०, २३, २६ आसुरीपङ्क्तय । २४, २६ (तृ०) आसुरीबृहत्यौ । त्रयस्त्रिंशदृचमष्टम पर्यायसूक्तम् ।

जि॒तम॒स्माक॒मुद्भि॑न्नम॒स्माक॑मृ॒तम॒स्माक॒ तेजो॒ऽस्माक॒ ब्रह्मा॒स्माक॒ स्व॒र॒स्माकं॑ य॒ज्ञो॒३ऽस्माकं॑ प॒शवो॒ऽस्माकं॑ प्र॒जा अ॒स्माकं॑ वी॒रा अ॒स्माक॑म् ॥ १ ॥ तस्मा॑दि॒मं निर्भ॑जामो॒ऽमुमा॑मुष्याय॒णम॒मुष्याः॑ ।

पुत्रमसौ यः ॥ २ ॥ स ग्राह्याः पाशान्मा मोचि ॥ ३ ॥ तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥ ४ ॥

भा०—हमारा विजय है। हमारा ही यह फल उत्पन्न हुआ है। यह अन्न और राष्ट्र हमारा है। यह तेज, क्षात्रबल हमारा है। यह समस्त वेद और वेद के विद्वान्, ब्राह्मण हमारे हैं। यह समस्त सुखकारक पदार्थ और आकाश भाग भी हमारा है। यह यज्ञ, परस्पर सत्संग और दान और राष्ट्र आदि के समस्त कार्य हमारे अधीन हैं। ये समस्त पशु हमारे हैं। ये समस्त प्रजाएं हमारी हैं। और ये सब वीर सैनिक भी हमारे हैं। इसलिये उस शत्रु को हम इस राष्ट्र से निकालते हैं। अमुक वंश के, अमुक स्त्री के पुत्र और वह जो हमारा शत्रु है उसको हम राष्ट्र से निकालते, बेदखल करते हैं। वह अपराधी लोगों को पकड़ लेने वाली शक्ति के पाश, दण्डधारा से न छुटने पावे। उसका यह बल, वीर्य, प्राण, आयु सब को बांध लेता हूं, काबू कर लेता हूं। यह अब मैं उसको नीचे गिराता हूं।

जितम्० । ० । स निर्ऋत्याः पाशान्मा मोचि । ० ॥५॥ जितम् ० । ० । सोऽभूत्याः पाशान्मा मोचि ।०॥६॥ जितम् ० । ० । स निर्भूत्याः पाशान्मा मोचि । ० ॥ ७ ॥ जितम् ० । ० । स पराभूत्याः पाशान्मा मोचि । ० ॥८॥ जितम् ० । ० । स देवजामीनां पाशान्मा मोचि । ० ॥९॥ जितम् ० । ० । स बृहस्पतेः पाशान्मा मोचि । ० ॥१०॥ जितम् ० । ० । स प्रजापतेः पाशान्मा मोचि ० ॥११॥ जितम् ० । ० । स ऋषीणां पाशान्मा मोचि । ० ॥१२॥ जितम् ० । ० । स आर्षेयाणां पाशान्मा मोचि । ० ॥१३॥ जितम् ० । ० । सोऽङ्गिरसां पाशान्मा मोचि । ० ॥१४॥ जितम् ०।०।

सोऽङ्गिरसानां पाशान् मा मोचि। ० ॥१५॥ जितम् ०। ०। सोऽथर्वणां पाशान्मा मोचि। ० ॥१६॥ जितम् ०। ०। स आथर्वणानां पाशान्मा मोचि। ० ॥१७॥ जितम् ०। ०। स वनस्पतीनां पाशान्मा मोचि। ० ॥ १८ ॥ जितम् ०। ०। स वानस्पत्यानां पाशान्मा मोचि। ० ॥ १९ ॥ जितम् ०। ०। स ऋतूनां पाशान्मा मोचि। ० ॥२०॥ जितम्० । ०। स आर्तवानां पाशान्मा मोचि। ०॥२१॥ जितम् ०। ०। स मासानां पाशान्मा मोचि। ० ॥२२॥ जितम् ०।०। सोऽर्धमासानां पाशान् मा मोचि। ० ॥२३॥ जितम् ०।०। सोऽहोरात्रयोः पाशान्मा मोचि। ० ॥ २४ ॥ जितम् ०। ०। सोऽह्नोः संयतोः पाशान्मा मोचि। ० ॥२५॥ जितम् ०। ०। स द्यावापृथिव्यो पाशान्मा मोचि। ० ॥२६॥ जितम् ०। ०। स इन्द्राग्न्योः पाशान्मा मोचि। ० ॥ २७ ॥ जितम् ०। ०। स मित्रावरुणयोः पाशान्मा मोचि। ० ॥ २८ ॥ जितम् ०। ०। स राज्ञो वरुणस्य पाशान्मा मोचि। ० ॥ २९ ॥

भा०—सर्वत्र पूर्ववत्। वह शत्रु कठोर दण्ड व्यवस्था के पाश से न छूट पावे। वह ऐश्वर्य के अभाव सम्पत्ति के छिनने ऐश्वर्य के हाथ से निकल जाने या तिरस्कार के पाश से न छूट जाय ॥ ५-८ ॥ वह विद्वानों की सहज शक्तियों, बृहस्पति, प्रजापति, ऋषियों, ऋषि सन्तानों, आंगिरसवेद के विद्वानों और उनके शिष्यों, अथर्ववेद के ज्ञाताओं और अथर्वाओं के शिष्यों के पाश से न छूट पावें। ९-१७ ॥ वह वनस्पतियों, प्रजापालकों, उनके अधीन अन्य शासकों, ऋतुओं, ऋतुओं में होने वाले पदार्थों, मासों, अर्धमासों, पक्षों, दिन और रात्रि के पाश से न छूट पावे ॥ १८-२५ ॥ वह गुजरते हुए दो दिनों के, द्यौ और पृथिवी के,

इन्द्र और अग्नि के, मित्र और वरुण के और राजा और वरुण के पाश से मुक्त न हो।

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् ॥३०॥ तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः ॥३१॥ स मृत्योः पड्वीशात् पाशान्मा मोचि ॥३२॥ तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि ॥ ३३ ॥

भा०—पूर्ववत् ! पूर्ववत् वह मृत्यु के चरण मे पड़ने वाले पाश से छूटने न पावे । पूर्ववत् ऋचा १—४ ॥

(९) ऐश्वर्य प्राप्ति ।

यम ऋषिः । चत्वारि वै वचनानि । १ प्रजापतिः । २ मन्त्रोक्ता देवता च । ३ सूर्यः । १ आर्ची अनुष्टुप् । २ आर्च्युष्णिक् । ३ साम्नी पङ्क्तिः । ४ परोष्णिक् ।

चतुर्ऋचं नवमं पर्यायसूक्तम् ।

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमभ्यष्ठां विश्वाः पृतना अरातीः ॥१॥

अथर्व० १० । ५ । ३६ प्र० द्वि० ॥

भा०—यह जीता हुआ राष्ट्र हमारा है । यह राष्ट्र की उपज हमारी है । मैं समस्त सेनाओं को और शत्रु सेनाओं को अपने वश करता हूं ।

तदग्निराह तदु सोम आह पूषा मां धात् सुकृतस्य लोके ॥ २ ॥

भा०—अग्नि इस बात का उपदेश करता है, सोम भी इसी का उपदेश करता है । पुष्टिकारक अध्यक्ष हम को सुकृत अर्थात् पुण्य के लोक में स्थापित करे ।

अगन्म स्व: स्वरगन्म सं सूर्यस्य ज्योतिषागन्म ॥ ३ ॥

भा०—हम सुखमय राष्ट्र को प्राप्त हों। सूर्य के तेज से युक्त हों। हम सुखमय लोक को प्राप्त करें।

वस्योभूयाय वसुमान् यज्ञो वसु वंशिषीय वसुमान् भूयासं वसु मयि धेहि ॥ ४ ॥

भा०—अति अधिक ऐश्वर्यवान् होने के लिये प्रजापति स्वयं ऐश्वर्य से युक्त है। उसकी कृपा से मैं स्वयं ऐश्वर्य को प्राप्त करूं। मैं धनैश्वर्य सम्पन्न होऊं। मेरे में हे परमात्मन्! ऐश्वर्य प्रदान कर।

यह समस्त विजयसूक्त अध्यात्म में अन्तः-शत्रुओं के वशीकरण पर भी लगते हैं। समस्त विजय करके हम मोक्ष सुख का लाभ करें।

इति द्वितीयेऽनुवाकः।

[तत्र पञ्च पर्यायाः एकसप्ततिरवसानर्चः।]

इति षोडशं काण्डं समाप्तम्।

षोडशे नव पर्याया अनुवाकद्वयं तथा।

शतं तिस्रोऽवसानर्चो गण्यन्तेऽथर्ववेदिभिः॥

इति प्रतिष्ठितविद्यालङ्कार—मीमांसातीर्थविरुदोपशोभित-श्रीमत्पण्डितजयदेवशर्मणा विरचितेऽथर्वणो ब्रह्मवेदस्यालोकभाष्ये षोडशं काण्डं समाप्तम्।

॥ ओ३म् ॥

अथ सप्तदशं काण्डम्

[१] अभ्युदय की प्रार्थना।

ब्रह्मा ऋषिः। आदित्यो देवता। १ जगती। १–८ त्र्यवसाना। २–४ अतिजगत्यः। ६, ७, १९ अत्यष्टयः। ८, ११, १६ अतिधृतयः। ९ पञ्चपदा शक्वरी। १०, १३, १६, १८, १९, २४ त्र्यवसानाः। १० अष्टपदा धृतिः। १२ कृतिः। १३ प्रकृतिः। १४, १५ पञ्चपदे शक्वर्यौ। १७ पञ्चपदा विराडतिशक्वरी। १८ भुरिग् अष्टिः। २४ विराड् अत्यष्टिः। १–५ षट्पदा। ६, ८, ११, १३, १६, १८, १९, २४ सप्तपदाः। २० ककुप्। २७ उपरिष्टाद् बृहती। २२ अनुष्टुप्। २३ निचृद् बृहती (२२, २३ याजुष्यौ द्वे द्विपदे)। २५, २६ अनुष्टुप्। २७, ३०। जगत्यौ। २०, ३० त्रिष्टुभौ। त्रिंशदृचं सूक्तम्।

विषासहिं सहमानं सासहानं सहीयांसम्। सहमानं सहोजितं स्वर्जितं गोजितं संधनाजितम्। ईड्यं नाम ह्व इन्द्रमायुष्मान् भूयासम् ॥ १ ॥ विषासहिं ०। ० ह्व इन्द्रं प्रियो देवानां भूयासम् ॥ २ ॥ विषासहिं ०। ० ह्व इन्द्रं प्रियः प्रजानां भूयासम् ॥ ३ ॥ विषासहिं ०। ० ह्व इन्द्रं प्रियः पशूनां भूयासम् ॥ ४ ॥ विषासहिं सहमानं सासहानं सहीयांसम् सहमानं सहोजितं स्वर्जितं गोजितं संधनाजितम्। ईड्यं नाम ह्व इन्द्रं प्रियः समानानां भूयासम् ॥ ५ ॥

भा०—मैं विशेष रूप से शत्रुओं का दमन करने वाले, दमन करते हुए, पुनः २ दमन करने हारे, दमनशील, अपने बल से शत्रु को जीतने वाले, सुखमय राष्ट्र का विजय करने वाले, गौ आदि पशुओं के विजय करने वाले, समस्त धन ऐश्वर्य को विजय करने वाले, स्तुति योग्य ऐश्वर्यवान्, इन्द्र के नाम परमेश्वर का स्मरण करता हूं। और मैं स्वयं दीर्घ आयुष्मान् होऊं ॥ १ ॥ इत्यादि सर्वत्र पूर्ववत्। विद्वानों,

अधिकारियों का मैं प्रिय होऊं ॥२॥ प्रजाओं का प्रिय हो जाऊं ॥ ३ ॥ पशुओं का प्रिय हो जाऊं ॥ ४ ॥ अपने समान पुरुषों का प्रिय हो जाऊं ॥ ५ ॥

उदि॒ह्युदि॑हि सूर्य॒ वर्च॑सा मा॒भ्युदि॑हि । द्वि॒षंश्च॒ मह्यं॑ रध्य॑तु मा चा॒हं द्वि॑ष॒ते र॑धम॒ तवेद् वि॑ष्णो बहु॒धा वी॒र्या॒णि । त्वं नः॑ पृणी॒हि प॒शुभि॑र्वि॒श्वरू॑पैः सु॒धायां॑ मा धेहि पर॒मे व्यो॑मन् ॥ ६ ॥

भा०—हे सर्वप्रेरक प्राणात्मन् परमेश्वर ! तू उदय हो, उदय हो। अपने तेज से मेरी तरफ को उदय हो, मेरे सामने प्रकट हो। द्वेष करने हारा मेरे वश हो। और मैं शत्रु के वश न होऊं। हे सर्वव्यापक प्रभो! तेरे ही बहुत प्रकार के बलसाध्य कार्य दृष्टिगोचर हो रहे हैं। तू हमें समस्त प्रकार के पशुओं से पूर्ण कर। तू अपनी उत्तम भरण-पोषण करने वाली अमृतरूप शक्ति में और परम रक्षाकारी स्थान में मुझे स्थापित कर।

उदि॒ह्युदि॑हि सूर्य॒ वर्च॑सा मा॒भ्युदि॑हि । यांश्च॒ पश्या॑मि॒ यांश्च॒ न तेषु॑ मा सुम॒तिं कृ॑धि तवे० । ० ॥ ७ ॥

भा०—हे हृदयाकाश के परमसूर्य, प्रेरक प्रभो! उदय होवो, उदय होवो, मेरे समक्ष उदय होवो, दर्शन दो। भगवन्! जिन लोगों को मैं देखूं और जिनको मैं न भी देखूं उनमें भी आप मुझको सुमति, शुभ उत्तम बुद्धि और चित्त वाला करो। इत्यादि पूर्ववत्।

मा त्वा॑ दभन्त्सलि॒ले अ॒प्स्व॒न्तर्ये पा॒शिन॑ उप॒तिष्ठ॒न्त्यत्र॑ ।
हि॒त्वाश॑स्तिं दिव॒मारु॑क्ष ए॒तां स नो॑ मृड सुम॒तौ ते॑ स्याम॒ तवे० । ० ॥ ८ ॥

भा०—हे आत्मन्! जैसे जल में या गमन करने के मार्ग में जो गति रोकने वाले, पाश हाथ में लिये पुरुष हों, जो कि प्रजाओं के बीच में आ उपस्थित होते हैं, वे तुझे पीड़ित न करें। तू निन्दा को त्याग कर उस मोक्षपद को प्राप्त हो। वह तू हमें सुखी कर। तेरी शुभ मति में हम रहें। इत्यादि पूर्ववत्।

त्वं न॑ इन्द्र म॒हते सौभ॑गा॒याद॑ब्धेभिः॒ परि॑ पाह्य॒क्तुभि॒स्तवे०।०॥९॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् ! तू हमें बड़े सौभाग्य उत्तम ऐश्वर्यों की प्राप्ति के लिये अपने कभी विनाश न होने वाले प्रकाशों से सब ओर से रक्षा कर। इत्यादि पूर्ववत्।

त्वं न॑ इन्द्रो॒तिभि॑' शि॒वाभि॑ः शंत॑मो भव। आ॒रोह॑स्त्रि॒दिवं॑ दि॒वो गृ॑णा॒नः सोम॑पीतये प्रि॒यधा॑मा स्व॒स्तये॑ तवे०।०॥१०॥ (१)

भा०—हे ऐश्वर्यवन् ! आत्मन् ! तू हमारे लिये कल्याणकारी, रक्षा करने वाली शक्तियों से अति अधिक कल्याणकारी हो। हे आत्मन् ! तू अति तीर्णमय परम लोक को चढ़ता हुआ, तेजोमय परमेश्वर की स्तुति करता हुआ, शान्तिदायक ब्रह्मानन्दरस, मोक्षानन्द का पान करने के लिये और कल्याण के लिये, समस्त संसार के धारक, परम धाम का प्रिय होकर रह।

त्वमि॑न्द्रासि वि॒श्वजित् स॑र्व॒वित् पु॑रुहू॒तस्त्वमि॑न्द्र। त्वमि॑न्द्रे॒मं सु॒हवं॒ स्तोम॒मेर॑यस्व॒ स नो॑ मृड सुम॒तौ ते॑ स्याम॒ तवे०।०॥११॥

भा०—हे विभूति सम्पन्न आत्मन् ! तू समस्त संसार का विजेता है। हे शक्तिमन् ! तू सर्वज्ञ और बहुत ऋषि मुनियों द्वारा स्तुति योग्य है। हे आत्मन् ! तू इस उत्तम ज्ञान से युक्त स्तुति मन्त्र को उच्चारण कर। वह परम आत्मा हमें सुखी करे। हे परमात्मन् ! तेरी शुभ मति में हम रहें। इत्यादि पूर्ववत्॥

अद॑ब्धो दि॒वि पृ॑थि॒व्यामु॒तासि॒ न त॑ आपुर्म॑हि॒मान॑म॒न्तरि॑क्षे। अद॑ब्धेन॒ ब्रह्म॑णा वावृधा॒नः स त्वं न॑ इन्द्र दि॒वि षं॑श्शर्म॑ यच्छ तवे०।०॥१२॥

भा०—हे परमात्मन् ! ब्रह्मानन्द मोक्षलोक में और पृथिवीलोक में भी तू नित्य व्यापक है। इस अन्तरिक्ष में भी ये ओषधिगण तेरे महान् ऐश्वर्य को प्राप्त नहीं कर सकते। तू नित्य वर्धनशील देव और देवों

के बल से बराबर बढ़ता हुआ होकर उस मोक्ष में हमें सुख शरण प्रदान कर । इत्यादि पूर्ववत् ।

या त॑ इन्द्र त॒नूर॒प्सु या पृ॑थि॒व्यां यान्त॒र॒ग्नौ या त॑ इन्द्र पव॑माने स्व॒र्विदि॑ । ययेन्द्र त॒न्वा॒न्तरि॑क्षं व्या॒पि॒थ तया॑ न इन्द्र त॒न्वा॒ शर्म॑ यच्छ॒ तवे० । ० ॥१३॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् परमेश्वर ! तेरी जो निर्माणकारिणी सर्जनशक्ति जलों में, जो पृथिवी में, जो अग्नि के भीतर, और हे परमेश्वर ! जो तेरी रचनाशक्ति परम उच्च आकाश तक पहुचे हुए आदित्य में है । और हे परमेश्वर जिस विस्तृत सर्जनकारिणी वायु शक्ति से अन्तरिक्ष को व्याप्त करते हो । हे परमेश्वर ! उस सर्जनशक्ति से हमें सुख प्रदान कर ।

त्वामि॑न्द्र॒ ब्रह्म॑णा व॒र्धय॑न्तः स॒त्रं नि षे॑दु॒र्ऋष॑यो नाध॑माना॒स्तवे० । ० । १४

भा०—हे परमेश्वर ! तुझको वेद से बढ़ाते हुए, सर्वत्र तेरी महिमा को गाते हुऐ, प्रार्थना, उपासना करते हुए ऋषि लोग स्वतन्त्र ज्ञान-यज्ञ में विराजते हैं । इत्यादि पूर्ववत् ।

त्वं तृ॒तं त्वं पर्ये॒ष्युत्सं॒ स॒हस्र॑धारं वि॒दथं॑ स्व॒र्विदं॒ तवे० । ० ॥१५॥

भा०—हे परमात्मन् ! तू अति विस्तीर्ण आकाश में व्यापक है । तू समस्त संसार को धारण पोषण करने हारे, ज्ञान से परिपूर्ण, मोक्षानन्द का लाभ कराने हारे उस परम स्रोत को भी व्यापे हुए है । इत्यादि पूर्ववत् ।

त्वं र॑क्षसे प्र॒दिश॒श्चत॑स्र॒स्त्वं शो॒चिषा॒ नभ॑सी॒ वि भा॑सि । त्वामि॒मा विश्वा॒ भुव॒नानु॑ तिष्ठस ऋ॒तस्य॒ पन्था॒मन्वे॑षि वि॒द्वांस्तवे ०।०॥१६॥

भा०—हे परमात्मन् ! तू चारों दिशाओं, उनमें निवास करने वाले लोकों की रक्षा करता है । और तू अपने तेज से नीचे और ऊपर के दोनों आकाशों के बीच के समस्त लोकों को भी विविध रूपों में प्रकाशित करता है । तू इन समस्त उत्पन्न होने वाले लोकों को बनाता है और उनके समस्त कार्यों का सचालन, सम्पादन करता है । तू ही सब कुछ जानता

हुआ परम सत्य के मार्ग को अनुसरण करता है इत्यादि पूर्ववत्।

पञ्चभिः पराङ् तपस्येकयार्वाङशस्तिमेषि सुदिने बाधमानस्तवे०। ०॥ १७॥

भा०—हे परमेश्वर! तू पांचों से परे बाहर की ओर तप रहा है और तू एक शक्ति से उरे की ओर तप रहा है। तू प्रकाशमय अवसर में निन्दनीय अविद्या को बांधता हुआ हमें प्राप्त होता है। इत्यादि पूर्ववत्।

ब्रह्मपक्ष में पांच भूत और एक परम प्रकृति।

अध्यात्म में—पांच बहिर्मुख प्राण और एक भीतरी चिति शक्ति।

त्वमिन्द्रस्त्वं महेन्द्रस्त्वं लोकस्त्वं प्रजापतिः तुभ्यं यज्ञो वि तायते तुभ्यं जुहति जुह्वतस्तवे०। ०॥ १८॥

भा०—हे परम आत्मन्! तू 'इन्द्र' है। तू 'महेन्द्र' है। तू लोक अर्थात् प्रकाशस्वरूप सब का द्रष्टा है। तू 'प्रजापति' समस्त प्रजाओं का पालक है। हे परमेश्वर! यज्ञ, उपासना और देवपूजा के समस्त कार्य तेरे लिये विविध प्रकार से रचे जाते हैं। आहुति देने हारे तेरे लिये आहुति देते हैं। इत्यादि पूर्ववत्।

असति सत् प्रतिष्ठितं सति भूतं प्रतिष्ठितम् भूतं ह भव्य आहितं भव्यं भूते प्रतिष्ठितं तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि। त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन्॥ १९॥

भा०—"सत्" रूप से प्रतीत होने वाला यह व्यक्त संसार 'असत्' अव्यक्त में प्रतिष्ठित है, आश्रित है। अथवा "असत्" क्षणभंगुर इस प्राकृतिक जगत् में निरन्तर एक रस रहने वाला सदा विद्यमान 'सत्' ही सबसे प्रतिष्ठित है, वह सर्वोच्च अधिष्ठातृ रूप पद पर स्थित है। 'सत्' सदा विद्यमान, सत्य, अविनाशी परमेश्वर के आधार पर यह उत्पन्न संसार आश्रित है। यह उत्पन्न हुआ संसार आगे होने वाले भविष्यत् पर आश्रित है। और भविष्यत् गुजरे हुए काल पर प्रतिष्ठित है। हे व्यापक परमात्मन्! ये तेरे ही बहुत प्रकार के सामर्थ्य हैं, तू हमें

सब प्रकार के पशुओं से पूर्ण कर। उत्तम रूप से धारण करने योग्य, परम रक्षास्थान मोक्ष में मुझे रख। अथवा असत् प्रधान प्रकृति में सत् व्यक्त, महत्तत्व आश्रित है उस 'सत्' में 'भूत' पांचों तत्व आश्रित हैं। वह पांचों भूत ही भव्य अर्थात् उत्पन्न होने वाले कार्य-जगत् में प्रतिष्ठित हैं। और यह सर्व कार्यजगत् 'भूत' अपने कारणभूत सूक्ष्म पञ्चभूतों में आश्रित है। वे सब भी परमेश्वर के ही नाना आश्चर्यकारी कार्य हैं।

शुक्रोसि भ्राजोसि। स यथा त्वं भ्राजता भ्राजोस्येवाहं भ्राजता भ्राज्यासम् ॥ २० ॥ (२)

भा०—हे परमेश्वर ! तू तेजोमय है। हे परमेश्वर ! तू सबका परिपाक करने हारा है। वह तू जिस प्रकार से अपने प्रखर प्रताप से या जगत् के समस्त पदार्थों के परिपाक करने के सामर्थ्य से तू सबका परिपाक करने हारा है, उसी प्रकार मैं प्रखर प्रताप से देदीप्यमान होऊं।

रुचिरसि रोचोऽसि। स यथा त्वं रुच्या रोचोस्येवाहं पशुभिश्च ब्राह्मणवर्चसेन च रुचिषीय ॥ २१ ॥

भा०—हे ईश्वर ! तू कान्ति है। तू कान्तिमान् है। वह तू जिस प्रकार अपनी कान्ति से मनोहर है, उसी प्रकार मैं पशुओं से और ब्रह्मतेज से कान्तिमान् बनूं।

उद्यते नम उदायते नम उदिताय नमः।
विराजे नमः स्वराजे नमः सम्राजे नमः ॥ २२ ॥

भा०—हे परमेश्वर ! सूर्य के समान हृदय में कोमल प्रकाश से उदित होते हुए तुझे नमस्कार है। ऊपर आने वाले तुझे नमस्कार है। उदित हुए तुझको नमस्कार है। विविध रूप से प्रकाशमान तुझको नमस्कार है। स्वयं प्रकाशमान तुझको नमस्कार है। समान भाव के सर्वत्र प्रकाशमान तुझको नमस्कार है।

अस्तंयते नमोस्तमेष्यते नमोस्तमिताय नमः।
विराजे नमः स्वराजे नमः सम्राजे नमः ॥ २३ ॥

भा०—अस्त होते हुए को नमस्कार है। अस्त हो जाना चाहते को नमस्कार है। अस्त हुए हुए को नमस्कार है। यह प्रलयकालिक परमेश्वर के स्वरूप का वर्णन है।

उदगादयमादित्यो विश्वेन तपसा सह। सपत्नान् मह्यं रन्धयन् मा चाहं द्विषते रधं तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् ॥ २४ ॥

भा०—यह साक्षात् सूर्य समस्त तप के साथ उदित होता है। यह मेरे लिये शत्रुओं को मेरे वश करे और मैं शत्रु के वश न होऊं। इत्यादि पूर्ववत्।

आदित्य नावमारुक्षः शतारित्रां स्वस्तये अहर्मात्यपीपरो रात्रिं सत्राति पारय ॥ २५ ॥

भा०—हे सबको अपने वश कर लेने वाले प्रकाशमान! तू कल्याण के लिये सैकड़ों प्राणियों को त्राण करने और समस्त संसार को प्रेरण और संचालन करने में समर्थ शक्ति पर अधिष्ठित हो। तू मुझको दिन के समय या सृष्टि काल के पार पहुंचा और साथ ही रात्रिकाल या प्रलय-काल के भी पार कर। अथवा हे आदित्य! नाव के समान तेरा मैं आश्रय लेता हूं। तू मुझे दिन रात के कष्टों से पार कर।

सूर्य नावमारुक्षः शतारित्रां स्वस्तये। रात्रिं मात्यपीपरोऽहः सत्राऽति पारय ॥ २६ ॥

भा०—हे सब जगत् के प्रेरक परमात्मन्! कल्याण के लिये तू सैकड़ों बलों से त्राण करने वाली जगत् की प्रेरक शक्ति को व्यापता है, उस पर अधिष्ठित है। इत्यादि पूर्ववत्।

प्रजापतेरावृतो ब्रह्मणा वर्मणाहं कश्यपस्य ज्योतिषा वर्चसा च। जरदष्टिः कृतवीर्यो विहायाः सहस्रायुः सुकृतश्चरेयम् ॥ २७ ॥

भा०—मैं प्रजापालक परमेश्वर के वेदज्ञानरूप कवच से आवृत, दर्शित और सर्वद्रष्टा के तेज और प्रकाश से युक्त होकर, वृद्धावस्था

तक भोक्ता होकर, वीर्यवान्, विविध ज्ञान से सम्पन्न, सहस्रों वर्षों का जीवन प्राप्त कर पुण्यकर्मा होकर विचरूं।

परिवृतो ब्रह्मणा वर्मणाहं कश्यपस्य ज्योतिषा वर्चसा च।
मा मा प्रापन्निषवो दैव्या या मा मानुषीरवसृष्टा वधाय ॥ २८ ॥

भा०—मैं वेदज्ञान रूप कवच से सुरक्षित और सर्वद्रष्टा परमेश्वर के तेज और कान्ति से युक्त होऊं। जो दैवी और मनुष्य सम्बन्धी बाण विनाश के लिये छोड़े गये हों वे मुझे प्राप्त न हों।

ऋतेन गुप्त ऋतुभिश्च सर्वैर्भूतेन गुप्तो भव्येन चाहम्।
मा मा प्रापत् पाप्मा मोत मृत्युरन्तर्दधेऽहं सलिलेन वाचः ॥२९॥

भा०—मैं सत्यज्ञान, समस्त ऋतुओं और भूत और भविष्यत् से सुरक्षित रहूं, पाप मुझ तक न पहुंचे। और मृत्यु भी मुझे प्राप्त न हो। मैं वाणी के बल से जल से भरी खाई से नगर के समान अपनी रक्षा करूं।

अग्निर्मा गोप्ता परिपातु विश्वत उद्यन्त्सूर्यो नुदतां मृत्युपाशान्।
व्युच्छन्तीरुषसः पर्वता ध्रुवाः सहस्रं प्राणा मय्या यतन्ताम् ॥३०(२)॥

भा०—अग्रणी या अग्नि के समान प्रकाशक ज्ञानवान् परमेश्वर मुझे सब ओर से रक्षा करे और सूर्य उदित होता हुआ मृत्यु के पाशों को परे करे। प्रकाशित होती हुई उषाएं और स्थिर पर्वत और अपरिमित प्राण मेरे में क्रियाएं, चेष्टाएं उत्पन्न करें।

इति प्रथमोऽनुवाकः।

इति सप्तदशं काण्डं समाप्तम्।

[एकोऽनुवाकः. सूक्तञ्च त्रिंशत सप्तदश ऋच ।]

बाणवस्वङ्कसोमाब्दे श्रावणे प्रथमेऽसिते।
द्वितीयस्यां भृगौ सप्तदशं काण्डं गत शुभम् ॥

इति प्रतिष्ठितविद्यालङ्कार-मीमांसातीर्थविरुदोपशोभित-श्रीमत्पण्डितजयदेवशर्मणा विरचितेऽथर्वणो ब्रह्मवेदस्यालोकभाष्ये सप्तदशं काण्डं समाप्तम्।